

ब्रह्मसूत्र की टीका पर चम्पाभाषा टीका - १४९

चम्पाभाषा टीका विषयम् ।

चम्पाभाषा टीका

Lakshya Series, Title No 149

BHARATIYA ITIHAS

AN DASHI

(History)

Dr Jyoti Prasad Jena

Author

Publisher

Second Edition 1998

Price Rs. 18.00



ब्रह्मसूत्र की टीका

टीका

टीका टीका

१. ब्रह्मसूत्र की टीका, चम्पाभाषा-१

चम्पाभाषा टीका

चम्पाभाषा टीका टीका-२

टीका टीका

१९९८-९९, ब्रह्मसूत्र की टीका, टीका-२

टीका टीका १९९९

टीका १

चम्पाभाषा टीका, टीका-२

## आमुख



इस पुस्तकमें प्राचीनतम कालसे लेकर स्यतन्त्रता-प्राप्ति पर्यन्त सम्पूर्ण भारतीय इतिहासका क्रमबद्ध विहंगावलोकन प्रस्तुत किया गया है। भारतवर्षकी सनातन भौगोलिक सीमाओंको दृष्टिमें रखकर अल्पवृद्ध भारत-के, जिसमें भारतीय सघके साथ ही पाकिस्तान और नेपाल भी सम्मिलित हैं, इतिहासका विवेचन अभिप्रेत रहा है। खण्डों और अध्यायोंके द्वारा जो विषय-विभाजन किया गया है उसकी योजना मेरी अपनी है। विषय-निष्पणमें यथासम्भव सर्वमाय अथवा बहुमान्य तथ्यों, घटनाओं एवं तिथियोंको ही अपनाया गया है, जहाँ कहीं ऐसा नहीं हुआ उसका कारण निजी शोध-खोजके निष्कर्ष हैं। जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़े १९६१ की जनगणनाके आधारपर दिये गये हैं। जहाँ सम्पूर्ण भारतकी भौगोलिक इकाईका प्रदन है वहाँ भारत और पाकिस्तानके जनसंख्या और क्षेत्रफल-सम्बन्धी आँकड़े सम्मिलित हैं। कुछ भौगोलिक नामोंको हाल ही में परिवर्तित किया गया है। यथासम्भव नये स्वीकृत भौगोलिक नाम पुस्तकमें प्रयुक्त किये गये हैं।

सामान्य इतिहास-पुस्तकोंसे दो-एक अन्तर भी इस पुस्तकमें दृष्टिगोचर होंगे। अथ सामान्य ऐतिहासिक आधारोंके साथ-साथ जैन ऐतिहासिक आधारोंका भी इस पुस्तकमें पर्याप्त उपयोग किया गया है, किन्तु उसी सीमा तक जहाँतक वे अथ प्रामाणिक आधारोंसे समर्थित होते हैं अथवा इतने सबल और विश्वसनीय प्रतीत हुए कि उन्हें मान्यता देना उचित



## यह द्वितीय संस्करण

‘भारतीय इतिहास - एक दृष्टि’ व द्वितीय संस्करणमें इतना जोड़ प्रकाशमें आना श्रेय यदि एक ओर उसकी वृद्धिगत लोकप्रियता एवं उपयोगिताकी है तो, दूसरी ओर भारतीय ज्ञानपीठक मन्त्री एवं लोकोत्तर सम्प्रदायके नियामक भार्ति एशमोसट्रोजीकी तत्परता एवं सुगमव्यवस्था ।

प्रथम संस्करणमें मुद्रणकी जो अशुद्धियाँ रह गयी थी वे इस संस्करणमें ठीक कर दी गयी हैं । भाषाका भी यत्र-तत्र समायोजक परिवर्तन किया गया है । पुस्तकपर प्राप्त समीक्षाओं आशिया नाम उठाकर कतिपय प्रसंगमें आवश्यक संशोधन कर दिये गये हैं । वही वही कुछ परिवर्तन भी किये गये हैं । भारतवर्षके दो मानचित्र तथा अन्तर्गते सामान्यक्रमणिका दे दी गयी है, जो प्रथम संस्करणमें नहीं थी । इन संशोधनों एवं परिवर्तनोंमें पुस्तककी उपयोगितामें समुचित वृद्धि होगी ऐसा विश्वास है ।

इस संस्करणमें कारणभूत पाठक, समीक्षक, मुद्रक, प्रकाशक आदि सभी मजदूरोंका मैं हृदयसे आभारी हूँ ।

हालन्क

—उद्योतिषाद जैन

२७ नवम्बर १९६४







## संग्रह १ प्राचीन भारत

### १ प्रागैतिहासिक काल

प्रागैतिहासिक - १, पुराणा प्रागैतिहासिक इतिहास - ११, भारत मातम् - १४, पूर्व पाषाण युग - १४, पुरातन पाषाण युग - १४, नव्य पाषाण युग - १५, पानु पाषाण युग - १९, निम्न पाटो सम्प्रदाय - २५, वैदिक सम्प्रदाय - २९, उत्तर काल - रामायणसे महाभारत पर्यन्त ३१ ।

### २ प्राचीन युग - प्रथम पाद

महाभारतस्य महाभारत पर्यन्त - ३५ - ६१

### ३ प्राचीन युग - द्वितीय पाद

मगध साम्राज्य - ६२ - १०५ ।

### ४ प्राचीन युग - तृतीय पाद

उत्तर भारत ( ई० पू० २०० से ई० सन् ३०० तक )

आधुनिक सातवाहन - १०७, पश्चिमोत्तर प्रदेशके विदेशी शासक - ११०, गुप्तानी या यवन - ११०, इण्डोपायियन या पल्लव - ११२, इण्डोपायियन या शक - ११२, मद्र प्रदेश वंश - ११८, कुषाण वंश, मालवा - १२२, मयुरा - १२५, नाग वंश - १३३, बकाटक वंश १३७ ।

### ५. मार्षाङ्ग युग - चतुर्थ पाद

अथवा (क) १२ ई एक)

कुल बंध - ११९, अनुबंध - १४, सहायक शिष्टीय विभाग-

रिक्त - १४२ कुम्हारकुल ग्राम कोशालिय - १४३ लखनपुर

विहंगमसिन्धु - १४३ कुसुमसूत - १४४ नागसिन्धु - १४५

सूचकांकन विधीक - १५४ सुचकांकन - १५४ सूचकांकन - १५४

इस - १४६, बाक्य नरेश अधीनस्थ - १५९, कर्माधिकारी अधिकारी

ବର୍ଷ - ୧୯୫୩ ଅକ୍ଟୋବରରେ ବର୍ଷର ବର୍ଷ - ୧୯୫୪ ଜୁନ-ବର୍ଷ -

१२४ अराधकता कीर कटीकर्मन् - १५६, कान्तिन मण्ड - १५७

दुर्गर इतिहास - १९७१ ई. की - १९७० काळातील राजकीय स्थिति -

१५२. कधीकडे वाहणाऱा - १५३. कधीकडे वाहणाऱा - १५४

जिल्ह्याचे क्षेत्र - ११५५ चौरस मै ( चौकट )चा सराफा बंध -

बालक वरवार - १५५ बालक कुंहुलीठ - १५५ हसिठ-

यह इन्वेंटरी के एडिटर - १७१ कागज़ों के आधारी पर है।

- १७१ कलकत्ता संघ - १७१, लाहौर के दफ्तार पर

— 474 —

१. कठिग बरिग शुभ्य नीर हरहर मारव

कलिय - १८      गणेशोदयो - १९५      कुवलय -

१५५ विजय वेष्ट - १११ कपौट - ११३ विप्राक - ११५

કુલુષી સ્તંભો - ૨૧૫, કિલ્લા - ૧૧૧ અગ્રણ્ય - ૧૧૧, સંચાલન

— १११ विमान द्वीप और प्लग्वीज — २१० वर्ष — १९८, गुल्फ

900 000 3361

७. दृष्टिगत कारण [ १ ] २३१

सालाना बंध - ₹४९, मासिक राशि - ₹४९, चैत्र राशि - ₹४९,

पैर राज्य - १५, कर्णाल नदी - २५१, बर्दिया - २५९,

## ८. दक्षिण भारत [ २ ]

वातापीके पदिचमी चालुक्य - २७८, वेंगिके पूर्वी चालुक्य - २८९, राष्ट्रकूट वंश - २९२, कल्याणीके उत्तरवर्ती चालुक्य - ३१०, कल्याणीके कलचुरि - ३१९ ।

## ९ दक्षिण भारत [ ३ ]

पूर्वमध्यकालके प्रमुख उपराज्यवंश - ३२३, सीदत्तिके रट्ट - ३२५, कोंकणके शिलाहार - ३२६, कोगाव वंश - ३३०, चगान्व वंश - ३३१, अलुप या अलुव वंश - ३३१, गंगधाराका चालुक्य वंश - ३३३, तुलुव देशके चगवाडिका चग वंश - ३३४, वारंगलके फकातीय - ३३५, देवगिरिके यादव - ३३६, द्वार-समुद्रका होयसल वंश - ३३९ ।

१० विजयनगर साम्राज्य ३६२-३६०

खण्ड : २ • विदेशी शासनमें भारत

( मुसलमान और अँगरेजी शासन )

१ इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुल्तान

गुलामवंश - ४०४, खिलजीवंश - ४०९, सैयदवंश - ४१९, लोदीवंश - ४१९, सूरिवंश - ४२१ ।

२ पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

बगल - ४२५, जौनपुर - ४२७, मालवा ४२७ गुजरात - ४३०, कश्मीर - ४३३, बहमनीराज्य - ४३४, धरारकी इमादशाही - ४३९, बीदरकी बरीदशाही - ४३९, गोलकुण्डाकी कुतुबशाही - ४३९, अहमदनगरकी निजामशाही ४४०, बीजापुरकी आदिलशाही - ४४१, खानदेशका फारुकीवंश - ४४४, राजपूत राज्य - ४४५ ।

३. सुप्रेक्ष-साक्षात्कार - सुप्रेक्षक

बालक - ४६८ कुम्हार - ४७१ मजदूर ४७४ बालीरीर - ४७५ ।

५ सुपक-मासागि-अषागि

सादरार्थी - श्री. वि. सु. - ५६५, बालगंगा नगर ५६५।

२. अराधकतावाद [ १७७-१८७ ई. ]

सालगन्धी बदलनेचे - १४९ कुडमजान बरवा - हीराबाई

निर्वाह - ४८ अक्षरों की शब्दांश - ११२ अक्षरों की शब्दांश -

५१ पुष्पगढे बवार - १५१ शैबुरहे बवार - १५४

पञ्चाङ्ग मासे १९१ अम - १९४ तिथि - १९९, वैशाख -

१४२. बरमा नाम - १८४ वर्षी बोर वनस्पति - १८१।

**६. पुरोवर्तानियौ-द्वय माणव्यो लुट्**

ਧਰਮ ਸਿੰਘ - ੬੩    ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦਾ ਸਿੰਘ - ੬੩੯    ਕਰ ਕਾਇ ਧੀਰ

- ११३ लार्ड कैपेजली - ११४ कार्ल मार्क्स - ११५ सर मार्स

पानों ११७ नाई विष्टो - ११७, नाई इतिहास - ११७

कार्य समीक्षा - १९८८ का परिणाम बेसिक - १९८८ का

बालक देह काष्ठ - १४१ लार्ड काष्ठ लीप - १४१ लार्ड

**संश्लेषण - १४१ नमः संप्रति - १४२, अर्धे वृत्तयोः - १४३**

पृष्ठ संख्या - १४४

● पुनर्स्थापन पुनः ( १९५८-१९५९ ई. )

विश्लेषण - १९९८ वार्षिक बजट और वित्तिक विवरण

- १९८, विभिन्न सामग्री दूरि- १९९ विभिन्न सामग्री

कविचन्द्र मुर्धे - १४२, कालदास - १८, बसुन्धरी सिन्धिया -

१. सिटी कार्ड - ७५५, सिटी कार्डनहीं कार्ड - ७५४

खण्ड १  
प्राचीन भारत









# अध्याय १

## प्रागैतिहासिक काल

**प्रास्ताविक**—उत्तरमें सुविस्तृत उत्तुंग हिमवान् पर्वतमालामें सुरक्षित तथा दक्षिणमें तीन ओर महासागरसे घेरे हुए और मध्यमें विन्ध्यमेखला-द्वारा उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ नामक दो विशाल भागोंमें विभाजित हमारे इस त्रिकोणाकार महादेशका सर्वप्राचीन उपलब्ध नाम अजनाम था। तदनन्तर यह भागत्वर्ष नामसे विख्यात हुआ। यह नाम भी सहस्रौ वर्ष पुराना है। इस देशका मुख्य भाग आर्यवण्ड कहलाता था, विशेषकर उत्तरापथ ही सजा आर्यावर्त थी। उसके भी मध्य भागका नाम मध्यदेश था। गंगा, यमुनासे युक्त यह मध्यदेश ही प्राचीन भारतीय मस्कृतिका उद्गम स्थान रहा है। इसी प्रदेशमें भारतीय धर्म, दर्शन, ज्ञान और विज्ञान आविष्कृत एवं विकसित हुए, यहींमें देश देशान्तरोमें उनका प्रकाश फैला, इसी प्रदेशका आध्यात्मिक एवं बौद्धिक ही नहीं, राजनैतिक नेतृत्व भी चिरकाल तक न केवल सम्पूर्ण भारत देशपर ही बरन् उसके बाहर भी दूर दूर तक व्याप्त रहा।

अठारह लाख वर्गमील क्षेत्रफल तथा लगभग चौवन करोड़ जनसंख्याका यह विशाल भारतवर्ष एक पूरा महाद्वीप-सरीखा ही है। जल, धूल, भूमिधिति और जलवायु, जीव जन्तु और वनस्पतियों, खनिज और कृषि-उत्पादनोकी जितनी और जैसी विविधता इस देशमें है अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं होता। जातिभेद, भाषाओं, धर्मों और संस्कृतियोंका भी यह एक अद्भुतालय ही कहा जाता है। किन्तु इतनी विषमताओं और विविध-

[illegible][illegible]

मानव भेदोंको जितनी विविधता और विभिन्न मानव जातियोंका मिश्रण सो जैसा भातरयणमें रहा है ऐसा अन्यत्र कहीं नहीं रहा । स्पूट एवंसे दो प्रपात मातृवी धाराएँ यही उपलब्ध होती हैं, एक ऋग, यज्ञ, नाग आदिके यज्ञजोवी यह धारा जिसे वर्तमानमें प्रायः द्राविड नामसे सूचित किया जाना है और दूसरी उत्तर पश्चिमकी ओर उदयमें आनेवाली आर्य जातिके यज्ञजोवी यह धारा जो इण्डोआर्य कहलाती है । इनके अतिरिक्त प्राचीन बालोन आस्ट्रेलायड, मंगोलायड, मानरुमेर आदि और बाला-तरमें ईरानी, यूनानी, शक, पहाड़, कृपाण, इण, दारक, तुर्क आदि जातीय तत्त्व भी समय समयपर भारतीय जनतामें मिश्रित होते रहे हैं । भाषाकी दृष्टिमें भारतीय-आर्य, द्राविड, और मारमेर—ये तीन सत्त्व भारतीय भाषाओंके मूलधार हैं ।

**पृथ्वीका प्रारम्भिक इतिहास**—पृथ्वीके इतिहासमें विषयमें दो विचारधाराएँ हैं । इनमेंसे एक शास्त्रतत्वादी है जिसका विश्वास है कि सत्का कभी नाश नहीं होता और असत्का कभी उत्पन्न नहीं होता । इसके अनुसार विश्व व्यवस्था और उसके अतर्गत हमारे पृथ्वीमण्डल तथा उसपर निवास करनेवाले मनुष्य आदि प्राणियोंकी परम्परा अनादि और अनन्त है । शून्यमेंसे यभी किसी प्रकार उनका अस्मात् उदय हो गया या कभी भी उनका सर्वथा क्षय या अभाव हो जायेगा, यह बात असम्भव है । पदार्थोंमें अपने-अपने द्रव्य क्षेत्र काल-भावके अनुसार निरन्तर परिवर्तन परिणमन होते रहते हैं । इन परिवर्तनोंकी ही कोई-कोई सामूहिक अवस्थाविशेष ऐसी प्रत्यक्ष एवं आत्यंतिक होती है कि उन्हें सृष्टि और प्रलय आदि नाम दे दिये जाते हैं ।

दूसरी विचारधारा सृष्टिवादी सत्कारोंसे उद्भूत है । इसके अनुसार ईश्वर आदि नामोंसे अभिहित शक्ति विशेषण किसी समय अपनी इच्छासे सर्वथा शून्यमेंसे हमारे विश्व, पृथ्वीमण्डल और मानवका एकाएक निर्माण कर दिया और एक समय ऐसा भी आयेगा जब वही शक्ति इनका सर्वथा



एच० जी० यैल्मने अनुमान यह काल ८० करोड़मे ८० करोड़ वर्ष पूर्व तक रहा प्रतीत होता है । इन कालमें प्रारम्भमें सम्पूर्ण पृथ्वी प्रायः एक रूप थी, उसमें भारत यूरप, अफ्रीका, अमेरिका आदि जैसी भौगोलिक इकाइयाँ न बन पायी थीं । किन्तु यह अनुमान दिया जाता है कि भारतके हिमवान् प्रदेश तथा दक्षिणी पठारकी रूपरेखा भूनाटिक्य इतिहासके प्रारम्भम ही बन गयी थी । यन्तुत हिमालयसे कन्सानुमारी पर्यन्त सम्पूर्ण वर्तमान भारतके ढाँचेका मूलाधार भी बन गया था । इस प्रकार भारतवर्षका मूल चट्टानी आधार समुद्रमार्गे ज्ञात जीवनमें प्रारम्भसे ही अवस्थित था ।

निर्जीव युगके उपरान्त जीव युगका प्रारम्भ होता है । इसके तीन खण्ड हैं—पहला काल—पुरातन जीवयुग ( पैलेजोडन ), दूसरा काल—मध्यजीव युग ( मेसोजोडन ) और तीसरा काल—नव्यजीव युग ( नैनेजोडन ) । यह पहला काल ८० करोड़ से ३० करोड़ और यैल्मके अनुसार ३० से १५ करोड़ वर्ष पर्यन्त चला । इसी कालमें सर्व प्रथम घातल-पर वनस्पतियाँ और जीव जन्तुओंके अपने सरलतम प्रारम्भिक रूपोंमें उदय होनेका अनुमान किया जाता है, जिनमें ही शनै-शनै जलचर, नमचर एवं थलचर प्राणियोंका तथा जलाय एवं स्थलाय वनस्पतियोंका विकास हुआ । इस कालमें भूतलकी रूपरेखा भी वर्तमानमें मिलाने योग्य थी । दूसरे कालमें पृथ्वीमें बड़े बड़े दरियाँ, भूतलमें बड़े बड़े परियर्तन हुए, जल-थल विभाजनमें अन्तर पड़े । इस युगमें पृथ्वीकी भौगोलिक स्थिति बहुत करके जैन शास्त्रोंमें वर्णित 'अट्ठाई द्वीप-मनुष्य लोक'के सदृश थी, अर्थात् उत्तरीय ध्रुवकी पेट्र लेकर उल्टे घटोरे-जैसा एक अविच्छिन्न भूखण्ड था जिस चारों ओरसे मेखलाकी नाई एक वृत्ताकार महासागर घेरे हुए था । तत्पश्चात् फिर एक मेखलाकार अविच्छिन्न भूखण्ड था—दक्षिणी भारतके कुछ भाग, अफ्रीका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदिको समुक्त करता हुआ । उसके नाचे फिर एक वृत्ताकार महासागर और अन्तमें दक्षिणी ध्रुव पर्यन्त ऊपर जैसा एक अय भूखण्ड था । यह काल १५

[illegible][illegible]

४०००० से १५००० वर्ष पूर्वके मध्य ही लभित हुआ। इस युगके अम्य-  
 राक्ष, राछ रछोडे, ओडार आदि भी पापाण व अस्थियोंमे ही बने हैं  
 बिन्दु आदिम ढगवे होते हुए भी वे पृथ पापाण युगयालोंकी अपेक्षा  
 श्रेष्ठतर हैं। इसी कालमें सर्वप्रथम मनुष्यके धर्मभावकी किमी न किमी  
 रूपमें अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है। भित्तियोंपर अद्भुत रेखाचित्रोंसे  
 युक्त कुछ आदिमकालीन पर्वतीय गुफाओंमें इसके चिह्न मिले हैं। अन्त्येष्टि  
 संस्कार आदिके भी कुछ अवशेष मिले हैं। मृत अवधितयोंकी बंठी मुद्रामें  
 भूमिस्थ कर दिया जाता था, साथमें आगामी जीवनमें उपयोग करनेके  
 लिए भोजनादि सामग्री भी रख दी जाती थी। ये लोग फल फल, कन्दमूल  
 तथा शिकारमें प्राप्त मांस आदिवा भक्षण करते थे। उनमें देवाशास्त्रका  
 भी ज्ञान विद्यमान हो रहा था। दक्षिण भारतमें कर्नूलकी गुफाओंमें परो-  
 धणसे पता चलता है कि उनका सम्बन्ध जादू टाने-जैसे कितो-न-किसी  
 प्रकारके धार्मिक कृत्योंसे रहा होगा। ये लोग मृत अवधितयोंकी देह गुफामें  
 ही छोड़कर अथवा जाकर रहने लगते थे। रेखा एवं भित्तिचित्रोंसे अनुमान  
 होता है कि इस युगके मानव समस्त चराचर पदार्थोंमें जीवकी सत्ता मानते  
 थे, कितने ही सरलतम अपरिष्कृत एवं आदिमरूपमें रही, जीव या जीवनी  
 शक्तिकी सर्वव्यापकतामें उनका विश्वास था। ये पितृपूजक भी थे। मध्य  
 प्रदेशके रायगढ़ जिलेमें स्थित मिगनपुरके निषट भित्ति एवं रेखाचित्रोंमें  
 युक्त उस कालकी ऐसी गुफाएँ मिली हैं जो सम्भवतया उनके देवस्थान या  
 मन्दिर थे। मनुष्यो, पशुओ एवं आव्येष्ट आदिके चित्रोंके अतिरिक्त जो  
 कई रेखानिर्मित रहस्यपूर्ण सांकेतिक चित्र मिले हैं उनका कितने ही  
 आध्यात्मिक सांकेतिक चिह्नोंसे अद्भुत सादृश्य है, वे चित्र कई मौलिक  
 जैन मायताओंकी सांकेतिक अभिव्यक्ति जैसे लगते हैं।

(३) नव्यपापाण युग—ईसवीपूर्व लगभग १५०००-८००० वर्ष पर्यन्त  
 नव्यपापाण युग चला। इस कालमें मानवकी आदिम सम्यक्ता और सस्कृतिने  
 बड़े द्रुतवेगसे प्रगति की। विविध पापाण, हाथोदांत, सींग, लकड़ी आदिके





किसी-न-किसी प्रकार अनुष्ठान करनेकी प्रथाएँ प्रचलित हुईं। किन्तु  
 ही वर्तमान अन्धविश्वासों, व्यक्तियों अथवा पदार्थोंको निषिद्धमान उनके  
 समगनिषेध, परम्परागत आस्थायिकाओं, दैवी उपास्यानों, लाककयाओं,  
 यहाँतक कि सगोत और नृत्यके भी वीज नव्यपापाणयुगीन आत्मवादमें  
 निहित थे। उस युगके जोवन्नादकी अभिव्यक्तिका एक महत्त्वपूर्ण द्वार  
 पापाण-पूजा थी। विभिन्न आकृतियोंके पापाणमण्ड विशेष विशेष दैवी  
 शक्तियों अथवा देवी-देवताओंके प्रतीक या प्रतिनिधि समझे जाते थे।  
 लिंग-पूजाका भी प्रचलन था। कालान्तरमें वैदिक आर्योंने पहले तो उसका  
 विरोध किया किन्तु बादमें समझौतेकी भावनासे प्रेरित हो उसे अपना  
 लिया। अस्तु जो लिंगेश्वर ऋग्वेदमें इन्द्रका शत्रु कहा जाकर निन्दित हुआ  
 वही अथर्ववेदमें अनेक मन्त्रों-द्वारा पूजित-वर्द्धित हुआ।

जैसा कि ऊपर निर्देश किया जा चुका है, देवमूर्तियोंका सर्वप्रथम उसी  
 युगमें निर्माण होता प्रारम्भ हुआ। ये मूर्तियाँ पापाण अथवा काष्ठकी होती  
 थीं। आज भी शायद इसीलिए काष्ठ और पापाणको धातुओंकी अपेक्षा  
 अधिक पवित्र और शुद्ध माना जाता है। साधु-सन्यासियोंके लिए भी काष्ठ,  
 पापाण या मिट्टीके ही पात्र विहित हैं। देवपूजामें भाजन-पानको विविध  
 सामग्रियाँ समर्पित की जाती थीं, कहीं-कहीं हिंसक बलि भी होती थी।  
 कृषि आरम्भ, चरागाह परिवर्तन, युद्ध यात्रा, आखेट आदिके अवसरोपर  
 आनन्दोत्सव मनाये जाते थे जो भिन्न-भिन्न समूहोंको प्रकृति तथा परम्प-  
 राओंके अनुसार हिंसक-अहिंसक दोनों ही प्रकारके होते थे। व्यक्ति, कुटुम्ब,  
 वस्ती अथवा समूहको मंगल कामनाके लिए भी धार्मिक अनुष्ठान किये  
 जाते थे। स्वप्नों और उनके फलमें विश्वास था। इसमें सन्देह नहीं कि  
 शकुनापशकुनों एवं स्वप्नोंका मानव ससृष्टिके प्रारम्भिक विकासपर अत्यधिक  
 प्रभाव पड़ा है। ज्योतिष सम्बन्धी प्राथमिक ज्ञान भी उन्हें था। व्योमचारी,  
 ग्रह, नक्षत्र, तारिका आदिका वास्तविक रहस्य वे भले ही न जानत हों  
 किन्तु चिरकाल तक प्रकृतिकी ही निरावरण गोदमें खेलते रहनेके कारण



वृक्ष, पशु-पक्षी आदि योनियोमें जन्म लेना, देवी-देवताओंको गदा, शङ्ख, चक्र, त्रिशूल आदि आयुधोंसे युक्त करना, दैत्य, दानव, प्रेत आदि दुष्ट आत्माओंका पूजन सत्कार करना, सामुद्रिक शास्त्र, ज्योतिष आदि अनेक ऐसी मान्यताएँ हैं जो उत्तरकालीन सुसम्भृत जीवनमें उन्नत आदिम विचाराका प्रभाव स्पष्ट प्रदर्शित करती हैं। जैन, वैदिक, शैव, वैष्णव, शाक्त, स्मार्त, बौद्ध, यहूदी, पारसी, ईसाई, इस्लाम आदि धर्मोंमें अनेक रीति रिवाज, धार्मिक क्रियाएँ, मान्यताएँ एवं विश्वास उस आदिम युगकी वपौतीके रूपमें ग्रहण किये गये। वस्तुतः आजका सुसम्भ मानव उन तथ्याकथित नितान्त असम्भ आदिमकालीन मानवोंका कितना ऋणो है यह ठोक-ठोक अनुमान करना और उनकी महत्त्वपूर्ण देतोंका उचित मूल्यांकन करना सहज सम्भव नहीं है।

**धातुपाषाण युग**—इस नव्यपाषाण युगके अन्तिम पादमें अर्थात् ईसासे लगभग आठ-दस हजार वर्ष पूर्व एक नवीन युग प्रारम्भ हो रहा था जिसे धातुपाषाण युग कहते हैं। इसीमें धने-धाने धातु युगका प्रवेश हुआ जो प्रारम्भमें कहीं कहीं युग और कहीं ताम्र युगके रूपमें आया और अतत लोह युगमें आकर स्थिर हुआ। नव्यपाषाण युगके अन्तमें ग्रामीण सभ्यता स्थायी हो चुकी थी जिसमें पशुपालन और कृषिप्रधान उद्योग थे। किन्तु धातु युगके उदयके साथ-साथ नागरिक सभ्यताका उदय होने लगा जो प्रारम्भमें बड़ी-बड़ी नदियोंकी उपजाऊ घाटियोंमें फली फूली। उसके साथ-ही साथ नानाविध शिल्प उद्योगों, राज्यव्यस्था एवं राजनीति, जलोप एवं यलोप देशी विदेशी व्यापार आदिका भी उदय हुआ और वर्तमान मानवकी वास्तविक सभ्यता एवं संस्कृतिका व्यवस्थित विकास प्रारम्भ हुआ।

मनुष्यकी आदिमकालीन सभ्यता और उसके इतिहासका जो ऊपर संक्षिप्त विवेचन किया गया है, उसमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उन्नत सुदीर्घ पाषाण कालकी जो विभिन्न युगोंमें विभाजित किया गया है और उन युगोंकी वपोंमें जो अवधियाँ दी गयी हैं वे सर्वथा निराधार न होते हुए भी अनुमान मात्र ही हैं। अनेक विद्वान् उन्नत अवधियोंमें घटी



मनस्पनियोंके आकार, बल और सुख शान्तिमें ह्रास होता गया किन्तु कृत्रिमता, प्रयत्न और उद्योगमें विकास होता गया। प्रारम्भिक मानव विशालकाय, अतुल्य बलशाली, निष्शक्त, निर्द्वन्द्व, निरोह और सुखी था, उसकी जीवन सम्बन्धी आवश्यकताएँ अत्यन्त परिमित थीं और इच्छा करते ही वह उन्हें उसी स्थानके प्राकृतिक वातावरणमें प्राप्त कर लेता था और सन्तुष्ट रहता था। किन्तु धीरे-धीरे उसकी दक्षितयाँ क्षीण होने लगीं, प्रकृतिमें स्वतः ही उसकी आवश्यकताओंकी पूर्ति न होने लगी, उसे प्रयास और उद्यमकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी, संग्रह और सामाजिकता उसमें आने लगी, और जिसे हम सभ्यता कहते हैं उसका उसमें विकास होने लगा। हिमप्रन्थोंके उपरान्तका अर्थात् लगभग ५०००० वर्ष पूर्वके बादका जो पुरातन एव नवपाषाण युग है वह यह सक्रांतिकाल था। जैन परम्पराके अनुसार जो तीसरे मुखमा-दुःखमा कालके अन्तिम भागमें चौदह कुत्कर या मनुआका एकके बाद एक पर्याप्त अन्तरस होनेका उल्लेख पाया जाता है वे इसी कालमें हुए प्रतीत होते हैं। उन्होंने देश-कालके अनुसार अपने समकालीन मनुष्योंका नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन किया बताया जाता है। इनमें अन्तिम कुत्कर नानाभाय थे जो मध्यदेशमें जहाँ अयोध्या स्थित है उस स्थानमें उत्पन्न हुए थे। उन्हींके पुत्र प्रथम तार्थकर ऋषभदेव थे।

नृत्तत्त्वविज्ञान ( एन्थ्रोपोलाजी ) सम्बन्धी एव पुरातात्विक अन्वेषणोंसे प्राप्त निष्कर्षोंकी प्राचीन अनुश्रुतियों एव मान्यनाओंका साथ संगति बैठानसे यह स्पष्ट है कि इस प्राचीनतम कालमें जब मनुष्यकी सभ्यताका सर्वप्रथम उदय हो रहा था, कमसे कम भारतवर्षसम्बन्धित मनुष्य जाति तीन प्रधान समुदायोंमें विभक्त थी जिनके आचार-विचार और संस्कृति एक दूसरेसे भिन्न थीं। प्रथम समुदाय उत्तरी भारतके पूर्वी मैदानी भागमें गंगा यमुनाके दोआबोंसे लेकर अंगमगध पर्यन्त निवास करता था। ये लोग शान्तिप्रिय और शाकाहारी थे, लोक-परलोक, आत्माके अस्तित्व,

[illegible]

दुसरा कदुआत कमल, यतिव कवा दुपके अन्वितान वरंजीव श्रेणीने  
 लीजिए वा । आप्ययतिवक दुहिने के मोव मानवीको कनेछा तम के निम्नु  
 वर्य-मोवन एवं कलीव यन्त्रोने के कनेके कहुन कहे-नहे के । एव शिवाश्रम  
 कट्टोने मानवीको मोला अविक योश्याके काल यन्त्रोव कहे-व कर मो  
 की ओर मानवीने वर्यदुहिने मानवमके कनेछा की कहुन मान वरंजी तम  
 के कनेके एव निरवीने माने हो-रहे । निम्नु मान ही मानवीको कनेछा  
 आप्ययतिवक एवं यानिक मुव मानने हे । यदि मानवीने मानवा विमान

किया तो इन विद्याधरोंने विज्ञानका विकास किया। नाग, कृष, यक्ष, वानर आदि अनेक कुलोंमें विभाजित यह भारतीय विद्याधर जाति भारतीय महाशागमें फैले हुए विभिन्न द्वीपों एवं प्रदेशोंमें भी बाने-जाने फैल गयो। कालांतरमें इस विद्याधर जातिके वंशजोंको ही द्रविड सजा दी गयी। मानवों और विद्याधरोंके बीच प्रारम्भमें ही घनिष्ठ मैत्री सम्बन्ध रहे। परस्पर विवाह आदि भी होते थे जिसमें रक्तमिश्रण बढ़ा। विद्याधरोंने मानवोंके ज्ञानसे लाभ उठाया तो मानवोंने विद्याधरोंके विज्ञानसे।

तीसरा समुदाय मानव वंशकी ही एक शाखा थी जो किसी बहुत पूर्व समयमें मध्यदेशीय मूल मानवजातिसे पुनर् होकर उत्तर-पश्चिमके पर्वतीय प्रदेशोंकी ओर चली गयी थी। यह समुदाय ज्ञान-विज्ञान दोनोंमें ही बहुत पीछे तक पिछड़ा रहा। पशुपालन इसका प्रधान काम रहा। यह समुदाय घुमक्कड़ था और उत्तर-पश्चिम भारतवर्ती अपने मूलस्थानसे चलकर इसके अनेक दल हिन्दूकुशके दर्रोंसे पार होकर मध्यएशिया तक फैल गये। वहाँसे एक शाखा कुछ उत्तरकी ओर जा बसी, दूसरी पश्चिमकी ओर यूरपके यूनान आदिमें और तीसरी ईरानमें बस गयी। किन्तु इन सभी शाखाओंका परस्पर यातायात एवं सम्पर्क चिरकाल तक बना रहा, जबतक कि वे विभिन्न भूभागोंमें स्थायी रूपसे बसकर अपनी-अपनी स्वतन्त्र सभ्यताके विकासमें लग्न न हुईं। अपने देश-काल, रहन-सहन, जीवन-व्यापार आदि परिस्थितियोंके कारण ये लोग सामान्यतया भौतिकवादी, प्रकृति या प्राकृतिक शक्तियोंके उपासक, मांसाहारी, हिंसक एवं प्रवृत्तिप्रधान रहे। ये ही लोग कालान्तरमें आय अथवा 'इण्डोमाय' नामसे प्रसिद्ध हुए। ये न तो मध्यदेशीय मानव आर्योंकी भाँति आत्मज्ञानरत थे और न विद्याधरोंकी भाँति विज्ञान एवं कला-कुशल। अतएव इनकी सभ्यताके विकासका आरम्भ उन दोनोंसे पीछे हुआ।

अस्तु, अयोध्या प्रदेशके नाभिसुत ऋषभदेवने पाषाणकालीन प्रकृत्याश्रित असभ्य युगका अन्त करके ज्ञान विज्ञान समुक्त कर्मप्रधान मानवी



[illegible][illegible][illegible]

**मास्वीय इतिहास : एक परि**

सिन्धु घाटी सभ्यता—जिस कालमें मध्यदेशमें उपरोक्त धर्म संस्कृति घोर-घोर विकसित हो रही था प्रायः उसी कालमें उक्त प्रथमधर्म एवं धर्मग संस्कृतिके बर्णित प्रभावित विद्याधराकी सोचिकता एवं भौतिकता प्रधान उत्कृष्ट नागरिक सभ्यताका प्रारम्भ एक आर्य वर्गशाही की घाटीमें और दूसरी ओर सिन्धु नदीकी घाटीमें हो गया था। वर्तमान घाटीघाटीके प्रारम्भिक दशकोंमें भारतीय पुरातत्त्व विभागकी ओरमें सिन्धु प्रान्तके लगाना डिप्टमेंट तथा पश्चिमी पनाथके गांटगुमरी डिप्टमेंट जो महत्त्वपूर्ण मुद्राएँ एवं गोज शोध हुई हैं उसमें भारतमें एक अत्यन्त प्राचीन एवं अत्युत्कृष्ट नागरिक सभ्यताके अस्तित्वपर आश्चर्यजनक प्रकाश पड़ा है। सिन्धु घाटीकी मोहनजोदड़ो ( मुर्तोका टीला ) नामक विशाल उत्कृष्ट सभ्यता सम्प्रदानकी अधुनाज्ञात प्राचीनतम सभ्यता मान्य होती है। पुरातत्त्वज्ञोंने एक पूरा नगर रोड निकाला है जिसकी गहर योजना, पक्की रूटोंके सुन्दर मुधार नयन, हाट-बाजार, चौरस्ते, नमामवन, विविध अन्न-घान्न, आभूषण, खेल-मिलीने, मुद्राएँ, मूर्तियाँ आदि विविध पुरातात्विक सामग्रोंने जो यहाँस प्राप्त हुई हैं वर्तमान सभ्यताके आश्चर्याभिभूत कर दिया है। गेहूँका रोनी और उसका नोजपास्त-के रूपमें उपयोग, रुईकी गेती और उससे वस्त्र बनाना, स्वर्णक आभूषण आदि सिन्धु घाटीके इन प्राचीन विद्याधरोंके ही आविष्कार माने जाते हैं। विद्वानोंके मतानुसार इस सभ्यताका जीवनकाल ई० पू० ६००० सन्वत् २५०० वर्ष तक रहा प्रतीत होता है। अद्यतन विरेमिडा एवं पैराओ वादनाहोंक पूर्ववर्ती प्राचीनतम मिस्रकी नीलघाटीकी सभ्यता तथा पश्चिमी एशियामें दजला-फरातकी घाटीकी सुमेर सभ्यता ही सब-प्राचीन समझी जाती थी। किन्तु अब उपरोक्त सिन्धु घाटीकी मोहनजोदड़ो सभ्यता उन दोनोंसे ही पूर्ववर्ती ही नहीं बरन् मानवकी सर्वप्रथम नागरिक एवं औद्योगिक सभ्यता अनुमान की जाती है, और प्राचीन मिस्रो, सुमेरी आदि सभ्यताएँ उसके पोछेकी तथा अनेक रूपोंमें उसकी शृणो मानी जाती हैं।

बड़ सम्प्रदा लोहूँके आधिकारके पूर्वकी अर्थात् बाबुबाबाब (बीबीबिबिब) वा रामबुबकी मानी जाती है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि तीखरे तीखकर नामबनायके सम्प्रदायमें सर्वप्रथम इन प्राचीन सम्प्रदायक प्रारम्भ हुआ । सम्प्रदायका विविध संरक्षण करके है और हिन्दु देव विरक्तक एक अपने हीनव सबकोके लिए प्रभावित है । तीर्थ काक एक भिन्नुमें एक सम्प्रदाय बनकर और सम्प्रदाय (सम्प्रदाय) आधिके ओष विद्यमान थे भी बहुत सम्प्रदाय है कि हिन्दु सम्प्रदायके मूल प्रवर्तकों एवं तीर्थकर सम्प्रदायकाके मूल अनुवाकियोंकी ही संरक्षणकरणी है । बड़ सम्प्रदा अर्थात्क एवं मन्दर्ब ही नहीं वरन् आर्थिक भी तथा इनके पुरस्कर्ता अनुपम प्रतीत ओष वर्मके अनुपमकी और प्रथम संस्कृतिके कनाकक प्राचीन विद्याधर अर्थात् भारतीय इतिहा आधिके पूर्वमे थे ऐसा प्रतीत होता है ।

हर नाम आधिकका कथन है कि "भिन्नु संस्कृति एक वैदिक संस्कृतिके पुनरावृत्तक अन्तर्गतके एक नाम विविधवि विद्य होती है कि इन दोनों संस्कृतियोंमें परस्पर कोई सम्बन्ध वा सम्पर्क नहीं था । वैदिक वर्म आधिकारका अनुपमक है कथ कि लोहूँकीरहो एवं इन्पाने नृत्तिपूजा मन्त्र हरक परिलक्षित होती है । लोहूँकीरहोके मन्त्रोंमें इन्पानेकीना सर्वथा अभाव है । इन मन्त्रोंमें नाल पुन्पोंकी आधिकृतियोंके अतिथ पुनर्ब नृत्तिपूजाने मिलती है । नाम आधिकके अनुसार वे प्राचीन वेदविदोंकी नृत्तिपूजा है । एक अन्य विद्वान्का कथन है कि "वे नृत्तिपूजा हरकृष्ण नृत्तिपूजा करती है कि बाबुबाबाब सम्प्रदायमें हिन्दु आधिके निवासकी न केवल पोषाभ्यास ही करती थे बल्कि पोषिषोंकी नृत्तिपूजाकी पूजा भी करते थे । उनप्रकार पोषिका कथन है कि "हिन्दु आधिके अनेक पुत्राओंमें अतिथ न केवल बीडी हुई देवनृत्तिपूजा ओषपुनाने है और वह पुत्र अतीथमें हिन्दुआधिके ओष मार्गके प्रचारकी विद्य करती है बल्कि आधिकारक देव नृत्तिपूजा की ओषकी अन्तर्गत नृत्तिपूजा है । और वह आधिकारक अन्त

मुद्रा विशिष्टतया जैन हैं। आदिपुराण आदिमें इस कायोत्सर्ग मुद्राका उल्लेख ऋषभ या वृषभदेवके तपश्चरणके सम्बन्धमें बहुधा हुआ है। जैन ऋषभको इस कायोत्सर्ग मुद्रामें खट्वासन प्राचीन मूर्तियाँ इसवी सन्के प्रारम्भ कालकी मिलती हैं। प्राचीन मिस्रमें प्राग्मिक राज्यघटकोंके समयकी दोनो हाथ लटकाये खड़ी मूर्तियाँ मिलती हैं। किन्तु यद्यपि इन प्राचीन मिस्र की मूर्तियों तथा प्राचीन यूनानी कुगेइ नामक मूर्तियोंमें प्रायः वही आकृति है तथापि उनमें उस देहोत्सर्ग निस्सर्ग भावका अभाव है जो सिन्धु घाटीकी मुद्राओंपर अंकित मूर्तियोंमें तथा कायोत्सर्ग मुद्रासे युक्त जिन मूर्तियोंमें पाया जाता है। ऋषभ शब्दका अर्थ वृषभ है और वृषभ जैन ऋषभदेवका लक्षण है। वस्तुतः सिन्धु घाटीकी अनेक मुद्राओंमें वृषभ युक्त कायोत्सर्ग योगियोंकी मूर्तियाँ अंकित मिली हैं जिससे यह अनुमान होता है कि वे वृषभ लक्षण युक्त योगीश्वर ऋषभकी मूर्तियाँ हैं। ऋषभ या वृषभका अर्थ धर्म भी है शायद इसीलिए कि लोकमें धर्म सर्वप्रथम तीर्थंकर ऋषभके रूपमें ही प्रत्यक्ष हुआ। प्रो० रानाडेके मतानुसार 'ऋषभदेव ऐसे योगी थे जिनका देहके प्रति पूर्ण निमग्नत्व उनकी आत्मोपलब्धिका सर्वोपरि लक्षण था।' उत्तरकालीन भारतीय मन्त्रोंके योगमार्गमें भी ऋषभदेवको उक्त मार्गका मूल प्रवर्तक माना गया है। प्रो० प्राणनाथ विद्यालका न केवल सिन्धु घाटीके धर्मकी जैन धर्मसे सम्बन्धित मानते हैं वरन् वहाँसे प्राप्त एक मुद्रा ( नं० ४४९ ) पर तो उन्होंने 'जिनेश्वर' ( जिन इश्वरह ) शब्द भी अंकित रहा बताया है और जैन आम्नायकी श्री, ह्रीं, क्लि आदि देवियोंकी मायता भी वहाँ रही बतायी है। वहाँसे नागफणके छत्रसे युक्त योगी मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं जो सातवें तीर्थंकर मुपाश्वकी हो सकती हैं। इनका लाटन स्वस्तिक है और तत्कालीन सिन्धु घाटीमें स्वस्तिक एक अत्यन्त लोकप्रिय चिह्न दृष्टिगोचर होता है, सड़कें और गलियाँ तक स्वस्तिकाकार मिलती हैं।

कुछ विद्वान् मोहनजोदड़ो सभ्यताके प्राग्आर्यकालीन होनेमें सन्देह

[illegible]

अन्तु देवा इतिग होला है कि कल मापीन किन्तु अम्पत्राके पुनकला  
प्राचीन विद्याकर अतिके नील वे जिन्हे इतिगोरा पुर्वत कहा जा नवत्रा  
है : किन्तु आप ही कने के केरक हर्ष अतिविक मावायंक अम्पेयके के  
अनवर्षी नून आन वे को तीर्थकारीके अम्पवर्षी और अमन सीहृतिके  
अपनक वे । तीर्थरे तीर्थकर मावकनायके मेकर कने तीर्थकर पुनारन्य  
उकका वात किन्तु अम्पत्राके विवालाकावात है । पुनमर्षि पुनरन्य अम्प-  
का काव कनका कनर्षी वात ह्या । मायः इषी अमन अम्पके अर्षिमा  
मायपुवरी जिन्हे अम्प नामने अतिव अम्पके अम्पवर्षीके कने एक  
अम्प नामना विवर्षित होनी सुक हुई । उकका वात है पु ३ के  
१ उक माय वात है । अम्पनामे की अम्पके और अम्पके के  
किन्तु एवने उम अम्पकी अम्पके को अम्पनामे वैदिक अम्पकी अम्प

देनेवाले थे गुप्त मिश्रण रहा हो सकता है। कमसे कम नवोदित वैदिक आर्योंका हठ्पत्तावालाकि साथ ही सर्वप्रथम एवं सबसे भोषण संघर्ष हुआ। वैदिक साहित्यसे दस्यु, अगुर आदि यही थे। पश्चिमी एशियामें एकके बाद एक आनेवाली सुमेर, अस्तुर, बाबुली आदि सभ्यताओंका सम्पर्क अपनेगें ज्येष्ठ मोहजोदखे एवं समकालीन हठ्पत्ता सभ्यताके साथ विशेष रहा। मिश्रकी प्राचीनतम सम्मति भी प्रायः इसी कालकी है। ई० पू० २६५० के लगभग हठ्पत्तावालोंके साथ पश्चिमी एशियाकी सुमेरी सभ्यताका सम्पर्क निश्चित रूपसे रहा प्रतीत होता है। तत्कालीन कालगणनामें यह तिथि महत्त्वपूर्ण है। हठ्पत्ता सभ्यताके चिह्न गंगा, पम्बल और नर्मदाके कांठोंमें पश्चिमी उत्तरप्रदेश (हस्तिनापुर आदिमें), पश्चिमी राजस्थान तथा गुजरात काठियावाड़ आदि प्रदेशोंमें भी प्राप्त हो चुके हैं जो उनके विस्तृत प्रसारके सूचक हैं। इस सभ्यताकी उत्तराधिकारिणी गुरुर आदि परवर्ती सभ्यताएँ मानी जाती हैं, और तदुपरांत आर्या (दृढा आर्यन्तों) का तथा उनकी वैदिक सभ्यताका उदय हुआ माना जाता है।

**वैदिक सभ्यता**—आर्योंके मूल निवासस्थानके विषयमें बड़ा मतभेद है, किन्तु अधिक संगत यही प्रतीत होता है कि वे मूलतः भारतके ही निवासी थे और मध्यदेशके प्राचीन मानववंशी आर्योंकी ही उस शाखासे सम्बन्धित हैं जो ऋषभदेवके समयमें होनेवाले मानवी सभ्यताके उदयके कुछ पूर्व ही पश्चिमोत्तर प्रदेशकी ओर विचरण करने मूलशाखासे प्रायः पृथक् हो गयी थी और चिरकाल पर्यन्त पृथक् ही रही। इसका एक कारण यह भी रहा प्रतीत होता है कि उनका प्रवाह और विचरण पूर्वकी ओर अपने मूल जातिबन्धुओंकी ओर न होकर पश्चिमकी ओर अर्थात् पश्चिमी एशियाई देशोंकी ओर हुआ। वहाँसे वे उत्तरी एशिया और पूर्वी एवं उत्तरी यूरोप आदिकी ओर भी फैले। इनका प्रधान केन्द्र पश्चिमी एशिया रहा। उनकी एक शाखा जब ईरानमें घूम गयी तो एक अन्य शाखा फिरसे भारतमें आयी और उनके जो जातिबन्धु यहाँ पहलेसे ही पश्चिमोत्तर

[illegible][illegible]

वैदिक साम्राज्यके प्राचीनक विकासके लक्षणकी जानकारी देनेके लक्ष्यसे इसकाच विस्तृत वर्णन उपर्युक्त रूपसे इस भागमें ऐसे ऐसे अध्यायोंके अन्तर्गत है। वे अथर्व वेद, अग्नि की आदि वेदशास्त्रोंके अन्तर्गत कथित प्राचीनक विविध घटनाओंकी स्मृतिके अन्तर्गत हैं। इन अन्तर्गत साम्राज्यके अन्तर्गत वैदिक शास्त्रोंके वैदिक विकासकी विस्तारित जानकारी-विचार प्रदान-प्रदान सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक संरचना कीविविध इतिहास आदि विषयोंके अन्तर्गत ही बहुत कुछ जानकारी प्राप्त हो जाती है। वैदिक विस्तारित पञ्चमक अन्तर्गत ही विस्तृत जानकारी और समझ कीविविध अन्तर्गत ही विस्तृत

सर्वोपरि स्थान, विश या जनपद, ग्राम या वस्तीकी व्यवस्था, समाजमें स्त्रियोंका सम्माननीय स्थान, बहुपत्नीत्व और बहुपतित्व, वण-अवस्थाका प्रारम्भिक रूप, अनुलोम-प्रतिलोम विवाह, मासाहार, सुरापान, द्यूतव्यसन आदि तत्कालीन सस्थाओं, प्रथाओं एवं लोकदशाकी रोचक सूचनाएँ मिलती हैं । ऋग्वेदसे ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक वैदिक आर्योंका यज्ञविरोधी दृष्टिवालोके साथ सांस्कृतिक एवं राजनैतिक संघर्ष हुआ, युद्ध हुआ और सुलह हुई । उन लोगोंको आर्योंने दस्यु और दास आदि संज्ञाएँ दीं । इस कालकी प्रमुख घटना दशराज युद्ध है । भारतके प्राचीन भारतका भी इस वेदमें उल्लेख मिलता है । मानवी सभ्यताके मूलप्रवर्तक योगेश्वर ऋषभकी स्तुतिमें भी कुछ मन्त्र हैं । किन्तु साथ ही लिंगेश्वरकी इन्द्रका शत्रु भी कहा गया है । कालान्तरमें ऋक्संहिताके रूपमें संकलित इस प्रथम वेदमें दश मण्डलोंमें विभाजित कुल १०१७ मन्त्र हैं । जैन अनुश्रुतिके अध्ययनसे पता चलता है कि दसवें तीर्थंकर शीतलनाथके उपरांत सर्वप्रथम ब्राह्मणोंने श्रमण-परम्परासे अपना सम्बन्ध विच्छेद करके अपनी पृथक् ब्राह्मण संस्कृति एवं वैदिक धर्मको जन्म दिया था । हो सकता है कि वैदिक आर्योंके समाजमें ब्राह्मण वर्गका सर्वोपरि स्थान देखकर मध्यदेशीय मानववशी ब्राह्मण उनकी ओर आकृष्ट हुए हों । वेदोंकी भाषापर मध्यदेशकी अर्धमागधी प्राकृतका तथा ईरानी आदि पश्चिमी भाषाओंका द्विविध प्रभाव रहा प्रतीत होता है । लिपि जो उन्होंने अपनायी वह भारतके मानववशियों-द्वारा आविष्कृत ब्राह्मी लिपि थी ।

**उत्कर्षकाल—रामायणसे महाभारत पर्यन्त—**शनै-शनै वैदिक आर्योंने भारतके आदिम निवासी मानवों और विद्याधरोंसे सुलह कर ली और उनका उनके साथ रक्तमिश्रण भी होने लगा । उन्होंने पूर्वकी ओर फैलना प्रारम्भ कर दिया और पञ्जाबसे लेकर समस्त पश्चिमी उत्तरप्रदेश उनका केन्द्र बन गया । उनकी राज्य शक्तियोंका भी विकास हुआ जिनमें



[illegible][illegible]

समन्वय या समझौतेका एक कारण यह भी प्रतीत होता है कि रामायण एवं महाभारतकी घटनाओंके मुख्यवर्ती कालमें वैदिक—आर्य समाजमें क्षत्रियोंकी शक्ति और प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया था—उनकी बलवत्ता राज्यसत्ताएँ घट-घट फँस गयी थीं, ब्राह्मण मन्त्री और पुरोहित मात्र ही रह गये थे। इसी युगमें वैदिक क्षत्रियोंकी राजनीतिक शक्ति सर्वोपरि थी और यही काल वैदिक सम्प्रदायका चरमोत्कर्ष काल है। महाभारतके विनाशकारी युद्धने वैदिक युगका ही अन्त नहीं किया, वैदिक क्षत्रियोंकी राज्यसत्ताको भी अत्यन्त अवनत कर दिया।

जिस प्रकार इस युगके प्रारम्भमें अयोध्याके रामने दोना सत्कृतियोंके समन्वयका स्तुत्य प्रयत्न किया था उसी प्रकार इस युगके अन्तमें यदुर्वशी कृष्णने वंसा ही प्रयत्न किया। ये दोना ही महापुरुष भारतकी मौलिक सांस्कृतिक एकताके प्रतीक हैं—दोनों ही प्राचीन श्रमण एवं ब्राह्मण सत्कृतियोंके बीचकी सुदृढ़ कड़ियाँ हैं। कृष्ण भी दोनों ही परम्पराओंमें प्रायः समान रूपसे सम्माननीय हैं। उनके ताऊजात भाई धार्मिक सौम्यता और अरिष्टनेमि भी यजुर्वेदमें स्मृत हुए हैं। कृष्ण स्वयं प्राचीन मानववशकी हरिवंश नामक शास्त्रमें उत्पन्न हुए थे और उन्होंने कुछ पांचालके वैदिक आर्य क्षत्रियोंके साथ विवाह एवं मैत्री आदि सम्बन्ध स्थापित करके तथा अपनी विलक्षण कूटनीति-द्वारा भारतकी भ्रमस्त सत्कालीन राजसत्ताओंको मिलाकर, लड़ाकर और प्रभावित करके उन सबका ही नेतृत्व किया तथा उनके वंशजों-द्वारा कालान्तरमें ईश्वरके अवतारके रूपमें पूजे गये। साथ ही श्रमण अथवा जैन परम्परामें भी वे नारायण, अर्धचक्रो, त्रिशण्डो, श्रावकोत्तम, अपने समयके सर्वप्रतापी सधनशक्तिमान् आदर्श नरेश एवं धर्मरक्षकोंके रूपमें स्तुत्य हुए हैं। स्वयं पाण्डव धर्म भी जैनधर्मके उपासक तथा अन्तमें जैन मुनियोंके रूपमें तप करते बताये गये हैं।

रामायण एवं महाभारतकी घटनाएँ बहुत थोड़े-से अंतरोंको लिये हुए ब्राह्मण एवं जैन दोना ही परम्पराओंमें प्रायः एक-सी पायी जाती हैं और प्राग्ऐतिहासिक काल

ब्रह्मण कर्मसे जीवजिब है । बसुन्त हीनो बाराहोकि से कथनक एक दूबोके  
 पुरक है और निबन्धित इतिहासके आत्मके कुरिके अनुपुष्टिबन्ध काठके निर  
 ब्रह्मण बरम्भराजा वैदिक साहित्य, रामायण एवं महाभारत नामक तथा  
 पुराण इत्ये विषये कथनीकी है कथने ही वैन पुराण साहित्य तथा बार्हिक  
 अनुपुष्टिबो की है । वैन कि हो कथनक विद्याब्रह्मण कथन है, ब्राह्मण  
 ब्राह्मण इतिहास विद्या वैदिकी नामक करीबानीकी है ब्रह्मण ही वैद  
 विरोधी वैनोकर है । वैनके ब्राह्मण हीनोकर की वैन ही ब्राह्मणिक  
 इतिहासिक पुरक है वैन कि वैनके विद्याब्रह्मण आनिबन्ध तथा ब्राह्मण  
 बरम्भराजा के ब्राह्मण ब्राह्मण ब्राह्मण । बसुन्त वैन पुराण कथनकके ब्रह्म  
 कथन-ब्रह्मणो विद्या ब्रह्मण कथनक कथनक कथनक कथनक कथनक  
 निबन्ध है । कथन कथनिक की पुरा ब्राह्मण ब्राह्मण नामक लोहवि है को  
 वैदिक ब्रह्म और ब्राह्मण ब्रह्मणिके ब्रह्मके ब्रह्मणका पुरक पुरा है । ब्राह्मणकी  
 का बुनी की और विद्याब्रह्म ही बुनी की । ब्राह्मण-वैदिक ब्रह्मणिके ब्रह्मके  
 ब्राह्मण ब्रह्म ब्रह्मके ब्रह्म ब्रह्म करती ब्रह्मण करती ब्राह्मण-ब्रह्मण  
 कथनी तथा कथनी पुरक ब्रह्म की कथने ब्रह्मण है ब्रह्मण-ब्रह्मण और  
 विद्याब्रह्म हीनो करी ।

विश्वविद्यालयी महाविद्यालय कुठले अन्तर्गत काय-काय माध्यमबाट हस्तान्तरण गर्ने कुठले प्राथमिकतापूर्ण रूपमा अनुसन्धानमा हस्तान्तरण गर्नेका लागि मात्र नभई विभिन्न हस्तान्तरणका माध्यम हुन् ।

## अध्याय २

### प्राचीन युग-प्रथम पाद

#### [ महाभारतसे महावीर पर्यन्त ]

बहुत समय तक भारतीय इतिहासका नियमित प्रारम्भ छोटी शताब्दी ई० पू० में महावीर और बुद्ध-द्वारा क्रमशः जैन एवं बौद्धधर्मके प्रचार तथा मगध साम्राज्यके उदयसे माना जाता रहा। इसके बादका काल ऐतिहासिक तथा पूर्वका प्रागैतिहासिक कहा जाता था। किन्तु इधर कुछ दशकासे भारतीय इतिहासकारोंका झुकाव भारतवर्षके नियमित इतिहासको महाभारत युद्धके ठीक उपरांत प्रारम्भ करनेकी ओर बढ़ना जा रहा है। अस्तु, भारतवर्षका विधिवत् इतिहास अब गत लगभग तीन साढ़े तीन सहस्र वर्षका इतिहास माना जाता है। इसका प्राचीन युग महाभारत युद्धके ठीक बाद प्रारम्भ होकर मुसलमानों-द्वारा भारतकी विजयके साथ समाप्त होता है। इस ढाई सहस्र वर्षके सुदीर्घ प्राचीन युगका पूर्वार्ध प्रधानतया उत्तर भारतके इतिहाससे ही सम्बन्धित है, दक्षिण भारतके सम्बन्धमें इस युगमें कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती।

महाभारत युद्धको एक ऐतिहासिक घटना माननेमें अब प्रायः किसीको कोई शक नहीं है यद्यपि महाभारतमें कथित उसके वर्णनको जैसाका तैसा माननेमें प्रायः सभी सकोच करते हैं। इतिहासकाल अथवा भारतीय इतिहासके प्राचीन युगके आदिकालका सूचन करनेके लिए उक्त घटनाकी तिथिका निर्णय करना आवश्यक है किन्तु इसके सम्बन्धमें भी विद्वानोंमें बहुत मतभेद है। प्रो० पार्जॉटरके अनुसार महाभारतकी तिथि ई० पू०

१५ ई. आ. रवेचन्द्र मनुष्यार, श्री नीलकण्ठ घाण्डी काँग्रेस  
मनुष्यार लखनऊ ई. ५ कर्मल छात्रके मनुष्यार ई. ५ १११  
घाण्डीकाँग्रेसके मनुष्यार ई. ५ ११२५ मयचन्द्र विद्यालोकके मनुष्यार  
ई. ५ १४२४ श्री काशीकाँग्रेस बाबलबालके मनुष्यार ई. ५ १४५  
हार्दय, दुर्ग दुर्गाकाँग्रेसके मनुष्यार ई. ५ १४१४ दुर्गके ई. ५ १४४५  
और लेखके ई. ५ ३१ २ किन्तु मनुष्यार का ३१ ई. १५वीं छात्राकाँग्रेस  
ई. ५ के लखनऊ हुआ बाबलबाल है। छात्राकाँग्रेसके मनुष्यार श्री ५ ई.  
५ १४४५के लखनऊ बीछा है। दुर्ग छात्राके ३५ ई. ३४ मनुष्यार काँग्रेस  
काँग्रेसके हार्दयकाँग्रेस काँग्रेसकाँग्रेस हुआ। मनुष्यार ई. ५ १४  
के लखनऊ छात्राकाँग्रेस इतिहासकाँग्रेस काँग्रेसकाँग्रेस हुआ छात्रा का  
काँग्रेस है।

[illegible][illegible]

नरेश पुरु, इक्ष्वाकु और मागध इन तीन प्राचीन राज्य वंशोंमें-से ही किसी-न किसीके साथ सम्बन्धित थे । ये सभी राज्य उस समय प्राय वेदानुयायी आर्यक्षत्रियोंके ही थे । इनके अतिरिक्त जो अन्य राज्य पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणमें स्थित थे वे प्राय श्रमणोपासक क्षत्रियोंके थे ।

उपरोक्त १२ राज्य वंशोंमें भी सर्वप्रधान राज्य कुरुदेशमें हस्तिनापुर-के पुरु, कुरु अथवा पाण्डव वंशियोंका था । अर्जुनका पीत्र परीक्षित् उनका अधीश्वर था । किन्तु उसके समयमें ही वैदिक आर्योंकी बढ़ती हुई शक्तिके सम्मुख विरफालसे दबो रही नाग आदि द्रविड जातियाँ फिरसे यश-तथ सिर उठाने लगीं । पश्चिमोत्तर प्रदेशकी तक्षशिला और मिन्यु मुन्वकी पातालपुरीके नाग विशेष प्रबल हो उठे । नवीन उत्साहमें जागृत, विशेषकर तक्षशिलाके नागोंने कुरु राज्यके ऊपर भोषण आक्रमण शुरू कर दिये । उनके साथ युद्धमें ही परीक्षित्की मृत्यु हुई । उनके बेटे जनमेजयका भी सारा जीवन नागोंके साथ युद्ध करते ही बीता । उसने उनका भरसक सहार भी किया किन्तु उनके बढ़ते हुए वेगको रोकनेमें वह भी असमर्थ रहा और हस्तिनापुर राज्य उत्तरात्तर क्षोण होता चला गया । जनमेजयके पश्चात् शतानीक, अश्वमेधदत्त और अधिसोमकृष्ण क्रमशः गद्दीपर बैठे । अधिसोमके समय अयोध्यामें दिवाकर, मगधमें सेनजित् एवं विदेहमें जनक उग्रसेन राज्य करते थे और पञ्जाबमें प्रवाहण जैबलिका प्रभाव था । अधिसोमके बेटे निचक्षुके समयमें नागोंके निरन्तर आक्रमणोंके अतिरिक्त कुरु देशपर लाल टिट्टोंका भयकर प्रकोप हुआ, भोषण दुर्मिक्ष पहा और स्वयं राजधानी हस्तिनापुर गंगाकी बाढ़से ब्रह्मस्त हो गयी । कुरुवंशी राजे देश-का परित्याग करके ब्रह्म देशकी कौशाम्बी नगरीमें जा बसे । इस प्रकार उत्तराप्यकी सर्वप्रधान वेदानुयायी क्षत्रिय राज्य शक्तिका कमसे कम कुरु प्रदेशसे अन्त हो गया । तदनन्तर नागोंने उसपर अधिकार कर लिया । तभीसे गजपुर या हस्तिनापुरका नाम नागपुर या हस्तिनागपुर भी प्रचलित हुआ । यह घटना लगभग ९वीं-१०वीं शताब्दी ई० पू०की है ।

प्रायः हमी समयके लक्षण विदेहमें प्रामाण्य हुई । यहाँका राजा कल्याण  
जनक बड़ा शानी था जो उग्रमाने कसे मार जाना और ताप ही विदेहके  
मल्लकीकी राज्यमहात्म्य मल ही बना और बहुत बंध राज्य स्थापित ही  
रखा । हमीके पहलेमये वैद्यकीके विष्णुविद्याना ईश्वरराज विरचित ही था  
था । विदेहका नंदराज भी हमीमें बिल बना और पञ्चमकर मुद्रादि  
बुद्धि या शक्तिवचकी स्थापना हुई । ये तीनों व्यवसायिक राज्य  
स्थिति थे ।

[illegible][illegible]

का प्रायः अतः हो गया था और उनके स्थानमें एक ओर नागादि विद्याधर वणियाको राज्यमत्ताएँ सधगिला, पातालपुरी, उद्यानपुरी, पपायतो, भोगपुरी, नागपर, अग या चम्पा तथा दक्षिणके भिन्न भिन्न भागोंमें स्थापित हो चुकी थीं और दूसरी ओर लिच्छवि, मल्ल, मोरिय, आदि व्रात्य क्षत्रियोंके अनेक गण या मगध राज्य यत्र-तत्र स्थापित हो चुके थे, साथ ही पुरानी राज्यमत्ताओंके स्थानमें काशी और मगध आदिमें इन्हीं व्रात्यो अथवा तथाकथित छात्र-बन्धुओंकी कई ऐसी प्रतापी राजतन्त्रीय शक्तियाँ प्रबल हो चुकी थीं जो साम्राज्य पदकी पोषक थीं। काशीके ब्रह्मदत्तने साम्राज्य स्थापित किया ही था। कुछ कालके उपरान्त मगध साम्राज्यका उदय हुआ।

ग्राह्यण परम्पराकी अनुश्रुतियोंमें लिच्छवि, मल्ल, मोरिय आदि जातियोंको व्रात्य कहा है। गौतमाक वंशकी भी क्षत्रिय नहीं वरन् क्षात्रबन्धु कहा है। प्रो० जयचन्द्र विद्यालकारके अनुसार, 'इस शब्दका प्रयोग होन-ताका भाव सूचित करनेके लिए किया गया है क्योंकि वे व्रात्य लोगोंके क्षत्रिय थे, और व्रात्य वे आर्य जातियाँ थीं जो मध्यदेशके पूर्व या उत्तर-पश्चिममें रहती थीं। वे मध्यदेशके कुलीन ग्राह्यण क्षत्रियोंके आचारका अनुसरण न करती थीं। उनकी शिक्षा-दीक्षाकी भाषा प्राकृत थी और वेशभूषा (आर्योंकी दृष्टिसे) परिष्कृत न थी। वे मध्यदेशके ग्राह्यणोंके सस्कार न करते थे और ग्राह्यणोंके बजाय अर्ह-ताको मानते थे तथा चैतियो (चैत्यों) की पूजा करते थे।' वस्तुतः इस कालमें वैदिक आर्योंकी शुद्ध सत्ति अवशिष्ट ही नहीं रह गयी थी। रक्तमिश्रण, सांस्कृतिक आदान प्रदान एवं बहुधा धर्म परिवर्तन आदिके कारण एक नवीन भारतीय जाति उदयमें आ रही थी जिसमें श्रमणोपासक चातुर्वर्णके व्रात्यो अथवा नाग आदि द्रविड जातियाँका बाहुल्य था। आर्य द्रविडोंमें भी धीरे धीरे रक्तमिश्रण हो रहा था और परस्पर जातीय भेद-भाव मिटता जा रहा था। व्यवसाय-कर्मके अनुसार ग्राह्यण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार वर्णोंमें समस्त भारतीय समाज बँटता जा रहा था। क्षात्र धर्म पालन करनेवाले चाहे वे वैदिक



[illegible][illegible][illegible]

जैन सूचियाँ अथ सूचियोंकी अपेक्षा अधिक बहुलेश्वरवापी और सम्भवतया अधिक कालवापी हैं। दूसरी बात यह है कि विभिन्न अनुश्रुतियोंकी सूचियों-  
 ५ उन्हीं देशोंका उल्लेख विशेष रूपसे है जिनके माथ उनके अपने-अपने घमोंका अधिक सम्बन्ध रहा। उपरोक्त नामोंमें भी उस काल ( ६ठी शताब्दी ई० पू० ) में मगध कोमल, वत्स और अवन्ति ही प्रमुख राज्य थे तथा वज्जियोंका गणतन्त्र गणतन्त्रोंमें प्रमुख था।

इस श्रमण पुनरुत्थान युग या उत्तर वैदिक काल ( १४००-६००-ई० पू० ) में एक ओर तो वैदिक यज्ञोंका कर्मकाण्ड बड़ा और दूसरी ओर ज्ञान व तत्त्व चिन्तनकी एक नयी लहर लक्षित हुई। वैदिक मन्त्रोंको ऋक्, यजुष् साम और अथर्व नामक चार संहिताओंमें संकलित किया गया। उनपर जटिल गद्य भाष्य बनाये गये जिन्हें 'ब्राह्मण' ग्रन्थ कहते हैं। एक दूसरे प्रकारके भी भाष्य बने जो 'आरण्यक' कहलाते हैं क्योंकि वे वनोंमें ऋषियों-द्वारा रचे गये बताये जाते हैं। वेदोंके ही कथचित् आश्रयसे एक दूसरे प्रकारका आध्यात्मिक साहित्य उदयमें आया जो रहस्यवादी होने अथवा बैठकर कहा जानेके कारण 'उपनिषद्' कहलाया। शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुचन, ज्योतिष और कल्प नामके छ वेदांगोंका भी विकास हुआ। इस धान्ति युगमें यज्ञोंके पूजा-पाठ एवं क्रियाकाण्डको खूब विस्तार दिया गया और सीधे सरल वेद मन्त्रोंके अर्थोंको अत्यन्त दुरुह एवं जटिल बना दिया गया। कहा जाना है कि इसी कालमें परोक्षित्की पाँचवीं पीढ़ीमें हस्तिनापुरके राजा अधिसीमकृष्णके समयमें नैमिषारण्यमें जब मुनि लोग यज्ञ कर रहे थे तो वहाँ व्यामरचित प्राचीन ब्राह्मणोंय अनुश्रुतिक सग्रह या पुराणको सूतोंने सब प्रथम गाकर सुनाया था। इसीके आचारपर ईसवी सन्के प्रारम्भमें लगभग रामायण, महाभारत आदिकी तथा गुप्त कालमें प्रमुख हिन्दू पुराणोंकी रचना हुई।

दूसरी ओर यज्ञोंके कर्मकाण्ड और आहम्वरके विरुद्ध देशवापी विद्रोह हो रहा था। इसका मूल कारण अहिंसाप्रधान एवं आध्यात्मिक श्रमण

बहुतरा उत्तरीय वृद्धिज अथवा वा । वैदिककालके अतिव शान्त  
ही वपुषिके विशेषमें एक ऊपर बाण लगी थी । अथवावेद्य वपु वीर्योष्णी  
वरके अन्तर्गत् वर्तमानाथ विद्या कही अथवा केकर हुआ वा । एक वपु-  
के विषयमें जैन एवं ब्राह्मण दोनों अनुपुष्टिर्वा एवमता है । जर्म वपु हीर्  
नर अतिरिक्तिके विचारोंके अभावित रूप्य कानुदेव और इसके मार्ग अथवा  
अतिरिक्तिक अतिरिक्तिकों इस ऊपरके अनुपुष्टि एवं अथवा अथवा है ।  
ब्राह्मणके अथवा कालमें कुछ वैदिक ब्राह्मणोंकी अथवा वेद अनुपुष्टि  
अथवा ही ऊपरका अनुपुष्टि होता अथवा काल । इसके अथवा अनुपुष्टि  
अथवा अथवा है ।

[illegible]

रणको याज्ञिकहिंसासे अरुचि हो गयी थी। वैदिकधर्म इतना जटिल एवं आहम्यपूर्ण बना छाया गया था कि वह लोकग्राह्य ही नहीं रह गया था। यह धर्म जने कतिपय वैश्वानुपायो ब्राह्मण विद्वानोंमें ही सीमित होता चला गया। जनसाधारण या तो श्रमणोपासक था या ब्रह्मवादो जनकोके उपनिषद् धर्मका अनुसर्ता, अथवा इन दोनोंके समन्वयसे जो सदाचार एवं भक्ति प्रधान एक नवीन लोकधर्म सामान्यतः अलक्ष्यरूपमें उदित हो रहा था उसीसे सन्तुष्ट था। वर्णाश्रम व्यवस्था इस युगकी इस नवीन धाराकी एक प्रमुख विशेषता थी।

इस युगके उक्त श्रमणधर्म पुनस्त्यानके सर्वप्रथम पुरस्कर्ता बौद्धोंमें तीर्थंकर नेमिनाथ या अरिष्टनेमि थे। उनका जन्म यदुवशियोंके शूरसेन जनपदकी राजधानी शोरिपुर नानक नगरमें हुआ था। किन्तु उनकी माल्यावस्थामें ही यादवगण शोरिपुरका परित्याग करके पश्चिमी समुद्रतटपर द्वारका नगरीमें जा बसे थे। वासुदेव कृष्ण इनके चचेरे भाई थे। कृष्णने प्रवृत्तिका मार्ग अपनाया और नेमिनाथने निवृत्तिका। चिरकाल तक अहिंसाधर्मका प्रचार करनेके उपरांत काठियावाड़क गिरनार या ऊर्जयन्त पर्वतसे नेमिनाथने निर्वाण प्राप्त किया था।

तीर्थंकर नेमिनाथका प्रभाव विशेषकर पश्चिमी एवं दक्षिणी भारतपर हुआ। दक्षिण भारतके विभिन्न भागोंसे प्राप्त जैन तीर्थंकरोंकी प्राचीन मूर्तियोंमें नेमिनाथकी प्रतिमाओंका बाहुल्य है, जो अकारण नहीं है। उत्तरापथके मध्यदेशमें उस समय वैदिक धर्म एवं वैदिक क्षत्रियोंकी राज्यसत्ताएँ ही सवल थीं। किन्तु महाभारतके विनाशकारी युद्धने उक्त राज्यसत्ताओंके साथ-ही-साथ वैदिक धर्मको भी वहाँ निस्तेज कर दिया था। स्वयं पाण्डववधु अन्त समयमें नेमिनाथके भक्त हुए और उन्होंने दक्षिण भारतमें जाकर जैन मुनियोंके रूपमें तप करके सद्गति लाभ की बतायी जाती है। महाराज कृष्ण और बलराम जो सत्कालीन राजनैतिक अगत्क प्रधान एवं प्रभावशाली नेता थे, तीर्थंकर नेमिनाथके श्रावकोत्तम और अनुयायी थे। इन

मंगलुभापडे कबाली असागाव बीर कडदेकरने भी समुर्तन संजुल  
काष्ठिक है एक बर भित्तिगाव हो गया । कबालगावमें होनेवाली एक  
काष्ठिकी एक एक एक एक है न कब कबित्यक-काला पुगाव  
एक समय कबालगावका हिम असाग आकाश चहुँगायी कब असाग कब  
हिम का पुगा है ।

[illegible]

इसका ही मही की-बंदर सेविनाथका जगन्नाथ आराधने कादूर विदेशी  
को पहुँचा करीब होता है। वहीं का यह नाम 'सद्व्यवस्था' के अन्तर्गत है कि  
"युद्ध देशा मण्डल हीन" है कि प्राचीनकालमें चार युद्ध का देशानी प्रधानत्व  
है। इनमें पहले काश्मिर का आक्रमण के दूसरे सेविनाथ के से  
सेविनाथ ही सेविनाथसेविनाथ विचारितके प्रथम कीर्ति है। वहीं अन्तर्गत  
प्रथम ही मण्डल देशनी के। यह आक्रमण विचारितकारके १९ मार्च  
सन् १९ के आन्ध्रप्रदेश 'सद्व्यवस्था' की विचारितकारके आन्ध्र  
१९ मार्च का मण्डल मण्डलित किया था। वहीं का प्रमुख का

दानपत्रपर जो लेख अंकित था उसका भाव यह है कि “सुमेन्द्रजातिमें उत्पन्न दाबुलके खिल्दियन सम्राट् नेबुचेदनजरने जो रेवानगर (काठियावाड) का अधिपति हैं ग्दुराजकी इस भूमि ( द्वारका ) में आकर रैवताघल ( गिरनार ) के स्वामी नेमिनाथकी भक्ति की तथा उनकी सेवामें दान अर्पित किया ।” दान पत्रपर उक्त पश्चिमी एशियाई नरेशकी मुद्रा भी अंकित है और उसका काल ई० पू० ११४० के लगभग अनुमान किया जाता है ।

नेमिनाथके उपरान्त उक्त श्रमण पुनरुत्थान आन्दोलनके दूसरे महान् नेता तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे । ये काशीके राजकुमार थे और उरग-वंशमें इनका जन्म हुआ था । यह वही वंश था जिसमें इसी युगका ऐतिहासिक चक्रवर्ती सम्राट् ब्रह्मदत्त हुआ था । डॉ० रायचौधरीके अनुसार काशी इस कालमें भारतका सर्वप्रमुख राज्य था और शतपथ ब्राह्मणके अनुसार काशीके ये राजे वैदिकधर्म और यज्ञोंके विरोधी थे । तीर्थंकर पार्श्वकी माताका नाम वामादेवी था और उनके पिता काशीनरेश महाराज अश्वसेन थे । प्राचीन बौद्ध अनुश्रुतिमें इनका ‘असम’ नामसे उल्लेख हुआ है तथा महाभारत आदिमें भी अश्वसेन नामक एक प्रसिद्ध तत्कालीन नाग नरेशका उल्लेख मिलता है । पार्श्वका जन्म ई० पू० ८७७ में हुआ था । ये बालब्रह्मचारी रहे ।

बाल्यावस्थासे ही इनके हृदयमें ससार एवं भोगोंके प्रति विराग तथा जीवमात्रके प्रति करुणाका भाव था । तीस वर्षकी अवस्थामें ही इन्होंने घरका त्याग करके वनकी राह ली । कुछ काल दुर्द्धर तपश्चरण करनेके फलस्वरूप इन्हें केवलज्ञान एवं अहन्त पदकी प्राप्ति हुई । तदनन्तर शेष जीवन इन्होंने देश-देशान्तरमें विहार करके धर्मका प्रचार करनेमें बिताया । अन्तमें एक सौ वर्षकी आयुमें ई० पू० ७७७ में इन्होंने विहार प्रदेशमें स्थित सम्मेदशिखर पर्वतसे निर्वाण लाभ किया । वह पर्वत आज पर्यन्त पारसनाथ पर्वतके नामसे विख्यात है । बरेली जिलेका प्राचीन अहिच्छत्र

मानक स्थान पार्ष्णिकीय विधि उपस्थापित नहीं थी। पार्ष्णिकीय विधि सामान्य था। इसका वर्ष स्थान पर नहीं बताया जाता। यह इसकी विशेषता प्रतिपादित करने के लिए कहा जाता था। मानक के पुनर्स्थापित नहीं। इसकी ऐतिहासिकता के अर्थ में भी विज्ञान की कोई कमी नहीं है, यद्यपि कुछ एकता यह माना जाता है कि यज्ञ ही वैश्विक के अवलोकन के अन्तर्गत यह कि उनके पूर्वजों की अवलोकन ऐतिहासिक अवलोकन का है। यह उनके अवलोकन के सामान्य के कुछ नहीं कहा था करता।

हीनकर नासनेका काम करता-वीरिष्ठाक उपनिषद्पुत्र, अमर-पुत्र  
 स्वरूप पुत्र अथवा नास-पुत्रस्वरूप पुत्र आदि विविध नामोंसे सुचित यथा  
 भारत एवं महावीर और बुद्धके नामधर्मी (१४-१५ ई. पू.) नामके  
 नाम सुनील परमै हुआ था । अतः वह पुत्रके सांस्कृतिक इतिहासमें उनका  
 महत्त्वपूर्ण स्थान है । अथवा अमर एवं अमरत्वकर्म हुआ था जो नाम  
 आदिनी ही एक नामका या अतः वह नामधर्मी पुत्रः प्राप्त नाम कोधर्म  
 उनके वर्तमान प्रकार व्यक्तित्व रहा । उनके लक्ष्यमें पुत्र दीर्घायु अतः  
 और इतिहास भारतके विविध नामोंमें अनेक प्रकार व्यक्तित्वार्थ लक्ष्यधर्मी  
 अथवा अमरत्वकर्मके लक्ष्य लक्षित ही पुत्री थी और इस लक्ष्यके वह वेदम  
 पदधर्माव ही यह लक्षित होते हैं । इनके व्यक्तित्व नाम एवं पुत्री ईश्वर  
 अधिनाम अथवा अधिनाम ही इतिहास लक्ष्य थे । विष्णुवि आदि नाम  
 पुत्रोंमें विष्णुविष्ठाकी और विष्णुके धर्मधर्माकी व्यक्तित्वधर्मी ही नामधर्मी  
 का धर्म ही लक्ष्यधर्म था ।

करकट्टू मण्डिके नामक मणिकर्षक जन्मिष्ठान्तरी गरीय करकट्टू जी ऐतिहासिक व्यक्ति है। वे तीर्थंकर पद्मार्थके तीर्थसे ही करकट्टू हुए थे और कट्टीके कबानक तथा कट्टू पुष्पके आवर्धन करके थे। राजपूताना त्याग कर वेद भूमिके कपड़े कट्टीमें उतारवा की और कट्टुबन्धि ज्ञान्य की कटायी बाटी है। ठेठपुर मणिकरी मुक्तमूर्ति नामक गुणवार्तिक विद्वान्ति उत्तमम्बानी जी

अनुश्रुति प्रमाणित होती है। इनके अतिरिक्त पाञ्चाल नरेश दुमुख या द्विमुख, विदर्भ नरेश भाम और गान्धार नरेश नागजित या नागाति, तीर्थ-कर पार्श्वके अनुयायी अथ तत्कालीन नरेश थे।

डॉ० जाल चारपेण्टियरके अनुसार 'जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंके प्रमुख तत्त्व महावीरसे बहुत पूर्व, पार्श्वनाथके समयसे ही व्यवस्थित रहे आये प्रतीत होते हैं।' प्रो० हर्म्सवर्धके अनुसार गौतमबुद्धके समयसे पूर्व ही पार्श्वनाथ-द्वारा स्थापित जैनसंघ, जो निग्नन्ध मघ बहलाता था, एक विधिवत् सुमण्डित धार्मिक सम्प्रदाय था। प्रो० रामप्रसाद चाँदका कथन है कि 'यह आमतौरपर विश्वास किया जाता है कि महावीरसे पहले भी जैन साधु विद्यमान थे जो कि पार्श्वनाथ द्वारा स्थापित संघसे सम्यन्वित थे। उनके अपने चैत्य भी थे।' डॉ० विमलवरण लाहा भी इस तथ्यकी पुष्टि करते हैं और कहते हैं कि महावीरके उदयके पूर्व भी वह धर्म जिसके कि वे अन्तिम उपदेशक थे वैशाली तथा उसके आस-पासके प्रदेशोंमें अपने किसी पूर्वरूपमें प्रचलित रहता रहा प्रतीत होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कमसे कम उत्तरी एवं पूर्वी भारतके कितने ही क्षत्रिय जन, जिनमें कि वैशालीनिवासियोंकी प्रमुखता थी, पार्श्वनाथ-द्वारा स्थापित एवं प्रचारित धर्मके अनुयायी थे। आचाराग सूत्र आदिसे पता चलता है कि महावीरके माता-पिता पार्श्वके उपासक एवं श्रमणोंके अनुयायी थे।' इसी प्रकार प्रो० जयचन्द्र विद्यालकारका भी कथन है कि अष्वष्वेदमें भी जिन व्रात्योंका उल्लेख है वे अर्हन्तों और चैत्योके उपासक थे। ये अर्हन्त और उनका चैत्य बुद्धके समयके बहुत पहलेसे विद्यमान थे। अभी तक आधुनिक पर्यालोचकोने केवल तीर्थकर पार्श्वकी ही ऐतिहासिकता स्वीकार की है। अन्य पूर्ववर्ती तीर्थकरोंके वृत्तान्त पौराणिक गाथाओंमें इतने उलझे हुए हैं कि उनका अभी तक पुनर्निर्माण नहीं हो पाया। तथापि हम वास्तविक निश्चित प्रमाण हैं कि महावीर और बुद्धके पहले भी भारतवर्षमें वैदिक धर्मसे सर्वथा भिन्न धर्म विद्यमान थे।'





आधुनिक कहलाते थे । आत्माके समक्ष ये देहको हेय और नाशवान समझते थे । उपरोक्त विचारोका बौद्धधर्म या ब्राह्मण धर्मसे कोई सादृश्य नहीं है कि वे जैन धर्मके साथ अद्भुत सादृश्य रखते हैं । और क्योंकि ये मान्यताएँ सुदूर यूनान एवं एशिया माइनरमें उस कालमें प्रचलित थीं जब कि महावीर और बुद्ध अपने-अपने धर्मोंका प्रचार प्रारम्भ ही कर रहे थे अतः पैथेगोरस आदि पाश्चिमात्यके उपदेशोंसे प्रभावित रहे प्रतीत होते हैं ।

मेजर जनरल फ़लीगका कथन है कि 'लगभग १५०० से ८०० ई० पू० पर्यन्त, वृत्ति उसके बहुत पूर्व अनिश्चित कालसे सम्पूर्ण उत्तर, पश्चिम तथा मध्यभारतमें तूरानियोका जिन्हें सुविधाके लिए द्रविड कहा जाता है, प्रभुत्व रहता रहा था । उनमें वृक्ष, नाग, लिंग आदिकी पूजा प्रचलित थी, किन्तु उसके साथ ही-साथ उस कालमें सम्पूर्ण उत्तर भारतमें एक ऐसा अति व्यवस्थित, दार्शनिक, सदाचार एवं तप प्रधान धर्म, अर्थात् जैनधर्म, अवस्थित था जिसके आधारसे ही ब्राह्मण एवं बौद्धादि धर्मोंके सन्नास-मार्ग वादमें विकसित हुए । आर्योंके गंगा तट क्या सरस्वती तटपर पहुँचनेके पूर्व ही लगभग बाईस प्रमुख सत्त अथवा तीर्थंकर जैनोको धर्मोपदेश दे चुके थे । उनके उपरान्त ८वीं-९वीं शती ई० पू० में २३वें तीर्थंकर पार्श्व हुए और उन्हें अपने उन समस्त पूर्व तीर्थंकरोंका अथवा पवित्र ऋषियोंका ज्ञान था जो बड़े-बड़े समयान्तरोंको लिये हुए पहले हो चुके थे, उन्हें उन अनेक धर्मशास्त्रोंका भी ज्ञान था जो प्राचीन होनेके कारण पूर्व या पुराण कहलाते थे और जो सुदीर्घ कालसे मान्य मुनियों, वानप्रस्थों या वनवासी साधुओंकी परम्परामें मौखिक द्वारा प्रवाहित होते आ रहे थे ।'

कुछ लोग पार्श्वनाथके धर्मको चातुर्यामि धर्म भी कहते हैं और इसका कारण यह बताया जाता है कि उनके द्वारा उपदेशित महाव्रतोंमें ब्रह्मचर्य व्रतकी गणना नहीं थी, केवल अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह ही थे और भगवान् महावीरने उनमें ब्रह्मचर्यको सम्मिलित करके व्रतोंकी संख्या पाँच कर दी । कुछ आधुनिक विद्वान् भ्रमवश यह भी कथन कर दते हैं कि वर्तमान

द्वेष्टाभार नष्टराज मुक्त है कार्यही विध्याभ्यासके विचारोंसे प्रभावित है  
 जब कि विचार नष्टराज बढ़ापीरही जातया है । किन्तु हमने कोई  
 कभी नहीं है कि वास्तविक विचारधाराके साथ बढ़ापीर एवं मुक्त  
 समय तक विचारमें नै । योद्धा-केपी बंधारही बंधन इन बातों मुक्त  
 है कि वास्तविकताके बढ़ापीरकायन साथ प्रतिपक्ष बंधोंमें बढ़ापीरके  
 बंधोंके कभी नहीं रहते नै नष्ट उभर नैना केपीना बढ़ापीरके प्रभाव जिसे  
 जीवन बंधारके साथ विचार-विमर्श हुआ और कलकल नै बंधों  
 प्रतिपक्ष कर दिके बंधे । एक ऐसी भी अनुभूति है कि बंधों बंधे नष्ट  
 प्रभाव नष्टराज तथा बंधों साथ बंधों बंधों एवं बंधोंकायन बंधों  
 जातनमें बंधोंके बंधोंके ही साथ नै नै बंधोंके एवं बंधों नष्ट नै  
 बंधन इनके कोई नै नष्ट, नष्ट बंधन बंधन है ।

व्यापारियोंतर वाक्या धनधन-मूल्यद्वारा जालोडन करने परसेल्लवर्षकी कड़ी पछासी ई नु में गुंजा और इन सबर सबके सबअनुप केर १२वें तीर्थकर निर्मित जालुनुप सर्वजन कहानीर से । व्यापारीनुप धार्मिक बन्युं एक अनुपुत जालि करविविधन एवं धार्मिक विचार अनुपुतवा बन बा । बाणधर्ममें ही लड़ी बसात उमर संसारमें ज्ञान बावुति एवं नवप्रेरणाकी कहरनयन थी । पीनमें कनकमन और काशीमें ईशान्ते करकुत दुनाममें केहीरीरत क्रियाशीलमें मूल्य द्यवादि अनेक उपायान विचारक वाक्यिक एवं नवतर्पक उत्पत्तीन कल्प बन्युं विभिन्न जालीमें जाले-जाले सब एवं विचारोंना प्रचार कर रहे से और ब्रह्मकी कवक्याचारकी ज्ञान दान कर रहे से । इन सबके बनोकाकी एवं कानान्ते विरीयात बहु थी कि कालके नहुन और कवक्याचर, को कि नवन कर्तव्यकी कम्पनात विरीयातों थी कविक सब विरा बाण बा । कर्म बाणधर्ममें लीकैनु, कदाक कवक्याचर कविक नुनी दहान नहि एवं कविक विरा कीनित्तिक कम्पनाचरका प्रचार कर रहे से ? कविककी क्रियाशीली कविक नुन कीत एवं कर्म पीरीके नुन कविककी

रचना कर रहे थे । वेदोपर नियुक्त आदि टीकाएँ भी रची जा रही थीं । साथ ही कपिल, कणाद, गौतम, जैमिनी आदि ऋषि सांख्य, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, योग आदि पद्धतियोंका विकास कर रहे थे । पद्धवेदागो को भी व्यवस्थित रूप दिया जा रहा था और उनके अन्तर्गत तर्क, छन्द, व्याकरण, अलंकार, ज्योतिष आदि तथा उपांगके रूपमें आयुर्वेद प्रभृति लौकिक विद्याओंका सृजन भी प्रारम्भ हो रहा था । वानप्रस्थ आश्रम एवं प्रयज्याका तथा विद्याभ्यास, साहित्य साधना, तपश्चर्या एवं तत्त्वचिन्तनका जोर वेदानुयायी समाजमें भी बढ रहा था । दूसरी ओर श्रमण परम्परामें यह लोकश्रुति जोरोंपर थी कि इस कालमें अन्तिम तीर्थंकरके रूपमें एक महापुरुष जन्म लेगा । अतएव उक्त परम्पराके अनेक विचारक एवं सुधारक अपने-आपको तीर्थंकर घोषित करके अपने-अपने मन्तव्योंका प्रचार करने लगे । मखल्लिगोशाल, पूरण कश्यप, पकुध कात्यायन, अजित केशकम्बलिन, सजय वेलट्टिपुत्त, शाक्यमुनि गौतमबुद्ध, निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र महावीर इत्यादि व्यक्तियोंने यह दावा किया । बौद्ध अनुश्रुतिमें उपरोक्त ( बुद्धके अतिरिक्त ) छह तत्कालीन तीर्थंकाका उल्लेख है । जैन अनुश्रुतिमें भी इन विभिन्न ऐकान्तिक विचारकोंका उल्लेख है । उससे तो यह भी पता चलता है कि उस कालमें छोटे बड़े मिलाकर कुल ३६३ 'पापंड' या धार्मिक सम्प्रदाय प्रचलित हो रहे थे जिनमें उपर्युल्लिखित ब्राह्मण एवं श्रमण विचारक और उनके मन्तव्य प्रमुख थे । सदाचारकी इस प्रबल लहरकी प्रतिक्रियाके रूपमें उच्छृंखल एवं नास्तिक लोकायत या चार्वाक मत-जैसे भौतिकवादी मार्गका प्रचार भी प्रायः उसी कालमें हुआ जो अनेक तथा अधिक विकृत रूपों एवं गुप्त सम्प्रदायोंके रूपमें चिरकाल तक बना रहा । गोशालका आजीवक सम्प्रदाय भी मध्यकालके प्रारम्भके कुछ पूर्व तक चलता रहा । ब्राह्मण परम्पराके पद्धदर्शन और वैदिक एवं उपनिषदिक अन्य विचारधाराएँ भी स्वतन्त्र सम्प्रदायोंका रूप तो न ले सकीं, किन्तु उन सबके समन्वयसे तथा श्रमण विचारों एवं मान्यताओंको

नौ आर्थिक करने आसमान करने हुए वाक्यान्तरमें एक ऐसे बलिदान आसमान करने काय एवं विमान हुआ भी करनी करनेविधि बहुत आसमान विरोधी आसमानों विमानों विमानों प्रयासों एवं करनी आर्थिक आसमान कोविधि एवं आसमान होता चला गया पहाँ तक कि आसमानविरोधी बहुतआसमान बहुत आसमान प्रयास करने कर गया ।

उत्तराखण्ड नवोद्दिष्ट विद्येय उद्योगशील नीतिगत बुद्ध-हाउस संस्थापित एवं प्रचालित कीज्ये कार्य है। यमकींसे कम्पुबाणी करिहवातुसे धार्यकी जलकींसे वस्तुगत राधा सुहोदरके पुत्र मित्राज्य वीरज्य देवी म्हात्मा विद्वेहि के कि जिनकी हाउस संस्थापन बहरी बहो। बाब्यावस्थाके ही कल्प हार ईनाएके पुत्रके ज्योत्स्न का। करवाकींसे लाहद्वे कम्पुने ज्योत्स्न मानक एक मुनरीके हाउस मित्राज्य की विद्या कीर कल्पे राहुक मानक एक पुत्र की वस्तुगत हुआ। किन्तु बगलता लवी पुत्र राव-व्यस्य आरिका कीर कम्पु बाविकर न एक कला कीर एक राविकी के करवाका त्याग करके कल्पकी नीतिमें जल मिली। यमज परमपदमें कल्पका कल्प हुआ था किन्तु कल्पमें भी उस कल्प कल्पकीके अतिरिक्त कल्प कल्प विभिन्न विचार थापमें एवं उद्योगप्रधान प्रचालित हो रही थे। एकदुमार नीतिमें एकै बार एक कई बाबीका ज्योत्स्न कल्पमें व्यवस्थित किया। कुछ दिव के कल्पकी बाब्यावस्थाके एक बीच कल्पके भी विध्य रहे। एवं व्यवस्थितिकार आदि बाबीज कीर कल्पके लाह है कि कम्पुने बीनाचार एवं उद्योगप्रधान का व्यवस्था किया था। बाह्यज्य परमपदके भी कई प्रकारके लाहकींसे ईद्वे एवं कल्पप्रधान कम्पुने किया। किन्तु किन्तीने भी कल्पकी कम्पुहि न हुई। कीई माल कम्पुने कल्पिनी बीना की कीई अति तरक अथवा ज्योत्स्न प्रणिभूक। कल्पमें अथवा मरते बहुर एक बीनके मुक्तके बीनके बीने हुए कम्पुने नीति मान्य हुई कीर कम्पुने बाब्यावस्थाकी बुद्ध नीतिगत कर दिया। वे उद्योगज, धार्यवृत्ति आदि मामलि भी प्रसिद्ध हुए। कल्पे हाउस नीति विद्याके कई एवं बाबीकी कम्पुने कार्य व्यवस्थितकर्म या व्यवस्थाकीका नाम दिया।

दाशनिक एवं तात्त्विक उल्लेखोंमें उन्होंने उल्लेखना नहीं चाहा। जो उन्हें उचित जैसा ऐसे सदाचारके उपदेश-द्वारा उन्होंने ससारी मनुष्योंके दुःख निवारणका प्रयत्न किया। बोधि प्राप्त होनेके उपरान्त उन्होंने सारि-पुत्र मोद्गल्यान, आनन्द आदि कुछ व्यक्तिगणोंको अपना शिष्य और साथी बनाया। वाराणसीके निवृत्त सारनाथ ( ऋषिपत्तनके ) मृगदासमें उन्होंने पहले पहल अपना उपदेश दिया। कुछ तत्कालीन राजाओंने भी उन्हें आश्रय दिया।

उनका मृत्युके उपरान्त उनके भिक्षुसमूहमें मतभेद उत्पन्न हुए। उनके मौखिक उपदेशका शिष्योंने त्रिपिटकोक रूपमें वर्गीकरण भी किया। उनके कुछ उत्साही शिष्य उनके धर्मका प्रचार दृढ़ता एवं कुशलताके साथ करते रहे। फिर भी सम्राट् अशोकके समय तक बुद्ध धर्मकी स्थिति दृष्टादोल ही रही। अशोकने बुद्ध धर्म अंगीकार किया था नहीं, इसमें मतभेद है, किन्तु बालान्तरकी विदेशी बौद्ध अनुश्रुति उसे बौद्धधर्मका सर्वमहान् सरलक घोषित करती है। कमसे कम इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि अशोकके शासन कालमें ही बौद्ध धर्मका पाटलिपुत्रमें जो सम्मेलन हुआ उसीमें यह निर्णय किया गया कि बौद्ध धर्मके रक्षार्थ एवं प्रचारार्थ बौद्ध भिक्षुओंको विदेशोंमें भी जाना चाहिए। अस्तु, अनेक बौद्ध प्रचारक तिब्बत, चर्मा, सिन्धु तथा मध्य एशिया आदिकी ओर बिना किसी बाधा और कष्टकी परवा किय चले गये और उन्होंने वहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार किया। चीन और तदनन्तर जापानमें भी थोड़े समय पश्चात् वे पहुँच गये। स्वयं भारतमें आनेवाले यूनानी, शक, पल्लव, कुषाण, हूण आदि विदेशी राजाओंमेंसे भी अनेकने इस धर्मको प्रोत्साहन दिया। भारतीय-यवन मिनेण्डर और कुषाण सम्राट् कनिष्कका नाम बौद्ध धर्मके प्रसिद्ध समर्थकोंमें लिया जाता है। बादके भारतीय नरेशोंमें हर्षवर्धन और चंगलके पालवशी नरेश बौद्ध धर्मके अनुयायी एवं प्रबल पोषक थे। किन्तु हर्ष ( ७वीं शताब्दी ) के उपरान्त ही बौद्धधर्म भारतवर्षसे

[illegible]

इस मुक्त महापुरुषाभि अवस्थित आध्यात्मिक साधन मुक्त के महान्  
 आत्मिकीय प्रवर्धन महापुरुषाभि । स्वर्ग मुक्त जनके हीमते आध्यात्मिक  
 और जनता जनता करती है । जनता जनताभि मिल आत्मिक तीर्थकारके  
 हीमते आध्यात्मिकीय भी वह प्रवर्धन महापुरुषाभि ही है । महापुरुषाभि प्रवर्धन  
 प्रवर्धन भी जनता जनताके ही तीर्थकार आध्यात्मिकीय ही मुक्त है आध्यात्मिकीय  
 जनताभि ही प्रवर्धन मुक्त जनता, जनता एवं जनता जनताके लिए  
 आत्मिक तीर्थकारके जनता महापुरुषाभि प्रवर्धन हुआ है । वह जनता

समय कुछ कालके लिए भले ही कुछ विवादग्रस्त रही हो किन्तु महावीर-द्वारा धर्मचक्र प्रवर्तनके उपरान्त उसमें किसीको कोई सन्देह नहीं रहा । उन्होंने न किसी नवीन धर्मका प्रचार करनेवाला दावा किया, न कोई नवीन मार्ग खोज निकाला, न किसी देवी-देवता या दैवी अथवा गुप्त शक्तिका आश्रय लिया और न किसी राजा महाराजाको ही सहायता चाही । उन्होंने एक सामान्य मनुष्यके रूपमें जन्म लिया, एक सामान्य समारी मनुष्यके रूपमें बाल्यावस्था एवं कुमारकाल व्यतीत किये, और स्व पुरुषार्थ द्वारा अपनी आत्माको उन्नतिके चरम शिखरपर पहुँचा दिया । आत्म-कल्याणके चिर-प्रचलित एवं तीर्थंकरों-द्वारा प्रणीत मार्गका उन्होंने अपने जीवनमें शुद्धतम एवं श्रेष्ठतम रूपमें अवलम्बन करके उसका औचित्य चरितार्थ किया था और लोक-कल्याणार्थ उसका उपदेश दिया था । यही महावीरकी सबसे बड़ी विशेषता थी और इसीके कारण विश्वके महापुरुषों-के उस महायुगमें भी वह अपना विशिष्ट स्थान रखते थे । आज भी, न केवल वह जैनधर्मके इतिहासके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं वरन् प्राचीन भारतके इतिहासमें तथा विश्वके धर्मोंके इतिहासमें भी उनका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । जैनधर्मका तो जो कुछ वर्तमान रूप है तथा उसके गत ढाई सहस्र वर्षोंका जो कुछ इतिहास एवं संस्कृति है, उस सबका सर्वाधिक श्रेय अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीरको ही है ।

चैत शुक्ल १३ ( ३० मार्च सन् ईसवी पूर्व ५९९ ) के दिन प्राचीन भारतके द्रात्य क्षत्रियोंके प्रसिद्ध वज्रिसद्य नामक गणतन्त्रके अन्तर्गत कुण्डग्राम ( क्षत्रिय कुण्ड ) के शासक वशी काश्यप गोत्री क्षत्रिय नेता सिद्धार्थकी पत्नी त्रिशला देवीने वर्धमान महावीरको जन्म दिया था । यह कुण्डग्राम उक्त वज्रिसद्यकी प्रधान राजधानी वैशाली ( जिसको पहचान बिहार प्रदेशमें मुजफ्फरपुर जिलेके बमाढ़ नामक स्थानसे की गयी है ) के निकट स्थित था । उक्त सबके अग्यस वैशालीके लिच्छवी राजा



पेटक बहावीरके मायापहुँचे । भिखुजकी जेबेबाँधे बहावीर कपूच पुन  
 बचवा मातुपुत्र और नन्दन भी बहुकाँटी से जबकि मातुपुत्रकी जेबेबाँधे से  
 छिन्नविन्न एक पैसाछिन्न बहकाये । इनको जाला बिमला भारवाय  
 मित्रकारिणी निरेहवता भी बहुकाँटीकी हन नारन से रिछे वा रिछेहिछ  
 भी बहुकाँटी और अविनीर, रम्यविनीर यथाचार बर्दबाव बाँध बिध  
 बिन्न नाव वा बर्दाबयाँ इन्हें कमर-कमनपर बिन्न-बिन्न कारखोले प्राप्त  
 हुई । यथापद पेटकके हन पुन से शिनये-के ज्येष्ठ पुन तिरु बचना स्थिर  
 बलिबन्धके प्रविष्ट बचान केनापछि से । यथापद पेटककी देव बल  
 बुद्धिप्रेमै-से येना लवबबरेय जेबिक बिम्बहारके साथ बिबाही बी, हुनरी  
 बीजाम्बीनरीय यथानीके साथ, बीठरी बर्दाब देयके रात्र क्यरकले  
 साथ बीबी भिखुजेनीरक यथारात्र उदयके साथ बीर पंथी बचमि-  
 नरीय बग्यजोमक साथ बिबायो बी । जग ही ज्येष्ठ और कल्या वाक-  
 यथापदरिणी हुनारी नहीं और यथावीरके बपरेयके बर्दिता करी ।  
 पेटकका बस्तव परिवार यथावीरका जल वा । बहके बिभिन्न बायपुत्र  
 भी जो जल बपके बहिष्ठ नरेय से बहावीरके बल नई । ज्यके बर्दि-  
 तिन बग्यके पया बर्दिबहून बलिब-नीय बिनबन वा बहावीरके बृध  
 भी से, बायपुत्री-नरेय ज्येष्ठमि, बपुनके रात्र बर्दिनीय । ईशान्यनरीय  
 बीजाम्बर, पोरनुर-नरेय बिजयय बग्यजपुनके पया बिबबकेन पंथाक-  
 बरेय वा यथ इमिलनपुनका रात्रा रात्रादि ज्येष्ठ रात्राकीन एके-महापुनै  
 बहावीरके बपरेयके बचमिन्न हुए बग्ये बाते हैं ।

बलिबनरीय जितकपुनी जलवा बपीनके साथ बहावीरके बिबाहकी  
 बल बकी बी । एक बरकनके अनुसार जलवा बह बिबाह हुआ थी वा  
 और इनके एक बग्यका भी बल हुआ वा । किन्तु इनका बिल भारमके  
 ही संगार-नेह-बीनीके बिबन वा बीर बीहका बग्याय करनेकी बचनी

जब जब यमुनारिगे यमुनार येन वा बीरके बपुन से ।

उत्काट भावना था। अतएव घरवालोंके आग्रहको उन्होंने अमान्य किया और तीन वर्षको आयुमें मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी ( ११ नवम्बर, ई० पू० ५७० ) के दिन इस बालघृहाचागे राजकुमारने समस्त नासारिष वैभवको गत मार वनकी गह ली। बारह वर्ष पर्यन्त उन्होंने दुर्द्धर तपश्चर्या बिना और इस प्रकार अपनी आत्माको सब प्रकारकी मम-वालिमान्न छुट्ट मग पवित्र बना लिया। इस बोधमें न उन्होंने उपदेश दिया और न शिष्य बनाये तथा अनेक उपमग एवं परीपट्ट सहन किये। अन्तमें बयालीस वर्षको आयुमें वैशाख शुक्ल दशमी ( २६ अप्रैल, ई० पू० ५५७ ) के दिन विहार प्रान्तमें जम्भक ग्रामके बाहर शृङ्गुला नदीके तटपर एक शालवृक्षके नीचे ध्यानस्थ बैठे हुए महावीरको वचनज्ञानकी प्राप्ति हुई—और वे सबज्ञ, सबदर्शों, अहत् परमात्मा हो गये। वहाँसे चलकर वे राजगृह अपरनाम पंचशैलपुरके बाहर स्थित विपुलाचल पर्वतपर पहुँचे और उमी वर्षकी श्रावण कृष्ण प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल उक्त पर्वतपर उनकी समवधरण सभा जुड़ी और उनका सर्वप्रथम उपदेश सर्वग्राह्य अरमागधी नामक लोकभाषामें हुआ, यही उनका धर्मचक्रप्रवर्तन था। मगध सम्राट् बिम्बिसार-श्रेणिक उनका सबप्रमुख श्रोता था। इन्द्रभूति, गीतम, अग्निभूति, वायुभूति, आयव्यक्त, सुधम, मण्डिकपुत्र, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचल, मैत्रेय और कौण्डिन्यगोत्रा प्रभाम उनके ग्यारह गणवर या प्रधान शिष्य थे जिनकी अव्यक्षतामें अनेक श्रमण मुनियोंके गण या सघ मगटित हुए। महामती चन्दना उनके आर्यिका सघकी अव्यक्षा थी और मगधकी सम्राज्ञी चेलना श्राविका सघकी नेत्री थी। इस प्रकार मुनि-आर्यिका-श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघके रूपमें सुव्यवस्थित जनसमुदायको बिना किनी यण, वर्ग, जाति, लिंग आदिके भेदभावके महावीरने अपना उपदेश दिया। तीस वर्ष पर्यन्त विभिन्न देश-देशान्तर्गमे विहार करके उन्होंने लोककी मुक्तिका मार्ग दिखाया। पूर्वोक्त सभी प्रसिद्ध राज्यों और उनकी राजधानियोंमें उनका विहार हुआ और तत्कालीन प्रसिद्ध राजा-महाराजाओंमें ने अवि-

नाम के कारोबारों प्रभावित हुए । हमने-वे कोकोने वैन मुनि रत्नर  
महामायावन किया । हमने उपरोक्तोंका धार वीरमर्दर वनचरोने इतना  
भुक्तके रूपमें भूषा कीर बड़ी विपुल वैन वामिक साक्षितका मूढकर  
बना । अन्तर्धे क्रांतिक कुल्य वामानस्या र्ववध्यार, १५ मन्तुपर ( १  
५२७ या विष्णुपूर्व ४७० तथा वाक्युव ९ ५, के शाताचल भूर्वीभने  
वर्ष मन्तव पावने कमल-इरोवर्धके वन विपुल वीपाकर एक इरोने  
महावीरने निर्वाच काव किया । पावावा उत्तमवीर तथा मन्तवी  
वात्तवधवी इतिपाव वा । कहा जाता है कि वन वन वनेक ली-  
वुक्तों कीर पावा-महापावावीने विपुल वी मन्त एवं वी विष्णुवि वीर  
इन्तुव वे वनवल्का विर्वालोत्तव वनावा कीर पाविनी वीपोत्तव विपुल ।  
इसीवे वीपावलीकेत्पाधारकी वीरवी वपुति हुई वरावी जाती है । वरावीके  
इतना विपुल वीरव-वनेवको वरी वनव वीरववल्क वरावीके वनवल्क  
है वन वरी वनवल्कवे वनेव एवं वनवीके वनवल्का वन वनव वनव  
हवा वनव जाता है । वनेव वरावीर विर्वा वनवल्की वपुति वरी वनव  
है । वीरव वरावीरका विपुल वनव विह वा । वन वन वन वन वन  
वनके वी वनवे वनवल्क वनवल्का ।

आधीरके सीपनछावने ही उनके लम्बव शीप छत्र बल्ल बने  
हो गये थे वो उनके हाथ मूकपतिवत बनुरिब उनके कानन थे।

‘‘तब आपका कदम-पदी बरखावाले की कबो का कुत्तेमें बिबलत ह।

—आविष्कारोंमें सभी लोगों की भाविरीके लो-मुक्त सम्मिलन

। राष्ट्रपति के अति शक्तिशाली भावों में प्रजापति के अनुयायी ने भारत के राष्ट्र की वास्तव, नविकृत राष्ट्र को आदि विधियों के बचन में । इनके अति शक्तिशाली अर्थ में अति शक्तिशाली आदि पूर्ण तीर्थछात्रों के अर्थ में ही बने रहे ।

दशमोदके कविवर्योक्तं चारुवर्द्धिकायाः कर्मचार्यं शास्त्रकार इति  
तद्व्याख्यानं कृतं बहुमूल्यं कर्म च। चर्द्धिका शास्त्रको विद्यमाना अत्रिक विद्यया  
रुद्रा, ईश्वर एवं व्याकरणं कृतं, सौम्याभिरुद्र एवं व्याख्यानं रीति रीति

दृष्टिमेंसे महावीरने दिया उनका सम्मयनया अन्य किसी धर्मापदेशाने नहीं दिया। जैन धर्मको समझा अन्तिम विकसित रूप देनेका श्रेय अन्तिम तीर्थंकर महावीरको ही है।

महावीरके निर्वाणोपरान्त जैन सभका नायकत्व उनके प्रधान गणधर इन्द्रभूति गौतमको प्राप्त हुआ। महावीरका शिष्य होनेके पूर्व वह एक महान् वेदशास्त्रज्ञ प्रकाण्डब्राह्मण पण्डित थे। महावीरके उपदेशोंको गृहस्थावद्ध, व्यवस्थित एवं वर्गीकृत रूपमें संकलित करनेका श्रेय इन्हींको है। ये बौद्धधर्म प्रवक्तक गौतम बुद्ध एवं पायसूपकार अक्षयपाद गौतमके समसामयिक होते हुए भी उन दोनोंसे भिन्न व्यक्ति हैं। ये भी अर्हत् देवली थे और महावीर गवत् १० ( ई० पू० ५१५ ) में निर्वाणको प्राप्त हुए। इनके पश्चात् सुधर्माचार्य मघनायक हुए। यह भी अर्हत् देवली थे और म० न० २४ ( ई० पू० ५०३ ) में निर्वाणको प्राप्त हुए। उत्पश्चान् जम्बूस्वामी जैनसभके नायक हुए। ये चम्पाके एक कोट्याघोश श्रेष्ठिके पुत्र थे और महावीरके प्रभावसे उनके शिष्य हो गये थे। जैन मुनिके रूपमें मयुरगनगरके चौरासी नामक स्थानपर इन्होंने तपश्चरण किया था। म० स० ६० ( ई० पू० ४६५ ) में जम्बूस्वामीको मोक्ष हुआ। एक अनुश्रुतिक अनुसार मयुराके चौरासी क्षेत्रसे ही इनका निर्वाण हुआ किन्तु एक अन्य मान्यताके अनुसार गजगृहके त्रिपुलाचलपर यह घटना घटी थी। महावीरकी शिष्य-परम्परामें जम्बूस्वामी अन्तिम देवली थे। मयुरा नगर और शूरसेन देशमें इनके द्वारा जैन धर्मका अत्यधिक प्रचार हुआ। इनके पश्चात् विष्णुकुमार, नन्दिमित्र, अपराजित, गोषर्दन और भद्रवाहुने क्रमशः सभका नेतृत्व किया। ये पाँचा ही श्रुतकेवली थे यर्थात् इन्हें सम्पूर्ण श्रुतका यथावत् ज्ञान था। इनमेंसे अन्तिम श्रुतकेवली भद्रवाहुका मृत्यु म० स० १६० ( ई० पू० ३६५ ) में हुई। जैनधर्मक इतिहासमें इन आचार्यका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके समय तक जैन सभ अश्रण्ड अविभक्त रहा था, किन्तु इनकी मृत्युके उपरान्त उसके



सम्प्रदायके जनक बने । इन दोनों शाखाओंके अतिरिक्त उत्तरपथके विभिन्न भागमें और भी अन्य बनेक जैन साधु थे । इनमेंसे अधिकतरने कालान्तरमें मथुरा नगरको अपना प्रमुख केन्द्र बनाया और इनका विकास भी स्वतन्त्र रूपसे हुआ । मथुरा आदिके जैन साधु महावीरके महासत्त्वमें कर्णाटकी या मागधी एवं पश्चिमी साधुओंके बीचकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हुए । इस प्रकार महावीरके निर्वाणके उपरान्त जैनमध निरन्तर प्रगति एवं विकासकी ओर अग्रसर होता गया और बनेक कालदोष, विकार एवं भेदादिके उत्पन्न होते रहनेपर भी तीर्थङ्करके मौलिक सिद्धान्तोंका प्रचार देश-देशान्तरमें बढ़ता गया ।





धर्म रहा प्रतीत होता है। राज्यक्रान्तिके उपरान्त इस वंशके प्रारम्भिक नरेशोंमें सर्वप्रसिद्ध राजा श्रेणिक विम्बिसार था। हिन्दू पुराणोंमें उसके पिताका नाम जिद्युनाग या दैद्युनाक, बौद्धसाहित्यमें भट्टि और जैन अनुश्रुतिमें उपश्रेणिक मिलता है। श्रेणिकके कुमारकाष्ठमें ही उसके पिताने किसी कारण कुपित होकर उसे राज्यमें निर्वासित कर दिया था और अपने दूसरे पुत्र चिलातिपुत्रको अपना उत्तराधिकार सौंप दिया था। अपने निर्वासन कालमें श्रेणिकने देश-देशान्तरोंका भ्रमण करके अनुभव प्राप्त किया। इसी कालमें वह कतिपय जैनतंत्र धर्मण माधुओंके सम्पर्कमें आया और उनका भक्त हो गया तथा जैनधर्मसे विद्वेष भी करने लगा। कुछ अनुश्रुतिपत्रोंके अनुसार वह बौद्ध हो गया था किन्तु यह बात असम्भव प्रतीत होती है क्योंकि महावीरके केवलज्ञान प्राप्ति ( ई० पू० ५५७ ) के पूर्व ही यह फिरसे जैनधर्मका अनुयायी बन चुका था और उस समय तक बहु-माय मतके अनुसार बुद्धने अपने धर्मका प्रचार प्रारम्भ नहीं किया था। श्रेणिकका भाई चिलातिपुत्र राज्यकार्यमें विरक्त था और उसने दत्त नामक जैन मुनिसे वैभार पर्यंतपर मुनि-दीक्षा ले ली। कल्पस्वरूप सन ई० पू० ५८७ के लगभग श्रेणिक विम्बिसार मगधके सिंहासनपर बैठा। उसने राजधानी राजगृहका जिसे गिरिवृज या पंचशैलपुर भी कहते थे, पुनर्निर्माण किया एवं राज्यका संगठन और शासनकी व्यवस्था की। उसके तथा उसके वंशजोंके प्रयत्नसे यह सुन्दर महानगरी मगध साम्राज्यकी ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतवर्षकी प्रधान राजधानी बन गयी। उसके सिंहासनाब्द होनेके समय मगधका राज्य न विशेष बड़ा था और न वल्लवान्। कोसलराज्य एवं वैशालीके वज्जिसभकी सीमाएँ इससे सटी हुई थीं। श्रेणिककी महत्वाकांक्षाका आभास पाकर वैशाली नरेश चेटकके नेतृत्वमें कोसल तथा वज्जिसभकी सेनाआने मगधपर आक्रमण कर दिया, किन्तु चतुर श्रेणिकने अवसर देखकर सन्धि कर ली। इतना ही नहीं, उसने चेटककी पुत्री चेलना और कोसलकी राजकुमारी कौशलादेवीके साथ





युक्त इन जनतन्त्रान्मक सम्म्याओं द्वारा उसने साम्राज्यके उद्योग प्रत्या, व्यवसाय और व्यापारको भारी प्रोत्साहन दिया । ये श्रेणिया ही आगे चलकर वतमान जानियोंके रूपमें धीरे-धीरे परिणत हो गयी । मन्नाद् श्रेणिक जनपदाका पालक एव पिता कहा गया है । वह दयाशील एव मर्यादाशील था, साथ ही दानवीर एव निर्माता भी था । राजधानीके पुनर्निर्माणके अतिश्रित सम्मदशिवर पर्वतपर जैन निषिद्यकाएँ तथा अग्रज जिनमन्दिर, स्तूप, चैत्यादि उसने बनवाये वताये जाते हैं । राजगृहके प्राचीन भग्नावशेषोंमें उसके नमयकी मूर्तियाँ आदि भी मिली वतायी जाती हैं । अपनी अग्रमहिषी एव प्रिय पत्नी चेम्नाके प्रभावसे श्रेणिक जैनधर्मका भवन हो गया था । चेम्ना स्वयं महावीरकी मौमी ( या ममेरी बहन ) थी । महावीरका प्रथम ममवशरण श्रेणिककी राजधानीके ही एक महत्त्वपूर्ण भाग, विपुलाचल पर्वतपर जुड़ा था और वही ई० पू० ५५७ की श्रावण वृष्ण प्रतिपदाको उनका सवप्रथम धर्मोपदेश हुआ था । महाराज श्रेणिक सपरिवार एव सपरिकर उक्त ममवशरण मभूममें उपस्थित हुआ था और श्रावकोत्तम कहलाया था तथा महावीरके श्रावक नषका नेता बना था । कहा जाता है कि श्रेणिकने भगवान्में एक-एक करके साठ हजार प्रश्न किये थे और उन्होंने उन सबका समाधान किया था । इन प्रश्नोंके उत्तरा-के आधारपर ही विपुल जैन साहित्यका रचना हुई । उसकी साम्राज्ञी चेतना श्राधिका सधको नेत्री हुई । उसने अपनी समस्त सपत्नियों-महित महासती चन्द्रना आयकि निकट धर्मका अध्ययन किया वताया जाता है । श्रेणिकके अभयकुमार, मेघकुमार, वारिपेग, कुणिक आदि कई पुत्र थे । इन सबमें अभयकुमार जेठे थे । यह अत्यन्त मेधावी, राजनीति निपुण एव धर्मात्मा थे । श्रेणिकके जीवन कालमें ही वह अपने भाइयोंके साथ जैन मुनि हो गये थे । अतएव श्रेणिकने कुणिक अपरनाम अजानसधुको जो कि महारानी चेम्नासे उत्पन्न हुआ था, राजपाट सौंपकर एकान्तमें धर्मध्यानपूर्वक शेष जीवन वितानेका निश्चय किया । राज्याधिकार पाने-



आदर करना था । त्रिभुवनसार और चेटक का वह मित्र था, किन्तु अब उसकी वृद्धावस्था थी और उससे पुत्र अयोग्य थे । उनके पुत्र युवराज विदुडभने पिताकी इच्छाके विरुद्ध स्वयं गौतमबुद्धके जीवनकालमें ही उनकी जन्मभूमि कपिलवस्तुपर नयकर आक्रमण करके उने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था । अज्ञानशत्रुने अवसर देव कोसलपर आक्रमण कर दिया और उसे पराजित करके उसका बहुत भाग अपने साम्राज्यमें मिला लिया । अब उसने वैशालीकी ओर ध्यान दिया । लिच्छवि क्षत्रियोंका यह प्रसिद्ध वज्जिसभ एक आदर्श गणतन्त्र राष्ट्र था । उनका विधि-विधान आजकी जनतन्त्रीय प्रणालीसे बहुत-कुछ सादृश्य रखता था । जनता या नागरिकोंके प्रतिनिधि राजा कहलाते थे । इन राजाओंकी मर्यादा सख्ता थी और वे वैशालीके मथागारमें बैठकर शुद्ध जनतन्त्रीय पद्धतिसे राजनैतिक तथा अथ लौकिक एवं धार्मिक विषयोंपर विचार-विमर्श एवं वाद विवाद करते थे जिनका निर्णय बहुमत-द्वारा होता था । मतदानमें गणका ( वॉल्ट ) का भी प्रयोग किया जाता था । उस राष्ट्रकी तथा लिच्छवियों अथवा वज्जियोंके चरित्रकी स्त्रयं महात्मा बुद्धने प्रणामा की है और उन्होंने अपने मधक् मगधनमें भी लिच्छवियोंकी अनेक विधियाँ अनुकरण किया । बुद्धघाप आदि प्राचीन वीर्याचार्योंने भी उनके आचार-विचार एवं प्रथाओंके सुन्दर वर्णन किये हैं । महाराज चेटककी अब मृत्यु हो चुकी थी और उसका मित्र राज्य कोसल पराजित हो चुका था । फिर भी वैशालीपर खुले रूपसे आक्रमण करनेका अज्ञातशत्रुकी साहस न हुआ । अब उसने बम्भकार नामक एक धूर्त ब्राह्मणको वैशाली भेजा । वहाँ उसने अपने छत्र, कौशल एवं विश्वासघात-द्वारा वज्जिमधकी एकता एवं शक्तिको निबल कर दिया और अज्ञातशत्रुकी वैशाली विजय करनेका सुअवसर प्रदान किया । कई एक छोटे-मोटे राज्य भी उसने जीतकर अपने साम्राज्यमें और मिलाये और इस प्रकार अवन्ति नरेश पालककी, जिमने कि कौशाम्बी नरेश उदयनके वत्सराज्यकी विजय करके अपनी शक्ति और अधिक बढ़ा ली थी, छोड़कर सम्पूर्ण भारतमें मगध साम्राज्यका कोई प्रबल



था और अपने कुल-धर्म और धर्मका ही अनुयायी था। ऐश्वर्य के मता-  
नुसार उसने जैन श्रावक के तम धारण किये थे। वह बुद्धका भी  
आदर करता था किन्तु उनका अनुयायी नहीं हुआ प्रतीत होता।  
बौद्ध साहित्य में उसका घटो निन्दा की गयी है और उस पितृहता  
कहा गया है। किन्तु जैन अनुश्रुति में उसकी प्रशंसा मिलती है। उसने  
मूर्ति निर्माण कलाको भी प्रोत्साहन दिया। महावीर आदि तीर्थंकराको  
मूर्तियों के अतिरिक्त स्वयं अपनी मूर्तियाँ भी उसने बनवाई प्रतीत होती हैं।  
परम नामक स्थान से किसी एक मूर्तिको डॉ० फाशीप्रसाद जायसवाल ने  
स्वयं अजातशत्रु की मूर्तिके रूप में चिन्हा है और उनके मतानुसार वह उसी के  
काल में निर्मित हुई प्रतीत होती है। अजातशत्रु ने कई अभूतपूर्व युद्ध यन्त्रों-  
का भी आविष्कार किया था।

अजातशत्रु के पश्चात् ई० पू० ५०३ में उसका पुत्र उदयिन ( उदयो,  
अजउदयो अथवा उदयोमठ ) मगधक सिंहासन पर बैठा और विभिन्न मतों के  
अनुसार उसने १६, २४, २५ या ३५ वर्ष राज्य किया। वह भी राज्य  
प्राप्त करने के पूर्व अपने पिता कुणिकको भाँति अगदेशका शासक रहा था।  
जैन साहित्य में उसका पर्याप्त उल्लेख मिलता है और वहाँ उसका वर्णन  
एक महान् जन नरेश के रूप में हुआ है। उसने पाटलिपुत्र नगरका, जिस  
कुमुदपुर भी कहते थे और जिसके भग्नावशेष वर्तमान पटना नगरक निकट  
मिले हैं, निर्माण किया तथा राजधानीको राजगृह से उठाकर पाटलिपुत्र में  
हा स्थापित किया। इस राजाको भी एक प्रस्तर मूर्ति मिली है। इसने  
मगध के एकमात्र प्रतिद्वन्द्वी अवन्तिको भी पराजित किया और उस महा-  
राज्यका बहुभाग अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। अब प्रायः समस्त  
उत्तरा भारत मगध साम्राज्यक अन्तर्गत था। कुछ अनुश्रुतियों में उदयिक  
पश्चात् अनुष्ट, मुण्ड, नागदशक या दशक आदि अन्य राजे भी हम वश में  
हुए बताये जाते हैं। किन्तु यह निश्चित है कि महाघोर स० ६० (ई० पू०  
४६७) में मगध में एक नये वंशका प्रारम्भ हुआ जिसे नन्दवंश कहते हैं और

का. अथर्ववेद १५. या १५. सर्वं यच्छा नानाशब्दं यदा । इती सर्वं यदा-  
नीदकं यत्तदर्थं नाथ-नाथ अथ-वि-विदे राग्यं यदाभी भूयः । यदा भूयः  
यदाभी भूयः नाथ-नाथ ॥ इति यदाभी भूयः ।

[illegible][illegible]

मिलालेखमें विदित है कि उसके शासनकालमें राजपूतानेकी माघासिमा नामक प्रसिद्ध नगरी जैनधर्मका प्रमुख केन्द्र थी, जैनोकी यहाँ धार्मिक मन्त्री थी और न केवल यहाँ महावीरकी पुष्कल मायता थी वरन् लोक-व्यवहारमें महावीर सचनका ही प्रचलन था । भारतमें गृहयुद्धोंके प्रचलनका यह सर्व प्राचीन उल्लेख है । नन्दिवंशकी हत्या कटार-द्वारा की गयी बतायी जाती है । उसके उपरान्त उसका पुत्र महानन्दिन राजा हुआ जिसने लगभग ४० वर्ष राज्य किया । यह भी अपने पिताके समान शक्तिशाली एवं प्रतापी नरद था । इसीके शासन कालमें म० न० १६२ ( ई० पू० ३६५ ) में अन्तिम श्रुतयुवकी भद्रबाहुकी मृत्यु हुई । ऐसा प्रतीत होता है कि इसी नरेशके शासनकालके अन्तिम वर्षोंमें वह अनुश्रुति-प्रसिद्ध द्वादश-वर्षीय भयङ्कर दुर्मिथ पड़ा था जिसकी पूर्वसूचना पाकर आचार्य भद्रबाहु कई महान् गिण्य मुनियोंके साथ दक्षिण देशकी विहार कर गये थे । सम्भवत यह राजा भी उतना भयानक शिष्य था और उन्हींके साथ मुनि होकर दक्षिणको चला गया था । इस दुर्मिथ पारुमें जैनधर्ममें प्रथम बार फूट पटनके बीज पड़े । दुर्मिथकी उपद्रावितके पदचातु स्यूटमद्रके नतृत्वमें द्येताम्बर अनुश्रुतिवा पहला जैन सम्मेलन एवं आगमा-की वाचना पाटलिपुत्र नगरमें इसी कालमें हुई और इसी कालमें बौद्धाकी द्वितीय संगीति भी पाटलिपुत्रमें हुई ।

महानन्दिनके उपरान्त मगधमें फिर एक घरेलू राज्यक्रान्ति हुई । उसके राज्यकालके अन्तिम वर्षोंमें देश भयङ्कर दुर्मिथसे पीडित रहा था, इस संकटकालमें शासन भी अव्यवस्थित हो गया था । स्वयं वृद्ध राजा राज्यका परित्याग कर मुनि हो गया था और दक्षिणको चला गया था । इस परिस्थितिका लाभ उठाकर एक साहसी एवं चतुर युवक महापद्मने राज्य सिंहासन हस्तगत कर लिया । उसके अय नाम सर्वासिद्धि और उग्रसेन ( यूनानी लेखकोंका एग्रेमेज ) मित्रते हैं । कुछ लोग भ्रमसे उसे घनानन्द या घनानन्द भी कह देते हैं किन्तु यह नाम उसका नहीं वरन्





यूनानी सैनिकोंके दाँत खट्टे कर दिये। किन्तु आक्रान्ताओंको विपुल सैन्य शक्तिके सम्मुख अग्रोहेकी छोटी-सी सेना कबतक ठहरती, अन्ततः उसका पतन हुआ और बीस हजार स्त्री बच्चोंने जौहर द्वारा अपना अन्त किया। लिखित इतिहासमें जौहरका यह सर्वप्रथम उदाहरण है। अग्ने लगभग डेढ़ वर्षके प्रवास कालमें सिकन्दर और उसकी सर्वविजयी सेना पूरे पंजाब और सिन्धको भी विजय न कर पायी। नन्दके प्राची साम्राज्यकी सीमामें तो प्रवेश करनेका उसे साहस ही नहीं हुआ। ई० पू० ३२५ के प्रारम्भमें ही वह निराश होकर वापस लौट गया और ई० पू० ३२३ में बाबुल नगरमें उसकी मृत्यु हो गयी। पुरु और अम्बोको अपना कर्ग प्रतिनिधि नियुक्त करके और थोड़ी-सी यूनानी सेना छोड़कर वह भारतसे चला गया था। यदि पंजाब, सिन्ध एवं पश्चिमोत्तर प्रान्तके ये अनगिनत छोटे-छोटे राज-तंत्र एवं गणतन्त्र संगठित होकर और मिलकर एक साथ यूनानियोंके विरुद्ध खड़े हो जाते तो वे निस्सन्देह सिकन्दरको पलक मारते ही बुरी तरह हराकर भारतकी सीमासे खदेड़ बाहर करते। सिकन्दरके मुहते ही उसके द्वारा जीता हुआ भारतका अंश शीघ्र ही पूर्ववत् हो गया और अधिकांश भाग अवशिष्ट भारतको तो पश्चिमी जगत्के इतिहासकी इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाका भान भी न हुआ। भारतवासियोंके लिए वह इतिहासकी एक शीघ्र ही विस्मृत कर दी जानेवाली गौण एवं क्षुद्र घटना थी।

किन्तु सिकन्दरके भारत आक्रमणके कुछ सुपरिणाम भी हुए। भारतके बाहर पश्चिमी देशोंके साथ भारतवर्षके सम्पर्क और अधिक उन्मुक्त एवं गहरे हो गये। पश्चिमोत्तर प्रदेशकी छोटी-छोटी शक्तियोंके छिन्न भिन्न हो जानेसे शीघ्र ही मौर्य साम्राज्यका विस्तार अफ़ग़ानिस्तान पर्यन्त फैल जानेके लिए भूमि तैयार हो गयी। भारतीय धर्म, दर्शन, ज्ञान और विज्ञान-के समस्त सभ्य पश्चिमी जगत्में प्रसारित होनेका द्वार बन गया। यूनानी कलाका भारतीय कला, विशेषकर मूर्तिकला, पर प्रभाव पड़ा। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि सिकन्दरके साथ आनेवाले कई यूनानी

साम्प्रदायिक शास्त्र-अध्यापक के लिये या और छात्रवर्गों वाले परमाण्व  
कारि स्पष्ट दुर्बोली नमूना करने कीजिये या किन्तु उपचार्य कल्ले  
ही कावले बलता या । आद्य वर्ष परमाण्व या अध्यापक बालू रही बालू  
ई ५ २१७ के अध्यापक बालू बालू बालू कीकल्ले बालू बालू  
पुनः हुआ और कीर्ति बालू अध्यापक हुई ।

[illegible]

उनमें कुछ तो वनवासी ( हिलोवाइ ) थे जो नितान्त निष्परिग्रह, निष्पृह एवं नग्न तपस्वी थे, वनोंमें रहते थे, अल्पभोजी और विद्वद्ध शाकाहारी थे, हाथमें लेकर ही भोजन करते और जल पीते थे, मृत्युके उपरान्त शवको जीव जन्तुओं-द्वारा भक्षण किये जानेके लिए वनमें ही छोड़ देते थे और मृत्यु निकट जानकर विविध उपायोंसे जीवनका अन्त कर देते थे, अर्थात् समाधिमरण करते थे । वे देह और भोगोंकी चिन्तासे सर्वथा मुक्त थे, ज्ञान व्यान और तपमें लीन रहते थे । यह सब वर्णन जैन मुनियोंके अतिरिक्त अन्य किसी सम्प्रदायके साधुआपरा पूर्णतया लागू नहीं होता । सप्तशिलाके निकट ऐसे ही मण्डन नामक एक प्रसिद्ध मुनिसे सिकन्दरने साक्षात्कार चाहा । मुनिने उसके निमन्त्रणका तिरस्कार कर दिया, इसपर सम्राट् स्वयं मुनिके पास गया । प्रश्न करनेपर मुनिने कहा कि यदि हमसे कुछ पूछना और लेना चाहता है तो पहले हमारी ही तरह अन्तर बाह्यसे नग्न हो जा । और फिर उन्होंने राज्यतृष्णा एवं भोगलिप्साका त्याग करके आत्माकी चिन्ता करनेका उसे उपदेश दिया । एक दूसरा साधु जिसका नाम कल्याण था सिकन्दरके साथ ही वावुल चला गया । वावुलमें जाकर उसने समाधिमरण पूर्वक चितारोहण किया । अपनी तथा स्वयं सिकन्दरकी निकट मृत्युकी सूचना इस मुनिने सम्राट्को पहले ही दे दी थी । उसको मृत्युके पदचात् सम्राज्यकी क्या दशा होगी, यह भी बता दिया था । इन वनवासी श्रमणोंके अतिरिक्त ऐसे भी स्रष्टवस्त्रधारी त्यागी श्रमण श्रावक थे जो वस्तियोंमें रहते थे और घर्मोपदेश, शिक्षा, ज्योतिष, चिकित्सा आदिके द्वारा लोकोपकारमें रत रहते थे । इन त्यागी गृहस्थों ( ऐल्लक, क्षुल्लक, ग्रहाचारी आदि प्रती श्रावकों ) का लोग बड़ा आदर करते थे ।

इन यूनानी लेखकाने तीर्थंकर ऋषभदेव एवं उनके पुत्र भरत चक्रवर्त्तसे सम्बन्धित लोकप्रचलित अनुधुतियाका भी उल्लेख किया है । नन्द, उपसेन, चन्द्रगुप्त मौर्य, अमित्रघात बिन्दुसार आदिके सम्बन्धमें उनके



उल्लेख मिलते हैं। इन उपरोक्त भिन्न कथाओंमें परस्पर बहुत-से अन्तर भी हैं। ब्राह्मण साहित्यमें चन्द्रगुप्तको नन्दका मुरा नामक घृद्रा दासीसे उत्पन्न पुत्र बताया है, बौद्ध अनुश्रुतिमें उसे मोरिय नामक दात्यक्षत्रिय जातिका युवक बताया है। किन्तु बौद्ध तथा ब्राह्मण अनुश्रुतियोंमें चाणक्य और चन्द्रगुप्तका जन्मसे मृत्यु पर्यन्त पूर्ण जीवन-वृत्त नहीं मिलता। जैन अनुश्रुतिमें इन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियोंके सम्बन्धमें अथसे अन्त तक पूर्ण वर्णन मिलते हैं और वे भी कई विभिन्न द्वारोंसे। अतः विभिन्न अनुश्रुतियों, ऐतिहासिक आधारों और मान्यताओंके समन्वय-द्वारा हमें उक्त कालको ऐतिहासिक घटनाओंका बहुत कुछ प्रामाणिक विवरण उपलब्ध हो जाता है।

आचार्य चाणक्य मौर्यवंशकी स्थापनामें मूल निमित्त एव मौर्यसाम्राज्य-के प्रधान स्तम्भ थे। वे मगधाद् चन्द्रगुप्त मौर्यके राजनैतिक गुरु, समर्थ सहायक तथा उसके राज्यके कुशल व्यवस्थापक एव नियामक थे। राजनीतिके ये महान् गुरु और इनका प्रसिद्ध अर्थशास्त्र अपने समयमें ही नहीं वरन् तदुत्तरकालीन भारतीय राजनीति एव राजनीतिज्ञोंके सफल मार्गदर्शक रहे हैं। प्राचीन जैन अनुश्रुतियोंके अनुसार आचार्य चाणक्यका जन्म ई० पू० ३७५ के लगभग गोल्लविषयके अन्तर्गत चणय नामक ग्राममें हुआ था। इस स्थानकी ठीक स्थिति अज्ञात है। कुछ अनुश्रुतियोंमें उन्हें पाटलिपुत्र और कुछमें तक्षशिलाका निवासी भी बताया है। इनकी माताका नाम चण्डवरी और पिताका नाम चणक था जो जन्मसे ब्राह्मण और धर्मसे श्रावक (जैन) थे। जन्मसमयमें ही चाणक्यके मुँहमें दाँत थे जिससे सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी समय कुछ जैन साधु चाणक्यके पित्रालयमें आये और उसके पिताने उनसे इस बातका उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि यह बालक बड़ा होनेपर कोई भारी राजा होगा। किन्तु ब्राह्मण चणक सन्तोषी वृत्तिका धर्मात्मा व्यक्ति था, राज्य धर्मवकी वह पाप समझता था अतः उसने बच्चेके दाँत उखाड़ डाले। इसपर उन

मुत्तमत्वं नैव अनुपपत्तिरिति विद्यते लघुवित्तं हीनं न च तस्मै किञ्चिद् अल्पं अनु-  
पपत्तिरिति चेत् । न ह्येतत् किं अल्पमुत्तमं विद्याभ्यासोद्यमयो यो विधि-  
( अर्थोऽयं नृ ३१२ ) आसीत् मुत्तमी इति ह्यनुपपत्तिरिति चेत् । न ह्येतत्  
तस्मै वाचि आधुनिक विद्याभ्यासोऽनुपपत्तिरिति चेत् । न ह्येतत् हीनं वाचि  
नैव आचार-विचारका यत्तु लघुवित्तं प्रयात्तु न च प्रयात्तु न च प्रयात्तु न च प्रयात्तु  
किं तस्मै वाचि नैव अनुपपत्तिरिति चेत् । न ह्येतत् किं अल्पमुत्तमं विद्याभ्यासोद्यमयो यो विधि-  
रिति चेत् । न ह्येतत् किं अल्पमुत्तमं विद्याभ्यासोद्यमयो यो विधि-

[illegible]

साधुओंका संग्रहा सट्टनोंमें थी अतः मयूर पोषण एव मयूरविच्छेदो निर्माण-  
का व्यवसाय पर्याप्त महत्त्वपूर्ण था। घूमते घूमते चाणक्य एक दिन  
इसी गाँवमें पहुँचा और गाँवके मोरियवशी मुस्तियाके घर ठहरा।  
मुस्तियाकी पुत्री गभवती थी और उस उमरी समय चन्द्रपान करनेका  
विचित्र दोहला उत्पन्न हुआ था। किन्तु चाणक्यने इस घातक कि उत्पन्न  
होनेवाले शिशुपर उसका स्वयंका अधिकार रहेगा युक्तिसे वह दोहला  
घान्त कर दिया। तदनन्तर वह वहाँसे चल दिया। कुछ ही मास उपरान्त  
उम लडकीने एक मुन्दर तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया और उम दोहलेके  
आधारमें उसका नाम चन्द्रगुप्त रखा गया तथा परित्राजक चाणक्यने  
की गयी प्रतिज्ञाके अनुसार उसे परित्राजकका ही पुत्र कहा जाने लगा।  
नद द्वारा चाणक्यका अपमान और चन्द्रगुप्तका जन्म आदि उपरोक्त  
घटनाएँ ई० पू० ३४५ के लगभग हुई।

विद्याल साम्राज्यके अधिपति पराक्रमी मन्दोका समूह नाम करना कोई  
हैसी खेल नहीं था, चाणक्य इस बातको भली प्रकार जानता था। किन्तु  
वह दृढ़प्रतिज्ञ भी था अतः धैर्यके साथ वह अपनी सैन्यारीमें सलान हो  
गया। अगले कई वर्ष उसने घातुविद्याकी सिद्धि एवं स्वर्ण आदि धन  
एकत्र करनेमें व्यतीत किये यथाये जाते हैं। आठ-दस वर्ष बाद फिर वह  
उसी ग्राममें आ निकला। ग्रामके बाहर वनमें कुछ बालक खेल  
रहे थे। एक तेजस्वी बालक राजा बना हुआ था और अन्य बालकों-  
पर शासन कर रहा था। कुछ देर तक चाणक्य बालकोंके इस  
कौतुकको देखता रहा। तदनन्तर उसने उस बालकसे वार्तालाप किया  
और उसकी तुरन्तवृद्धि, वीरता, साहस एवं तेजस्विताका दखकर बड़ा  
प्रसन्न हुआ। वह सामुद्रिक शास्त्रका भी ज्ञाता था और उस बालकके  
सामुद्रिक चिह्नोंमें उसे चक्रवर्ती सम्राटके सब लक्षण देख पड़े। पूछताछ  
करनेपर मालूम हुआ कि यह वही बालक है जिसकी माताका दोहला  
उसने स्वयं घान्त किया था। अस्तु वह उस बालकको साथ लेकर चल





मूखे हैं, उसने सोमा प्रान्तोको हस्तगत किये विना ही एकदम साम्राज्यके केन्द्रपर घाघा बोलकर भारी भूल की है। चाणक्यको अपनी भूल मालूम हो गयी और उन दोनोंने अब नवीन उत्साह एव कौशलसे तैयारी प्रारम्भ कर दी। विन्ध्यअटवीमें पूर्वसंचित किये हुए विपुल धनकी सहायतामें उन्होंने सुदृढ एव विशाल सैन्यमग्नह करना शुरू किया और पश्चिमोत्तर प्रदेशके यवन, काम्बोज, पारसीक, खस, पुलात, शबर आदि म्लेच्छ जातियोंकी एक बलवान् सेना तैयार की। बाह्योक्त उनके अधीन थे ही। पञ्जाबके मल्लि या मालव गणतन्त्रको भी उन्होंने अपना सहायक बनाया और हिमवतकूट अर्थात् गोकर्ण ( नैपाल ) के किरातवशके ग्यारहवें राजा पचम उपनाम पर्वत या पर्वतेश्वरको विजित साम्राज्यका आधा भाग दे देनेका लोभ देकर अपना सहयोगी बनाया, और फिर मगध साम्राज्यके सीमावर्ती प्रदेशोको जीतना शुरू किया। एकके पश्चात् एक नगर, ग्राम, दुर्ग और गढ़ छल-बल कौशलसे जैसे भी बना अपने हाथमें करते चले गये। विजित प्रदेशोको सुसंगठित एव अनुशासित करते हुए तथा अपनी शक्तिमें उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए वे राजधानी तक पहुँच गये और उन्होंने उसका घेरा डाल दिया।

पर्वतकी दुस्साहसपूर्ण बर्बर युद्धप्रियता, चन्द्रगुप्तकी अद्भुत सैन्य-संचालन शक्ति एव रणकौशल और चाणक्यकी कूटनीति—तीनोंका संयोग था। पाटलिपुत्रपर भीषण आक्रमण हुए तथा उसके अन्दर फूट और पड़्यन्त्र रचाये गये। नन्द भी वीरतासे लड़े, धननन्द आदि समस्त नन्द-कुमार लड़ते-लड़ते धीरगतिको प्राप्त हुए। अन्ततः वृद्ध राजा महापद्मने भी कोई आशा न देखकर धर्मद्वार नामक प्रमुख नगरद्वारके निकट हथियार डाल दिये और आत्मसमर्पण कर दिया। उसने चाणक्यको धर्मकी दुहाई देकर सुरक्षित चला जानेकी याचना की। चाणक्यकी अभीष्ट सिद्धि हो चुकी थी, अतएव उसने नन्दराजकी सपरिवार नगर एव राज्यका त्याग करके अन्यत्र चले जानेकी उदारतापूर्वक अनुमति दे दी और यह भी कह



मूख है, उसने सीमा प्रांतोंको हस्तगत किये बिना ही एकदम साम्राज्यके केन्द्रपर धावा बोलकर भागी भूल की है। चाणक्यको अपनी भूल मालूम हो गयी और उन दानाने अत्र नवीन उत्साह एवं कौशलसे तैयारी प्रारम्भ कर दी। विन्ध्यवटर्षीमें पूर्वमंचित किये हुए विपुल धनकी सहायतासे उन्होंने सुदृढ़ एवं विशाल सैन्यसंग्रह करना शुरू किया और पश्चिमोत्तर प्रदेशके यवन, काम्बोज, पारसीरु, खस, पुलात, शबर आदि म्लेच्छ जातियोंको एक बलवान् सेना तैयार की। बाल्हिक उनके अधीन थे ही। पंजाबके मल्लि या मालव गणतन्त्रको भी उन्होंने अपना सहायक बनाया और हिमवतकूट अर्थात् गोकर्ण (नेपाल) के किरातवशके ग्यारहवें राजा पचम उपनाम पर्वत या पर्वतेश्वरको विजित साम्राज्यका आधा भाग द देनेका लोभ देकर अपना सहयोगी बनाया, और फिर मगध साम्राज्यके सीमावर्ती प्रदेशोंको जीतता शुरू किया। एकके पश्चात् एक नगर, ग्राम, दुर्ग और गढ़ छल बल कौशलसे जैसे भी बना अपने हाथमें करते चले गये। विजित प्रदेशोंको सुसंगठित एवं अनुशासित करते हुए तथा अपनी शक्तिमें उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए वे राजधानी तक पहुँच गये और उन्होंने उसका घेरा डाल दिया।

पर्वतकी दुस्साहसपूर्ण बर्बर युद्धप्रियता, चन्द्रगुप्तकी अद्भुत सैन्य-संचालन शक्ति एवं रणकौशल और चाणक्यकी कूटनीति—तीनोंका संयोग था। पाटलिपुत्रपर भीषण आक्रमण हुए तथा उसके अन्दर फूट और पड़्यत्र रचाये गये। नन्द भी वीरतासे लड़े, घननन्द आदि समस्त नन्द-कुमार लड़ते-लड़ते वीरगतिको प्राप्त हुए। अन्ततः वृद्ध राजा महापद्मने भी कोई आशा न देखकर धर्मद्वार नामक प्रमुख नगरद्वारके निकट हथियार डाल दिये और आत्मसमर्पण कर दिया। उसने चाणक्यको धमकी दुहाई देकर सुरक्षित चला जानेकी याचना की। चाणक्यकी अभीष्ट सिद्धि हो चुकी थी, अतएव उसने नन्दराजको सपरिवार नगर एवं राज्यका त्याग करके अन्यत्र चले जानेकी उदारतापूर्वक अनुमति दे दी और यह भी कह

[illegible]

अब काठकुल शेष लम्बराधुवाही गुप्तवाही अक्षवहिवी बनाकर  
 मन्वक पार्श्वविद्यालयपर आकर हुवा और इसके बाह-अन्तुष प्रमितावाही  
 बायाम्बवा अक्षिर्वाहि हुवा । लम्बराधुवा पत्तन और इस प्रकार लम्बराधु  
 वाह इसके मुखा हल अक्षलोह बाह पार्श्वविद्युत शेष-अक्षलोह स्थला  
 ई वृ ११० म हुई । काठकुलकी सम्राट् बोधित करकेके पूर्व पार्श्ववाही  
 अन्वके स्वाविषक लम्बा पत्तनके बहुकलीका विषय किया और उके  
 प-अन्वकी सेवा करकेके विद् रानी कर किया । अथने विपत्तयन्त्र  
 पत्तनकी भी पत्तन-द्वारा काठकुलकी हुवा करकेके विद् श्रेणी वही  
 विषयवाक श्रेणीक अथवा शेष और काठकुलका शेष विपत्तयन्त्र कर  
 दिया । अत्र पुण्य निवा राजपुत्री आविषा भी कहने काठकुलके  
 पत्तन कर किया । यह स्वयं सम्राट्का प्रधान कली एवं अक्षलोह पत्तन ।  
 पत्तनकी लक्ष्मीवही सम्राट् काठकुल शेषी साम्राज्यका प्रधान एवं  
 बायाम्बकी अक्षलोह पुवाह लम्बराधु की । साम्राज्यक विस्तार, अक्षि और  
 अक्षि अन्व बायाम्बवाही अक्षलोह अक्षलोह हीकी वही । ई वृ  
 १११ म कहने अक्षलोह विषय करके अक्षलोहकी विद् साम्राज्यकी

उप-राजधानी बनाया । ई० पू० ३१७ में मगधमें नन्दीका गनन होनेपर भी उज्जैनमें नन्दाके कुछ बसात्र गा सम्बन्धी म्यत्र शने रहे प्रतीत होते हैं । यही कारण है कि कुछ जैन अनुश्रुतियोंमें नन्द्याका अन्त म० स० २१० ( ई० पू० ३१७ ) में और कुछमें म० म० २१५ ( ई० पू० ३१० ) में कथन किया गया है ।

उज्जैनियोंके अधिकारमें करनेके उपरान्त उसने दक्षिण देशकी दिग्विजय करनेके लिए यात्रा की । मुराष्ट्रने मार्गमें उगने महाराष्ट्रमें प्रवेश किया । मुराष्ट्रमें गिरिनगरके नेमिनाथकी वन्दना की और उवत पर्वतकी तलहटीमें सुदर्शन चौर नामक विशाल सरोवरका निर्माण अपने राजपाल वैश्य पद्मगुप्तकी देख-रेखमें कराया । इसीके तटपर निर्ग्रन्थ मुनियोंके निवासके लिए चन्द्रगुप्ता आदि गुफाएँ बनवायीं । महाराष्ट्र काश्मिर कर्णाटक तथा तमिल देश पर्यन्त प्रायः समस्त दक्षिण भारतपर उसने अपना आधिपत्य स्थापित किया । प्राचीन तमिल साहित्य, अनुश्रुतियों एवं कतिपय शिलालेखोंसे मौर्योंका दक्षिण देशपर अधिकार होना पाया जाता है । दक्षिणकी इस विजयमें एक और भी प्रेरक कारण था । चन्द्रगुप्ता पितृकुल मौरिय आचार्य भद्रबाहु श्रुतित्रैलोक्या भक्त था । द्वादशवर्षीय दुर्भिक्षक समय इन आचार्योंके समग्र दक्षिण देशको विहार कर जानेपर भी वे लोग उन्हींही परम्पराके अनुयायी रहे और मगधमें रह जानेवाले साधुओं तथा उनकी परम्पराको उन्होंने मान्य नहीं किया । भद्रबाहुकी शिष्य-परम्परामें जा आचार्य इस बीचमें हुए वे दक्षिण देशमें हो रहे अतः उनमें उत्तर भारत निवासियोंका कोई सम्पर्क नहीं हुआ परन्तु वे, यथा चन्द्रगुप्त, चाणक्य आदि, अपने आपकी आचार्य भद्रबाहुका ही अनुयायी कहते एवं मानते रहे । अतएव अपने परम्परागुरु आचार्य भद्रबाहुके कर्णाटक देशके जिस कट्यव्रत या कुमारो पर्वतपर तपस्या की थी और समाधिमरणपूर्वक क्षरीर त्याग किया था तोयह्णमें उसका वन्दना करना तथा उनकी शिष्य परम्पराके मुनियोंसे



अफ़ग़ानिस्तान और कन्दहारको भी खाली करके मौर्य सम्राट्को समर्पण कर दिया । जो चार प्रान्त सिल्युकसने चन्द्रगुप्तको इस प्रकार दिये उनके नाम परोपनिसडाह, अरिया, अर्खोशिया और गदरोशिया ( काबुल, हिरात, कन्दहार और बलूचिस्तान ) थे । इसके अतिरिक्त कम्बोज ( बदर्शा ) और पामीर भी मौर्य सम्राट्के अधीन हुए । सिल्युकसने अपनी पुत्री हेलेनका विवाह भी मौर्य नरेशके ( या उसके युवराजके साथ ) कर दिया । चन्द्रगुप्तने भी मैथीके चिह्न स्वरूप उसे पाँच सौ हाथी भेंट किये । इस प्रकार अपनी वीरता और पराक्रमसे चन्द्रगुप्तने अपनी स्वभावसिद्ध प्राकृतिक सीमाओंसे बद्ध प्रायः सम्पूर्ण भारतपर अपना एकच्छत्र आधिपत्य स्थापित कर लिया । इतनी पूर्णताके साथ समग्र भारतवर्षपर सम्भवतया आज तक अन्य किसी सम्राट्का, अंगरेजोंका भी, अधिकार नहीं हुआ ।

इसी युद्धके परिणामस्वरूप सिल्युकसका मेगस्थनीज नामक एक यूनानी राजदूत ई० पू० ३०३ में पाटलिपुत्रके दरबारमें आया, कुछ दिन यहाँ रहा और उसने राजा, उसकी दिनचर्या, राजधानी, शासनव्यवस्था, लोकदशा, रीति-रिवाजों आदिका वर्णन किया जो कि भारतके तत्कालीन इतिहासका सर्वाधिक मूलवान् साधन बना । दुर्भाग्यसे मेगस्थनीजके वृत्तान्त मूलतः नष्ट हो गये, किन्तु उसके दो-तीन सौ वर्ष बाद जिन यूनानी इतिहासकारोंने भारतके सिकन्दर सेल्युकसकालीन इतिहास लिखे उन्हें वह प्राप्त थे, उन्हींके आधारपर और बहुधा उनके उद्धरणोंसहित ये इतिहास लिखे गये हैं अतः मेगस्थनीजकी साक्षी बहुत-कुछ अंशमें आधुनिक इतिहासकारोंकी भी प्राप्त हो गयी । मेगस्थनीजने भारतवर्षके भूगोल, जातियों, प्राचीन अनुष्ठितियों, रीति-रिवाजों, जनताके उच्च चरित्र एवं ईमानदारी, राजधानीकी सुन्दरता एवं सुदृढता, सम्राट्के चरित्र एवं दिनचर्या, उसकी न्यायप्रियता, राजनैतिक पटुता एवं शासन-कृशलता, विपुल चतुरगिणी सैन्यशक्ति जिसमें चार लाख घोर सैनिक, नौ हजार हाथी तथा अनेक अश्व, रथ आदि थे और जिसका अनुशासन आदर्श था, प्रजाके



धार्मिक वा दण्डित हणक, जिन्ही व्यवहारी एवं व्यापारी व्याप एवं  
 नमुनयक विद्याही राज्यकर्तृवारी दुष्कर व विरीयक कपी एवं  
 कर्मात्त वादि वस्तु कर्षीका, कैलाके विविध विद्यावीका वास्तविक धानवके  
 सिद्द बहु कविप्रियोका, विविध प्रकारके दुष्करता आदि अनेक बाजीवी  
 बाजीका बचन निम्ना है । एते सब बैलकर आजकल हुआ वा कि आरतकर्म-  
 के आरतकाता बचन आचार है । यकने सब की निम्ना है कि आरतीमें  
 केलाक-कर्मका विरोध प्रकार गयी है और वे अपने कर्मकातों अनुकूलियों  
 वना अन्य बाजोंके सिद्द कविप्रियता अर्थिक वस्तुता एवं हर्षिता ही  
 निर्भर करते हैं ।

[illegible]

बालकुशल श्रीमान् बर्माणा श्री का श्रीर काकुबोलाय विदेय कर्मान् कारर

परता था। जैन अनुश्रुतियोंमें ग्राह्ण माहिन्यकी नीति उस क्षुण्ण या भृद्र नहीं परन्तु शुद्ध धार्मिकबुल्लोत्पन्न कहा गया है। अत्यन्त प्राचीन निदान्त ग्रन्थ 'तिलोपपणत्ति'में उस उन मुकुटवद्ध माण्डलिक सम्राटामें अंतिम कहा गया है जिन्होंने जिनदीक्षा लेकर अस्तिम जीवन जैा मुनिके रूपमें व्यतीत किया था। वह आचार्य भद्रवाहूकी परम्पराका अनुयायी था और उनका ही पदानुसरण करनेका दृष्ट्युक्त था। अतः ई० पू० २१८ में लगभग २५ वर्ष राज्य करनेके उपरान्त अपने पुत्र बिन्दुमारकी राज्य दक्षर वह मुनि हो गया और दक्षिणकी ओर चला गया। सम्भवतया मुगुप्त्रके गिरिनगरकी जिस गुफामें उसने कुछ दिन निवास किया था उस चन्द्रगुफा कहा जाने लगा। वहाँमें वह कर्णाटक देशके श्रवणबेलगोल स्थानमें पहुँचा। इसी स्थानपर भद्रवाहू श्रुतकेवलीने देह त्याग किया था। अतः इस स्थानके एक पर्वतपर चन्द्रगुप्त मुनिने भी तपस्या की और ई० पू० २१० के लगभग सल्लेखनापूर्वक देह त्याग किया। उनकी स्मृतिमें उसी समयसे वह पर्वत चन्द्रगिरि नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसके ऊपर जिस गुफा (चन्द्रगुप्त श्रमति) में उन्होंने समाधिभरण किया था उसमें उनके चरणचिह्न बने हुए हैं। वहाँ लगभग ढेढ़ सहस्र वर्ष प्राचीन कई एक शिलालेख भी अंकित हैं जो इस सम्राट्के जीवनकी उक्त महान् अन्तिम घटनाका उल्लेख करते हैं। इस नरेशके समयमें भारतवर्ष प्रथम बार अपनी राजनैतिक पूर्णता एवं साम्राज्यिक एकताकी प्राप्त हुआ और मगध साम्राज्य अपने चरमोत्कर्षपर पहुँचा था।

चन्द्रगुप्तके पदचात नन्दसुता सुप्रभासे उत्पन्न उसका पुत्र बिन्दुसार अमित्रघात (यूनानी लेखकाका अमिट्रोचेटिस) सिंहासनारूढ हुआ। ई० पू० २१८-२७३ पर्यन्त लगभग २५ वर्ष उसने राज्य किया। अपने पिता और माताके समान वह भी जैनधर्मावलम्बी रहा प्रतीत होता है। वह अपने प्रतापी पिताका योग्य उत्तराधिकारी था और उसके राज्यकालमें साम्राज्यका विस्तार, शक्ति, समृद्धि एवं प्रताप पूर्ववत् ही बने



पूर्व डॉ० आर० शामा ग्राम्श्रीको उसकी एकमात्र प्रति प्राप्त हुई थी, तदुपरान्त ही विद्वानोंने उसके सम्बन्धमें विशेष ऊहापोह प्रारम्भ की और उक्त प्रतिके आधारपर उसके मूलका समय ईसवी सन्की दूसरी-तीसरी शती निर्धारित किया। स्पष्ट है कि वह चाणक्यका मूल अर्थ-शास्त्र न था।

लगभग ८२ वर्षकी आयुमें ई० पू० २९३ के लगभग महामति चाणक्य-को मृत्यु हुई। विदुसार अथ स्वच्छन्द था किन्तु चन्द्रगुप्त और चाणक्यके अभिभावकत्वमें जिसकी शिक्षा-दीक्षा हुई हो वह निकम्मा या अक्षत शासक नहीं हो सकता था। उसका शासनकाल शान्तिपूर्ण एव सुव्यवस्थित रहा। मध्यएशियाक भारतीय-यूनानी सम्राटोंसे भी उसके राजनैतिक आदान प्रदान हुए। मित्र, सौरिया आदिके यूनानी नरेशोंसे उसने मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रखे। सिल्युकसके उत्तराधिकारी अन्तियोकस सोतरने उसकी राजसभामें डेइमेकस नामक यूनानी राजदूत भेजा था। मित्र देशके राजा टालेमोने भी डायनिसयो नामक दूत भेजा था। इन राजाओंने उसके साथ नानाविध उपहार एव भेंटोंका भी आदान-प्रदान किया। उसने यूनानी दार्शनिकोंको भारत आनेका निमन्त्रण दिया था।

चन्द्रगुप्तने दक्षिणकी विजय की थी किन्तु उसे मुसगठित और म्यायी करनेका अवसर उसे नहीं मिला था। विन्दुसारने भी दक्षिण यात्रा की। अपने कुल गुरु भद्रबाहुके समाधिस्थान तथा अपने पिता मुनि चन्द्रगुप्तके दशन करने या सम्भव है उनकी मृत्युके उपरान्त उनकी तपोभूमि एव समाधिका दशन करनेके लिए दक्षिण देशकी यात्रा करने जाना उसके व्यक्तिगत उद्देश्य थे, और विजित प्रदेशोंपर मौर्य आधिपत्य स्थायी करना तथा पहली विजयसे छूट गये देशोंको भी विजय करके मागरसे सागर पर्यन्त सम्पूर्ण दक्षिणपर अधिकार करना उसके राजनैतिक लक्ष्य थे। और इन दोनोंमें ही वह सफल हुआ। भद्रबाहु एव चन्द्रगुप्तकी तपोभूमि श्रवणबेलगोलमें उसने कई एक जैन मन्दिर आदि भी निर्माण कराये बताये जाते हैं।

सिम्हरी इतिहासवार तात्पर्यको अनुसारसे सिन्धुनार बोम्बे राज्यमें  
एवं बनने प्रतिशदीया कच्छेर किया था । इनका साम्राज्य अत्युत्तम  
वीर्यवान् निरालोक था । आनन्दको करारान्त उक्तका प्रधान अत्यन्त एतानु  
था भी बहुत दुष्टक और बोल था । वह भी आनन्दका ही मित्र था ।

सिन्धुनारके अन्तिम दिनोंमें उत्तमिमान बिहारी हुआ । इनके बनने पुन  
एतानुसार मदीयको समया समन करनेके लिए वे था । मदीयके पहुँचते ही  
अत्यन्त नाचरिबोल आने लङ्कर कतका स्वागत किया और अत्यन्त-उत्सव  
कर दिया । उन्होंने कहा कि हमें न मनाइये कोई विरोध है और न एतानु  
नारको सिन्धु उत्तमिमान का उत्तमिमान बालक है । इनके समाचारों के  
बिहारी हो उठे हैं । एतानुसारन एतानुवृत्तिपूर्वक इनको बाल पुनी,  
अतः समाचारों अतिरिक्त बाल दिया और अत्यन्त आनन्दित बाल है । निम्न  
छान्त कर दिया । ई. पू. २७३ के अत्यन्त समस्त सिन्धुनार अतिरिक्त  
की मृत्यु हुई । बीहारीय सिन्धुनाराने एक प्रतापी सम्राट्को अतिरिक्त  
विचित्र बना है ।

सिन्धुनारके अत्यन्त उक्तका पुन अत्यन्त धर्मिष्ठामत्यन्त अतिरिक्त  
हुआ । आनुमिक इतिहासवारोंके अनुसार कच्छरी बनना भारतमें ही  
नहीं उक्तके अत्यन्तान् सम्राटोंमें है । वह भी आनन्दीके बाला बाला है  
कि वह बीहारीयका अनुवासी था । बीहारीय और अनुवृत्तिमें एक  
बोलेमें अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त निरालोक है । अत्यन्त-अत्यन्तको अतिरिक्त  
या अत्यन्त-अत्यन्त बना जाता है । अत्यन्त अनुवृत्ति अत्यन्त अत्यन्तमें अत्यन्त  
मौल है । अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त है । सिन्धु अत्यन्त  
बीहारीय अनुवृत्ति अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त है । अत्यन्तके अत्यन्तमें अत्यन्त  
अत्यन्त ऐतिहासिक आचार न अत्यन्त है । अत्यन्तके अत्यन्त अत्यन्त ही नहीं  
है । अत्यन्त अत्यन्तमें अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त  
२४ अत्यन्त है । अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त है । अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त है  
अत्यन्त अत्यन्त है । अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त है । अत्यन्त

लघुस्तम्भलेख हैं और तीनों गुहाभिलेख हैं। गत लगभग भी यथोक्त इन विभिन्न शिलालेखोंके ऊपर पाश्चात्य एवं पौराणिक प्राचाविदों तथा इतिहासकारोंने बहुत-कुछ ऊहापोह किया है और उसके आधारपर सम्राट् अशोकके चरित्र, व्यक्तित्व, विचारों, धर्म, राज्यपाल एवं शासन व्यवस्था आदिका निर्माण और उसकी महत्ताका मूल्यांकन किया है। किन्तु इन शिलालेखोंमेंसे मिथ्या एक मास्की शिलालेखको छोटकर अन्यत्र कहो स्वयं अशोकका नामोल्लेख नहीं मिलता। केवल 'देवानाप्रिय' या 'प्रियदर्शी' या 'देवानाप्रियस्य प्रियदर्शिनः राजा' आदि पद ही उसके सूचक मिलते हैं। जिस शिलालेखमें, सो भी वेदा एक ही बार, उसके मूल नामका उल्लेख है भी वह सम्भवतः कारण (अशोकस्म रूप) में है और उसके आगे कुछ स्थान द्रुष्टि है जो पढ़ा नहीं जाता। ऐसे भी कई विद्वान् हैं जो इन सब शिलालेखोंको केवल अशोक-द्वारा ही लिखाये गये नहीं मानते बल्कि उनमें से कुछका श्रेय उसके उत्तराधिकारी सम्प्रतिको देते हैं।

शिलालेखोंसे अशोकको बौद्ध धर्मका सर्वमहान् प्रतिपालक एवं भवत चित्रित करनेवाली बौद्ध अनुश्रुतियोंका भी विशेष समर्थन नहीं होता। वस्तुतः शिलालेखोंके आधारपर अशोकके धर्मको लेकर विद्वानोंमें सर्वाधिक मतभेद है। कुछ विद्वानोंके अनुसार वह बौद्ध था और बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही उसने ये लेख लिखवाये थे। कुछ अन्य विद्वानोंके अनुसार इन लेखोंके भाव और विचार बौद्धधर्मको अपेक्षा जैनधर्मके अधिक निकट हैं, उसका कुल-धर्म भी जैन था अतः वह भी यदि पूरे जीवन भर नहीं तो कमसे कम उसके पूर्वार्धमें अवश्य जैन था। ऐसे भी विद्वान् हैं, और उन्हींकी बहुलता होती जाती है, जो यह मानते हैं कि वह न मुख्यतः बौद्ध था न जैन धरन् एक नीतिपरायण महान् प्रजापालक सम्राट् था जिसने अपनी प्रजाका नैतिक उत्कर्ष करनेके हेतु अपना एक नवीन नमन्वयात्मक, अमाप्रदायिक एवं व्यावहारिक धर्म लोकके सम्मुख प्रस्तुत किया था।



विन्दुसारकी मृत्यु ( ई० पू० २७४-७३ ) के तीन-चार वर्ष बाद ही वह अपना राज्याभिषेक करानेमें समर्थ हुआ। उसने एक दिलाएंगमें २५६ सम्पत्तिका उल्लेख है जिसके विद्वानोंने अनेक अर्थ किये हैं। ऐसा मानने-वालोंकी भी कमी नहीं है कि यह मर्याद सवत् सूचक है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सम्पत्ति-द्वारा उसने अपने राज्यारोहणकी तिथि उन समयमें प्रचलित महावीर सवत्में ही दी है जिसके अनुसार यह ई० पू० २७१-७० में पड़ती है। बौद्ध कथाओंका तो कहना है कि उसने अपने ९९ भाइयोंको हत्या करके अपना चण्ड अशोक नाम सार्थक किया था और राज्य प्राप्त किया था। किन्तु यह कथन अतिशयोक्ति पूरा ही नहीं प्रायः असत्य समझा जाता है। इसमें संन्दह नहीं कि प्रारम्भमें वह उस प्रकृतिका दृढ़ निश्चयी एवं कठोर शासक था। अपने स्वयंके भाइयोंका तथा अन्य विरोधियोंका उसने दृढ़तासे दमन किया था, किन्तु तथाकृत क्रुल्लेखाम नहीं।

उसने कुशलता और कठोरतासे शासन किया, अपन शासनाधिनारियों एवं अधीन राजाओंपर पूरा नियन्त्रण रखा, जिसने सिर उठाया उसे ही कुचल दिया। कलिंग देशकी विजय नरसिंघर्षनने ई० पू० ४२८में की थी, तभीने यह राज्य मगधके अधीन रहता आया था, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नन्दराज्यक्रांतिके समय मगधमें आन्तरिक कलहको दख्खकर कलिंगके राजे स्वतन्त्र हो गये। सम्भवतः चन्द्रगुप्त और विन्दुसारके शासनकालोंमें उन्होंने खुले रूपमें सिर नहीं उठाया, किन्तु विन्दुसारकी मृत्युके उपरान्त होनेवाले गृह-युद्धका लाभ उठाकर उन्होंने मगधके विरुद्ध अपनी स्वतन्त्रता मुल्लम-खुल्ला घोषित कर दी। अब ई० पू० २६२ के लगभग अपने राज्यके ८वें वर्षमें एक भारी मेला लेकर अशोकने कलिंगपर आक्रमण कर दिया। भोषण युद्ध हुआ जिसमें लाखों व्यक्ति मृत्युके घाट उतर गये। सर्वत्र प्रचण्ड अशोक महान्वा दयदया बँट गया, अब भविष्यमें पचासो वर्षों पर्यन्त कहीं कोई मौर्य सम्राट्के विरुद्ध सिर उठानेका साहस नहीं कर सकता था। किन्तु साथ ही इस भयकर



बर-सँहारको देखकर दबानुकाई थी। बर्मि के सँस्कारोंमें वही चीज बघोली जायना ठिकमिन्न नही। उसने प्रतिज्ञा कर ली कि बर्मिमें वह मुझमें उर्ध्वत विरुद्ध रहेगा। उसकी जब मानसकला थी न थी। सम्पूर्ण बाह्य-वर्णपर ही नहीं उसके बाहर हीयान्त प्रवेष्टार भी उसका निम्नतम एकाधिकार था।

पावन-स्वरत्ना गुणाव भी साम्राज्यमें उर्ध्वत शान्ति और समृद्धि के लक्ष्य जब बर्माके अपना प्यान साधितपूर्व कावोंकी ओर विद्य। समृद्धि और समृद्धि के लिए विभिन्नतावन मुक्त्यामे वुराही राजकीयोंकी परम्परा और समीक्षा निमीष करमा सहकोके किनारे बुद्ध कल्याणे, निपाक-साधारण बनवायी। अन्त्यादि समस्त जीवोपकारी कार्य उसमें किने। उसने बनवाके वैश्विक परिवर्तको प्रसन्न करकेका भी प्रचल किया और समस्त अन्त्यादिबिषय मनोवृत्ति पैदा करनेके लिए एक ऐसे राज-वर्धन प्रचार किया भी अन्त्यादि एक उर्ध्वत हाथ था। उसने बनवा की ओर बर्माके दोनों ही कर्तोंके विपरीतता बाहर किया। उनके विचार-विमर्श किना और बनवा करवा किया। उसने बर्मिबान्तों की ओर बर्मिस्तोली की भीयना की। साम्राज्यके विभिन्न स्थानीयों उसने बाधा की और वेद, बीज और सम्बन्धता बाह्यत परम्पराके भी तीर्थों एवं इर्दनीय स्थानोंके देखा। विभिन्न बर्मों एवं समस्तबाधित सम्बन्धित संस्थाओं, बाधनों, बर्मों और तर्कों की निरीक्षण किया। विभिन्न बर्मा को मुक्तारकी मानसकला देखी वही प्रेरणा-हाथ बनवा जानुन-हाथ करकेका प्रकल किया। बीयवा की ओर अन्त्यादि बर्मिस्तोली उसने बनवा मुक्तकल बनवा और बनने बर्मिस्तोली प्रचार करनेके लिए प्रविष्ट-बाधित तीर्थ स्थानी एवं केन्द्रोंमें उसने बनवा बर्मिस्तोली विपरीतताओं एवं समस्तोपर बर्मिस्तोली करवायी। वे बर्मिस्तोली उसने ई. पू. २५५ के उपरान्त विभिन्न-विभिन्न तर्कोंमें विपरीतता प्रतीत होने हैं। उसने अन्त्यादिबिषयोंके समस्तताके जातीयत साधुओंके लिए भी बर्मिस्तोली निकट 'बर्मिस्त' नामक राजकीयोंपर मुक्तार्थ बनावायी थी।

गिरिनगरकी तलफटीमें अपने पितामह मन्त्रगुप्त-द्वारा घनवाये गये सुदर्शन तालवा भी अपने यवन अधिकारी तुहपाम्फकी देम-रेसमें उमने जीर्णोद्धार कराया था ।

ऐसा प्रतीत होता है कि फलिंग युद्धके आग-पास अशोकने एक बौद्ध सुन्दरीके साथ जिसका नाम सम्भवतया तिप्परक्षिता था विवाह कर लिया था । वह स्वयं इस समय अर्धेष्ट वयका था । इस बौद्ध रानीके प्रभावमें वह कुछ अधिक दया और उसको प्रमत्त करनेके लिए सम्भवत बौद्ध धर्ममें भी कुछ विशेष दिलचस्पी लेने लगा जिसके कारण बौद्ध म्नीग यह समझने लगे कि वह बौद्ध धर्मका अनुयायी हो गया । सम्प्रतिकथा आदि कथाओंसे पता चलता है कि उसका ज्येष्ठ पुत्र युवराज कुणाल बहुत ही सुन्दर था और उसकी आँखें कुणाल पत्नीके समान अत्यधिक आकर्षक थीं । उसकी विमाना तिप्परक्षिता उसपर मोहित हो गयी किन्तु राजकुमार सञ्चारि था अतः गती अपना कुचेष्टाओंमें विफल हुई । प्रतिहिंसासे दग्ध रानीने पहलु-त्र करके सम्राटकी मुद्रासे अंकित एक आज्ञा भिजवाकर कुणालकी अन्धा करवा दिया । कुणाल कुशल संगीतज्ञ भी था अतः वह भिखारीके रूपमें राजधानीमें आया और समाटके महलके नीचे गाने लगा । गीतके मिस उसने अपना परिचय और स्वयंवर किये गये अत्याचारका भी संकेत किया । सम्राट्ने उसे पहचानकर तुरत बुलाया, सब हाल जानकर तिप्परक्षिताको जीते जी जलवा दिया, उसके साथिया एवं सहयोगियोंको भी कठोर दण्ड दिया, उसे स्वयं बहा पश्चात्ताप हुआ और उसने कुणालके नवजात शिशु सम्प्रतिको अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया ।

इसी समयके लगभग पाटलिपुत्रमें भीमगलायन तिस्रकी अध्यक्षतामें तीसरा बौद्ध सम्मेलन एवं त्रिपिटककी संगीति हुई । सम्मेलनके नेताओंने यह निर्णय किया कि बौद्ध धर्मका प्रचार करनेके लिए बौद्ध भिक्षुओंको विदेशोंमें जाना चाहिए । अतः बर्मा, तिब्बत, मध्यएशिया, लंका आदिमें बौद्ध प्रचारक गये । लंका ( सिंहल ) में उस समय विजयवंशी नरेश



अर्थशास्त्रमें दिये गये पवित्र दिनो एव जैन परम्पराके पर्व दिनोंसे प्रायः पूरी तरह मेल खाते हैं। शिलालेखोंमें उसके द्वारा निर्ग्रन्थों ( नग्न जैन मुनियों ) का विशेष रूपसे आदर करनेके उल्लेख हैं। ये उल्लेख अल्प-संख्यक इस कारणसे हैं कि उत्तर भारतके मगध आदि देशोंमें इन नग्न दिगम्बर मुनियोंका विहार अशोकके समयमें अपेक्षाकृत विरल था, दक्षिण देशमें उनका बाहुल्य था। मगधका जो जैन सघ इस कालमें प्रबल होता जा रहा था वह स्थूलभद्रकी परम्पराका था और खण्डवस्त्रधारी हो चला था। सामान्य धर्मण शब्दसे सब प्रकारके जैन साधुओंका बोध होता ही था। राजतरंगिणी एव आहनेअकबरीके अनुसार अशोकने कश्मीरमें जैन धर्मका प्रवेश किया था और इस कार्यमें उसने अपने पिता बिन्दुसार तथा पितामह चन्द्रगुप्तका अनुकरण किया था। कश्मीरके श्वोनगरको वमानेका श्रेय भी अशोकको ही दिया जाता है। वह नेपाल भी गया था और वहाँ उसने ललितपट्टन नामक नगर बसाया था। उसकी पुत्री चारुमती एव जामाता देवपाल वही जाकर बन गये। कर्णाटकके श्रवणबेलगोलमें उसने जैन मन्दिरोंका निर्माण करवाया बताया जाता है। इस विषयमें अनेक विद्वानोंको सन्देह नहीं है कि अशोक जैनधर्मके दयामूलक उपदेशोंसे प्रभावित था। उसका कुल परम्परा धर्म जैनधर्म था ही। अपने जीवनके अन्तिम कुछ वर्षोंमें उसने राज्य कार्यमें विरत होकर एक त्यागी गृहस्थ या श्रुती श्रावककी भाँति जीवन बिताया प्रतीत होता है। इस कालमें उसकी दानशीलता अतिशयकी पहुँच गयी बतायी जाती है जिसके कारण अमात्योंने उसपर प्रतिबन्ध लगा दिये। राज्यकार्य कुणाल करता था। ई० पू० २३४ या २३२ में लगभग ४० वर्ष राज्य करनेके उपरान्त अशोककी मृत्यु हुई। कुछ लोग उसकी मृत्यु तक्षशिलामें हुई बताते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि सम्राट् अशोकका स्थान विश्वके सर्वमहान् नरेशोंमें है। उसका साम्राज्य अतिविस्तृत एव अत्यन्त समृद्ध, उसका शासन-काल सुख एव शान्तिपूर्ण, उसका व्यक्तित्व महान् और उसकी प्रतिभा

एतद् ज्ञानं वर्तमानं यैः । यद् यत्तौ कथञ्चिन्मन्त्राणां चकार चकार  
या और एव विमानं समाम्नायितुं विष्णु परमेश्वरं पुनः प्रकटयन्  
लोकोत्तमं च लोहितवर्णं लोभं च । लोहितं विष्णुं पुनश्च कर्षीं निजं  
कर्तुं विदितोत्तरं श्री उपरुक्तां कर्षीं लभं याम्नीतुं चकार चकार  
विष्णवे हारिणीने कर्षा वर्तितुं पुनश्च लोभं चकार चकार  
कर्षीनां प्रकटयन् कर्षीनां पुनः । कर्षीनां कर्षीनां कर्षीनां  
कर्षीनां कर्षीनां कर्षीनां कर्षीनां कर्षीनां कर्षीनां कर्षीनां

[illegible][illegible]

हैं जैन अनुश्रुतिके अनुसार सम्प्रतिने जैन धर्मके लिए उसमें कुछ अधिक हो किया बताया जाता है । अनेक तीर्थोंकी वन्दना, जीर्णोद्धार, अनगिनत नवोन जिनमन्दिरों एवं मूर्तियोंका विभिन्न स्थानोंमें निर्माण तथा प्रतिष्ठा, विद्वशोंमें जैन धर्मक प्रचारके लिए प्रचारक भेजना, धर्मोत्सवोंका मनाना, साम्राज्य-भरमें अहिंसा प्रधान जैनाचारका प्रसार करना इत्यादि अनेक कार्योंका श्रेय इस सम्राट्को दिया जाता है । विन्सेण्ट स्मिथक अनुसार उसने अरब और ईरानमें भी जैन सस्कृतिके केन्द्र स्थापित किये थे । प्रो० जयचन्द्र विद्यालकारके अनुसार "चाहे चन्द्रगुप्तके चाहे सम्प्रतिके समयमें जैन धर्मकी बुनियाद तमिल भारतके नये राज्योंमें भी जा जमी, इसमें सन्देह नहीं । उत्तर पश्चिमके अनेक देशोंमें भी सम्प्रतिके समयमें जैन प्रचारक भेजे गये और वहाँ जैन साधुओंके लिए अनेक विहार स्थापित किये गये । अशोक और सम्प्रति दोनोंके मायसे भारतीय सस्कृति एक विद्वत् सस्कृति बन गयी और आर्यावर्तका प्रभाव भारतकी सीमाओंके बाहर तक पहुँच गया ।

अशोककी तरह उसके इस पोतेने भी अनेक हमारतें बनवायीं । राज-पूतानेकी कई जैन कलाकृतियाँ उसके समयकी कही जाती हैं । जैन लेखकोंके अनुसार सम्प्रति समूचे भारतका स्वामी था ।" कई विद्वानोंका यह भी मत है कि अशोकके नामसे प्रचलित शिलालेखोंमेंसे अनेक सम्प्रतिद्वारा उत्कीर्ण कराये गये हो सकते हैं । अशोकको अपने इस पौत्रसे अत्यधिक स्नेह था, इसी कारण उसने इसे अपना उत्तराधिकारी भी बनाया था । उनका कहना है कि अशोकको उपाधि देवानाप्रिय थी और सम्प्रतिको वह प्रियदर्शिन कहता था अतः जिन शिलालेखोंमें 'देवाना प्रियस्य प्रियदर्शिन राजा'-द्वारा उनके लिखाये जानेका उल्लेख है वे सम्भवतया सम्प्रतिके हैं, विशेषकर उनमेंसे भी वे शिलालेख जिनमें जीवहिंसा निषेध एवं धर्मोत्सवा आदिका वर्णन है ।

जैन साहित्य, विशेषकर श्वेताम्बर परम्पराके ग्रन्थों यथा परिशिष्टपूर्व, सम्प्रतिकथा, आदिमें सम्राट् सम्प्रतिके विषयमें बहुत-कुछ लिखा मिलता

[illegible][illegible]

महानिधि उपरान्त अन्तम नुन पाणिपुत्र कर्मयोगे निहाइवपर  
वीम । अथ यो काले निद्रा एवं अन्य दुर्गमयोगी धर्ति वीम कर्मना अनुवादी

था। इसने भी दूर-दूर तक जैन धर्मका प्रचार किया बताया जाता है। इसने अल्पकाल ही राज्य किया। इसके उपरान्त यूपमेन, पुण्यधम आदि कुछ अन्य राजे हुए और उज्जैनमें १४८ वर्षके उपरान्त ई० पू० १६४ में मौर्य वंशका अन्त हो गया।

मगधमें दशरथके पश्चात् देववर्मन्, मनघनुष और वृहद्रथ आदि राजे हुए। इनमें-से एक-आध राजा प्रजापीडक भी था। अंतिम नरेश वृहद्रथकी उसके ग्राह्यण मन्त्री पुण्यमित्र शुभने घोड़ेमें हत्या करके राज्यसिंहासन-पर अपना अधिकार कर लिया, और हम प्रकार मगधमें लगभग १३७ या १३३ वर्ष बाद ई० पू० १८४में मौर्य वंशका अन्त हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्प्रतिके शासन कालमें ही ई० पू० २०४के लगभग मौर्य साम्राज्यकी एकता भग होने लगी थी और कमसे कम वे प्रदेश जिनपर मौर्यवंशके ही राजपुरुष प्राचीन शासक थे स्वतन्त्र हो गये। यही कारण है कि कुछ जैन अनुश्रुतियोंमें मौर्यवंशका काल १०८ वर्ष भी दिया है। कदमोरमें सम्प्रतिका भाई या चाचा जालक (जलोक) स्वतन्त्र हुआ, कुछके अनुसार वह जैनी था और कुछके अनुसार क्षत्रिय। उसने म्लेच्छोंके, जो सम्भवतया यूनानी थे, आक्रमणमें देशको मुक्त किया बताया जाता है। कान्यकुब्ज पर्यन्त उसने अपने राज्यका विस्तार कर लिया था। गान्धापर वीरसेनका राज्य था जिसका उत्तराधिकारी सुभगनेन था। इसने यूनानी नरेश अन्तिपोक महान्के साथ पूववर्ती मौर्योंकी भाँति मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये थे। यूनानी यूथाइमस और उसके उत्तराधिकारिमाने हम शास्त्राका अन्त किया। कुछ छोटे-छोटे मौर्य राजे मगध, पश्चिमी भारत, राजस्थान, खानदेश, काश्मीर आदिके कुछ भागोंमें बहुत पीछे तक राज्य करते रहे। कलिङ्गमें चैत्र या चेदिवंशका उद्भव हो चुका था। दूसरी शती ई० पू० के पूर्वार्धमें कलिङ्ग चक्रवर्ती सम्राट् पारवेलके कालमें उसका चरमोत्कर्ष हुआ। दक्षिणमें आंध्रवंशका उत्थान हुआ। इस प्रकार मौर्य वंशके साथ-ही-साथ मगध साम्राज्यका भी अन्त हो गया।



[illegible]

बुद्धार्थविधि (ई पू १५४-१३) काठ्ठीनी ब्रह्मेय का इन ब्रह्मा ब्रह्म  
 तानक का । इनके इनका-न ब्रह्माय का अनुविधि की० बालुविधने ६ का  
 (ई पू ११८-८) वर्तन ब्रह्मा तानक विधि । ६ ब्रह्मेय ब्रह्माय  
 ब्रह्मे ही अनुवाची ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म । विष्णु काठ्ठीनी ब्रह्माय का ब्रह्म ब्रह्म  
 ब्रह्मे ब्रह्म ब्रह्म ही ब्रह्म ब्रह्म ही ब्रह्म ।

સાવરબે તો દે. ૧. ૭૪-૭૬ જે સમયના અસ્થિતિ મુકિત થોડાં જોવામાં આવ્યા

मन्त्री वसुदेव कन्वने अपने स्वामीका वध करके राज्य हस्तगत कर लिया । ४५ वर्ष तक ( ई० पू० २८ तक ) कण्व वंशका मगधपर अधिकार रहा । ये एक गौण स्थितिके राजे रहे ।

शुग वंशमें दस और कण्व वंशमें चार राजे हुए बताये जाते हैं । अपने मालविकाग्निमित्र नाटकमें महाकवि कालिदासने शुगवंशी अग्निमित्र-को अमर बना दिया है । शुग-कण्वकालमें मगध हतप्रभ था और विदेशी यूनानी, पल्लव, शक आदिको भारतमें राज्य स्थापन करनेका अवसर मिल गया । डेढ़ सौ वर्षके इस युगकी सबसे बड़ी देन यही है कि वर्तमान हिन्दूधर्मकी रूप-रेखा इसी कालमें बनी, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत तथा पुराणोंका सकलन प्रारम्भ हुआ और हिन्दुओंकी धार्मिक अनुश्रुति एवं प्राचीन रचनाएँ लिपिवद्ध होने लगीं तथा नवीन साहित्य रचा जाने लगा । श्रमण संस्कृति तथा उसके जैन, बौद्धादि धर्मोंके साथ समन्वय करके हिन्दूधर्म एक नवीन रूपमें उदय हुआ । देवी-देवताओंकी भक्ति एवं उपासना, मूर्तिपूजा, जीव दया आदि इसके प्रधान अंग थे । मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रोंके द्वारा सामाजिक जीवनका नियमन करना भी इस युगमें ब्राह्मण सुधारकोने आरम्भ किया । इस ब्राह्मण पुनरुद्धार आन्दोलन परिणाम-स्वरूप मगध एवं मध्यदेशमें बौद्ध और जैनधर्म भी शक्तिहीन एवं अवनत होते चले गये । जैनधर्मके तो सुदृढ़ केन्द्र कर्णाटक, मध्यभारत, सौराष्ट्र, कर्लिंग, मयुरा आदिमें स्थापित हो चुके थे और वह वहाँ फलतः फूलता संप्राण बना रहा, किन्तु बौद्ध धर्मको विदेशोंका तथा यवन, शक, कुषाण, हूण आदि विदेशी शासकों और उनके द्वारा शासित प्रदेशोंका । प्रधान आश्रय रह गया ।

# अध्याय ४

## प्राचीन युग—द्वितीय पाद

उत्तर भारत ( ई. पू. २ ०—ई. स. १०० )

ग्रीक साहित्यके समयके राज्य-हीनत्व, निदेशकर शुक्र-कन युगमें तीन साम्राज्य वर्तमानों एक साथ करनेमें आतीं तथा पूर्व-पश्चिममें कश्चित्काल पूर्व (पेर्स) ईश्वर कृतके पश्चिमपार्श्वमें साम्राज्यवर्धन शक्तियुक्त पूर्व और उत्तर पश्चिममें भारत, एक सङ्गत युवाय आदि विदेशी आदितां । इनके अतिरिक्त गुरुर हजिदमें पीछे पाया, केवल साम्राज्य आदि होने-होने राज्य के और पूर्वी भारत एवं मध्यदेशमें गुरु, कन्य वंशके अतिरिक्त कुछ अन्य होने-होने राज्य तथा सत्त्वन है । वे सत्त्वन वंशेश्वर, बर्तुचयन कुम्हार, मुक्त युक्ति आदि है । वंशान्त-कालके अतिष्ठ पादर एवं आदेशन शक्ति विस्तारित होकर पञ्चमालकी और नके जाने है । पादर कोर ही दोष ही पञ्चमालके भी जाने बादर मध्यमालके राजनी प्रोदमें मन पदे और सत्त्वन वंश प्रवेश पादना कहाने बाद । आदेशनकी पञ्चमालिक वर्तित तीन ही नकी और इनके सत्त्वन अतिउत्तर व्यापार एवं व्यवसायमें विलग होने नके पदे ।

उत्तरीय तीन साम्राज्य वर्तितमें-के कश्चित्काल पूर्व वंशका कन्य कालमें तीन सत्त्वन व्यापारव्यापन आदेशनके समयमें ई. पू. २ ०—१५ के समयमें रहा । कश्चित्काल उत्तरीय-कश्चित्काल पश्चिमीय और हार्दिकुम्हार वर्तितके विस्तारमें एवं अन्य युवावर्धन आदेशनमें इस समयके विस्तारवर्तितका पञ्चमाला है, विपदा विदेश विपदा आदि मध्यममें विपदा आदेशन ।

**आन्ध्र-सातवाहन**—दूसरी शक्ति आन्ध्र जातिके सातवाहन वंशकी थी। आन्ध्रोंका सर्वप्रथम उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मणमें मिलता है। यहाँ इनकी गणना पुण्ड्र, दाक्षर, पुलिन्द, मुतिव आदि जाति वास्य नीच व्यक्तियों या दस्युओंमें की गयी है और इन्हें अनाय कहा गया है। किन्तु प्रथम शती ई० का रोमन इतिहासकार प्लिनि आन्ध्रोंका एक शक्तिशाली जातिके रूपमें उल्लेख करता है जिसका विस्तृत साम्राज्य दक्षिणापदपर था और जिसके पास एक लाख पैदल दो हजार अश्वारोही और एक हजार हाथियोंकी भारी सेना थी। प्रतिष्ठानपुर या पैठन इनकी राजधानी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि शुंगकालके प्रारम्भमें ही प्रियदर्शिके शिलालेखोंमें उल्लिखित दक्षिण देशवासो भोजक, पैठिनिक, रट्टिक, पुलिन्द आदि जातियाँ आन्ध्र जातिके सातवाहन कुलकी अधीनतामें संगठित हो गयी थीं। ये सातवाहन ब्राह्मण एवं नाग रक्तमिश्रणसे उत्पन्न हुए थे यद्यपि वे अपने-आपको ब्राह्मण ही कहते थे और अपने लिए 'एक ब्राह्मण', 'स्वतियदपमानमदन' आदि विशेषण प्रयुक्त करते थे। मत्स्यपुराणमें इस कुलमें ३० राजा हुए बताये हैं जिन्होंने ४६० वर्ष राज्य किया। अन्य पुराणोंमें १७, १८ या १९ राजा तथा उनका राज्यकाल ३०० वर्ष बताया है। सिमुक इस वंशका प्रथम राजा बताया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तीसरी शती ई० पू० के अन्तके लगभग सिमुकने पैठनमें अपना राज्य स्थापित कर लिया था। सम्प्रतिकी मृत्युके उपरांत इस राज्यकी शक्ति बढ़ने लगी। जैन अनुश्रुतिके अनुसार सिमुकने २३ वर्ष राज्य किया किन्तु अपने अन्तिम वर्षोंमें वह दुष्ट और दुराचारी हो गया था जिसके कारण उसे गद्दीसे उतारकर उसका वध कर दिया गया और उसका भाई कन्ह राजा हुआ। उसने नासिक पर्यन्त अपने राज्यका विस्तार कर लिया। तीसरा राजा शातकर्णी प्रथम बहुत महत्वाकांक्षी था, नानाघाटपर उसने अपनी मूर्ति स्थापित की थी, पश्चिमी मालवाकी विजय कर ली थी और शुंगोघे युद्ध किया था। उसने राजसूय और अश्वमेध यज्ञ भी किये थे।

कठिन-वस्त्रमयीं आरवीर्यो बतौ पराजित करके कलकी गुरुत्वाकांक्षायें बाध ही और कलके 'वसिष्ठापनबन्धु' एवं 'अपतिहृतरथ' बापि विजयोको ज्वर्य किया । कलकी विजया वाली नामविका -आरा किछादे बने विजयके- से पहले राज्यकल्याण का कुछ बात चलता है । इस राधा शासकनीं द्वितीय यह दिखने ५५ वर्ष राज्य किया जाता था । कलके कम बंधन कर कर दिया और पूर्वी पालका बंधी विजया शासकनीं विजय कर दिया । शासकी राधा गुरुद्विज सतहईका रचविता हुआ था बाकिबाहुव था । पहले बंधनसे बंध-बहुपद धूमक बहुपद बापि शासकाहुकोके अविजानी हुए और कलुनि शासकाहु अविजके बंधनेसे बंधा ही । शासका समय २ २४ ई के अवसर काया जाता है । शासके बाद बाद-बापि कलकलीन निर्बंध राजे हुए और फिर शासकीपुन शासकनीं बंधन है । यह इन बंधन का अविजक अविजक परेक था । बंध-बहुपद बहुपद अविजक अविजक अविजक था । शासकीपुनके बतौ बुरी राज्य पराजित किया । किन्तु यह- बंधनके अवसरक बंधके मुनीं बंधनविज और बंधनसे शासकीके बंधन बंध की लीज बंधी और शासकाहुकोके शास कुछ बापी रहा । शासकाहुनीं और बंधनके यह अविजक अविजक एक ही वर्ष बंधन बंधन दिखने कलकलीन बंधके शासकाहुन बंध और फिर बंधन बंध लोभी ही अविजक ही बंधे । शासकीपुनका राज्य अविजक अविजक है का अविजक है । कलकी मुनीके अवसरक अविजक कुछ ही पुनःकी राधा हुका दिखने राज्यके १९ई बंधने कलकी विजयाही शासकी बंधनीने बाकिनी एक बंधु विजयके विजयता था । यह देश शासकीपुन शासकनींकी अविजक अविजक है और इसमें अते बंध-बहुपद-बंधनीने बंधनकी बंधनता था है एवं बंधके अविज और विजयके बंधनके विजय था है । पुनःकीके बंधनसे बंधनके बंधी बंधनीने

( कुछ दिखने नामविकाके कलकी दिखने अविजक है २५ का अविजक विजयक है । अविजक है का शासकनीं विजयके बंधनीने )

मालवा एवं पश्चिमी राजस्थानपर भी अधिकार कर लिया था। उसके उत्तराधिकारी शातकर्णी तृतीयके साथ क्षत्रप रुद्रदामन्की कन्याका विवाह हुआ था, किन्तु क्षत्रप-सातवाहन सधर्षका अन्त नहीं हुआ। अन्तिम नरेशोंमें यज्ञश्री शातकर्णी अधिक प्रसिद्ध है। उसके चाँदीके सिक्के प्राप्त हुए हैं जिनमें क्षत्रपोंका अनुकरण पाया जाता है। इस वंशका अन्तिम शात नरेश श्री पुलुमयी द्वितीय था। तीसरी शती ई० के प्रारम्भके लग-भग इस सातवाहन वंशका अन्त हो गया। इसके अनेक महारथी पदवी-धारी सरदार, जो अधिकांशतः नागजातीय थे और मूलतः आन्ध्रोंके सेवक होनेसे आन्ध्रभूष्य भी कहलाते थे, दक्षिण एवं मध्य भारतके विभिन्न भागोंमें स्वतन्त्र हो गये।

पैठनके ये सातवाहन राजे अधिकांशतः ब्राह्मण धर्मानुयायी थे किन्तु वे अन्य धर्मोंके प्रति भी सहिष्णु थे। प्राचीन जैन साहित्यमें सातवाहन राजाओंके अनेक उल्लेख मिलते हैं और उनमें-से कई एकका जैन होना भी सूचित होता है। किन्तु क्योंकि यह उल्लेख 'पैठनका शालिवाहन राजा' करके ही प्रायः पाये जाते हैं अतः ऐतिहासिक नाम-सूचीमें उन्हें चोन्हना दुष्कर है। इन जैनराजाओंमें सतसईके रचयिता हालके होनेकी सम्भावना है। यह प्रसिद्ध ग्रन्थ महाराष्ट्री प्राकृतमें आर्याछन्दोंमें लिखा गया है और जैन विचारोंका प्रभाव उसपर लक्षित होता है। सातवाहन राज्यमें प्राकृत भाषाका ही प्रचार था। ये राजा स्वयं तो विद्वान् या विशेष विद्यारसिक नहीं थे किन्तु विद्वानोंका आदर करते थे। जैनाचार्य शर्ववर्म-द्वारा कातन्त्र व्याकरणकी रचना तथा एक अन्य जैनाचार्य काणमिश्र या काणभूति-द्वारा प्राकृतके मूल कथा-ग्रन्थकी रचना और उसके आधारपर गुणादयकी वृहत्कथाकी रचना इन्हींके प्रभुत्वमें हुई प्रतीत होती है। इनके राज्यमें जैन मुनियोंका स्वच्छन्द विहार था। इन्हींके कालमें जैनसंघ दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदायोंमें विभक्त हुआ और इनका राज्य उन दोनों सम्प्रदायोंके साधुओंका सन्निस्थल था। दिगम्बर परम्पराके जैन आगमोंका सर्वप्रथम

हंकन एवं विविधकारीय भी राष्ट्रीय काजों और सम्भवतया राष्ट्रीय राज्य में हुआ था ।

पश्चिमोत्तर प्रदेशों के विदेशी शासक—(१) मुगली या बबर—  
 बिकनरवादी मुगल के बरगुल बरगुलिया में बड़े के देवावधि विस्तार करने  
 बबरवा साम्राज्य स्थापित कर दिया था जिसकी सीमाएँ भारतवर्ष की सीमा  
 करती थी । विस्तार के बड़े के समय १५५५ वर्ष राज्य किया । बों  
 साम्राज्य के बड़े राष्ट्रीय प्रदेश करके काय्य नहीं किया बल्कि  
 बने बों-पूर्व सम्भव हो रहे । मुगलियों की कुछ छोटी-छोटी बस्तियाँ  
 भारतवर्ष के समय बने थी । बों के समय में विस्तार बड़े का बबर  
 बस्तियों के द्वितीय राज्य कर रहा था । बबर यह किने के राज्य का  
 बस्तियों के बड़ा था तो बबर के बड़े के विस्तार सम्भव काय्य वि-  
 रोध स्थापित हो गया और इस बबर राष्ट्रीय-विस्तार बड़े का बबर  
 हुआ । १५५५ के समय बड़े का बस्तियों की मुसीबत के काय्य  
 बबर बस्तियों के द्वितीय के बने कर ती और बरनी कया मुसीबत के  
 बर विविध ( विविध ) के काय्य बड़ा थी तथा विस्तार की स्थापना  
 स्थापित कर ती । काय्य बड़ी के इस समय मुसलमान काय्य था तो  
 सम्भवतया एक बों-बों काय्य हुआ । समय १५५५ में  
 विविध विस्तार काय्य हुआ । भारतवर्ष में बबर बस्तियों के विस्तार का  
 बने बड़े हो दिया बड़ा है । बने काय्य काय्य किया । बरुल  
 और बरुल के राज्य बड़े काय्य बने । यह बरुल विस्तार बने काय्य  
 पैदा हुआ मुगल ( बरुल ) तक जा पहुँचा । किन्तु सम्भवतया  
 बबर काय्य के सम्भवतया काय्य काय्य इन बरुलियों में बरुल  
 बड़ा बने और वे काय्य की पूर्ण विस्तार किने दिया ॥ बरुल  
 बने । बबर एवं सम्भवतया तो बरुल बरुल काय्य के मुगली  
 विविध की विस्तार बड़ा किया, किन्तु बरुल तक बने बरुल बने  
 हो रहा । बरुल ( बरुल ) की, किने काय्य बने विस्तार स्थापित

उसने यूथोडेमिया रखा था, उसने अपनी भारतीय राजधानी बनाया। इस यूनानी आक्रमणके परिणामस्वरूप पतनोन्मुख मौर्य सत्ता मृतप्राय हो गयी। बृहद्रथ मौर्यके ग्राहण मन्त्रो पुण्यमित्र शुगने सम्भवतया इसी स्वर्ण अवसरका लाभ उठाया और अपने स्वामीकी हत्या करके वह स्वयं मगध राज्यका स्वामी बन बैठा। विमित्रके यापस चले जानेपर उसका वायसराय मिनेण्डर (मिलिन्द) जो सम्भवतया उसका उत्तराधिकारी भी हुआ, ई० पू० १६०-१४० तक सागलमें शासन करता रहा। यह शासक जैन और बौद्धोंके सम्पर्कमें आया और उनका भक्त हुआ। बौद्धाचार्य नागसेनका उसपर विशेष प्रभाव था। मिलिन्दपञ्चो (मिलिन्दके प्रश्न) नामक ग्रन्थका नायक यही यवनराज बताया जाता है। इस ग्रन्थमें जैनों और उनके सिद्धान्तोंका भी उल्लेख है और इस धर्मके विषयमें राजा तथा उसके साथी अन्य यूनानियोंकी जिज्ञासा प्रकट होती है।

बैक्ट्रियाके यूनानियोंका राज्य तो प्रथम सतान्दो ई० पू० के प्रारम्भके लगभग समाप्त हो गया किन्तु अनेक यूनानी भारतमें बस गये। उन्होंने जैन, बौद्ध, भागवत आदि भारतीय धर्मोंको अपना लिया और शनैः-शनैः वे भारतीय जनतामें ही समा गये। विदिशाके राजा भगदत्तके दरबारमें हिलियोदर नामक यूनानी राजदूत आया था और उसने वहाँ गरुडध्वज बनवाया था जिसपर अंकित लेखसे उसका भागवत धर्मानुयायी हाना सूचित होता है। मिनेण्डर सम्भवतया बौद्ध धर्मानुयायी हो गया था। इसी कालके एक यूनानी इतिहासकार ट्रोगसने अपने एक पूर्ववर्ती लेखकका और प्रमाण रूपमें उसके लेखोंका उल्लेख किया है। प्रो० टार्न आदि विद्वानोंका मत है कि ये यूनानी इतिहासकार भारतवर्षमें रहे और वहाँ जैनोंके विशेष सम्पर्कमें आये प्रतीत होते हैं क्योंकि उनके लेखोंसे पता चलता है कि वे जैनोंसे, उनके आचार-विचारोंसे और उनकी ऐतिहासिक अनुश्रुतियोंसे भली-भाँति परिचित थे और उन्हें ही उन्होंने अपना आधार बनाया था। सम्भव है कि इन भारतीय यवनोंमेंसे अनेक जैन साधुओंसे



प्रभावित होकर तीन वर्षोंके अनुयायी भी हुए हैं। बुनामी के एक द्वितीयकोणी  
 बराबर आधीलाके द्वितीयकोणी तीन पात्रु विचारते मिले हैं। एक प्रथम-  
 चरम (तीन पात्रु) प्रथम होती है। मैं आधीपरी जाया करके दोष (वा एकेष)  
 को बढ़ाने है। यही अपनी बराबर विचारण रही बराबर जाती है।

(२) एरोटाईनियन वा बहुरूप—बीजिवाकी भौति पात्रिवा भी  
 मिलके अन्तर्गत बहुमान ईशान वा और मिलकी पात्रिवाकी उन्मत्तवा  
 उन्मत्तवा की विन्मुदकर्मकी बुनामिनीके पात्रात्मक एक पात्र वा।  
 बीजिवाकी ही पात्र वाक-वाक यह भी स्वल्प ही क्या वा विन्मु आत्मकी  
 बीजिवाके क्या रहा। इसका उन्मत्त बहुमान पात्रिवा वा। विविध और  
 विविधके कर्म पात्रिवाके पात्र विन्मुदक प्रथम (ई ५ १०१-  
 ११६) वा। विविध कर्म पात्रिवाकी विन्मुकी उन्मत्त वा उन्मत्त उन्मत्त  
 स्वल्प ही क्या वा। उन्मत्त-उन्मत्त उन्मत्त कर्मकी पात्रिवा बहुरूप की और ई ५  
 ११८ के उन्मत्त विन्मु-उन्मत्तकी बीच उन्मत्त उन्मत्तवा उन्मत्त उन्मत्त  
 कर्मकार कर किया। इसके अन्तर्गतकी विन्मु उन्मत्त वि (ई ५  
 १११-८८) के उन्मत्तकी उन्मत्तवा आत्मक रहा। यही है द्वारे और पात्रि-  
 कर्मकी कर्मकी ही कर्म विन्मु कीका ही फिर स्वल्प होकर पात्रिवाके  
 उन्मत्तवा उन्मत्त उन्मत्त कर्मकी और कर्मकी पात्रिवा बराबर क्या विन्मु।  
 ई ५ प्रथम उन्मत्तकी बीच उन्मत्त कर्मकी ही पात्रिवा उन्मत्त रहा। मुन्मत्त  
 उन्मत्त कर्मकी उन्मत्तवा उन्मत्त उन्मत्त की पात्रिवा ही है। एक उन्मत्त कर्मकी  
 कर्मकी उन्मत्तवा उन्मत्तवा (विन्मु) है उन्मत्त उन्मत्त ११-४५ ई  
 उन्मत्त उन्मत्त विन्मु। उन्मत्त मुन्मत्त पात्रिवाकी और कर्मकी भी मिले हैं।  
 उन्मत्त उन्मत्त बीच उन्मत्त उन्मत्त पात्रिवा पात्रिवा उन्मत्त और उन्मत्त उन्मत्त-  
 वा उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त  
 पात्रिवा पात्रिवा उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त उन्मत्त  
 विन्मु उन्मत्तकी उन्मत्त उन्मत्त है। विन्मु उन्मत्त उन्मत्तवाकी पात्रिवाकी विन्मुकी  
 वा उन्मत्तवा उन्मत्त है कि उन्मत्तवाकी है यही आकर उन्मत्त है और बीच

धम्म दोषित हो गये थे मरानि अपनी जन्मभूमिक बहुत-से सत्कार उठोने बनाये रहे ।

(२) इण्डोसोथिया या शक—चीनी आधारसे पता चलता है कि ई० पू० १७५-१६५ के लगभग वर्षर हुणोका उन्धान हुआ जिन्होंने पश्चिमी चीनसे यू ची लोगोको सदेह बाहर किया । यह यू ची या तुखारी लोग पश्चिमकी ओर बढ़ गये और सोरनक्षेके तटपर उन्हें उहीं-जैसी एक अथ भ्रमणकारी जाति मिली जो शक थी । तुरफ़ाने शकोको उनकी जन्मभूमिसे लदेडा अतः वे भारतमें रोमान्त प्रदेशोंकी ओर बढ़ आये और यवनो एवं पक्ष्योके राज्योंके विभिन्न प्रान्तोंपर दूट पड़े । मिथ्रेडेटम द्वि० ( ई० पू० १२३-८८ ) ने उनको पराजित करके अपने अधीन कर लिया, किन्तु प्रथम शती ई० पू० के प्रारम्भमें ( ई० पू० ८५-७५ के लगभग ) ये बोलनकी घाटी और विलोचिस्तानके मार्गें भारतमें घुस आये और समस्त सिन्धु घाटीपर छा गये । पुष्कलावतीको उन्होंने अपनी प्रधान राजधानी बनाया । अपने मूलस्थान सोथिया ( शकस्थान ) की स्मृतिमें उन्होंने अपने इस ग्वीन वासस्थानका नाम भी इण्डोसोथिया ( शकस्थान या शककुल ) रखा । इनका सबसे बड़ा सरदार शाहानुशाही कहलाता था और उसके अधीन अनेक शाही ( शक सरदार ) थे । ई० पू० ७० के लगभग आचार्य कालके द्वितीय उज्जैनके दुराचारी राजा गदमिल्लके अत्याचारासे पीड़ित हो और अथ सब उपायोंसे हारकर इन शकशाहियोंके पास सिन्धुवर्षी शकस्थानमें पहुँचा । वहाँ एक शाहीका अतिथि हुआ । कालके ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान और बुद्धिमत्तासे शाही बहुत प्रभावित हुआ । उसी समय बुद्ध शाहानुशाहीका एक दूत एक छुरा और कटोरा लेकर शाहीके पास आया जिस देखते ही वह धर-धर काँपने लगा । कालके पूछनेपर शाहीने कहा कि उसका स्वामी उससे नाराज हो गया है और इन वस्तुओंको भेजनेका अर्थ है कि वह अपना सिर उस छुरेसे काटकर उसी कटोरेमें रखकर शाहानुशाहीके पास भेज दे अन्यथा उसका सकुटुम्ब



पर राज्य करने लगे। भारतीय घमों, रीति-रिवाजों, नामादिकोंको अपनाकर और भारतीयोंके साथ विवाह सम्बन्ध आदि करके ये भारतीय नरेशोंकी भाँति ही यहाँ बस गये। इस प्रकार ई० पू० ५० के लगभगसे सन् ई० ५० के लगभग तक जो विभिन्न शक क्षत्रियाँ भारतके विभिन्न भागोंमें सत्तारूढ रहीं वे निम्न प्रकार हैं—(क) पुण्ड्रिकावतीके प्रधान शक नरेश—शाहानुशाही—जिनमें सर्व प्रसिद्ध महार्य मोगा था। उसके सिक्कोपर कतिपय भारतीय तथा यूनानी देवी देवताओंकी मूर्तियाँ अंकित मिलती हैं। स० ४२ और ७८ के दो अभिलेखोंमें उसका नामोल्लेख मिलता है जो ई० पू० ६६ में स्थापित पूर्व शक संवत्में होनेसे ई० पू० २४ तथा सन् १२ ई० के निर्धारित होते हैं। उसके अतिरिक्त अजेस प्रथम और द्वितीयके होनेका और पता चलता है जो सम्भवतया उसके उत्तराधिकारी थे। इन शक शाहानुशाहियोंके उपरान्त पुण्ड्रिकावतीपर पल्लवोंका अधिकार हो गया प्रतीत होता है। विन्दुफर्न (गोण्डोफरनीज) जिसका समय १९-४५ ई० निश्चित होता है, इस कालका प्रसिद्ध पल्लव नरेश था। उसका सं० १०३ का अभिलेख भी पूर्वशक स० में होनेसे सन् ३७ई० का है। विभिन्न प्रान्तोंके शक क्षत्रप इन पल्लवोंको भी शक शाहानुशाही-की भाँति अपना अधिपति मानने लगे।

(ख) उपरोक्त शक क्षत्रपोंमें-से एक शाखा तक्षशिलामें स्थापित हुई थी जिसमें लिम्बक, कुण्डलक, पतिक आदि क्षत्रप हुए। इनका उल्लेख स० ७२ (सन् १२ ई०) के अभिलेखमें मिलता है।

(ग) एक शाखा सुदूर वाराणसीमें स्थापित हुई जिसमें मेवकि आदि नाम मिलते हैं।

(घ) एक शाखा मयुरामें स्थापित हुई, इसमें हगन, रज्जुवल, घोडास आदि नाम मिलते हैं। मयुराके ये शक महाक्षत्रप अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनके, विशेषकर क्षत्रप घोडासके, मयुरासे अनेक शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनमें कई यथा सं० ४२ (ई० पू० २४),

[illegible][illegible]

आदर्श विद्यालय राय पुर

निश्चित होता है। यूनानी भूगोलवेत्ता टालेमीने भी इस नरेशका उल्लेख किया है। नहपानके अपने तथा उसके जामाता उपवदात या कृपभदत्त और कुशल मन्त्री अयमके कई शिलालेख प्राप्त हुए हैं जो वर्ष ४१से ४६तकके हैं। सम्भवतया नहपानके पूर्वज भूमकने अपने अन्तिम दिनोमें अथवा स्वयं नहपानने अपने राज्यायुष्यमें ही मालवा देशके बहुभागपर अधिकार करके यह नवीन वर्णगणना चालू की थी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं उज्जैनीपर उसका अधिकार नहीं हो पाया और इस महानगरीको प्राप्त करनेके लिए पैठनके सातवाहन नरेशोंके साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता एवं संघर्ष बराबर चलता रहा। अन्ततः सन् ६५ ई० के लगभग गौतमोपुत्र श्वातकर्णोंने भूगुकच्छपर आक्रमण किया, घोर युद्धके उपरान्त नहपानकी पराजय हुई और उसने सन्धि कर ली। सातवाहन नरेशने अपनी विजयके उपलक्ष्यमें नहपानके अनेक सिक्कोंको हस्तगत करके और उनपर अपनी भी मुहर लगाकर अपने राज्यमें चालू किया। नहपानने राज्यभार अपने जामाता उपवदात, मन्त्री अयम और सेनापति यशोमतिकको सौंपकर स्वयं जिनदीक्षा ले ली प्रतीत होती है।

इस समय तक इन शकाका प्रायः पूर्णतया भारतीयकरण हो चुका था, इन्होंने भारतीय आचार-विचारों, भाषा और नाम, वेष-भूषा और प्रथाएँ, धर्म और संस्कृति अपना लिये थे। एक जैन अनुश्रुतिके अनुसार इस महाराज नरवाहनने अपने मित्र मगधनरेशको मुनिरूपमें देखकर उनकी प्रेरणासे अपने राज्यत्रेष्ठि एवं मित्र सुबुद्धिके साथ मुनिदीक्षा ले ली थी। इस समय दाक्षिणात्य जैनसंघके नेता सभाचार्य अर्हद्वलि थे, वही सम्भवतया इसके दीक्षागुरु थे। सन् ६६ ई० में उन्होंने महिमा नगरीमें एक महामुनि सम्मेलन किया था। इसी सम्मेलनमें सर्वप्रथम निर्ग्रन्थ दिग्भर सधम नन्दि, सेन, सिंह, देव, भद्र आदि उपसंघ उत्पन्न हुए थे। इसी कालमें गिरिनगरकी पूर्वोक्त चन्द्रगुफामें अवशिष्ट आगम ज्ञानके धारक एवं अष्टांग निमित्तके ज्ञाता धरसेनाचार्य उपस्था करते थे। अपना अन्त



क्षेत्रों पर भी किसी युद्धमें आंशिक विजय प्राप्त की। सातवाहनोंने सत्ताके नवप्रचलित सवत्की भी अपना ऐनेका प्रयत्न किया, इसी कारण यह कालान्तरमें शक-शालिवाहन सवत्के नाममें भी प्रसिद्ध हुआ। क्षत्रपकालके प्रथम ही वर्षोंमें शक-सातवाहन प्रसिद्धिद्धि और भी अधिक तीव्र हो गयी और सातवाहन साम्राज्यके अन्तके साथ ही उसका अन्त हुआ।

चट्टनका पुत्र जयदामन् था। उसने अपने पिताके साथ कुछ वर्ष राज्य किया किन्तु पिताके जीवनकालमें ही उसकी मृत्यु हो गया प्रतीत होती है। उसके उपरान्त उसका पुत्र महाक्षत्रप रुद्रदामन् प्रथम राजा हुआ। उसके राज्यारम्भके कुछ वर्ष बाद ही उसके पितामह चट्टनकी मृत्यु हुई। रुद्रदामन्के सन् १३० ई० के शिलालेखके समय तक चट्टन जीवित था। रुद्रदामन् इस वंशका सर्वाधिक प्रतापी नरेश था, उसके समयमें क्षत्रप साम्राज्य उन्नतिके चरम शिखरपर था। इस राजाके सन् १५० ई० के एक वृहत् शिलालेखमें, जो कि जूनागढ़ प्रशस्तिके नामसे प्रसिद्ध है, उनकी अनेक विजयों, पराक्रमों, लोकहितके कार्यों आदिका पता चलता है। यह शिलालेख ऐतिहासिक दृष्टिमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और गिरिनगरके सुप्रसिद्ध सुदर्शन तालके तटपर ही अंकित है। रुद्रदामन्ने भी उस ऐतिहासिक सरोवरका जीर्णोद्धार कराया था। रुद्रदामन्का पुत्र दामजदश्री था जिसने गिरिनगरकी पूर्वोक्त चन्द्रगुफामें आगमोद्धारक आचार्य धरसेनके स्वर्गधामकी स्मृतिमें एक शिलालेख उत्कीर्ण कराया था। उसके उपरान्त रुद्रसिंह प्रथम गद्दीपर बैठा वह भी जैनधर्मका अनुयायी रहा प्रतीत होता है। प्रायः इसी कालमें इस वंशकी एक राजमहिलाने महावीरपणे जमभूमि वैशालीकी तीर्थ-यात्रा की थी जैसा कि वहाँसे प्राप्त उक्त महिलाकी कतिपय मुद्राओंसे विदित होता है।

पश्चिमी क्षत्रपोंका यह महाक्षत्रप वर्ष २४२ वष पर्यन्त उज्जैनी राजधानीसे एक विस्तृत प्रदेशपर राज्य करता रहा। दूसरी-तीसरी शताब्दीमें तो दक्षिण भारतके भी अनेक भाग उसके अधीन थे। ३२० ई० में



कुलधर्मही स्थापनाके छान-सान सज्जनपर हम बंधका अधिकार बंधन  
हूँ । सब समस्त एक हम बंधकी कई पाछाईं एवं एक-छान्छी सब पुत्री  
की और और-पौरे एक छान्छाया अधिकार कीकी सगलकीके ज्ञान एक एक  
रहा जब कि समस्त विद्याविषयके उभरा ज्ञान पूर्णता समस्त ही  
दिया । सज्जनकी हम सबका ज्ञान पूर्णता भारतीयजन ही बना के  
और और-पौरे के भारतीय जनताके ही गया बंध ।

कुपाण धंशु—विन नु ची जार्निने ववावके वारन नुइपी ज्ञी ई  
 नु नै एक बीर जवने मक ववरवानवा पालिवाव वरके जाठरनी  
 वार ज्ञी नै नही नुनी वव धनी नुनी जाठरने बीजाल्पार क्य क्ये ।  
 वारी नै नुवाव जायसे जमिज हुर । कम् ४ ई नै नववव वरने नैज  
 नुनून वरजिमननै किन्नुपधनी पार करके वामुन जन्महार बीर वदिननी  
 निम्पवर जमिवाव वर निम्वा । एवके बी दिक्के निक्के ई ववर रोव  
 ववाव ज्ञीय ज्ञेय ई बीर पञ्चापी जवाविनीर वाछीय बीजमिवा  
 ज्ञीय ई । कम् ५ ई नै नववव ८ वरनी वामुने नुनूनकी नुनू हुर ।  
 एवके नुन व वतगविनी नीन वरजिमननै किन्नु ननीनी पार करके  
 जमिज ववाव वव पालिनी ज्ञाछनीयके नुन जायवर जमिवाव वर  
 निम्वा । ववम कम् ६ ( कम् ७ ई ) वा वनवा एक वरिजिम  
 निम्वा ई । वरिजिम निक्के बी निक्के ई बी ज्ञाछनीयके नुन निम्वाके  
 ज्ञेय ई । नुन वरजिमननै वामुनी यवा ज्ञीय ज्ञेय ई ।

कठना कलराजिकाणी और नमकगुहा गुह करिअ बा बी बारसई  
 गुदाय बंदअ कर्मगुहान् मीर और गुदाय काजमकम बंधालक बा ।  
 गुलापुर ( कैलाश ) कठनी प्रथम पदधानी बी और कलकटा  
 वसुध कपरायकानी । पूर्वमे कथा एक कठनी राजका विहार बा ।  
 उनही पठर-नमिकमने कठी और बल्लुनीनी कलना कल कर दिया  
 कानीर कठनी राजका बीच बा और कानीरके नार करके कठनी  
 नाथवर, बारनथ औरान कालि बीनी प्रीतिली बी विजय विजय बा ।

बौद्ध अनुश्रुतिमें उसे अशोकके समान ही बौद्ध धर्मका गवत और प्रश्रयदाता कहा गया है और उसमें उसके द्वारा पेशावरमें एक बौद्ध स्तूप बनवाने, काश्मीरमें चतुर्थ बौद्ध सम्मेलन बुलाने और बुद्धचरितके कर्त्ता प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अश्वघोषको प्रश्रय देनेके उल्लेख मिलते हैं। यह बौद्ध धर्मके महायान सम्प्रदायका पोषक रहा बताया जाता है। किन्तु विद्वानोंका मत है कि उसके साम्राज्यमें सभी धर्म प्रचलित थे और वह धर्मसहिष्णु नरेश सभीका आदर करता था। मयुराके अनेक जैन शिलालेखोंपर उसका नाम अंकित है। धामस आदि विद्वानांके अनुसार कमसे कम अपने राज्यकालके पूर्व भागमें उसका मुकाय जैन धर्मकी ओर अधिक रहा प्रतीत होता है। कहा जाता है कि एक प्राचीन जैन स्तूपका भी उसने जीर्णोद्धार कराया था। कनिष्ककी मूर्तियाँ भी मिली हैं। उसके समयमें बौद्ध साहित्यका सर्वप्रथम प्रणयन प्रारम्भ हुआ। कनिष्ककी राज्यारोहण तिथि सन् ७८ ई० मानी जाती है और कुछ विद्वानांके अनुसार वही प्रचलित शक सवत्का प्रवर्तक था। किन्तु जैसा कि पीछे कहा जा चुका है शक-मथत्की स्थापना भद्रचष्टन वशषे गस्थापक चष्टन द्वारा उज्जनीकी विजयके उपलक्ष्यमें हुई प्रतीत होती है। सम्भव है मयोगमें कनिष्कका राज्यारम्भ भी उत्तर-पदिचममें उसी वर्ष प्रारम्भ हुआ हो। उसके तथा उसके उत्तग-धिकारियोंके लेखोंमें जो वर्षसंज्ञा मिलती है वह उसके राज्यके प्रथम वर्षसे चालू हुई प्रतीत होती है, बादमें उहाने एक सवत्का रूप ले लिया जो सयोगसे शक सवत्के अनुरूप होनेसे उत्तरापथमें भी लोकप्रिय हो गया। कनिष्ककी हत्या उसके सेनानियोंने उसके सोते समय कर दी थी।

उसके उपरान्त क्रमशः ह्विष्क ( १०७-१३८ ई० ), कनिष्क द्वि० ( ११९ ई० ), वशिष्क, वासुदेव ( १५२-१७६ ई० ) इत्यादि कई राजे हुए। इन राजाओंके अनेक जैनार्जन शिलालेख मथुरा आदिसे प्राप्त हुए हैं। ये सभी धर्मोंके प्रति सहिष्णु रहे प्रतीत होते हैं। जैनधर्मकी, विशेषकर मथुरामें, इनके कालमेंवि शेष उन्नति हुई। वासुदेवके उपरान्त कृपाण



करके व्यापार-वाणिज्यमें ही अपना उपयोग लगाना प्रारम्भ कर दिया किन्तु अपने गणतन्त्रात्मक श्रेणी संगठनको और भी बहुत पीछे तक भग नहीं होने दिया । मालव लोग विराट देशमें भी अधिक स्थिर न रह सके और अन्ततः आगे बढ़कर उज्जैनी प्रदेशमें बस गये । सम्प्रतिको मृत्युके उपरान्त इन स्वतन्त्रता प्रेमी मालवोंने उज्जैनीको पेट्र घनाकर अपनी गणतन्त्रात्मक सत्ता स्थापित कर ली और धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढ़ायी । यह देश भी उनके कारण मालवा कहलाने लगा । शुंगों और कण्वोंके राज्यकालमें मालवोंके मालवगणने पर्याप्त शक्ति संचय कर ली थी ।

ऐसा प्रतीत होता है कि कलिंगचक्रवर्ती सम्राट् शारवर्धनने मालवगणको भी विजय कर लिया था और सम्भवतया उसकी गणतन्त्रात्मक सत्ताको भी माय कर लिया था किन्तु उसके नायकोंके पदपर अपना कोई राजकुमार नियुक्त कर दिया था । यह पद उसकी वंश-परम्परामें रुढ़ हो गया । ई० पूर्व ७४ में इसी वंशका महेंद्रादित्य गर्दभिल्ल मालवगणका अध्यक्ष और उज्जैनीका गणतन्त्रीय राजा था । यह बहुत अत्याचारी और दुराचारी शासक था । गणोंकी भी अवहेलना करता था । उस समय उज्जैनी जैनोंका प्रधान केन्द्र थी, जैन साध्वियों और साधुओंका वहाँ स्वच्छन्द विहार होता था । कालक द्वितीय उस कालके एक प्रसिद्ध जैनाचार्य थे, जो पूर्ववस्थामें एक राजकुमार थे । उनकी बहन सरस्वती भी साध्वी थी । वह अनिन्द्य सुन्दरी भी थी । उक्त साध्वीका आगमन जब उज्जैनीमें हुआ तो उसके रूपपर गर्दभिल्ल मुग्ध हो गया । उसने अवरोहस्ती अपहरण करके उक्त साध्वीको अपने महलमें उठवा मँगाया । सूचना पाते ही कालक वहाँ आया, उसने गर्दभिल्लको बहुत प्रकार समझाया, अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियोंसे भी कहलवाया किन्तु उस दुराचारी निरकुश शासकको अपने दुष्ट अभिप्रायसे विरत करनेमें वह समर्थ न हो सका । गर्दभिल्लके भयसे आस-पासके राजे भी हस्तक्षेप करनेका साहस न कर सके । अतः सन्तत कालक

[illegible][illegible][illegible]

नभीवाहन ) का अधिकार अवश्य रहा प्रतीत होता है । सन् ७८ ई० में क्षह्रातोंके उत्तराधिकारी पश्चिमी शक क्षत्रपोंके वश सस्थापक भद्रवर्धनने इस नगरपर स्थायी अधिकार करके शक सवत्की पुनः प्रवृत्ति की और लगभग सौ छेड़ सौ वर्षों तक इसी वशके अधिकारमें यह प्रदेश चला । क्षत्र-क्षत्र मालवगण भी इस पराधीनतामें क्षोणप्रभ और क्षोणशक्ति हो गये ।

अन्ततः ४थी शती ई० प्रारम्भमें गुप्त साम्राज्यका उदय होनेपर इस प्रदेशपर उस वशका अधिकार हुआ और उज्जैनी गुप्तोंकी उपराजधानी बनी । इस समय तक यह नगर बराबर जैनधर्मका एक प्रमुख केन्द्र बना रहा । श्वेताम्बर सम्प्रदायका तो यह प्रथम प्रधान केन्द्र था, किन्तु गुप्त कालके उदयके पूर्व ही इस स्थानसे पश्चिमकी ओर हटकर उन्होंने सुराष्ट्र-देशकी वल्लभी नगरीको अपना प्रधान केन्द्र बना लिया था । फिर भी उज्जैनी महानगरी विभिन्न धर्मों और सस्कृतियोंका सिन्धस्थल बनी रही । भारतीय साहित्य, ज्ञान और विज्ञानके सृजनमें इस महानगरीका सर्वोपरि स्थान रहा है । राजनैतिक राजधानी न रहनेपर भी शताब्दियों पर्यन्त यह नगरी भारतवर्षकी सांस्कृतिक राजधानी बनी रही और इसको बैसा बनाने-में जैन धर्मावलम्बी विद्वानों, मुनियों और श्रावकोंका भी महत्त्वपूर्ण हाथ रहा । जैनधर्म और साहित्यके इतिहासके साथ इस महानगरी और मालवा देशका अटूट सम्बन्ध है । भारतके सर्व प्रसिद्ध एवं सर्व प्राचीन लौकिक सवतो—प्रथम शक ( ई० पू० ६६ ), विक्रम ( ई० पू० ५७ ) और शक शालिवाहन ( ७८ ई० )—का जन्मस्थान भी उज्जैनी ही है ।

**मथुरा**—मथुरा नगरका जैन, वैष्णव, शैव, बौद्धादि विभिन्न भारतीय धर्मोंके साथ अत्यन्त प्राचीन कालसे ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहता आया है । भागवत धर्मके परमदेव भगवान् कृष्णकी यह लीलामूमि तथा उसके अनुयायियोंका महातीर्थ रहा है । बुद्धका भी वहाँ आगमन हुआ बताया जाता है और कुपाण कालमें यहाँ कई विशाल बौद्ध स्तूप एवं विहार विद्यमान थे । शैवोंका भी इस नगरके साथ प्राचीन सम्बन्ध है, और सहस्रो



ई० पू० में, उपरोक्त देव निमित्त स्वर्णमयी स्तूपको दंडोत्ते ढ़क दिया गया था । कुहरर, स्मिय, योगल आदि पुरातत्त्वज्ञ भी इस स्तूपके अवशेषोंको देखकर इसी निष्कर्षपर पहुँचे कि यह जैन स्तूप ईसासे नमसे कम पाँच छह सौ वर्ष पूर्व निमित्त हुआ था । अन्तिम तीर्थंकर महावीरका पदार्पण भी इस नगरमें हुआ बताया जाता है । उस समय यहाँका राजा पद्मोदयका पुत्र उदितोदय था । सम्यक्त्वकीमुझे कथामालाका घटना क्षेत्र और समय यही है । महावीरकी शिष्य-परम्परामें अन्तिम केवली जम्बूद्वीपमें मथुराके चौरासी क्षेत्रपर दुर्द्धर तपश्चरण किया था । उन्हींके उपदेशसे इस नगरमें महान् दस्यु अञ्जनचोरने अपने ५०० माधियों-सहित दस्युवृत्ति छोड़कर मुनिव्रत धारण किया था और घोर उपसर्ग सहन करते हुए सद्गति प्राप्त की थी । इन मुनियोंकी स्मृतिमें यहाँ ५०० के लगभग स्तूप निर्माण किये गये थे जिनके अवशेष मध्यकाल तक विद्यमान थे ।

नन्द और मौर्यकालमें मथुरामें जैनधर्मकी क्या स्थिति रही निश्चयसे नहीं कहा जा सकता । ४थी शती ई० पू० में द्वादशवर्षीय दुर्भिक्षके कारण उत्तरापथके जैन संघका एक बड़ा भाग अन्तिम श्रुतिकेयली भद्रबाहु-को अव्यसतामें दक्षिण देशको विहार कर गया था । दुर्भिक्षको समाप्तिपर भी उनमेंसे अधिकांश साधु वहीं रह गये और उनका संगठन कालान्तरमें मूल संघके नामसे प्रसिद्ध हुआ । मगधमें ही जो साधु रह गये थे उन्होंने स्थूलभद्र और उनके शिष्योंके नेतृत्वमें अपना पुण्य संगठन कर लिया । दुर्भिक्षके समय आपद्धर्मके रूपमें इन मागधी साधुओंने जो शिथिलाचार ग्रहण कर लिया था वह शनै-शनै रूढ़ होता गया और कालान्तरमें दिगम्बर-स्वेताम्बर सम्प्रदाय भेदका कारण बना । मथुरा आदि मगधसे दूरस्थ प्रदेश दुष्कालके प्रकोपसे उतने अस्त नहीं हुए थे, अतः यहाँके जैन साधु कर्णाटकी ( दक्षिणी ) और मागधी ( उत्तरी ) दोनों ही धाराओंसे अपने आचार-विचारमें कुछ विलक्षण रहे । दुष्कालका यह प्रभाव अवश्य हुआ कि ४थी-३री शती ई० पू० में मथुरामें बौद्ध और ब्राह्मण धर्मोंने विशेष



[illegible][illegible]

विद्याल, निलास्नम्भ, आयागपट्ट, अष्टमंगलद्रव्य, वैदिषाग्न्यम्भ, तोरण, मिनालय, प्रया ( घायदो ), उदपान आदिसे अवशेष प्राप्त हुए हैं । कई प्रस्तर-लण्डोंपर ऋषभ-चैराग्य, मन्नायीर-अम आदिसे मोराणिज द्रव्य धरित हैं । कई एकपर दिगम्बर मुनियोंकी और कुछपर लण्डपत्तनपायी धन्द-फालक माधुओंकी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । भारतीय तथा दक्ष आदि विदेशी नर नारियोंकी मूर्तियाँ भी निजी घेपभूपामें अर्चित मिलती हैं । मोर-मोक्ष-से सम्बन्धित अनेक दृश्योंसे मथुरा-नियासियाकी सत्खालोन घेपभूपा, छत्र-कार, मनोरजन, कलाप्रियता आदिपर सुन्दर प्रकाश पड़ता है । अपनी उत्कृष्ट कारीगरीके कारण ये अवशेष आज भी भारतीय कलाके गौरव माने जाते हैं ।

प्राप्त शिलालेखामें-से डेढ़ सौसे अधिक प्रकाशित हो चुके हैं और उनमें आधेसे लगभग तिन्निगुणत हैं । अधिकांश यप संख्या ४ से १८ तकके हैं । कुछमें दक्ष महादात्रप रज्जुबल, शोडास, मेघनिके नाम अंकित हैं और कुछमें कनिष्क, हृषिक, यदिक, वासुदेव आदि कुपाण सम्राटोंके । मथुराके इन शिलालेखोंके आधारपर ही प्रथम शती ई० पू० के दक्ष-दात्रपों तथा प्रथम व द्वितीय शताब्दी ई० के कुपाण-नरेशोंका पूर्वापर एवं काश्मिर सत्तोपजनक रूपमें निदिचन करना सम्भव हुआ । इन अमिलेखोंमें भक्तों-द्वारा विविध धर्मायतनों, उपकरणों, कलाकृतियों एवं लोकोपयोगी वस्तुओंके निर्माण कराने और दान देनेके उल्लेख हैं । उनमें लगभग साठ जैन गुरुओं-का उनके विभिन्न कुल, धाम्ना, गण तथा उपाधियों-सहित नामोल्लेख है, लगभग तीस तपस्विनी साध्वियाँ, लगभग एक सौ गृहस्थ श्रायकों और लगभग पचास महिला श्रविकाओंके भी नामोल्लेख हैं । इन लेखासे पता चलता है कि उस समय विभिन्न धर्मों, जातियों, वर्गों और व्यवसायोंके भारतीयजन तथा मथुरावासी यवन, दक्ष, पल्लव, कुपाण आदि विदेशी भी जैनधर्मके भक्त थे । उनकी स्त्रियाँ भी स्वतन्त्रतापूर्वक पुरुषोंकी भाँति ही धर्मका पालन करती थीं, बल्कि दान देने और धर्मायतनोंका निर्माण



बाल्मीकी, सीति आदि विद्वानोंके नेतृत्वमें ग्राहणीय साहित्यके प्रणयनको भारी प्रोत्साहन दिया। उधर सिंहलद्वीपमें वहाँके राजाके आश्रयमें बौद्ध-सघ पालि त्रिपिटकको सकलित एवं लिपिबद्ध करनेका प्रयत्न कर रहा था। फलस्वरूप स्वयं भारतमें कनिष्कके आश्रयमें अश्वघोष, पार्श्व, वसुमित्र आदि बौद्ध विद्वानोंने चतुर्थ बौद्ध-संगीति बुलायी और स्वतन्त्र साहित्यका भी निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया था। ऐसी स्थितिमें मथुराके दूरदर्शी जैन गुरुओंने भी सरस्वती आन्दोलन-द्वारा अपने कट्टरपन्थी धर्मबन्धुओंके सकोच एवं सकीर्णताको दूर करनेका प्रयत्न किया, यह स्वाभाविक ही था। ई० पू० १६० के लगभग कलिंग चक्रवर्ती सम्राट् खारवेलने उड़ीसाके कुमारीपर्वतपर एक मुनिसम्मेलन किया था। सम्भवतः मथुरासंघके प्रतिनिधियोंके प्रभावसे ही उक्त सम्मेलनमें सरस्वती आन्दोलनका प्रारम्भ हुआ जिसका कि पदक्षेप स्वयं खारवेलका जैन नमस्कार मन्त्रसे युक्त बृहद् शिलालेख था। मथुरामें इतनी बड़ी सख्यामें लिखाये गये तत्कालीन जैन शिलालेख उक्त आन्दोलनको प्रगतिके प्रतीक हैं। इतना ही नहीं, मथुरा सघने पुस्तकधारिणी सरस्वतीदेवीकी विशाल प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करके इस आन्दोलनमें जान ही डाल दी। दूसरी शती ई० के पूर्वार्धमें कृपाण नरेशोंके शासन-कालमें आचार्य नागहस्ति-द्वारा प्रस्थापित सरस्वती-देवीकी जो खण्डित मूर्ति मथुराके ककाली टीलेसे प्राप्त हुई है वह न केवल जैन सरस्वतीकी ही सर्वप्राचीन उपलब्ध मूर्ति है वरन् अन्य सम्प्रदायो द्वारा निर्मित उक्त देवीकी श्रात मूर्तियोंमें सर्वप्राचीन मानी जाती है। मथुरामें जैन सरस्वतीकी वैसी मूर्तियाँ बहुत पहलेसे ही बनने लगी थीं इसमें कोई सन्देह नहीं है और इसी कारण ज्ञान-जागृतिके उस प्रथम महान् जैन आन्दोलनको सरस्वती-आन्दोलनका नाम देना उपयुक्त ही है।

मथुरासे प्रचारित इस आन्दोलनका परिणाम यह हुआ कि दक्षिण एवं उत्तर भारतके वृन्दकुन्द, शिष्याय, कुमारनन्दि, विमलसूरि, उमास्वामी

आदि अनेक निष्कर्षाचारों से इसी क्यूंके आत्मके पुनर् हो शब्द-रचनाओं से  
संज्ञा ही नये और आत्मके अंतर्गत ही आचार्य बुद्ध करके गये ।  
अतः प्रत्यक्ष ही ई । ये ही वस्तु वस्तु विचारणके निष्कर्षाचारों से करने  
आचार्य आत्मज्ञानको अन्तर्गत एवं निश्चित कर करने तथा आत्म-  
वस्तुओंके आचारके अन्तर्गत ही करवाने की वस्तु आचार्य और प्रत्यक्ष-  
बुद्धोंके ही अन्तर्गत शब्द करने आचार्य कर रहे । अतः आत्म-ज्ञानको  
अंतर्गत परमाणु अन्तर्गत आर शब्द ही बनती रही । इस आचार्य संज्ञाका  
एक परिच्छेद यह हुआ कि किन्तु अन्तर्गतको अनुमानने टाकना चाहते थे  
अतः यह शब्द और प्रत्यक्ष ही ई के अन्तर्गत वस्तु ही अतः अन्तर्गत  
अन्तर्गत निष्कर्ष आत्मज्ञान और अन्तर्गत अन्तर्गत एव ही अन्तर्गत  
अन्तर्गत ही दिखता ही वस्तु । अन्तर्गत आचार्य के आर्य अन्तर्गत आत्म-  
वस्तुओंको ही बुद्ध बुद्ध ही निश्चित करने करने और अन्तर्गत अन्तर्गत  
परिच्छेद आर-अन्तर्गत ही वस्तु आर शब्द बनती रही ।

[illegible]

किन्तु वह परस्पर मतभेदके कारण विफल प्रयत्न हुआ। इससे स्पष्ट है कि द्येताम्बर और दायद दिगम्बर दोनों ही संघोंका कट्टर एवं बहुभाग अश मथुरायालोको सन्देहकी दृष्टिसे देयता था और उन्हें दूसरे पक्षकी ओर झुका समझता था। इस प्रकार जैन धर्मका एक प्रमुख केन्द्र बने रहने हुए भी मथुरामें ८वीं-९वीं शती ई० पर्यन्त दिगम्बर द्येताम्बर भेद उत्पन्न न होने पाया।

मथुरासे प्राप्त प्राचीन जैन अवशेषोंके सम्बन्धमें अनेक देशी एवं विदेशी पुरातत्त्वज्ञों, कला-मर्मज्ञा, इतिहासकारा और विद्वानोंने जो अपने अभिमत प्रकट किये हैं उनसे उक्त अवशेषोंका धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व भली प्रकार प्रकट है। उनसे भारतवर्षकी सांस्कृतिक अभिवृद्धिमें प्राचीन मथुराके जनोंके प्रशसनीय योगदानका मूल्यांकन करना भी सम्भव हो जाता है।

**नाग वंश**—नाग जाति भारतकी एक आर्योत्तर ही नही बरन् प्रागार्य आदिम जाति थी। महाभारत युद्धके उपरान्त उसकी शक्ति एकवारगी प्रबल वेगसे जागृत हो उठी थी और उसने वैदिक अथवा आर्य क्षत्रिय राज्याकी प्रायः समाप्त हो कर दिया था। नाग जातिके ही काशीके उरग वंश और तदनन्तर मगधके शिशुनाक वंशने प्रथम ऐतिहासिक भारतीय साम्राज्यकी नींव डाली थी। नाग जातिके क्षत्रियोंको ब्राह्मण लोग घ्रात्य-क्षत्रिय कहते थे। नागोंके अतिरिक्त वैसी ही प्रागार्य अन्य जातियोंके भी अनेक घ्रात्य क्षत्रिय वंश उदयमें आ गये थे। घ्रात्यक्षत्रिय मुख्यतया श्रमण-परम्पराके उपासक थे, उनमें-से वज्जि, लिच्छवि, शल्ल, मल्ल, मोरिय, शाक्य आदि अनेक वंशोंने अपने गणतन्त्र स्थापित कर लिये थे। किन्तु नन्द एवं मौर्य सम्राटोंके बढ़ते हुए प्रतापके सम्मुख ये सभी गणतन्त्र हस्तप्रभ हो गये थे और शनैः शनैः मगध साम्राज्यमें समा गये। पंजाबमें आर्य जातियोंके भी कुछ गणतन्त्र थे, किन्तु सिकन्दरके आक्रमण और तदनन्तर आय विदेशी शासकोंके कालमें ये सब क्षीणशक्ति और छिन्न भिन्न हो

करी है। कुशाभोरी अवस्थिसे काय कटकर मज्जावाति फिरसे प्रकाशमें आती। उसके काय-ही-काय अनेक पुराने कवराजों की फिरसे बत्तायम् हुए। यह मान्यताका कुछरा ऐतिहासिक सुप्रमाण था।

बाद-बदलकर पुनः इतिहासके उद्धारकर्ता स्व ही राष्ट्रीयता के अन्तर्गतके अनुसार इन कायके प्रथम काय कावर्षधरा कराने विरिचाने हुआ था। सुनोके धामन-कालमें यह नगर उदराभा का राज्य-वर्षधिरिचिता इतिहास विचारण्यम् था। ई. पू. अवधन ११ की ईन मज्जा काय राजा विरिचिता पादक निबुल्ल हुआ और उसके अनन्तर जीवित राज्यका अवधनम् और वंशधरी अवध धरती ई. पू. के बादके अवधन तक इन अवधन कायन विवा। सुनोके पत्तनके बाद ही काय पादे काय स्वतन्त्र हो करे है किन्तु कर्मकीर्तिमें विख्यातितके अन्तर्गतके अवध तथा उदराभा मज्जा-कटारतीके कारण काय जीव कर्षी पादकालीकी विरिचिता कटकर मज्जावातिके विरिच पचावतीमें है करे। यही अवधन ई. पू. २ के अनु ७८ ई. पचास मुद्रकाली धिगुलमी वज्जकाली सुप्रकाश कटकर, अवधन विरिचन आदि कायपत्तनी अवध स्वतन्त्र यादुन विवा। कर्मिक-काय कटार कायमें कुशल धरितना हुआ विरिचन होमेके कारण कायकीय मज्जावातिमें करे करे और हीमकायार एवं कवचपुरके वन पर्वतमें पर्वत पर्वत कई बहनों तक पाद कले थी। दूसरी कटाली ई. के कटपत्तनीं कुशल कायामके अन्तिम विरिचि है कृति विरिचनर कवेककथ होठे हुए कया कटकर वाक्पिपुटीमें कृति और करे कर्षी राजवाली कटकर कर्षीके काय-कायके अवधन पाद करे करे। इस कट-कटाली कटका प्रथम कायक मज्जा-काय (अवधन मज् १४०-१४ ई.) का और इसी किम् यह वंश मज्जा-काय वंश कटकरा है। कहा काय ई कि कटकायके वंश विरिचि कट हो करे है इस काय काय-कायमें यह वंश कापके वंशके कायों की हीमकायमें अन्तिम हुआ।

ऐसा कटाली होय ई कि कुशल कायके काय-कायमें वाक्पिपुटीका

नव-नाग उत्तर प्रदेशके पूर्वी भागका एक स्वतन्त्र शासक था। उसका उत्तराधिकारी वीरसेन ( १७०-२१० ई० ) नवनागसे भी अधिक प्रतापी था। पञ्चावमें यौधेयो-द्वारा कुपाणोंके विरुद्ध किये गये विद्रोहसे उत्पन्न अव्यवस्थाका लाभ उठाकर वीरसेनने अपनी शक्तिका विस्तार करना प्रारम्भ किया। उसने शीघ्र ही कौशाम्बीसे मथुरापर्यन्त समस्त देशपर अधिकार कर लिया और कुपाणोंको उत्तर प्रदेशसे निकाल बाहर किया। उसने पञ्चावतो और मथुराको अपनी उपराजधानियाँ बनायीं और उनमें अपने प्रतिनिधियों एवं उपशासकोंके रूपमें नाग उपराजवंश स्थापित किये। पञ्चावतोका यह नागवंश टाकवंश कहलाता है और इसमें भीमनागसे गण-पति नाग पर्यन्त छह-छह शासकोंने सन् २१०-३४४ ई० पर्यन्त राज्य किया। मथुराका वंश सम्भवतया यदुवंश भी कहलाता था। इस वंशने भी प्रायः इतने ही काल राज्य किया किन्तु इसके अमीतक केवल दो राजाओं—कीर्तिपेण और नागसेनके ही नाम प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त अम्बालेके निष्कट नृधन नामक स्थानमें, बुलन्दशहर जिलेके इन्दुपुरमें और बरेली जिलेके अहिच्छत्रमें भी नागराज्य स्थापित हुए। सुदूर दक्षिणमें भी एक शक्तिशाली नाग मण्डल था और राजतरंगिणीके अनुसार कश्मीरमें भी एक नाग वंशका राज्य रहा प्रतीत होता है। किन्तु उत्तर भारतका इस कालका प्रमुख और प्रधान नाग राज्यवंश कान्तिपुरीका भारशिव वंश ही था।

वीरसेनके उपरान्त ह्यनाग, भयनाग, बहिननाग, चरजनाग और भवनागने क्रमशः सन् २१५ ई० पर्यन्त राज्य किया। इन नाग-नरेशोंने कुपाणोंको अन्ततः भारतवर्षको सीमाओंके बाहर खदेड़ भगाया और उन्हें ईरानके सासानी शाहशापुर ( ३री शताई०का मध्य ) को धारण लेनी पड़ी। कुपाणोंका अन्त हो जानेके बाद भी मगधमें उनके महाक्षत्र शत्रु-स्पर्क वंशजोंका शासन चलता रहा। यही वंश सम्भवतया मुरण्ड वंश भी कहलाता था। काम्बुज ( हिन्दचीन ) के राजाका एक दूत सन् २४५ ई० के लगभग पाटलिपुत्रके मुरण्डराजाके दरबारमें आया था।





लाएन था। सर्प साछन विशिष्ट तीर्थकर पादर्वकी परम्पराभवन नागजाति नागमण्डित यागिराज शिवकी ओर भी आकृष्ट हुई इसमें क्या आश्चर्य।

**वकाटक वंश**—नवनागवंशका अन्तिम शासक भवनाग पुत्रहोन था, उसके मात्र एक कन्या थी जिसे उगने अपने सामन्त विन्ध्यदावित वकाटकवे पोत्र और प्रवरसेन वकाटकके पुत्र गौतमापुत्रको विवाह दो था। गौतमी-पुत्रकी शीघ्र ही मृत्यु हो गयी और उसका पुत्र रुद्रसेन वालक था, किन्तु वह अपने पितामहके छाटे-से राज्यका ही नहीं बल्कि अपने नानाके विशाल राज्यका भा उत्तराधिकारी था। भवनागकी मृत्युके उपरान्त प्रवरसेनने अपने पोतेके सरदरके रूपमें भारशिष और वकाटक दोनों राज्यांको सम्मिलित करके शासन चलाया। यह बड़ा क्षितिशाली राजा था। चारा दिशाओंमें उसने दिग्विजय की, विशेषकर मालवा, गुजरात और सौराष्ट्रको विजय करके उनमें ४थी शती ई० के प्रारम्भमें उक्त देशोंमें चण्ड-वंशी शक क्षत्रपोंके शासनका प्रायः अन्त कर दिया था। अब वकाटक क्षिति भारतवर्षकी सर्वोपरि राज्य-शक्ति थी। सन् ३३५ ई० में प्रवरसेनकी मृत्यु हुई और उसका पोत्र अब उत्तराधिकारी रुद्रसेन प्रथम ( ३३५-३६० ई० ) गद्दीपर बैठा। उसके राज्यमें उत्तरप्रदेश, मध्यभारत, मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र तथा दक्षिणके भी कुछ भाग शामिल थे। उसके अन्तिम दिनोंमें शकक्षत्रप रुद्रवामन द्वितीयने फिरसे सौराष्ट्र एवं गुजरातपर अधिकार कर लिया। रुद्रसेनके पश्चात् पूष्यसेन वकाटक ( ३६०-३८५ ई० ) राजा हुआ। इसका पुत्र रुद्रसेन द्वितीय था। इस कालमें मगधमें गुप्त साम्राज्यका उदय हो रहा था। वकाटक क्षिति अब भी प्रबल थी और पश्चिमी शक क्षत्रपोंका अन्त करनेमें विशेष रूपसे सहायक हो सकती थी। अतः गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीयने अपनी कन्या प्रभावतीका विवाह रुद्रसेन द्वितीयके साथ कर दिया। विवाहके पाँच वर्ष उपरान्त ही रुद्रसेनकी मृत्यु हो गयी और प्रभावतीने राज्यकार्य संभाला। वकाटक सेनाओंको सहायतासे गुप्तसम्राट् गुजरात सौराष्ट्र आदिसे भी शक सत्ताका उच्छेद

करनेके बाद न दूर कीर जगहोंकी खुशुबे उभराने बहारके प्राण की  
 दुःख कासागरका ही रस ही बना ।

वै बहान-बर्षादी नरेश की बगवत-कर्मजु है । मर्त्य-ही भक्ति दसके  
 मानवकाय की वैभव उल भाग्यके विविध केगोने बुला-बला  
 रहा बिम्बु ब्रह्म बनेके लवण न केष्ट कीगए कीर बर्षा-क हा की है ।  
 इतर का नरे नर पने नरे नरे निरन्तर प्राण ही बना बिना नर  
 मान १ उदाहरणके नर बर्षा-कर्म केगोने । बिम्बु ब्रह्म  
 बर्षा-कर्म केगोने १ बुद्धकाय ब्रह्म ब्रह्मकाय इतर की कीर  
 नरेश के नरेश का नरेश ललका-कीर छोटे-बड़े लाली बना के प्राण  
 ब्रह्मकाय बना बना है । कीर ब्रह्म काय-ब्रह्मकाय बुद्ध ही भाग्य-कर्मके  
 ब्रह्मकायके होता बना बना । कीर ब्रह्मकाय कायकाय काय ब्रह्मकाय  
 ब्रह्मकाय बिम्बु ब्रह्मकाय ब्रह्मकाय केगोने कीरकाय ब्रह्मकाय ब्रह्मकाय  
 होने की । दस बर्षा-कर्मके भाग्य-कर्म कीर ही कीर कीर-कीर ब्रह्मकाय  
 दस ब्रह्मकाय होने नरे ।



## अध्याय ५

### प्राचीन युग—चतुर्थ पाद

उत्तर भारत ( सन् ३००-१००० ई० )

चौथी शताब्दी ई० के पूर्वार्धमें नाग-वकाटण युगकी समाप्ति और गुप्त साम्राज्यके उदयो नाग-हीना-ताम्र भारतीय इतिहासके प्राचीन युगका पूर्वार्ध समाप्त हो जाता है और उसके उत्तरार्धका प्रारम्भ हो जाता है । इस उपगन्त कालमें ऐतिहासिक साधनाकी विविधता एवं प्रचुरताके कारण इतिहासकारका काम भी पहिलेकी अपेक्षा अधिक सुगम हो जाता है ।

**गुप्त वंश**—गुप्त वंश मूलतः सम्भवतया प्राचीन भारत्य जातिका ही एक ऐसा वंश था जिसने वैश्य वृत्ति अंगीकार कर ली थी । किन्तु प्राचीन कालमें और विशेषकर श्रमण परम्परायें अनुयायी शास्य आदिकोंमें वर्ण अमल नहीं बरतत था और वर्णपरिवर्तन सहज था एवं व्यक्तिगत स्वेच्छा-पर निर्भर था । अतः प्रारम्भिक गुप्तलोक राज्याधिकारी और मामल आदि भी रहे प्रतीत होते हैं । चन्द्रगुप्त मौर्यके शासन-कालमें उसका एक कर्मचारी जो गिरनार प्रदेशका शासक था वैश्य पुष्यगुप्त था । मयूराके एक शककालीन जैन शिलालेखमें एक गोप्तिपुत्रका उल्लेख है जो शकों और पहलवोंके लिए 'कालङ्गाल' सृज्ज कहा गया है । उसकी जननी गुप्त वंशकी कया रही प्रतीत होती है । इसी प्रकार भरद्वाजके एक स्तम्भ लेखमें एक अय गोप्तिपुत्रका उल्लेख है जिसका नाम राजा विसदेव था ।

ऐतिहासिक गुप्तवंशका प्रथम पुरुष राजा श्रीगुप्त था जिसने नाग-वकाटकों द्वारा मगधसे शक शासनका उच्छेद कर दिये जानेके समय

नाकाम्यदे ४ योद्धव दुर्बल की ओर अपना एक छोटा-सा राज्य स्थापित कर  
 दिया था। वह प्रदेशमें बौद्ध धर्मकी प्रवृत्ति कुछ अधिक थी यह राज्य  
 भी इसी धर्मका अनुयायी रहा प्रतीत होता है। मौर्यका अपने निज  
 अपने बौद्ध धर्मियोंके विचारोंके लिए एक विद्याया निर्माण की  
 कठ्ठा बहस्य चला है। कबका उत्तराधिकारी गटेन्द्रकुमार का मिलने  
 'अश्वाराज' परपी कारण की। इसका पुत्र कन्दकुमार प्रथम का ओर कबने  
 'अश्वाराज' विचार उत्पत्ति कारण की। ऐतिहासिक कुछ बेटा की प्रथम  
 ब्रह्मर का ओर कम् ३१९-२ ई में इसके राज्यपिबैरके ही कुछ  
 मन्त्रीकी प्रवृत्ति हुई गया जाती है। उत्तरी मन्त्रमें वह समय निम्नलिखित  
 परिस्थितियों का। पाटलिपुत्रकी कबका अधिकार था। कन्दकुमारने  
 पाटलिपुत्रके निम्नलिखित प्रदेशों परकाम्य कम्पा दुर्गारोपीके साथ निम्न  
 करके अपनी परिस्थिति विस्तार किया। इन समयमें के कारण पाटलिपुत्र  
 की कबका अधिकार ही गया ओर निम्नलिखितका सम्पूर्ण प्रदेश इसके  
 राज्यका होत गया। उत्तरकी ओर उत्तर प्रदेशमें की अपने अपने  
 राज्यका विस्तार किया। निम्नलिखितके प्रति दुर्गमता प्रकट करनेके लिए  
 कबने निम्नलिखितका दुर्गमारीकी वृत्ति की अपने साथ ही अपनी मूर्धन्य  
 पर अधिक कठोर ओर मन्त्र परिस्थिति कोच कोच कुछ कुछ कुछ की  
 बेटोंके उत्तर निम्नलिखितके विचारकुमारकी मन्त्र कठलिखितकी कम्पा।  
 कन्दकुमार प्रथम सम्भवतया कम् ३१९-३१८ ई तक राज्य किया ओर  
 कम् ३१९-२ ई में सम्भवतया कबने पाटलिपुत्रमें अपना राज्यनिर्देश  
 करके स्वयंकी ब्रह्मर घोषित किया था।

समुद्रगुप्त ( ३२८-३८८ ई ) एक वरम मन्त्री ओर मन्त्र  
 विज्ञा ब्रह्मर का अपनी परिस्थितिके कारण वह राष्ट्रीय परिस्थितिके  
 स्वरूपका मन्त्र जाता है। राज्यमें की मन्त्रब्रह्मर सम्भवतया गया  
 काफले केन्द्रमें इसके मन्त्र पाटलिपुत्रके इसके निम्नलिखित किया किन्तु  
 कन्दकुमार कीम ही विद्युत्का सम्भव कर दिया। समुद्रगुप्त वह विचार

यके लिए निकला । सर्वप्रथम उसने अहिच्छत्र-नरेश अच्युत, पद्मावती-  
 रेश भारशिव नागसेन और पूर्वी पञ्जाबके कोटकुल वशी नरेशको विजय  
 करके अपनी आर्यावर्तकी विजय पूर्ण की । तदनन्तर उसने दक्षिणकी  
 विजययात्रा की और दक्षिणकोसलके राजा महेन्द्र, महाकान्तारके  
 यात्रराज, कोशलके मटराज, पिष्टपुरके महेन्द्रगिरि, कोटदूरके त्रामिदत्त,  
 ऐरण्डपल्लके दमन, कांचीके विष्णुगोप पल्लव, अवमुक्तकके नीलराज,  
 वेगिके हस्तिवर्मन, पाल्लकके उग्रसेन, देवराष्ट्रके कृवेर, वीम्यलपुरके  
 घनजय आदि विभिन्न छोटे-बड़े राजाओंको पराजित करके उनसे  
 अपनी अधीनता स्वीकार करायी । उसकी दक्षिण यात्राका लाभ उठाकर  
 उत्तरके अनेक नाग, वकाटक तथा अग्य राजाओंने विद्रोह कर दिया था,  
 अतः लौटकर उसने उनका नमन किया और उनमें-से अनेकोंके राज्यको अपने  
 साम्राज्यमें मिला लिया । समतट, कामरूप, नेपाल, दवाक और कर्तूपुर  
 आदि प्रत्यन्त राज्योंको उसने अपना करद बनाया, आठविक राजाओंको  
 परिचारक बनाया और मालव, अर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर आदि  
 गणराज्योंसे भी अपनी अधीनता स्वीकार करायी । अवशिष्ट शक, मुरुष  
 आदि राजाओंका भी दमन किया । इस प्रकार इस महान् विजेताने  
 प्रायः सम्पूर्ण भारतमें अपनी विजय-पताका फहरायी और पाटलिपुत्रके  
 गुप्त साम्राज्यको अपने विस्तारकी चरम सीमापर पहुँचा दिया । इस  
 उपलक्ष्यमें उसने नवीन सिक्के चलाये तथा अश्वमेध यज्ञ किये । किन्तु ये  
 यज्ञ प्राचीन वैदिक शैलीके हिंसा-प्रधान यज्ञ नहीं थे धन-दान-पुण्य, दोन-  
 हरिद्रोंकी सहायता आदि ही इन संकेतिक यज्ञोंका प्रधान अंग था ।  
 इस सम्राट्के गुणों, विजयों एवं कार्यकलापोंका सुन्दर वर्णन प्रयागके  
 अशोक स्तम्भपर उत्कीर्ण इस नरेशकी विस्तृत मस्कृत प्रशस्तिमें पाया  
 जाता है जिसका रचयिता उसका सन्धिविग्रहिक महादण्डनायक हरिषेण  
 था । सम्राट् समुद्रगुप्त विद्याव्यसनी, संगीत और कलाका प्रेमी, वीरपराक्रमी,  
 कुशल सेनानायक, महान् योद्धा, उदार दानी और धार्मिक नररत्न था ।



कुछ विद्वानोंके मतसे यहो था । उसके सिक्के भी मिलने हैं । चीनी यात्री  
फ्राह्यान (३९९-४१४ ई०) ने इसीके समयमें भारत-यात्रा की थी ।

**कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य ( ४१४-४५५ ई० )** पट्ट महा-  
देवी ध्रुवदेवीसे उत्पन्न चन्द्रगुप्तका पुत्र था । इसके समयमें विशाल गुप्त  
साम्राज्य अक्षुण्ण रहा, बल्कमे लेकर बंगालकी खाड़ी पर्यन्त उसका अवा-  
धित शासन था । गुप्तशक्ति इस समय अपने चरम शिखरपर थी, सर्वत्र  
मुख्य शान्ति और समृद्धि थी । सम्राट् परम भागवत था किन्तु जैन, बौद्ध  
आदि भय धर्म या स्वतन्त्रतापूर्वक फल-फूल रहे थे । इसने भी अश्वमेध  
यज्ञ किया । मध्य भारतमें पुष्यमित्राने विद्रोह किया किन्तु कुमार स्कन्द-  
गुप्तने उनका दमन किया । बर्बर ह्वेन त्थुणोंके आक्रमण भी इस सम्राट्का  
अन्तिम दिनमें प्रारम्भ हुए । इसने नये सिक्के भी चलाये । नालन्दा विश्व-  
विद्यालयका उदय भी इसीके समयमें हुआ बताया जाता है ।

**स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य ( ४५५-४६७ ई० )** का बड़ा भाई  
पुरुगुप्त उसका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी था, किन्तु पुष्यमित्रा और हूणोंके दमनमें  
अदभुत धीरता प्रदर्शित करनेके कारण स्कन्दगुप्त लोकप्रिय हो गया था  
और पिताकी मृत्युके बाद वही साम्राज्यका अधिपति हुआ । उसने सिंहासन-  
पर बैठते ही समस्त प्रान्तोंमें शासक नियुक्त करके शासन-व्यवस्था ठीक  
की । उसने पर्णदत्तको सुराष्ट्रका गवर्नर बनाया । पर्णदत्तके पुत्र चक्रपालितने  
जो जूनागढ़ ( गिरनार ) का नगरपाल था इतिहासप्रसिद्ध सुदर्शन तालका  
जीर्णोद्धार कराके वहाँ शिलालेख अंकित कराया था । स्कन्दगुप्तके  
शासनकालमें हूणोंके आक्रमण बराबर होते रहे और उसका सारा जीवन  
उनके साथ युद्ध करते ही बीता । मिटारीकी विष्णुमूर्तिके लेखमें इस  
सम्राट्-द्वारा देशको हूणोंसे श्राण दिलानेका वर्णन है । युद्धोंके कारण देशकी  
समृद्धि कम हो गयी, राजकोष भी खाली हो गया, उसके सिक्के भी हलके  
तथा मिश्रित स्वर्णके हैं, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसने साम्राज्यको  
अक्षुण्ण रखा । गुप्त वंशका यह अन्तिम महान् सम्राट् था ।





नरेश प्रमुख हैं। इन्होंने राक्षसियोंने अन्तर्गत जूनाका उच्छेद किया। गुप्त नरेशोंका मूल्य अन्तर्गत था, यशस्वी कर्तृ शासकों हो गये थे। ५३५ ई० में भानुगुप्तकी मृत्यु हुई और कुमारगुप्त तृतीय गद्दीपर बैठा। तदनन्तर दामोदरगुप्त राजा हुआ और उसने लगभग ५५० ई० तक राज्य किया। इस कालमें कन्नोजमें ईशानवर्मन् मौग्यरिने स्वतंत्र होकर सम्पूर्ण मध्यदेशमें गुप्त शासनका अन्त कर दिया। दामोदरगुप्तके उपरान्त महासेनगुप्त राजा हुआ। छठी शतीके अन्त तक वह जीवित रहा। उससे समयमें गुप्त वंशकी शक्ति फिर कुछ मँभली। उसके पुत्र कुमारगुप्त देवगुप्तने मालवापर अधिकार कर लिया और वहाँ स्वतंत्र शासकी शक्ति राज्य किया। यह महाराज देवगुप्त जैनधर्मानुयायी था। इसने वगालके गुप्तवंशी शासक नशाकके साथ मिलकर गृहवर्मन् मौग्यरिने मुद्रमें पराजित किया और मार डाला। इसपर गृहवर्मन्के माले, थानेश्वरके राज्यवर्धनने देवगुप्तपर आक्रमण किया और उसे पराजित किया। इस पराजयसे देवगुप्तका चित्त संसारसे विरक्त हो गया और वह अपने ही वंशके जैन मुनि हरिगुप्तसे दीक्षा लेकर जैन साधु हो गया। उससे साथ ही मालवा व मध्यभारतमें सदाके लिए गुप्तवंशका अन्त हो गया। उसके पिता महासेनगुप्तने अपनी बहनका विवाह थानेश्वरके आदित्यवर्धनके साथ कर दिया था और देवगुप्तका छोटा भाई माधवगुप्त अपनी बुआके पास थानेश्वरमें ही रहता था, अतः राज्यवर्धन और हर्षके साथ उसकी मैत्री रही। महासेनगुप्तके बाद पाटलिपुत्रके गुप्त राजाका माधवगुप्त ही स्वामी हुआ। उसके उपरान्त आदित्यसेन, देवगुप्त द्वितीय, विष्णुगुप्त और जीवितगुप्त क्रमशः गुप्तोंके सिंहासनपर बैठे। ७वीं शतीके अन्तके लगभग जीवितगुप्तकी मृत्युके साथ-साथ गुप्त वंश और उसके राज्यका अन्त हो गया।

यद्यपि गुप्त साम्राज्यका अभ्युदय काल समुद्रगुप्तसे लेकर स्वर्द्धगुप्त पर्यन्त लगभग छेड़ सौ वर्षका ही रहा तथापि ४ शी से ६ शी ई० पर्यन्त तीन सौ वर्षका काल भारतीय इतिहासका गुप्तयुग कहलाता है।



तीनों ही प्रधान धर्म समुन्नत दशामें सहयोग एव सद्भावपूर्वक फले-  
 फूले । गुप्तवशमें प्रधानतया भागवत धर्मको प्रवृत्ति थी और प्रमुख  
 सम्राटोंके समय वही राज्यधर्म था किन्तु इस वशके कई, विशेषकर उत्तर-  
 वर्ती, राजे बौद्ध धर्मके अनुयायी हुए और कुछ एक जैन धर्मके भी ।  
 राज्यवशके स्त्री-पुरुषोंमें स्वेच्छा और स्वरुचिके अनुसार इन तीनों ही  
 धर्मोंके अनुयायी रहे पाये जाते हैं । गुप्त-नरेश सर्वधर्मसहिष्णु थे । धार्मिक  
 धर्माचार या प्रतिबधोका उस कालमें कोई चिह्न नहीं मिलता । जहाँतक  
 जैनधर्मका सम्बन्ध है वह समुन्नत दशामें था । कर्णटिकको केन्द्र बनाकर  
 प्रायः पूरे दक्षिणायनपर दिगम्बर सम्प्रदाय व्याप्त था । गुजरात, सौराष्ट्र,  
 पश्चिमी राजस्थान और मालवामें श्वेताम्बर सम्प्रदाय प्रमुख था ।  
 उत्तरायनमें मथुरा, हस्तिनापुर, अहिच्छत्र, भिन्नमाल या थोमाल, कोल,  
 उच्चैनगर, कोशाम्बी, देवगढ़, विदिशा, श्रावस्ती, वैशाली, वाराणसी,  
 पाटलिपुत्र, राजगृही, चम्पा, पहाड़पुर आदि जैनधर्मके प्रसिद्ध केन्द्र थे ।  
 पञ्जाबसे लेकर बंगाल तक जैन मुनियोंका स्वच्छन्द विहार था । प्रधानतः  
 दिगम्बर श्वेताम्बर उभय सम्प्रदायोंमें विभक्त तथा अनेक गण गच्छ  
 शास्त्रा गुरु अवयवा आदिके रूपमें सुसंगठित चतुर्विध जैनसंघ एक परिपुष्ट  
 लोकपाल था और जन-जीवनपर उसका पर्याप्त नैतिक प्रभाव था ।  
 गुप्तकालीन उपलब्ध जैन अवशेषोंमें मथुरासे प्राप्त प्रस्तरमयी जिनमूर्तियाँ,  
 यक्ष-यक्षिणोंकी मूर्तियाँ एव कई शिलालेख, कहाऊँ ( जिला गोरखपुर )  
 का पंच जिनदेवकी प्रतिमाओंमें युक्त लेखांकित जैनस्तम्भ, पहाड़पुर  
 ( बंगाल ) से प्राप्त तथा पंचस्तूपारवयी दाम्नाके दिगम्बर गुह्योंद्वारा  
 उन्मूलन कराया हुआ शाल्यपत्र जिसमें बटगोहालीके जैन अधिष्ठानकी किसी  
 ब्राह्मण दम्पतिद्वारा दान दिये जानेका उल्लेख है, विदिशाके निकट उदय-  
 गिरिके शिलालेख मुक्त जैन गुह्यमंदिर, देवगढ़ ( जिला झाँसी ) के प्राचीन  
 जैनमंदिर आदि प्रमाण हैं । मगधके जिस लिच्छवि गणकी सहायतासे तथा  
 लिच्छवि राजकुमार कुमारदेवीके साथ विवाह करनेके कारण चन्द्रगुप्त



चाण्डाल कहते हैं । वे नगरके बाहर रहते हैं और जब नगरमें आते हैं तो सूचनाके लिए लकड़ी बजाते चलते हैं जिससे लोग जान जायें और बचकर चले । जनपदमें कोई भी सूअर या भुर्रा नहीं पालता, न जोवित पशुओंको बेचता है । न कहीं सूनागार और मद्यकी दुकानें हैं । केवल चाण्डाल ही मछली मारते, मृगया करते और मांस बेचते हैं ।' चीनी यात्रीके वर्णनसे प्रकट इस तरहका आचार-विचार जैनधर्मके व्यापक प्रभावका ही फल रहा होगा । मद्य-मांस, मछली, प्याज, लहसुन, मृगया आदिका सेवन न हिंदू धर्ममें वर्जित था और न बौद्धधर्ममें । इन वस्तुओंका ऐसा सर्वथा अभाव जैन प्रभावसे ही सम्भव हो सकता था । सारांश यह कि गुप्तकालमें उदार गुप्त-नरेशोंके प्रश्रयमें जैनधर्मका प्रभाव एव प्रसार देशमें पर्याप्त व्यापक था, यह धर्म उस कालमें समुन्नत दशामें था और लोक-जीवनका एक प्रमुख अंग था । देशकी सांस्कृतिक अभिवृद्धि, कलाकृतियों, विविध साहित्य एव विज्ञानके निर्माण विकासमें भी तत्कालीन जैनोंका योगदान कम नहीं था । श्वेताम्बर आगमोंका सकलन भी इसी युगमें (४५३ई०) में देवद्विगणि-द्वारा कलभोमें हुआ था ।

हूण—श्वेत हूण मंगोलियाकी निवासी एक अत्यन्त बर्बर, युद्धप्रिय और खानाबदोश जाति थी । इन्हींके दबावसे पीड़ित होकर २ वीं शती ई० पू० में यूची जाति स्वदेशसे खदेड़ी जाकर सीथियापर जा टूटी थी और परिणाम स्वरूप शकोंका भारतमें प्रवेश हुआ था । एक बार फिरसे हूणोंके आक्रमणोंसे त्रस्त होकर १ वीं शती ई० में यूचीलोग कुपाणोंके रूपमें भारतमें प्रविष्ट हुए । भारतके कुपाण साम्राज्यकी प्रबल शक्तिके कारण हूणोंने उन्हें फिर तग नहीं किया और वे पश्चिमकी ओर यूरोपीय देशोंपर टूट पड़े जहाँ उनके दुर्दान्त आक्रमणोंने विशाल रोमन साम्राज्यको छिन्न-भिन्न कर दिया । पश्चिमी अगुमें हूण सरदार एटिल्लाका नाम चिरकाल तक भयका संचार करता रहा । पाँचवीं शती ईसवीके द्वितीय पादमें इस भयकर जातिने फिर भारतकी ओर रुख किया । गांधार आदि भारतके सीमान्त प्रदेशोंपर



वह विजय दिननी स्थायी रही थी। तोरमाण या तोरराय उसके उपरान्त  
 भी जीवित और दक्षिणायनी रहा। ५१५ ई० के लगभग उसकी मृत्यु  
 हुई और उसका पुत्र मिहिरकुल हूणराज्यका अधिपति हुआ। वह भी  
 भयकर योद्धा था किन्तु अपने पिताकी भाँति मध्य और उदार धामन नहीं  
 था, धन दूर और अत्याचारी था। उसके सिक्कोंमें इसका छाप होना  
 सूचित होता है। एरन और ग्वान्मिरमें उसने निलालेख भी मिले हैं।  
 अपनी अमहिष्णुता, क्रूरता और अत्याचारोंके कारण वह सबका अप्रिय  
 हो गया। इसने साकल या स्याल्कोटको अपनी राजधानी बनाया था और  
 बालादित्यको भी पराजित किया था, किन्तु सन् ५३०-३१ में मामकेके  
 यशोधर्मने उसे बुरी तरह हराया। फल-स्वरूप उसने भागकर कश्मीरमें  
 शरण ली और वहाँ अपने आश्रयदाताका ही छन्दसे मारकर कश्मीरका  
 राज्य हथिया लिया। ५४२ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। साकलका राज्य  
 उसके भाईने पहले ही हस्तगत कर लिया था। मिहिरकुलने बौद्धोंपर  
 बहुत अत्याचार किया था जिसके लिए बालादित्यने जो बौद्ध या उसे  
 फिर परास्त किया कहा जाता है। इसके उपरान्त हूणोंका फिर कोई  
 उल्लेख नहीं मिलता। कश्मीर और पश्चिमी पंजाबमें जो हूण राज्य जम  
 गये थे तथा उत्तर प्रदेश और मध्य भारतमें जो फुटकर हूण बस गये थे  
 धीरे-धीरे उनका भारतीयकरण हो गया और वे भारतीय समाजमें ही  
 खिल-मिलत हो गये। गुप्त साम्राज्यके पतनका प्रधान श्रेय हूणोंको ही है।

प्राचीन जैन अनुश्रुतिमें भगवान् महावीरके निर्वाणसे एक सहस्र वर्ष  
 बाद कल्किका अन्त कहा है जिसके अर्थ है कि ८७३ ई० में उसका अन्त  
 हुआ। उसने ४० वर्ष पर्यन्त अत्याचार पूर्ण राज्य किया बताया जाता  
 है और क्रूरता, बर्बरता, अनीति तथा धर्म, धर्माचारों एवं धर्मापत्तियोंका  
 विध्वंस, आदि उसके राज्यकी विशेषताएँ बतायी जाती हैं। उसकी मृत्युके  
 उपरान्त उसके पुत्र अजितनयका धर्मराज्य स्थापित हुआ कहा गया है।  
 अतः जिस हूण सरदारने कुमारगुप्त प्रथमके समय सन् ४३३ ई० के लगभग





उसकी अनेकों विजयाका तथा उसके द्वारा हूणोंको बुरी तरह पराजित करने आदिका वर्णन है और लिखा है कि भारतके सभी नरेशोंने यशोधर्मन्के नम्मुख मन्त्रक झुका दिया था। इस अद्भुत वीरका पुरावर अमोक्तक ज्ञात नहीं हो सका है। उसके साम्राज्यका भी उसीके साथ अन्त हो गया। हूणोंकी शक्तिका तो उसने अवरोध कर ही दिया किन्तु साथ गिरते हुए गुप्त साम्राज्यको भी एक ठोकर लगा दी। अब साम्राज्यके विभिन्न सामन्त और प्रान्तीय शासक खुले रूपसे स्वतन्त्र हो उठे।

**कन्नौजका मौखरि वंश**—यह एक प्राचीन मागध वंश था। गुप्त साम्राज्यकी स्थापनाक उपरान्त गुप्तोंके करद सामन्तोंके रूपमें गयाके समीपवर्ती प्रदेशपर मौखरियोंका शासन था। इन सामन्तोंमें महावर्मा, सार्द्ध-लवर्मा और अनन्तवर्माके नाम मिलते हैं। इसी वंशकी एक शाखा गुप्तोंके सामन्तोंके रूपमें कन्नौजपर शासन करती थी। ६ठी शती ई० के प्रारम्भमें राजा हरिवर्माका पुत्र आदित्यवर्मा मौखरि कन्नौजका शासक था। उसकी पत्नी गुप्तवंशकी ही एक राजकन्या थी। इससे मौखरियोंकी प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ गयी। आदित्यवर्माके पुत्र ईश्वरवर्मा (५२४-५५० ई०) ने हूणोंके आक्रमण और यशोधर्मन्की विजयोंमें उत्पन्न परिस्थितिका लाभ उठाकर कन्नौजमें अपना स्वतन्त्र राज्य जमा लिया। यशोधर्मन्के साथ हूणोंकी पराजयमें भी उसका हाथ था। उसके पुत्र ईशानवर्मा (५५०-५७६ ई०) ने अपने-आपको महाराजाधिराज घोषित कर दिया और पर्याप्त शक्ति बढ़ा ली। स्वयं गुप्तसम्राट् कुमारगुप्त तृतीयसे उसने युद्ध किये। उसका उत्तराधिकारी शिववर्मा अपने पिताकी ही भाँति वीर और महत्वाकांक्षी था। गुप्तोंके साथ उसने निरन्तर युद्ध किये और गुप्त-नरेश दामोदर गुप्तको पराजित करके उसकी सत्ता और शक्ति अति क्षीण कर दी। अब कन्नौजका मौखरि राज्य उत्तर भारतकी सर्वप्रधान शक्ति था। उसके बाद अवन्तिवर्मा और फिर गूहवर्मा कन्नौजके राजा हुए। गूहवर्माका विवाह स्थानेश्वरके वैश्य राजा प्रभाकरवर्धनकी कन्या राज्यश्रीके साथ हुआ था।

प्राचीन युग—चतुर्थ पाद



प्रायः सब नरेशोंको उसने अपने अधीन कर लिया था। गुप्त वंशका प्रायः अन्त ही हो चुका था। अपने वंशशत्रु गौड़के शशांकके साथ उसने कई युद्ध किये जिनमें उसके मित्र कामरूप नरेश भास्करवर्मन्ने भी उसकी सहायता की किन्तु उसका पूर्णतया दमन करनेमें वह सफल नहीं हुआ। सौराष्ट्रके मौर्यक राजा ब्रुवसेनको भी उसने पराजित किया और गुजरातका कुछ भाग अपने अधीन कर लिया। इस राजाके साथ उसने अपनी कन्याका भी विवाह कर दिया बताया जाता है। चालुक्य चक्रवर्ती पुलकेशी द्वितीयके साथ भी उसने युद्ध किये किन्तु उनमें उसे सफलता न मिली। कलिंग-कोसलका राजा, जिसका नाम सम्भवतया हिमशीतल था, उसका मित्र था, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जैनाचार्य अकलक द्वारा उसकी सभामें बौद्धोंको पराजित कर देनेके कारण जब उसने बौद्धोंको स्वदेश निर्वासित कर दिया और जैनधर्मको अपनाया तो हृषने उसपर आक्रमण कर दिया। युद्धमें हिमशीतलकी मृत्यु हो गयी किन्तु चालुक्य विक्रमादित्य प्रथमकी सेनाओंके आ जानेके कारण हृषको वापस लौटना पड़ा। इस प्रकार प्रयत्न करनेपर भी उत्तर भारतमें आगे हृष न बढ़ सका। वह बौद्धधर्मका परम भक्त था साथ ही पञ्चममहिष्णु, उदार और दानी भी था। कन्नोज उसकी राजधानी थी। कन्नोज और प्रयागमें उसने कई महती सभाएँ कीं। प्रयागमें तो हर पाँचवें वर्ष बृहत् एष प्रकारका महान् अनुष्ठान करता था जिसमें बौद्ध, जैन (निर्ग्रन्थ), दैव और वैष्णव साधुओंको निमन्त्रित करता और भग्नूर दान देकर सबका सन्तुष्ट करता था। इन दानोंमें वह राजकोषको खाली कर देता था और अपने तनके कपड़े भी उतारकर याचकोंको दे डालता था। वह गुणियों और विद्वानोंका आदर करता था। उसका राजवर्षि बाण था जो हर्ष-परित, षादम्बरी आदि रचनाओंके लिए सुप्रसिद्ध है। नीरदेव क्षपणक नामक एक जैन विद्वान् बाणका मित्र था और सम्भवतया हर्षकी राजमभा-का एक विद्वान् था। स्वयं हृषने भी प्रियदर्शिषा, रत्नावली और नागावन्द नामके तीन नाटकोंकी रचना की थी। उसके कुछ शिलालेख भी मिलते हैं।



के प्राकृतकाव्य 'गोडवहो' में यशोधर्मन्की दिग्विजयका विवाद वर्णित है । महावीरचरित, उत्तररामचरित, मालतीमाधव आदि प्रसिद्ध मस्कृत नाटकाके रचयिता महाकवि मधुभूति भी महाराज यशोधर्मनके ही आश्रित थे । ७४० ई० के लगभग कश्मीरके ललितादित्यने अपनी विजययात्रा आरम्भ की और ७५० ई० के लगभग उसने यशोधर्मन्को पराजित करके कन्नौजपर अधिकार कर लिया ।

**आयुध वंश—**७६० ई० के लगभग कन्नौज फिर स्वतन्त्र हुआ और यहाँ एक नवीन वंशके यज्ज्यायुध, इन्द्रायुध और चक्रायुध नामक राजाओंने क्रमशः राज्य किया । जिनसेनके हरिवंशकी रचना ( मन् ७८३ ई० ) के समय उत्तरापथमें कन्नौजके इन्द्रायुधका राज्य था । किन्तु अपने उत्तरमें कश्मीर नरेशों, पूर्वमें पालवंशी राजाओं और दक्षिणमें राष्ट्रकूटोंके निरन्तर दबावके कारण आयुध वंश ८वीं शती ई० के अन्ततक ही समाप्त हो गया । भिन्नमालके गुजर प्रतिहारोंने इस परिस्थितिका लाभ उठाया । राजस्थानमें शक्तिसिन्धु करके उन्होंने कन्नौजपर अधिकार कर लिया और शीघ्र ही समस्त उत्तरापथपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया ।

**गुर्जर प्रतिहार—**प्राग्मुसलमान कालीन राजपूत वंशमें प्रमुख थे और अपने-आपको श्रीरामके प्रतिहार लक्ष्मणका वंशज कहते थे । मागवाह-के भिन्नमाल अपरनाम श्रीमाल नामक स्थानको इन्होंने अपना प्रथम केंद्र और राजधानी बनाया । हरिश्चन्द्र इस वंशका नस्थापक था । किन्तु वास्तवमें प्रथम महान् नरेश नागभट्ट प्रथम ( ७४०-७५६ ई० ) था । ७५६ ई० के लगभग उसने मित्रके अरबोंको हराकर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की । पश्चिमी भारतकी इस प्रकार रक्षा करनेसे उसका प्रताप एवं राज्य-विस्तार बढ़ा । नादीपुरके गुजर, जोधपुरके प्रतिहार, भडोचके चाहमान आदि अनेक छोटे छोटे राज्य उसके अधीन हुए । इसके उपरान्त नागभट्टके भतीजे कश्कुक और देवराज क्रमशः राजा हुए । कश्कुक जैनधर्मी था और उसने एक विशाल जैनमन्दिर बनवाया था । तदनन्तर देवराजका



ग्रन्थों की रचना की। इस नरेशने वज्रोज, मयुरा, आहिष्वाङ्ग, मोघरा आदि स्थानोंमें अनेक जैन मन्दिर बनवाये बसाये जाते हैं। वज्रोजका मन्दिर १०० हाथ ऊँचा था और उसमें भगवान् महावीरजी की स्थण्णमयी प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी थी। म्वालिबरमें भी इस राजाने एक २३ हाथ ऊँची सोनार प्रतिमा स्थापित की थी।

यत्तराजका पुत्र नागभट्ट द्वितीय 'नागावलोक' आम ( ८००-८३३ ई० ) अपने पिताके समान ही प्रतापी और विजेता था। पाप्नो और राष्ट्र-कूटोंके कारण वज्रोज फिर गुर्जर प्रतिहारोंके हाथसे निकल गया था किन्तु नागावलोकने अन्ततः चक्रायुधका अन्त पर्यन्त वज्रोजपर ८१६ ई० के लगभग स्थायी अधिकार कर लिया और उसे ही अपनी प्रधान राजधानी बनाया। इस नरेशने आश्र, सैन्धव, विदर्भ और कालिङ्गके राजाओंको अपने अधीन किया, बंगालके पाल-नरेशको पराजित किया और आनन्त, मालवा, किरात, तुर्गुक, वत्स, मत्स्य आदि राज्याके अनेक भाग छीन कर अपने साम्राज्यमें मिला लिये। राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीय ( ७९४-८१४ ई० ) से उसके कई युद्ध हुए और ये दोनों परस्पर प्रबल प्रतिद्वन्द्वी बने रहे। नागभट्ट द्वितीय गुजरेश्वर भी कहलाता था। यह नरेश भी जैन-धर्मका बड़ा प्रश्रयदाता था। जैन साहित्य और अनुश्रुतियोंमें उसकी प्रशंसा पायी जाती है। जैनाचार्य प्रभाषद्रसूरिके प्रभावकचरित्रके अनुसार ८३३ ई० में उसकी मृत्यु गगामें समाधि लेकर हुई। वह भी जैनाचार्य धम्मभट्टसूरिका बहुत आदर करता था। मयुराके प्राचीन जैनस्तूपका जीर्णोद्धार इसीके आश्रयमें हुआ बताया जाता है। यह एक धर्मात्मा राजा था, जिनेन्द्रकी भाँति विष्णु, शिव, भगवती और सूर्यका भी भक्त था। उसके पुत्र रामदेव या रामभद्रने केवल तीन वर्ष ( ८३३-८३६ ई० ) राज्य किया और उसके अल्पकालीन शासन कालमें राज्यकी क्षति हुई।

रामभद्रका पुत्र भोज इस वंशका सर्वमहान् नरेश हुआ। प्रभास, आदिवराह, मिहिर आदि विरुद्ध प्राप्त परम भट्टारक महाराजाधिराज





वैभव अक्षुण्ण रहे। वह विद्वानोंका आश्रयदाता और साहित्यका प्रेमी था। कपूरमजगी, काव्यमीमामा, बालगमायण, बालभारत आदि ग्रन्थोंके रचयिता महाकवि राजगेश्वर उसके गुरु थे। उनके बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र भोज द्वितीय गद्दीपर बैठा किन्तु उसकी शोघ्र ही मृत्यु हो गयी अतः कनिष्ठ पुत्र महीपाल ( ९१०—९४० ई० ) राजा हुआ। यह सूर्यो-  
पामक था। राजगेश्वर इसका भी राजकवि था, चण्डकोशिक नाटकका कर्त्ता क्षेमेश्वर भी इसी राजाका आश्रित था। ९१५ ई० में अग्व लेखक बलमसूदीने इस गुर्जर नरेशको बहुत धनी और शक्तिशाली वर्णित किया है। किन्तु ९१५—१८ ई० में ही राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीयने कन्नौजपर चढाई की और उसका बहुत विध्वंस किया। कन्नडके जैन महाकवि पम्प-द्वारा रचित पम्पभारतके अनुसार इन्द्रके सामन्त नरसिंह चालुक्यने महीपालको बुरी तरह हराया और अपने घोड़ोंको गगाके सगममें नहलाया। वस्तुतः महीपालके समयमें ही गुर्जर प्रतिहार वंशकी अवन्ति प्रारम्भ हो गयी। उसका उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल द्वितीय भी भारी विद्याप्रेमी था, जैना-  
चार्य सामदेव सूरिने इसी नरेशके लिए अपने राजनीतिके महान् ग्रन्थ नीति-  
वाक्यामृत और महेन्द्रमातलिसजल्यकी रचना की थी। तदनन्तर क्रमशः देवपाल ( ९४६—६० ई० ), विनायकपाल, महीपाल द्वितीय, विजयपाल, राज्यपाल, त्रिलोचनपाल और यशपाल नामक राजा हुए। यशपालके समय १०२३ ई० मयुरामें एक नवीन जैन मन्दिरका निर्माण हुआ। ११वीं शताब्दी ई० के मध्यके लगभग यशपालकी मृत्युके साथ इस वंशका अन्त  
हा गया, इस बीचमें ९८६ ई० के लगभग माल्वा स्वतन्त्र हुआ, ९६२ ई० में गगनरेश मारसिंहने प्रतिहारापर आक्रमण किया और उन्हें पराजित किया। शनैः शनैः खजुराहोके चन्देले, ग्वालियरके कच्छपघट, घागके परमार, मध्य भारतके कल्चुरि, गुजरातके सोलकी आदि स्वतन्त्र हो गये और कन्नौजका गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। कन्नौजके अन्तिम राजाओंने मुबुक्तगोन और महमूद गजनवीके विरुद्ध मटिण्डेके साथी



सेनाका पुत्र इतिहासप्रसिद्ध पृथ्वीराज तृतीय (गंगविधोरा) था। चन्दवरदाई  
 भाट उसका मित्र और राजकवि था, ऐसा प्रसिद्ध है। पृथ्वीराज एक  
 महान् योद्धा एवं वीर नरेश था। कन्नौजके जयचन्द्र और महोबेके चन्देलोंके  
 साथ उसकी प्रबल प्रतिद्वन्द्विता थी। पृथ्वीराज द्वारा कन्नौजकी राजकन्या  
 तयोक्ताके हरणकी घटना लगभग ११७५ ई० की है। ११८२ ई० में  
 उसने परमाल चन्देलकी पराजित किया था। मोहम्मद गंगेके हमलेकी  
 समन घोरतापूर्वक रोका और ११९१ ई० में तराइनके प्रथम युद्धमें  
 गंगेकी बुरी तरह हराकर भारतवर्षसे शदेह दिया। किन्तु परस्परकी  
 फूटके कारण ११९३ ई० में तराइनके दूसरे युद्धमें शरीकी विजय हुई।  
 पृथ्वीराज बन्दी हुआ और मार डाला गया। फलस्वरूप दिल्ली और  
 अजमेरपर मुसलमानोंका अधिकार हो गया।

अथ चौहान राजाओंमें धवलपुरीका चण्डमहासेन (९४२ ई०)  
 अधिक प्रसिद्ध है। अजमेर, नाटोल, दिल्ली तथा अन्य सभी स्थानोंके  
 तत्कालीन चाहमान नरेश जैनधर्मी न होते हुए भी जैन धर्मके पापक थे  
 और जैन गुरुआका आदर करते थे। उनमेंसे अनेक राजपुरुष जैनी भी  
 रहे। नाटोलमें चौहान राज्य ९६० से १२५२ ई० तक रहा। इस वंश-  
 का अक्षरान चौहान जिनभक्त था और उसने अपने राज्यमें पशु-हिंसापर  
 प्रतिबन्ध लगाया था। उसका पुत्र अहलदेव अपने पितासे भी अधिक  
 उत्साही जैन था। यह राजा भी महावीरका परम भक्त था, उसने  
 ११६२ ई० में उसकी तीर्थकरका एक विशाल मन्दिर नादरामें बनवाया था  
 और उसके लिए कतिपय श्रावकी एवं साधुओंकी सुरक्षामें बहुत सी  
 सम्पत्ति दान कर दी थी। सन् १२२८ ई० के एक ताम्रशासनसे इस  
 दानका पता चलता है। यह राजा अन्तमें राज्य त्याग करके जैन साधु  
 हो गया था। उसके पूर्वज लाखा और दादराव तथा घंशज कल्हण, गजेसिंह  
 कृतिपाल आदि अथ राजे भी जैन थे।

दिल्लीके तोमर—दिल्लीकी कतिपय राजापरियोंके अनुसार, जो



भी इस समय निवृत्त हो चुके थे। अतः नीयकने एक स्थलाग्र शासकको नई राज्य किया, महाराजाधिराजकी न्यायि धारण की और अपने राज्यका विस्तार किया। अपने गोपित पुत्र मुंजको राज्य देकर सन् ९७४ ई० के लगभग उसने एक जैनाचार्यसे मुनि दीक्षा ले ली और दीप शोधन एक जैन तपस्वीके रूपमें ध्यतीत किया बनाया जाता है।

उसका उत्तराधिकारी मृज यावपतिराज एवं उत्पलराज भी महान्याया था। वह बड़ा योद, पराक्रमी, कवि और विद्याप्रेमी था। तन्नामके चालुक्य सम्राट् सैलप द्वितीयपर उसने छह बार आक्रमण किया और कई बार उसे पराजित किया। मातयी राज्य आक्रमणमें यह स्वयं सैलपका बन्दी हो गया। बन्दी दशमैं ही मुंजका कैदको यहाँ मृणालवतीमें प्रेम हो गया और इस प्रकार वह एक प्रसिद्ध भारतीय प्रेमगाथाका नायक हुआ। मृणालवतीकी महायतामें वह बन्दीगानेसे भाग निकला, किन्तु पकड़ा गया और उसको मरणा करवा दी गयी। यह घटना लगभग ९९५ ई० की है। मुंजके गम्भ-घमें प्रवचयितामणि आदि जैन ग्रन्थमें अनेक कथाएँ मिलती हैं। नवसाहसाकचरितके लेखक पद्मगुप्त, शत्रुघ्नकके लेखक घनजय, समये भाई घनिक, जैन कवि घनपाल आदि अनेक कवियोंका वह आश्रयदाता था। जैनाचार्य महामेन और अमितगतिका यह राजा बहुत सम्मान करता था। इन जैनाचार्योंन उसका प्रथममें अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। मुंज स्वयं जैनी था या नहीं यह नहीं कहा जा सकता किन्तु वह जैन धर्मका प्रबल पापक था इसमें सन्देह नहीं है।

उसका उत्तराधिकारी और भाई सिन्धुल या सिन्धुराज कुमार नारायण नवसाहसाक ( ९९६-१००९ ई० ) भी जैनधर्मका पोषक था। प्रद्युम्नचरितके कर्त्ता मुनि महासेनया वह गुरुवत् आदर करता था। अभिनव कालिदास कवि परिमलका नवसाहसाक चरित्र इसी राजाकी प्रशंसामें लिखा गया है। हुणो एवं लाट नरेशोंके साथ इसके कई युद्ध हुए। चालुक्योंसे भी अपने भाईका बदला लेनेके लिए इसने युद्ध

प्राचीन युग-चतुर्थ पाद



किया । जिनचन्द्र नामक एक जैनीको उसने गुजरात प्रान्तका शासक नियुक्त किया था । १२ वीं-१३ वीं शताब्दीमें धाराके परमारनरेश विजयवर्मा और उसके उत्तराधिकारियों सुभटवर्मा, अजुनवर्मा, देवपाल और जैतुगिदेवने १० आशाघर आदि अनेक जैन श्रद्धालुओंका आदर किया था । आशाघरने अपने विविध-विषयक लगभग चालीस ग्रन्थोंकी रचना उन्हीं नरेशोंके आश्रयमें की थी । विल्हण कविवर, मदनोपाध्याय आदि अनेक संस्कृत कवि भी इनके आश्रयमें रहे थे । १३वीं शती ईसवीके अन्त तक परमार राज्यका अन्त हो गया और मालवापर मुसलमानोंका शासन हो गया । किन्तु फिर भी मालवा और उसके उज्जैन, धार, माण्डू आदि प्रमुख नगर जैन एवं हिन्दूधर्म और उनकी संस्कृतियोंके प्रसिद्ध केन्द्र बने रहे ।

**मेवाड़के गुहिलौत**—मेवाड़ राजस्थानका स्यात् सद्यः-प्राचीन राज्य है और उसकी प्राचीन राजधानी चित्तौड़ ( चित्रकूटपर ) प्राचीन कालमें भी एक प्रसिद्ध नगरी थी । ८वीं शताब्दी ई०के मध्य तक यहाँ मौर्यवंशकी एक शाखाका राज्य था । उक्त शताब्दीके प्रारम्भमें जिस मौर्य राजाका यहाँ शासन था उसका उपनाम सम्भवतया धवलम्पदेव था । श्रीवल्लभ उसका उपाधि थी और श्वेतच्छत्र उसका राज्य-चिह्न था । उसके उत्तराधिकारी राहपदेवको पराजित करके राष्ट्रकूट दन्तिदुर्गने उपराज्य उपाधि और चिह्न स्वयं ग्रहण कर लिये थे । धवलम्पदेवके कनिष्ठ पुत्र सम्भवतया वीरम्पदेव थे जो आगे चलकर प्रसिद्ध जैनाचार्य वीरसन स्वामीके नामसे प्रख्यात हुए और जिन्होंने दिगम्बर आगमोंकी विद्यालयाय टोकाओंकी रचना करके उन्हें धवल नामांकित किया । इसी चित्रकूटपर ( चित्तौड़ ) में जैनगुरु एसाचार्य निवास करते थे । वे ही वीरसन स्वामीके विद्यागुरु थे । राहपदेवका राजा होनेपर ही सम्भवतया वीरसेनन दीक्षा ले ली थी और ७५० ई० के लगभग राष्ट्रकूटों-द्वारा राहपदेवको पराजयके उपरान्त वे राष्ट्रकूटोंकी राजधानीके निकट वाटनगरमें चले गये थे और वहीं अपना विद्यापीठ स्थापित करके उन्होंने धवलादि



महात्मा जन्मोत्पत्ति रचना की थी। राष्ट्रियके जोई पुनः नहीं का जन्म इसके  
 परवान् उपरान्त मान्यता स्थापितक कालकोज कालाय होम्मन् उपरान्त  
 चित्तीकता यथा हुआ और बनने वहाँ बुद्धिजीव बंधनो स्थापना की।  
 बुद्धिजीव यथायुक्त बनने-बान्धनो नुर्धनकी वस्तु भी और यह बंधन वास्तविकताके  
 नीमोदितता मानने की इच्छा हुआ। इसी समय चित्तीकके एक राज्यमान्य  
 राज्यमान्य विज्ञान स्वेष्टात्मक कारिका कारिकायुक्तताके उपरान्त उपरान्त  
 होकर मानु ही बने और यह ही यनिष्ठ स्वेष्टात्मकताके इतिहासपुरि हुए  
 इन्हीं कालके संस्कृत इन्हीं विनिश्चितिकक जन्मोत्पत्ति रचना की। इसी  
 यथायुक्तके उपरान्तके बुद्धिजीव यथायुक्त इच्छा यथा यनिष्ठता हुआ।  
 कालयुक्तता इसीके कालयुक्त चित्तीकता कालयुक्त ही यनिष्ठतायुक्त  
 बना का विनियम नीमोदितता इसी कालके एक विनियम ही के कालयुक्तताके  
 विनियम इस काल करके बनाया था।

चित्तीक राज्यमान्यके कालके ही और नीमबन्धन एक प्रमुख हेतु यथा  
 था। बुद्धिजीव यथायुक्त राज्य एक पुनः-बन्धन ही का विनियम ही बंधनके यथा  
 नीमबन्धनके प्रति बने काल और इच्छा रही। कई यथा और राज्यमान्यके  
 चित्तीके ही स्वेष्टात्मक तथा कालयुक्त कालयुक्त, यन्त्री हीयान कालयुक्त कालयुक्त,  
 कालयुक्त केमार्गके कालयुक्त और काल यथायुक्त राज्य-कालयुक्तताके के नी  
 कालयुक्त नीमो हुये। हे। यथा कालयुक्त है कि यथायुक्त राज्यमान्यके काल-काल पुनः  
 बुद्धिके किन्तु कालकी नीम रन्धी कालकी ही काल-काल राज्यमान्यके नीम  
 यथायुक्त कालयुक्तताके बना की। नीमयुक्तताके हीरात्मक नीमयुक्तके अनुसार  
 कालयुक्तके कालयुक्त नीमयुक्त कालयुक्त राज्यमान्यके यथायुक्ततायुक्त बना का  
 केमार्गके नीम-नीम इच्छा ही और कालकी कालयुक्तताके नीमयुक्तताके नीमके  
 ही ही वही ही नीम कालयुक्त और नीम की काल एक पुनः बने काल है।  
 कालयुक्त नीमयुक्तके केमार्गके नीम यथायुक्त कालयुक्तके कालयुक्तके नीम  
 चित्तीके ही नीम यथायुक्तताके किन्तु काल यथायुक्त नीम चित्तीके कालयुक्तताके  
 किन्तु कालयुक्त नीमयुक्तताके बने हुए है। और वही यथायुक्त राज्यमान्यके काल-

सन्ध्य-प्रेम एवं म्रदेश-भक्ति के लिए इतिहासमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उसके घोर राणाओं ने १७वीं शताब्दी पर्यन्त मुसलमानों की अधीनता स्वीकार नहीं की। राणाओं की इस आनको निमाने में मेवाड़ का जैनधर्म तथा उसके जैन घोर मंदिर मशायक रहे। घोट में भी मुस्लिमों की एक शाखा का राज्य था।

**हस्तिनापुरिका या हथुँडी के राठोट**—१०वीं शती ई० में राजस्थान के हथुँडी नगर में राठोट वंशी राजपूतों का प्राचीन राज्य था। इन राठोटों का सम्बन्ध मम्मवत या दक्षिण के गच्छादित्त वंश से था। वंशोक्त गहड़वालों से भी इनका कोई सम्बन्ध था या नहीं यह नहीं कहा जा सकता। सम्भव है जोधपुर-मारवाड़ के राठोट हथुँडी के वंश से ही सम्बन्धित हों। हथुँडी के राठोट वंश जैनधर्म का अनुयायी था। ९१६ ई० में इस वंश का राजा विदग्धराज जैनधर्म का परम भक्त था। उसने अपनी राजधानी हथुँडी में प्रथम तायकर ऋषभदेव का विद्याल मन्दिर बनवाया था और उस मन्दिर के लिए बहुत-सी भूमि प्रदान की थी। उसके गुरु वासुदेवसूरि या बलभद्र थे। राजाने स्वयंकी स्वर्ण के साथ तुलनाकर उसे मन्दिर और गुरु का दान कर दिया था। सन् ९३९ ई० में विदग्धराज के पुत्र एवं उत्तराधिकारी मम्मट ने भी उक्त मन्दिर के लिए विपुल द्रव्य दान किया था और अपने पिता के दान-पत्र की भी पुनरावृत्ति की थी। यह राजा भी परम जैन था। इसका पुत्र महाराज धवल भी परम जैन-भक्त था। उसने ९९७ ई० में उपरोक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया, दान दिया और ऋषभदेव की एक नवीन प्रतिमा स्थापित करायी। इस राजा के गुरु वासुदेवसूरि के शिष्य शान्तिभद्रसूरि थे और गुराचार्य ने वह दान प्रशस्ति लिखी थी। जैनधर्म की प्रभावना के लिए इस नरेश ने अनेक कार्य किये। १२वीं शती ई० के उपरान्त हथुँडी राज्य सम्भवतया जोधपुर के ही अधीन हो गया अथवा एक छोटा सा उपराज्य रह गया।

**थावस्ती के ध्वजवंशी नरेश**—उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में जिला बहराइच के अन्तर्गत थावस्ती (वर्तमान सहैटमहेट) एक प्राचीन महानगरी

बी । बलरघोदत्त इसके पूर्ववर्ती राजाओंकी बड़ राजधानी थी । बलरघो  
 एवं कुड़के समयमें सम्राट् जयचाम्पू यक्षोपा प्रसिद्ध राजा था । कुम्भलग-  
 के समयतक यह कोशलराज्यकी राजधानी बनी रही । विष्णु कुम्भलग  
 ही इनकी अवस्थिति आरम्भ हो गयी । आह्वान और कुम्भलग नामक  
 बीनी पाणिनीय की समयकी हुई मन्त्रधाम गायन था । किन्तु पूर्ववर्तके  
 एक नामधरने सूचित होता है कि इनके समयमें यह प्रदेश इनके राज्य-  
 की एक मुक्ति ( प्रांत ) था । १५वीं ई. पी. कही ई. से यावत्की कुम्भ-  
 लग्नि हुई थी बड़ी एक क्षेत्रमीकुवायी क्षेत्रका राज्य था । किन्तु कबाल  
 क्षेत्रवर्तके समुदाय कुम्भलग्ग मन्त्रधाम ईश्वर्य और मौर्य्य इनके  
 राजा समय हुए । यह वह समयवर्तका समुदायकी कम्पुतिवर्ती एकवाक्य  
 थी । कम्पुतिवर्तके विविध वाक्यान्वय वाक्यान्वय क्षेत्रवर्तकी स्मृति थी ।  
 तथा वाक्यवर्त को वाक्यवर्तके यह क्षेत्रवर्तका कम्पुतिवर्त ही सम्यक् ही  
 विवेचकर यह कि यह कम्पुति और इसी प्रदेशमें कम्पुतिवर्तके एक वाक्य-  
 वाक्यवर्तका एक होनेका कहा सकता है । कम्पुति मौर्य्यवर्तके कम्पुति  
 वाक्यवर्तका राजा मुद्रिकम्पुति हुआ जो बड़ा और और बराबरी होनेके  
 वाक्य ही वाक्य क्षेत्रवर्तका भी स्मृति थी था । १६वीं कम्पुतिवर्तके पूर्ववर्तके  
 इनका वाक्यवर्त विविध होता है । इनके समुदाय वक्त्रवर्तके क्षेत्रके  
 विषयवाक्य क्षेत्र वाक्य वक्त्रवर्तकी वाक्यवर्तके प्रसिद्ध कुम्भलग्ग  
 एवं वक्त्रवर्त किन्ना कम्पुति वाक्य है । मुद्रिकम्पुति वा मुद्रिकवर्तके सम्राट्  
 कम्पुति वक्त्रवर्त ईश्वर्य्य वाक्यवर्तका राजा हुआ । सम् १११४ ई. से  
 वक्त्रवर्तकी वक्त्रवर्त मन्त्रधाम वाक्यवर्तका वाक्यवर्त करके इसे मन्त्र-  
 मन्त्र कर दिया । ईश्वर्य्यने नामकर मुद्रिकवा वक्त्रवर्त बड़ी बना की और  
 फिर वक्त्रवर्तके वक्त्रवर्त मन्त्रधाम वा वक्त्रवर्त वाक्यवर्त मन्त्रधाम राज्यके  
 स्थायी बने ।

**बन्धुवर्त—**कम्पुति भारतमें पूर्वमुद्रिकमाल मुद्रका वक्त्रवर्त विविध  
 प्रसिद्ध और वक्त्रवर्तकी वक्त्रवर्त क्षेत्रवर्तकी वक्त्रवर्त राज्यवर्तका था ।

वतमा विन्ध्यप्रदेश (बुन्देलखण्ड) गुप्तबान्ना गुप्त साम्राज्यकी एक प्रसिद्ध  
 भूमि । देवाढ़ और गजुराहो आदि उसके प्रमुख नगर थे । मन् ८२१  
 ई० में नानूक चन्देलने इस वंशकी स्थापना की और गजुराहो नाम का गजु-  
 राहोको अपनी राजधानी बनाया । चन्देलोंका मूल सम्बन्ध खेदिम रहा प्रतीत  
 होता है और इनका उद्गम भार एवं गोष्ठ जातियामे हुआ अनुमान किया  
 जाता है । किन्तु उनकी अपनी अनुश्रुतियोंके अनुसार उनका पूर्वगुरु  
 ब्राह्मण था । वे अपने-आपको आग्नेय ऋषि और उदकी मन्तान बताते हैं ।  
 नन्तुषने कन्नौजके प्रतिहारोंके सामन्तके रूपमें ही चन्देल राज्यकी स्थापना  
 की थी अतएव प्रारम्भिक चन्देल राजे प्रतिहारोंके अधीनस्थ राजाओंके  
 रूपमें भी रहे । नन्तुषके पश्चान् वाक्पति राजा हुआ, उसके दो पुत्र जेजा  
 ( जयशक्ति ) और वेजा ( विजयशक्ति ) थे जिन्होंने क्रमशः राज्य किया ।  
 जेजाके नामपर यह प्रदेश जेजाकभूमि नामसे प्रसिद्ध हुआ बताया जाता है ।  
 कालान्तरमें इसी शब्दका त्रिवृत रूप जुझौती हुआ । जेजाकी पुत्री नट्टाका  
 विवाह त्रिपुरीके कलचुरि-नरेश कोकिल प्रथम (८४५-८८० ई०) के साथ  
 हुआ था । वेजाके बाद गहिल राजा हुआ और फिर हर्ष चन्देल गद्दी-  
 पर बैठा । इसने ९०० से ९२५ ई० तक राज्य किया । इसके समयमें  
 चन्देलोंका उत्कर्ष प्रारम्भ हुआ । हर्षका पुत्र यशोधर्मन या लक्षधर्मन  
 (९०५-९५४ ई०) और अधिक प्रतापी था । कन्नौजके महोपाल प्रतिहार-  
 से उसके मित्रवत् सम्बन्ध थे और उससे उसने एक प्रसिद्ध विष्णुमूर्ति भी  
 प्राप्त की थी । इसका पुत्र घग ( ९५४-१००२ ई० ) बड़ा महत्वाकांक्षी  
 था । उसके समयमें चन्देल राज्य एक सर्वथा स्वतन्त्र राज्य था और घग  
 अपने समयके सर्वाधिक शक्तिशाली नरेशोंमें-से था । ९९० ई० में उसने  
 सुवृक्तागिरि गजनिधीके विरुद्ध भट्टिण्डेके जयपालकी सहायता की थी और  
 युद्धमें स्वयं भाग लिया था । खजुराहोके सर्वप्रसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ जैन  
 एवं वैष्णव मन्दिरोंमें-से कई इसी उदार नरेशके समयमें और उसके प्रधानमें  
 निमित्त हुए थे । वहाँका भग्न पार्श्वनाथ-मन्दिर इस राजाके शासनके प्रथम

ययमें ही निमित्त हुआ था। सन् १९४ ई के प्रथम पक्ष के सम्मेलित  
 विद्यार्थियों ने अष्टागम ग्रन्थ की प्रस्तावना काहित नामक प्रसिद्ध ग्रंथ लेख एवं  
 गङ्गापुष्प-द्वारा जनेन नाम दिने जनेना ग्रन्थित है। उन्होंने कई मन्दिर  
 और मूर्तियाँ निर्माप कराये थीं। इनके कुछ मूर्ति नामकचन्द्ररा राजा की  
 आदर करता था। जनेना पुत्र नन्द की प्रजापती और कल्पिप्राप्ति बनेय था।  
 १ ८ ई के प्रथम अन्त्ययान्त काही-द्वारा मध्यम कृतनवीके विषय  
 निम्नोक्ति एवं मङ्गलपुत्र नाम विद्याधीन मङ्गलपुत्र नाम मङ्गलपुत्र विद्या।  
 मङ्गलपुत्रके आन्तिगत-मन्दिरम आदिवाक्य की विद्या प्रसिद्धि प्रसिद्ध  
 हुनी मनेयक पुत्र विद्याधरदेवने आन्त्ययान्तमें सन् १ ९८ ई में हुई थी।  
 सन् १ ९९ में मध्यम कृतनवीके नाम कुछमें विद्याधर परमेश्वर हुआ था,  
 इनी कृतनवे नामकोनी अन्तिगत कुछ मारम्भ हुआ।

११वीं शतीके उत्तरार्धमें १९वें राजा कीर्तिवर्मन राज्य किया।  
 इनके मन्त्रमें जनेन राज्यकी स्थापति किराई ब्रह्म बनी। अब लम्बन  
 एक जगन्नीके लिए कुछकर्मोंके आकाशकी नी मारम्भर्षकी नाम दिया  
 और जनेनाही इन विद्यार्थी पुत्र नाम कृतनवी। कीर्तिवर्मनके कनी नाम-  
 राजने सन् १ ९७ ई के वेकनदेव नील पुत्र कर्मकार इनका नाम  
 कीर्तिवर्मि रखा राज्यमें कई वीर्यन नीन बहि मन्दिर की बने। इही  
 राजाके आन्त्ययान्तमें १ ९९ ई के कर्मकर कृतनवीके नाम आनी  
 कर्तव्य मङ्गल विद्या की राज्य-मार्गमें नीना की मार था। १ ९९ ई  
 में मङ्गल मङ्गलपुत्रमें एक कर्मकारम्भ की निर्माप हुआ।

१२वीं शतीके मध्यमें कर्मेक-मनेय मङ्गलकर्मा पाठि निर्माप था।  
 उन्होंने जनेन मन्त्र काहीनर तथा नीन एवं वेकन-मन्त्रोंका निर्माप  
 कराया। सन् ११४९, ११५४, ११५९, ११५८, ११५९ आदिमें जनेन  
 नीन मूर्तियाँ इन राजाके आकाशकायमें प्रतिष्ठित हुई मिली हैं। ११५९  
 की मूर्तिपर कर्मेक निर्माप विष्णु मङ्गलकर्मा नाम की अन्तिग है।

सन् ११५९ के १२ २ ई परमेश्वर-मनेय परमेश्वर नाम मनेयका

राज्य रहा। यह हम यशका अन्तिम मरान् नरेश था। दिल्ली-अजमेरका  
 जूजोराज चौहान और कन्नौजका जयचन्द्र गढ़वाल उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी  
 थे। महोदये लोकप्रसिद्ध योद्धा आल्हा और उदल परमाल चन्दारे ही  
 आश्रित एवं मेतानायक थे। जगन्निष्के आह्वानान् उस बालकी उन अनेक  
 वीरगाथाओंको सजोष बनाये गया जिनमें महावंके ये वीर नायक थे।  
 सन् १००२ ई० में परमालकी मृत्यु हो गया और चन्देलोंन मुत्तुवुद्दीन  
 ऐबकम पराजित होकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। परमादिदेव  
 भी निर्माता था, अनेक मन्दिर उसका कालमें बने। अहारक पान्तिाप  
 तीर्थंकरकी सुन्दर विशाल मङ्गासन मूर्तिका इगोके राज्यमें सन् ११८०  
 ई० में रूपका पापटने बनाया था। १३ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें चन्देलराज  
 वीरवर्मनदेव भी अजयगढ़के तथा अनेक देव-मन्दिरोंका निर्माणके लिए  
 प्रसिद्ध हैं। उनके समयका सन् १२७८-७८ की मूर्तियाँ एवं लेख मिलते  
 हैं। सन् १३१० ई० के लगभग चन्दल राज्यका अन्त हुआ और यह  
 मुसलमानी साम्राज्यमें अलाउद्दीन खिलजी-द्वारा मिला लिया गया।

लगभग ४०० वर्षके दीर्घकालमें चन्दल नरेशोंने भारतीय कलाका  
 अभूतपूर्व पोषण किया। उनका निजका धर्म जैन न होते हुए भी वे  
 जैनधर्मके प्रति अत्यन्त सहिष्णु और उसके प्रबल पोषक रहे। देवगढ़, छत्र-  
 राहो, महोबा, अजयगढ़, अहार मदनपुरा, मदनसागरपुर, वानपुर, पधौरा,  
 चन्देरी, हूदाही, चन्दपुरा, छतरपुर, टीकमगढ़ आदि चन्देल प्रदेशके प्रायः सभी  
 प्रमुख नगरोंमें समृद्ध जैनोंकी बड़ी-बड़ी वस्तियाँ थीं, उनके श्रीदेव, वासवचन्द्र,  
 धृमदचन्द्र आदि अनेक निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधुओं एवं विद्वान् आचार्योंका राज्य-  
 में उभक्त विहार था और अनेक भव्य विशाल जैनमन्दिरों एवं जैन कला-  
 कृतियोंका उन स्थानोंमें निर्माण हुआ। जैनकलाके ये चन्देलकालीन उदाहरण  
 भारतीय कलाके सर्वोत्कृष्ट नमूनोंमें-से हैं और पूर्व मध्यकालीन भारतीय  
 कलाशैलीका सफल प्रतिनिधित्व करते हैं। सबत राज्यके जैनियोंने भी  
 राज्यकी सवतोमुखी उन्नतिमें पूणतया योगदान दिया। शिव और विष्णुक



देशो राज्य उस कालमें उत्पन्न हो गये थे। उनके अतिरिक्त सिन्धु, नेपाल, कुमायूँ, गडवाल, आसाम आदिमें भी स्वतन्त्र या अर्धस्वतन्त्र राज्य थे। एक अनुश्रुतिके अनुसार इस कालके पण्डित, परमार, सोलंकी, राठोड़, चौहान, बल्लभादे आदि अधिकांश राजपूतवंश अग्निकुलके वंशज होते हैं और वर्नेल टाडके मतानुसार उनके अग्निकुल बहलानेका कारण यह भी हो सकता है कि वे जनघर्ममें दोषित हो गये थे। कमसे कम उस कालके विभिन्न छोटे बड़े राज्यवर्गोंका जो इतिहास प्राप्त है उसमें इस विषयमें तो सन्देह नहीं है कि इन राज्यवर्गोंमें अल्पाधिक काल तक जैनधर्मकी प्रवृत्ति अवश्य रही थी। इन सब ही राज्यात्मक जैनधर्म और उनके अनुयायी मुख्यतः फले-फूले। राजागण जैनधर्मके यदि अनुयायी नहीं होते थे तो उनके प्रति उदार एवं सहिष्णु अवश्य रहते थे। साथ ही जैनधर्म और उनके आचार-विचारके प्रभावसे उनकी योग्यता, युद्धप्रियता और स्वातन्त्र्य-प्रेममें कोई कमी नहीं आयी थी। उनमें पतनका वास्तविक कारण उनकी परस्परकी फूट, जाति और कुलका दुर्गमिमान, उनमें परस्पर एकता और एकमूत्रताका अभाव और दूसरी ओर धन एवं राज्यके लोभसे प्रेरित धर्मांध एवं क्रूर मुसलमान जातियोंके अनवरत आक्रमण, छल, बल और कौशल थे, जिन्होंने सहज और धीमे ही देशको विधर्मों विदेशियोंकी पराधीनतामें जकड़ दिया।

सूर्य, शक्ति तथा विष्णुके विभिन्न अवतारोंको लेकर अनेक सम्प्रदाय चल पड़े थे। तान्त्रिक और धाममार्गी सम्प्रदाय भी उत्पन्न हो गये। बौद्ध शैव या लिंगायत-जैसे नये नये सम्प्रदाय तथा जोगिया और साधुआ-द्वारा चलाये गये नये-नये पन्थ नित्य पैदा हो रहे थे। इन समस्त विभिन्न एवं बहुधा परस्पर-विराधी सम्प्रदायों और पन्थोंको सामूहिक रूपसे, विशेषतया मुसलमानों द्वारा, हिन्दूधर्म कहा जाने लगा, उन सबका अन्तर्भाव इस एक ही नाममें सामायित किया जाने लगा और इनमें से किसी भी सम्प्रदाय या पन्थका माननेवाला अपनेको हिन्दू कह सकता था और कहलाने लगा।



इस प्रकार तबालविश्व हिन्दुधर्म के बहुमान नमनाधारण तबाल राजे-महाराजों-  
को नमना होने लगी । कबल विभिन्न मन्त्रधारकों के अनुयायियों के बल-  
वैभवंय बल-और प्रतिष्ठा-इत्यादि की कभी-कभी मान्यता का ही इष्टी  
ने तबालि मन्त्रधारण हिन्दु नाम लीने कबल मन्त्रधारण की कतिपय मन्त्रों,  
कबल और प्राचीन तबालीकी नमना कबल मान्यता दायक एवं मन्त्र-  
धारण-वैकी प्राचीन अनुष्ठानिकोंकी नमना कबल लीन प्रियता वैकी इत्यादि  
हिन्दुत्व न नमनाते हुए की कबल उन-कबलाने हिन्दुत्व लभ्य विरुद्ध  
रखन हुए की कबल विरुद्ध नमना इत्यादि बलाने इत्यादि विविध  
एवं वैभवंय शेष का हिन्दु आदिवा मन्त्र एवं मन्त्रों लीने रखा ।

[illegible]

प्रदान हुआ तथापि उसकी सैद्धान्तिक मूलभित्ति अखण्ड रहो, उसके  
 मौलिक विश्वास और परम्पराएँ स्थिर रहे और इनके कारण वह भारतका  
 एक स्वतन्त्र एवं प्रमुख धर्म बना रहा। उसके प्रेरक तत्त्व मज्जीव  
 बने रहे और उनके कारण उसके अनुयायियोंका धार्मिक उत्साह  
 सजग रहा। इन्हीं कारणोंने जैनधर्मकी तथाकथित हिन्दूधर्ममें आत्मशान्ति  
 होनेमें रक्षा की और साथ ही उसे बौद्धधर्मकी जो गति हुई उससे भी  
 उसे बचा लिया। भारतवर्षकी मौलिक धार्मिक महिष्णुनाने इस देशमें  
 धार्मिक विद्वेष, अत्याचार एवं साम्प्रदायिक वैमनस्यपर बहुत कुछ  
 सफल नियन्त्रण रखा। यही कारण है कि मुसलिम युगके पूर्व एवं  
 अनेक अंशोंमें उसके प्रारम्भके उपरान्त भी विभिन्न भारतीय धर्म बहूत  
 कुछ परस्पर सहयोग एवं सहभावपूर्वक साथ साथ फलते-फूलते रहे।  
 आनेवाले मध्यकालके विदेशी विघर्मों मुसलमान शासन-कालमें जैनधर्मकी  
 प्रायः वही दशा और स्थिति रही जो अन्य भारतीय धर्मोंकी थी।  
 उसके शान्तिप्रिय एवं धनी व्यापारी अनुयायियोंके कारण मुसलमान  
 शासकोंने भी उसपर अत्यधिक अत्याचार नहीं किया प्रतीत होता।





र राज्यके इष्टदेव 'कलिग जिन' कहलाते थे । विद्वानोंमें इस विषयमें तमोद है कि ये 'कलिग जिन' आदि या अग्रजिन प्रथम तीर्थंकर ऋषभ-  
 थे, या भद्वलपुर ( कलिगदेशस्थ भद्राचलम् या भद्रपुरम् ) में उत्पन्न  
 सर्वे तीर्थंकर शीतलनाथ थे अथवा २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ थे । किन्तु  
 महावीरके जन्मके पूर्व भी इस जनपदमें उक्त कलिग-जिनकी प्रतिष्ठा थी  
 इसमें सन्देह नहीं है । तीर्थंकर पार्श्वका विहार कलिग देशमें हुआ था ।  
 भगवान् महावीर भी वहाँ पधारे थे और राजधानी कलिग नगरके निकट  
 कुमारी पर्वतपर उनका समवसरण लगा था । उपरोक्त घटनाओंकी  
 स्मृतिमें उक्त स्थानपर स्तूपादि स्मारक बने थे और मुनियेकि निवासक  
 लिए गुफाएँ भी निर्मित हुई थीं जो खारवेलके समयके बहुत पहलेसे वहाँ  
 विद्यमान थीं । इन सब बातें सि विदित होता है, जैसा कि प्रो० राखालदास  
 वनर्जीका भी मत है, कि उड़ीसा प्रारम्भसे जैनधर्मका एक प्रमुख गढ़  
 था । वस्तुतः इस प्रदेशमें आर्यसभ्यता और सस्कृतिके प्रवेशका श्रेय  
 जैनधर्मको है ।

छठी शताब्दी ई० पू० में कलिग देशपर जितशत्रु नामक राजाका  
 राज्य था जो महावीरक पिता राजा सिद्धार्थका मित्र और बहनोई था ।  
 इसकी कन्या यशोदाके माघ महावीरके विवाहकी बात चली थी किन्तु  
 महावीरने आजन्म ब्रह्मचारी रहनेका ही दृढ़ निश्चय कर लिया था अतः  
 वह विवाह न हो सका । जितशत्रु सम्भवतया किसी प्राचीन विद्याधर  
 वंशस सम्बंधित था । उसके वंशजोंने नन्दकाल-पर्यन्त इस देशपर निर्वाधि  
 शासन किया प्रतीत होता है । महावीर निर्वाण सवत् १०३ ( ई० पू०  
 ४२४ ) में मगधनरेश नन्दियर्धनने कलिगपर आक्रमण किया और उस  
 राज्यको अपने साम्राज्यका अंग बनाया । सम्भवतया वह स्वयं जैनी था  
 अतः कलिगकी राजधानीमें प्रतिष्ठित कलिगजिनकी मूर्त्य मूर्तिको अपने  
 साथ लिवा लाने और अपनी राजधानी पाटलिपुत्रमें प्रतिष्ठित करनेका  
 लोभ सवरण न कर सका । मगधनरेश महानन्दिनके उपरान्त ई० पू०



पसनवालके अन्तिम वर्षोंमें कलिंग फिरसे स्वतंत्र हो गया और वहाँ एक  
 नवीन राज्यवर्गका उदय हुआ। यह नवीन वर्ग जो जनघनानुयायी था।  
 प्राचीन राज्यवर्गमें इसका कोई सम्बन्ध था या नहीं यह नहीं कहा जा  
 सकता। सम्भावना यही है कि यह कलिंगके किन्हीं प्राचीन राज्यवर्गों की  
 मान्य थी। म्हाग्नेयके गिलालेग्रर अनुसार इस वर्गका नाम ऐल या और  
 यह वेदि या चंद्रवर्गकी एक शाखा थी। तत्कालीन राजाका नाम सम्भवतया  
 क्षेमराज था। कुछ विद्वानोंके अनुसार क्षेमराजका पुत्र वृद्धिराज था और  
 उसका पुत्र निशुराज त्वाखेय था, किन्तु कुछ-कुछका मन है कि ये म्हाग्ने-  
 यकी ही अपनी उपाधियाँ थीं। जो भी हो इसमें सन्देह नहीं है कि  
 म्हाग्नेयके पितामहने ही नम्प्रनिके समयमें इस राज्यवर्गका स्थापना का जो  
 और कलिंगकी स्वतंत्र किया था। म्हाग्नेयके पिताजी मृग्यु अपने पिताके  
 जीवनकालमें ही हो गयी थी अतएव उक्त वृद्धिराजका उत्तराधिकारी  
 उसका पोता त्वाखेय हुआ। कालिग चक्रवर्ती मगधेयवाहन राजर्षि म्हाग्ने-  
 य का जन्म लगभग १९० ई० पू० में हुआ, १५ वर्षकी आयुमें ( ई० पू०  
 १७५ में ) उसे युवराजपद प्राप्त हुआ और २८ वर्षकी आयुमें ई० पू०  
 १६६ के लगभग उसका राज्याभिषेक हुआ। उसके उत्तरात्त वर्षों में  
 १० वर्ष पर्यन्त उसने राज्य किया जिसका विशद वर्णन उसके स्वयंके  
 गिलालेग्रमें प्राप्त है। उसके ( ई० पू० १५२ के ) उपरान्त वह कितने  
 वर्ष जीवित रहा और उसने क्या-क्या किया इसके जाननेका वर्तमानमें  
 कोई साधन नहीं है। मगधाद् त्वाखेयका यह इतिहास-प्रसिद्ध गिलालेग्र  
 उडोसा प्रदेशके पूर्वी जिलेमें स्थित भुवनेश्वरसे तीन मीलका दूरीपर  
 विद्यमान स्रष्टगिरि पर्वतके उत्तरी भागपर जो कि उदयगिरि कहलाता  
 है वने हुए हाथीगुफा नामके एक विशाल एवं प्राचीन कृत्रिम गुफामन्दिर-  
 के मुख एवं छतपर उत्कीर्ण है। १७ पक्षियोंका यह महत्त्वपूर्ण लेख  
 ८८ वर्गफुट क्षेत्रमें लिखा हुआ है। लेखकी भाषा अर्द्ध-मागधी तथा  
 जनप्राकृत मिश्रित अपभ्रंश है। लेखके साथमें मुकुट, च्चम्रिक,

[illegible]

किसी भी व्यक्ति के पत्रों के सम्बन्ध में कानून द्वारा कोई भी प्रावधान नहीं है।

तलोंको भेंट लेकर अपने घरणोंमें नमस्कार कराया । पाँचवें वर्षमें राजा  
 उम नहरको राजधानी ( तोसालि या वर्निंग नगर ) तक लिया लाया जिसे  
 महापोर सवत् १०३ ( ई० पू० ४२४ ) में नन्द राजाने सर्वप्रथम खुद-  
 वाया था । छठे वर्षमें उसने राज्यैश्वर्य प्रदर्शनार्थ प्रजाजनोके कर आदि  
 माफ किये, दोन-शुखियोपर कृपा दिखायो, उन्हें सन्तुष्ट सुखी  
 किया और पोरजानपदों ( जनत आत्मथ संस्थाओं, नगरपालिकाओं,  
 ग्रामपचायतों, व्यावसायिक निगमों, थ्रेणियों आदि ) पर सैम्हो हज़ारों  
 विविध प्रकारके अनुग्रह किये । सातवें वर्षमें उसकी रानीने, जो यगदेशस्य  
 वज्रधर राज्यकी राज्यकुमारी थी, एक पुत्र प्रसव किया । आठवें वर्षमें  
 स्वारवेल्ने विशाल मेनाके साथ उत्तरापथकी विजय-यात्रा की, गगधपर  
 आक्रमण किया, गोरधगिरि ( गया जिलेका बराबर पर्वत ) पर भीषण  
 युद्ध करके राजगृह नरेशको शस्त किया और उसके भयसे यवनराज दिमित्र  
 भी अपनी समस्त सेना, वाहनो आदिको यत्र-तत्र छोड़कर मथुरासे भाग  
 गया । धमुना तटपर ( मयुरामें ) पहुँचकर पुष्पित पल्लवित कल्पवृक्ष  
 मभी अधीनस्य राजाओं तथा अश्व-गज-रथ सैन्य सहित धह राजा सव  
 गृहस्था द्वारा पूजित स्तूपकी पूजा करने जाता है । उसने याचकोंको दान  
 दिया, ब्राह्मणोंको भरण भोजन करामा और अरहन्तोंकी पूजा की । नवें  
 वर्षमें उसने प्राचीन नदीके दोनों तटोपर अढतीस लाख मुद्रा व्यय करके  
 महाविजयप्रासाद नामका सुन्दर एवं विशाल राजमहल बनवाया । दसवें  
 वर्षमें अपनी सेनाओंको विजय यात्राके लिए पुन भारतवर्ष ( उत्तरापथ )  
 की ओर भेजा और फलस्वरूप उसके सब मनोरथ पूरे हुए । स्वारहवें  
 वर्षमें उसने दक्षिण देशको विजय किया, पिथुण्ड नगर ( पृथुदकदमपुरी )  
 का ध्वस किया ( उसमें गदहोंके हल चलवाये ) और ११३ वष पहलेमे  
 संगठित चले आये तमिल राज्योंके सबको छिन्न भिन्न किया ।  
 ( अर्थान्तर—आ केतुमद्रकी उस १३०० वष प्राचीन निम्बकाष्ठ निर्मित  
 प्रतिमाका जुलूम निकाला जिसकी कि स्थापना पूर्ववर्ती राजाओंने पृथुद-





राजा की बैठ लेकर अपने घरणोंमें नमस्कार कराया । पाँचवें वर्षमें राजा  
 सम नहरवा राजधानी ( तोपलिया या बलिया नगर ) तथा मिर्जापुरा जिला  
 महाशिव सन् १०३ ( ई० पू० १२४ ) में मन्द राजाने सर्वप्रथम खुद-  
 वाया था । छठे वर्षमें उसने राज्यारम्भ प्रदर्शनार्थ प्रशासनिक कर आदि  
 माफ़ किये, दोन-दुनियोर कृपा दिलायी, उन्हें सन्तुष्ट करने  
 किया और पोग्जानपदों ( जनत-यात्मक समस्या, नगरपालिकाओं,  
 ग्रामपचायतों, व्यावसायिक निगमों, श्रेणियों आदि ) पर सर्वश्रेष्ठ हक़ार  
 विविध प्रकारके अनुग्रह किये । सातवें वर्षमें उसकी रानीने, जो बंगलादेश  
 राज्य राजकी राज्यकुमारो थी, एक पुत्र प्रसव किया । आठवें वर्षमें  
 साखेन्ने विशाल सेनाके साथ उत्तराखण्ड की विजय-यात्रा की, मगधपर  
 आक्रमण किया, गोरखगिरि ( गया जिलेका बगवर पर्वत ) पर जीतकर  
 युद्ध करके राजगृह-नरेंद्रको ग्रस्त किया और उसके भयसे यदनराज दिग्भित्त  
 भी अपनी समस्त सेना, वाहनों आदिको यत्र-तत्र छोड़कर मथुरासे भाग  
 गया । यमुना तटपर ( मथुरामें ) पहुँचकर पुणित पल्लवित कल्पवृक्ष  
 सभी अधीनमन्द राजाओं तथा अस्त्र-नाज-रथ-सैन्य सहित वह राजा मन्त्र  
 गृहस्थों-द्वारा पूजित स्तूपकी पूजा करने जाता है । उसने यात्राको दान  
 दिया, ब्राह्मणोंको भरण-भोजन कराया और अग्निहोत्रोंकी पूजा की । नवें  
 वर्षमें उसने प्राचीन नदीके दोनों तटपर अहतीस लाख मुद्रा व्यय करके  
 मन्त्रविजयप्रानाद नामका मुद्रा एवं विशाल राज्यमहल बनवाया । दसवें  
 वर्षमें अपनी सेनाओंको विजय यात्राके लिए पुनः भारतवर्ष ( उत्तराखण्ड )  
 की ओर भेजा और फलस्वरूप उसके सब मनोरथ पूर्ण हुए । आठहवें  
 वर्षमें उसने दक्षिण-देशको विजय किया, पिथुण्ड नगर ( पृथ्वीदक्षिणपुरी )  
 का स्वस किया ( उसमें गदहोत्रि हल चलावाये ) और ११३ वर्ष पहलेसे  
 सगठित चले आये तमिल राज्योंके सबको छिन्न-भिन्न किया ।  
 ( अर्थान्तर—यह केतुनदकी उस १३०० वर्ष प्राचीन निम्बकाष्ठ निर्मित  
 प्रतिमाका जुलूस निकाला जिसकी कि स्थापना पूर्ववर्ती राजाओंने पृथ्वी-

कलिंग आदि और बृहत्तर नारत

**प्राचीन इतिहास कृती**

लिए आये थे। इस मुनि-सम्मेलनमें राजाने भगवान्‌की दिव्य ध्वनिमें उच्चरित उस शान्तिदायी द्वादशांग श्रुतका पाठ कराया, जो कि महावीर संवत् १६५ ( ई० पू० ३६२—भद्रबाहु श्रुतकेवलीके समय ) से निरन्तर ह्वासको प्राप्त होती आ रही थी, ( तथा उसके उद्धारका प्रयत्न किया ) और इस प्रकार उस क्षेमराज, वृद्धिराज, भिक्षुराज ( राजपि ) धर्मराज नरेशने भगवान्‌की उक्त कल्याणकारी वाणीके सम्बन्धमें प्रश्न करते हुए, उसका श्रवण और चिन्तन करते हुए समय बिताया।

विशिष्ट गुणोंके कारण दक्ष, समस्त धर्मोंका आदर करनेवाला, धर्म सस्याओंका उद्धार, सुधार एवं सस्कार करनेवाला, अप्रतिहत-चक्रवाहन ( जिसके रथ, ध्वजा, सेनाकी गतिको कोई नहीं रोक सका ), साम्राज्योंका सतत विजयी एवं साम्राज्य-संचालक और सरक्षक, राजपियोंके वशमें उत्पन्न महाविजयी राजचक्री ऐसा राजा खारवेल श्री था।”

उपरोक्त शिलालेखका महत्त्व सुस्पष्ट है। समयकी दृष्टिसे सम्राट् प्रियदर्शीके अभिलेखोंके पश्चात् इसी शिलालेखका नम्बर आता है। ऐतिहासिक महत्त्वकी दृष्टिसे यह लेख प्राचीन भारतके समस्त उपलब्ध शिलालेखोंमें सर्वोपरि है। उस कालका यही एकमात्र ऐसा लेख है जिसमें वंश, वय-मंथना, तत्कालीन जनसंख्या, देश और जाति, पद नाम इत्यादि अनेक बहुमूल्य ऐतिहासिक तथ्योंका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। प्रो० रासालदास बनर्जीके मतसे यह लेख पौराणिक वंशावलिओंकी पुष्टि करता है और ऐतिहासिक काल-गणनाको ५वीं शती ई० पू० के मध्यवर्ग लगभग तक पहुँचा देता है। देशके लिए ‘भारतवर्ष’ नामका सर्वप्रथम शिलालेखीय उल्लेख इसीमें मिलता है। कर्लिंग देशकी तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दशा, राजाकी योग्यता, राजकुमारोंकी शिक्षा-दीक्षा और प्रजाके प्रति राजाके कर्तव्योंका यह सुन्दर दिग्दर्शन कराता है। बिहार और उड़ीसाके सम्बन्धकी ऐतिहासिकताको २००० वर्ष पूर्व तक ले जाता है। इसमें तो किसीको भी कोई संदेह नहीं कि इस लेखको उत्कीर्ण

कर्लिंग आदि और बृहत्तर भारत



हृदयमिहको कहा था, यह लेण निर्मित कराया था। मधुपुरी गुफासे निचले भाग स्थित पानाळपुरी नामक गुफाको महाराज एक महादेव वाहनने बनाया ( सम्भवतया पुत्र ) कलिगाधिपति महाराज तुल्यश्रीन निर्मित कराया था। यमपुरी लेणसे लेखसे ज्ञात होता है कि यह राजगुमार बहुरूपन निर्मित कराया था, सम्भव है कि उसने स्वयं भी वही धर्म नाथन किया हो। व्याघ्र गुफाको नगर-यायाधीश भूतिने निर्मित कराया था। इस गुफाके निकट ही सपगुफाम बम्म, हन्मिण और चूलबम्म नामक व्यक्तिसे लेख हैं जिनसे विदित होता है कि गुफाके प्रामादको प्र म देने और अन्तर्गृहको नागर व्यक्तिन बनवाया था। जम्बेदयर गुफामें महा-वाग्मि और नाकियके नाम अंकित हैं। आठो हाथीगुफा किसी आत्ममुक्ति-द्वारा प्रदत्त की गयी थी। तत्त्वगुफा कुमुम नामके किसी राज्य-कर्मचारी ( पादमूलिक )-द्वारा निमाण करायी गयी थी। अन्तर्गुफाका लेख भी उन श्रमणोंकी गुफा सूचित करता है। इन विभिन्न गुफा-मन्दिरों, लेणों और शिलालेखोंसे स्पष्ट है कि स्वार्थलके बाद भी कई शताब्दियों तक खण्ड-गिरि-उदयगिरिकी गुफाएँ जैनाका पवित्र तीर्थ और जैन श्रमणोंका प्रिय आवास बनी रहीं तथा कर्लिके राजवंशमें, राज्य-कर्मचारियोंमें और जनमाधारणमें जैनधर्मकी प्रवृत्ति बनी रही। ऐसा प्रतीत होता है कि कम-से कम प्रथम शताब्दी ई० के उत्तरार्ध तक जबतक कि सातवाहन नरेशोंने कर्लिक देशक बहुभागको विजय नहीं कर लिया, कर्लिक देशपर स्वार्थलका वश शाक्तिके साथ शासन करता रहा, किन्तु अन्तर्देशीय राजनीतिमें वह नहीं उलझा।

प्रथम शताब्दी ई० पूर्वके पूर्वार्धमें ( मन् ७४ ई० पू० के लगभग ) शार्वेलक एक वंशज, वक्रदेशके पुत्र महेन्द्रादित्य गन्धर्वसन गृहभिल्ल ( या वरभिल्ल ) ने मालवेक नवस्थापित गणराज्यका नायकत्व प्राप्त करके उज्जैनीमें गृहभिल्ल वंशकी स्थापना का थी। गृहभिल्लके अत्याचारों और अनाचारोंने उसे बालकापायवे प्रयत्नसे शको-द्वारा ई० पू० ६१ में राज्य

बहुल एवं बेधरी निर्वाहित कराया किन्तु ई पू० १७ ई. इन्ने राजा  
 पुन और विजयवित्तके क्षयको कारण माराया जाकर मराओ राज्य निक  
 और बीचवाल तक व्याप्तपूर्णक राज्य किया । मरने पुनको क्षय किन्ने  
 दिल्ली की निर्देश मारा गयी । एक ही मय परीक्षा इन्नेकी मरने  
 मरने राज्य गयी ।

प्राचीन सामाजिक व्यवस्थायो विहित होता है कि आत्मपरायने आत्मके वंशजोंको ही आकाशदेहो कर्षी एक कर्मिकद्वारे और दूसरी विधुपार्य और कर्मके परस्पर आत्मविनाशही नैवर्ष्य बन्ध । सम्बन्धतया इसो कुछ-कुछ का कर्मकर दक्षिणका आत्मपराय-वरीय वीरवीरपुत्र आत्मपराय ( स्वयं कर्षी के का उत्तराध ) कर्मिक-विचार करकेही कर्मक हुआ । दूसरी कर्षी के कर्मके आत्म आत्मपरायोंका कर्म होनेपर कर्मिकके विचारो कर्षी कर्मके वंशमें कर्मकेही कर्मका कर्मिकके वीरवीरपुत्रपराय आत्मक कर्मिकके वीर आत्मके इत्येवम विना । कुल आत्मपराय वीर विचारका कुछ कर्म कर्मिकके पक्षा प्रणीत होता है । कर्मक विचारो कुछ वंशपराय प्रवेश के कर्षी आत्मका कर्मक है । कर्मिकके ही कर्मिकके ही कर्मिकके ही २०-३० कर्षी है के वीरपराय आत्मपराय-वरीय कर्मका वीर प्रवेशमें प्रवेश कर्म ही कर्म । आत्मपराय वीर वीर-वीर कर्मिक के कर्म का । कर्म कुलपरायके ही इन वंशमें कर्म वीरों कर्मिको इत्येव आत्म-पराय वीर वीर है । कर्मपरायके आत्मपरायके कर्मपराय कुछ कर्मिके विचार कर्मिक के कुछ आत्मपर आत्मपरायके वीर है हुए कर्म-कर्मपराय वीर आत्म पक्षा प्रणीत होता है कर्म कर्षी कर्मके प्राचीन आत्म वंशके कुछ वीर विचार ( वंश ) में वीर का वीर ।

५४०-१८११ मती ई. में कश्मिर देशमें बार छत्र-बर्षोंका कदम हुआ। मतीच इतिहा है—ब्रह्मा पुनी-बर्षीका ना। कश्मिरके बर्षबर्षकी एक बाबाने कश्मिर देशमें ब्रह्मापुत्र ना बर्षीकी बर्षी राजबली बर्षाकर पुनी बर्षबर्षकी बर्षाका की की कीर बर्षा बर्षीका (बारम्ब ५९ ई.) की

प्रचलित किया था। उड़ीसा देशके दक्षिणी भाग (सम्भवतया गजमें जिले) पर इनका अधिकार था। इस वंशके इन्द्रवर्म प्रथम, हस्तिवर्म, इन्द्रवर्म द्वितीय, दानार्णव, इन्द्रवर्म तृतीय आदि राजाओंके अभिलेख गग-सवत् २८ से ११४ पर्यन्त ( ५२५-६४१ ई० तक ) के मिलते हैं। इन नरेशोंके मूल कर्णटकी वंशका कुलधर्म जैनधर्म था अतः ये भी उसीके अनुयायी अथवा कमसे कम उसके उदार प्रश्रयदाता रहे प्रतीत होते हैं। ७वीं शतीके प्रारम्भ तक यह वंश अवनत एवं गौण दशामें रहा। किन्तु वज्रहस्तदेव ( १०३८-६८ ई० ) ने इस वंशका पुनरुद्धार किया, कलिंगनगरको राजधानी बनाया और देशके बहुभागको विजय करके त्रिकलिंगाधिपतिकी उपाधि धारण की। उसके उत्तराधिकारियों राजराजा, चोडगग और नर-मिहदेवक समयमें यह वंश उन्नतिके शिखरपर था। तदुपरान्त फिर अवनत हुआ। अन्तिम राजाकी पुत्रीका विवाह एक नागवंशी सरदारके साथ होनेसे यह राज्य नागवंशके अधिकारमें चला गया, जो मुसलमानों और फिर मराठोंको अधीनतामें रहता हुआ १८वीं शती तक चलता रहा।

दूसरा वंश तोशलिके भौमकरोका था। इस वंशका संस्थापक खारवेस-के किसी सामन्तका वंशज रहा प्रतीत होता है। भौयकालीन प्राचीन महानगरी तोशलिको ही इस वंशने अपना केन्द्र बनाया था। ३री शतीसे ५वीं-६ठी शती ई० पर्यन्त इस राज्यका अस्तित्व रहा। उसके उपरान्त इसका ह्रास हुआ और सम्भवतया गौण सामन्तो-जैसी अवस्था हो गयी। कियौंकि राज्य प्रायः इसी प्रदेशमें रहा है। इसका शासक भन्जी वंश उड़ीसाके सर्वप्राचीन वंशोंमें समझा जाता है, सम्भव है कि वर्तमान भन्जी राजे प्राचीन भौमकरोके ही वंशज हों। इस राज्यके आनन्दपुर तालुकमें उस नगरसे १० मील दूर धनमें पोछा सिंगडि और बदखिया नामकी प्राचीन वस्तिर्या हैं। उनके आस-पास वनो और पहाडियोंमें जैन तीर्थंकरों एवं देवी-देवताओंकी अनगिनत प्राचीन खण्डित अखण्डित मूर्तियाँ और विशाल मन्दिर, देवायतन, स्मारकों, सरोवरों आदिके खण्डहर हालमें ही दृष्टि-



नीचर हूँ । कुछ भुक्तिबोधर काही निमित्त केव भी उत्पन्न हैं ।  
अभिवाचनार्थमें दोहा किन्हीं दिवस जिम अद्विष्टात्मका और कल  
कल दिनके नाविक प्राप्तवाली काहीन अनुपुष्टिका वर्धन । यह भी  
स्वयं उत्पन्न होता है । और इन अवस्थेतो निमित्त होता है कि कारोने  
उपराग्न नौ नीमकरो आनिक राज्यवाक्यें पुन्यकाक्यें कल एक इन दोन  
से नीमकर्म पूर्ववत् कलता-पुन्यता और राज्यवाक्य कल रहा न । ईश ज्ञेय  
होता है कि एकी कलानीये वाक्यवाक्य नीम और नीमकर्म कर्मके कर्म  
प्रवाक्ये इन केवको नीरे-नीरे कलक निम ।

[illegible][illegible]

विद्वानोंमें मतभेद है। किन्तु ऐसा लगता है कि दुर्गन्धसागके समय कोसल और श्रिकाँगका अधिपति कोई वह सोमवशी राजा था जो अकलकदेव-सम्बन्धी जैन अनुश्रुतिका कलिंग-नरेश हिमशीतल है। यह गोहके बौद्ध धिद्वेपी शशाकका प्रतिद्वन्द्वी और कन्नोजके हर्षवर्धनका मित्र था तथा स्वयं भी मद्राधानो बौद्ध सम्प्रदायका अनुयायी था। उसका राजमहिषी जैनधर्मकी भक्त थी। एक समय वह उद्योसाके होकर तटपर स्थित अपनी उपराजधानी रत्नसचयपुरमें निवास कर रहा था। कार्तिकी अष्ट-ह्लिकका पर्व निकट था। रानीने उस अवसरपर जिनेन्द्रके रथोत्सवद्वारा पर्व मनानेका विचार किया किन्तु राजाके बौद्ध गुरु डममें बाधक हुए। अन्ततः राजाने निर्णय दिया कि यदि जैनाचार्य बौद्ध विद्वानोंको शास्त्रार्थमें हरा देंगे तो जैन रथ निकलनेकी अनुमति दे दी जायेगी। रानी तथा अन्य जैनो जन बड़े चिन्तित हुए। उनके मौभाग्यसे उसी समय नगरक बाहर उद्यानमें महाराष्ट्रके दिग्गज जैनाचार्य अकलकदेव तभी आकर छहरे थे। उन्होंने तुरन्त बौद्धोंकी चुनौती स्वीकार कर ली। ६ महीने तक विवाद हुआ। बौद्ध लोग तारादेवीका सहायतासे शास्त्रार्थ कर रहे थे। अन्ततः अकलकदेवने घटमें स्थापित ताराका विस्फोट करके बौद्धोंको पराजित किया। राजा बड़ा प्रभावित हुआ और उसने जैनधर्म अंगीकार कर लिया। अनेक बौद्धोंको सम्भवतया दशम निष्कासित होकर सुदूर पूर्वके भारतीय राज्यों एवं उपनिवेशोंमें चला जाना पड़ा। हर्ष डम समाचारको सुनकर क्रुद्ध हुआ। वह दक्षिणके चालुक्योंपर भी विजय प्राप्त करना चाहता था अतः उसने कलिंगके मार्गसे मसैन्य प्रयाण किया। हिमशीतलके साथ घाट युद्ध हुआ जिसमें वह मारा गया। किन्तु उपर अकलकदेवने चालुक्य राजधानी वातापीमें जाकर अपने भयन चालुक्य सम्राट् विक्रमादित्य प्रथम माहमतुग ( ६४३-८० ई० ) को इस वादक समाचार सुनाया। अतः हर्षके आक्रमणकी सूचना पाते ही वह तुरन्त हिमशीतलकी सहायताका पट्टा। हिमशीतलकी रक्षा ता वह न कर सक

किन्तु इन्हें बरकतिल हीकर आरम कीट तथा और कीमत सामग्री की रक्षा हो कवी । वे कहताहैं तन् १४९-४४ ई की है । जलारण्यी होकरकी कवी-कवी । ऐस कीर बीमब बनेके अनुयायी हो कवी । किन्तु बीमबी बारीके विचारकी तथा बुराकाल लीन अनुयायिनी आदि काल देखिहू बाकमहि का काल है कि टीकी कवी ई कवीक कालुर्न कालि देखिहू बीमबर्न काली कालुर्न बा ।

[illegible][illegible]

उड़ीसा गजेटियरके लेखक डब्ल्यू० एच० हण्टरके अनुमान इस दशके आदिम धामियोंका धर्म भी जैनधर्म ही था, यहाँके यवन राज्योंने भी इसी धर्मको अपनाया। १०वीं ११वीं शतीके उपरान्त यहाँके जनाने द्रुत वेगसे स्वधर्म छोड़ा। जो फिर भी अडिग रहे, उनके वंशज मराकोके रूपमें आज भी विद्यमान हैं।

**महाकोसलके कलचुरि**—कलिंग देशके पश्चिमी भाग ( जो दक्षिण कोसल कहलाता था ) तथा विदर्भ और मध्य प्रदेशके कुछ भागोंसे महाकोसल राज्यका निर्माण हुआ था। मगधके नन्द मौर्य आदि सम्राटोंके पश्चात् कलिंगचक्रवर्ती खारवेलका और फिर आध्र मानवाहनापा इस प्रदेशपर अधिकार रहा। तदुपरान्त वकाटकोंका राज्य हुआ जो ५वीं शती ई० पर्यन्त चला। वकाटकोंके सामन्ताके रूपमें ही सम्भवतया कलचुरि वंशका, जिसे चेदि या हंहय वंश भी कहा गया है और जा सम्भव है चैत्रवशी खारवेलके वंशजोंको ही दासता थी, तीसरी शती ई० में उदय हुआ था। गुप्तोंने वकाटकोंको समाप्त किया अतएव उनके समयमें महाकोसलके कलचुरि गुप्तोंके करद राजाओंके रूपमें चलते रहे। आहममण्डलमें त्रिपुरी इनकी प्रधान राजधानी थी। दक्षिण चेदि या दक्षिण कोसलके कलचुरियोंकी राजधानी रतनपुर ( विलासपुर ) थी। कलचुरियोंकी एक दासता सरयूपारी नामसे भी प्रसिद्ध हुई जिसका राज गोडा बहराइचमें था। कलचुरि वंश एक अत्यन्त प्रतिष्ठित वंश था। विभिन्न राजवंशोंके नरेश कलचुरियोंके साथ विवाह सम्बन्ध करनेमें गौरव मानते थे। कलचुरि या धैकुटव संवत् २१९ ई० में प्रारम्भ हुआ अतः यही तिथि कलचुरि वंशकी स्थापना की मानी जाती है। किन्तु इस वंशका उत्कर्षकाल ८वीं से १२वीं शती ई० पर्यन्त रहा, और उसमें ७वीं शतीका शकगण एक प्रसिद्ध राजा हुआ। ८वीं शतीमें लक्ष्मणराज राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीयका सामन्त था। उसके पुत्र कोषकल प्रथमका विवाह चन्देल राजकुमारीके कलिंग आदि और बृहत्तर भारत



भी जैनधर्मके प्रति महिष्णु और उदार रहे और इस धर्मका आदरको दृष्टि देखते थे। प्रारम्भिक त्रेगोमें महाराज ढाकरगणने वि० स० ६८० ( ६२३ ई० ) में जैनतीर्थ कुल्पाक क्षेत्रकी स्थापना की थी और उसके लिए वारह ग्राम प्रदान किये थे। कलचुरि-नरेश गयकणदेव ( ११२५-५४ ई० ) भी जैनधर्मका आदर करता था। उसके महामामन्ताधिपति गोल्हणदेव गठोरने जो जैनधर्मका अनुयायी था, जवलपुरसे ४३ मील उत्तरमें स्थित बहुग्रीवन्दके ग्वनुयादेव नामक प्रसिद्ध जैनतीर्थको जिनमूर्तिकी प्रतिष्ठा करायी थी। विजयसिंहदेव कलचुरि ( ११९५ ई० ) तो निर्दिष्ट रूपसे परम जैन था और उसके समयमें राज्य एवं प्रजाका प्रधान धर्म जैन ही था।

सम्पूर्ण महाकोसल दशमें प्राचीन जैन मन्दिरा, मूर्तियों एवं अन्य धार्मिक कलाकृतियां अवशेष यत्र-तत्र-सुवत्र इतने बिखरे हुए मिलते हैं कि जिससे हम तथ्यमें सन्देह नहीं रहता कि पूर्व मुसलिम कालमें यह प्रदेश गताब्दियों पयन्त जैनधर्मका एक प्रमुख गढ़ रहा है। कलचुरियोंके शासन कालमें जैनाश्रित शिल्प स्थापत्यकलाका इस प्रदेशमें अभूतपूर्व विकास हुआ। कोई कोई जैन कृतियाँ तो तत्कालीन सम्पूर्ण भारतीय कलाकी उत्कृष्टताका प्रतिनिधित्व करनेकी क्षमता रखती हैं। अनेक जैनतीर्थ एवं सांस्कृतिक केन्द्र इस प्रदेशमें स्थापित हुए यथा कुल्पाक क्षेत्र, सनुवादेव, रामगिरि, अचलपुर, जोगोमारा, कुण्डलपुर, कारजा, आरग, इलोरा, धाराशिव आदि। कारजा प्राचीन कालसे ही एक प्रसिद्ध दिगम्बर जैन केन्द्र रहता आया है। अपभ्रंश भाषाके सुप्रसिद्ध जैन महाकवि पुण्यदन्त रोहणखेहके निवासी थे। रामपुर जिलेके आरग स्थानमें एक प्राचीन जैन-मन्दिर है और उसके निर्माता तत्कालीन राजे राजपि तुल्य कहे जाते थे। डॉ० हीरालालका मत है कि ये राजे महामेघवाहन खारवेलके वंशज रहे प्रतीत होते हैं। सम्भव है कालान्तरमें ये कलचुरियोंके सामन्तरूपमें रहे हों। महाकोसल विदम्बका अचलपुर नगर भी प्राचीन जैन केन्द्र

[illegible][illegible]

प्रथम सीपेंकर आधुनिकीय के अन्तर्गत नवम्बर पुस्तकालयों इन प्रदीप्तों के अनुसार वर्गीकृत किया गया है।

अनेक तीर्थंकरोंने इस प्रदेशमें विहार किया। महाभारत-कालमें श्रीकृष्णके राज्ञात् भाई २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमिका तो यह प्रान्त प्रधान विहार-क्षेत्र था। स्वयं कृष्ण, बलराम आदि हरिवंशी यादवोंने शौरसेन देशके शौरीपुरका परित्याग करके सौराष्ट्रके समुद्रतटपर द्वारका-जैसी मनोरम नगरीका निर्माण किया था और उसे अपनी राजधानी बनाया था। उसीके निकट जूनागढ़के राजा उग्रसेनकी कन्या राजुलदयीके साथ नेमिकुमारका विवाह रचानेके लिए यादवोंकी वारात चढ़ी थी। किन्तु दोन पशुओंकी पुकार सुन, मुकुट और कंकणको ताड़कर धर्मवाग् नेमिकुमार ससार, दह और भोगोंसे विवृक्त हुए तथा निकटवर्ती ऊर्जयन्त अपरनाम गिरनार पर्वत-पर जाकर तपस्यामें लीन हो गये। महामती राजुलने भी उन्हींका अनुकरण किया। इसी पर्वतपर नेमिनाथको वैद्यज्ञान प्राप्त हुआ और अन्तमें इसी पर्वतके शिखरसे उन्होंने निर्वाण लाभ किया।

सन् ई० के प्रारम्भसे लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व मध्य-एशियाके प्रसिद्ध प्रागैतिहासिक साम्राज्य बाबुलके अधिपति खिल्दियन वंशी सम्राट् नेदुचेड-नज्जने इस गिरिराजकी वन्दना की थी और इसके प्रभु अरिष्टनेमिकी सेवामें बृहत् दान समर्पित किया था, जैसा कि इस स्थानसे प्राप्त उक्त नरेशकी लेखांकित मुद्रासे प्रमाणित होता है। इस प्रकार तीर्थंकर महावीरसे ही नहीं, तीर्थंकर पार्श्वनाथसे पूर्व भी इस प्रदेशमें तीर्थंकर अरिष्टनेमिकी उपासना, गिरनार पर्वतकी तीर्थ रूपमें मान्यता और जैनधर्मका प्रभाव विद्यमान थे। बौद्ध अनुश्रुतिके सोलह महाजनपदोंमें इस देशकी गणना नहीं है किन्तु जैन अनुश्रुतिके प्राचीन राज्यों एव आर्य देशोंमें कच्छ नामसे इसकी गणना स्पष्ट मिलती है। चन्द्रगुप्त मौर्यने इस प्रदेशको विजय करके उसे अपने साम्राज्यमें मिला लिया था। उसने स्वयं गिरनारकी यात्रा की थी और उसकी तलहटीमें अपने कर्मचारी वैश्य पुण्यगुप्तको देख-रेखमें एक विशाल एव सुन्दर सरोवरका निर्माण कराया था, जो सुदर्शन झीलके नामसे विख्यात है। चन्द्रगुप्तने इसी सरोवरके निकट मुनियोंके निवासके लिए एक कलिंग आदि और बृहत्तर भारत



केव पी बदनामी को को चतुर्मुख के माथे प्रक्षिप्त हुई। सम्भवतः इसी  
 मुखमें कल नम्राहने स्वयं केन मुनिके कर्मे कुछ दिन निवास किया था।  
 इनके बीच बयाफने की सुपुत्र प्रीतिता बाल बचन कर्मचारी सुपुत्रक-  
 द्वारा भीषणित कराना या अघोरके बीच कम्पठिन मो इन त्रैलके  
 विराम बचनर आदि केन तीर्थो कलना की और कही अनेक धर्मि-  
 का निवास कराना। पुनःचतुके निवस ही नम्राह विवर्धना एक प्रवास  
 विमलिन की विरामन है की अघोर का कम्पठि तीर्थो के मिठी देना  
 ही करता है।

मन् ई ५ ५ के कर्मके और विरामधर्म-द्वारा एक धर्मिने  
 बालका देखने निवास बाहर विवेकानंदर इनके एक नम्राहने हीराह के  
 वर अविचार कर किया था और अचरित बचनी स्वाभाव की की इस बचने  
 मुसक बरक नम्राह उपरकल आदि सभी प्रक्षिप्त हुए किन्तु इन बच-  
 रानीमें नम्रिधर्म प्रक्षिप्त नये बचन ( वरमहान या नम्रिधर्म ) का  
 विराम राज्य-कर्म २५-२५ ई. बाबा बाप है। इसी समय विरामबादी  
 कपोलन कतुमुखमें अचरित देखाना वरनेनाचर्य निवस  
 करी के कही कर्मनि आचार्य पुनःकल एवं पुनःकलने कल आचराना  
 अचरित कराने कने विरामित कराने कायेप दिया था। एक कतुमुखके  
 कतुमुख कर्म अचरितबादी कर्मर नम्राह ही अचरित कर्म करके केन  
 मुनि ही कमा था और कपोलन बीनाचर्य कतुमुखके अविचार कतुमुखके  
 कपोलन एक कर्मिणी ही एक कल बाबा अचरितबादी अचरितबादि  
 कर्मों मीगल देवकी अविचारि हुई। कर्मिणी विरामके कपोलने इन  
 बचने कर्मरक अचरितन बचने ही ५८ ई. के अचरित अचरित-  
 स्वाभाव की थी। इन बचने कर्मिणी-के कई एक कल अचरितके  
 कर्म-पुनर् ही कमा था कतुमुखमें के अनेक कर्मरक कतुमुखी का कर्मर है।  
 इन बचने कर्मरक औरकतापी कर्मर कतुमुखन अचरित का कर्मर ही  
 कही है के कर्मने विरामबादी कपोलन कतुमुख कीकल पुन अचरित

कराया था तथा वहाँ अपनी महत्त्वपूर्ण प्रशस्ति अंकित करायी थी। उसके पुत्र दामजदश्रीने उपरोक्त चन्द्रगुफामें एक शिलालेख अंकित कराया था जिससे उस नरेशके जैनी होनेमें कोई सन्देह नहीं है। उसने यह लेख आचार्य परसेनकी मृत्युकी स्मृतिको अमर बनाये रखनेके लिए अंकित कराया प्रतीत होता है। इसी वंशकी एक राजमहिषीकी मानांकित मुद्रा भी महावीरकी जन्मभूमि सुदूर वैशालीके खण्डहरोंमें मिली है जिससे विदित होता है कि वह रानी वहाँ तीर्थ-यात्राय गया होगी। इस प्रदेशपर शक-सत्रपोंका राज्य ४थी शती ई० के अन्त तक चलता रहा। ४वीं शताब्दी ई० के अन्तमें गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यने वकाटकीकी सहायतासे शकोंकी राज्यशक्तिका उन्मूलन किया और यह देश गुप्त साम्राज्यका अंग बन गया। सन् ३००-३१३ ई० में आर्य स्कन्दिलकी अध्यक्षतामें मयुरामें श्वेताम्बर साधुओंका एक सम्मेलन हुआ था, प्रायः उसी समय नागार्जुन सूरिने वल्लभीमें एक वैसा ही सम्मेलन बुलाया था और उसमें आगमोंके सकलनकी चर्चा उठायी थी। इससे विदित होता है कि ३री शतीके अन्त या ४थी के प्रारम्भके लगभग ही सौराष्ट्र और विशेषकर उसकी राजधानी वल्लभी श्वेताम्बर सम्प्रदायका केन्द्र बन गयी थी। गुप्तोंके कालमें यह प्रदेश साम्राज्यकी एक भुक्ति था और सम्राट् स्कन्दगुप्तने पर्णदत्तको इस भुक्तिका प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था। इस पर्णदत्तके पुत्र चक्रपालितने जो गिरिनगरका कोटपाल था, सुदर्शन शीलका पुनर्जीर्णोद्धार कराया और वहाँ एक शिलालेख भी अंकित कराया था।

गुप्तकालमें ही गुजरातमें मौर्य वंशका उदय हुआ। वल्लभीको इस वंशने अपनी राजधानी बनाया। कुमारगुप्त प्रथमके समयमें ही इस वंशकी स्थापना हो गयी प्रतीत होती है और गुप्त सम्राटोंके करद राजाओं या सामन्तोंके रूपमें ही इस वंशका प्रारम्भ हुआ। यही कारण है कि इस वंशके नरेशोंके समस्त अभिलेख गुप्त सवत्में ही मिलते हैं। मौर्य

कलिंग आदि और छहत्तर भारत



उन्होंने अपने आश्रयदाता शिलादित्यका भी उल्लेख किया है। मह राजा बौद्धोका भी समान रूपसे आदर करता था। चीनी यात्री ह्वेनसांगने भी उसका उल्लेख किया है। बौद्धग्रन्थ मज्झिमीमूलकल्पमें इस राजाके राज्यका विस्तार उज्जैनसे लेकर समुद्रतटवर्ती लाट देश पर्यन्त बताया है। शिलादित्यका भतीजा ध्रुवभट्ट या ध्रुवसेन द्वितीय था जिसे हपवर्धनने युद्धमें पराजित किया था किन्तु फिर अपनी पुत्रीका विवाह उसीके साथ करके उससे मैत्रो सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। सम्भवतया हर्षका जामाता होनेके कारण ही यह राजा महायानी बौद्धधर्मका भक्त हुआ। हर्षकी मृत्युके उपरान्त वह स्वतन्त्र हो गया। उसका पुत्र धरसेन चतुर्थ भी महायानी बौद्ध था, उसने अपने लिए चक्रवर्ती शब्दका भी प्रयोग किया है जिससे सूचित होता है कि उसने विजयों-द्वारा अपने राज्यका विस्तार भी किया था। ६९५ ई० के लगभग भारतमें आनेवाला चीनी यात्री ह्वेनसांग लिखता है कि वल्लभी नालन्दाकी भाँति ही बौद्ध धर्मका प्रमुख ज्ञान-केन्द्र थी। इस शताब्दीमें गुणमति, स्थिरमति, जयमेन आदि वल्लभीके प्रमुख बौद्धाचार्य थे। बौद्धोंके इस उत्कर्षने वल्लभीमें जैनधर्मको सौ डेढ़ सौ वर्षके लिए गौणता प्रदान कर दो प्रतीत होती है। ७१५-४३ ई० के बीच अरब सरदार हाशमके सेनानी जुमैदने वल्लभीपर आक्रमण करके उसे लूटा था। मैत्रकवश अब अवनत हो चुका था और शिलादित्य सप्तम ( ७६६ ई० ) सम्भवत इस वंशका अन्तिम राजा था।

८वीं शतीके उत्तरार्धमें गुजरात देश सोराष्ट्रके सैयब, भडोचके गुर्जर, लाटके चालुक्य, सोरमण्डलके वराह, अग्निह्वयके चावडा ( चापोत्कट ) आदि अनेक छोटे-छोटे राज्योंमें बँटा हुआ था। जैनाचार्य जिनसेनके हरिवंश ( ७८३ ई० ) के अनुसार इन सबमें सोरमण्डलके वराह प्रमुख थे और वर्या महावराहका पुत्र या पोत्र जयवीर वराह राज्य कर रहा था। किन्तु इसी समय भिन्नमालके गुर्जर-प्रतिहार और दक्षिणके राष्ट्रकूट दोनों ही गुजरातको हस्तगत करनेके लिए उतावले हो रहे थे। प्रतिहार



में जयशेखर चापोत्कटके पुत्र वनराजने इस वंशको स्थापना की थी।  
 अपने गुरु श्वेताम्भराचार्य शीलगुणसूरिके उपदेश, आशीर्वाद और  
 सहायतासे वनराज राज्य स्थापित करनेमें समर्थ हुआ। उसने वल्लभी और  
 उसके मैत्रकाका अन्त किया और अन्हिलपाटन नामक नवीन नगर बसाकर  
 उसे अपनी राजधानी बनाया। इस वंशके समयमें जैनधर्म ही प्रायः  
 राजधर्म रहा यद्यपि शैव और शाक्तधर्म भी राज्यमान्य बने रहे। राज्यके  
 अधिकांश प्रभावशाली वर्ग, धनिक महाजन, राजमन्त्री आदि जैन थे।  
 वनराजका प्रधान मन्त्री चम्पा नामक जैन वणिक था जिसने चम्पानेर नगर  
 बसाया। निघ्नय नामक एक धनवान जैन श्रेष्ठिने, जिसे वनराज पिता  
 तुल्य मानता था, अन्हिलवाड़ेमें ऋषमदेवका मन्दिर बनवाया। निघ्नयका  
 पुत्र लहोर वनराजका सेनापति था। गुरुदक्षिणाके रूपमें वनराज शीलगुण  
 सूरिको अपना राज्य समर्पित करना चाहता था किंतु उन्होंने उसके  
 बदलेमें उससे एक मन्दिर बनवानेके लिए कहा, अतः राजाने राजधानीमें  
 पचासर पाश्वनाथ नामका प्रसिद्ध जिनालय बनवाया। इस जिनालयमें  
 पार्श्व प्रतिमा पचासरसे लाकर स्थापित की गयी थी। वनराजने और भी  
 कई जिन-मन्दिर बनवाये। उसके बाद योगराज, रत्नादित्य, क्षेमराज,  
 आकडदेव और भूयडदेव या सामन्तमिह नामके राजा इस वंशमें क्रमशः हुए।  
 ९७४ ई० में मूलराज सोलकीने इस वंशका अन्त किया। वर्धमान  
 नगरमें भी चापवंशकी एक शाखाका राज्य था जिसमें विक्रमार्क, अहक,  
 पुलकेशी, ध्रुवमदृ और धरणीवराह नामके राजे हुए। ये भी जैन धर्मके  
 पोषक थे। गिरनार-जूनागढ़के झूठासमाप्त १०वीं से १६वीं शती तक  
 राज्य करते रहे। सोमनाथके मूल निर्माता इसी वंशके प्रारम्भिक नरेश  
 थे। ये जैन धर्मके प्रति भी सहिष्णु रहे।

गुजरात-अन्हिलपाटनका सोलकीवंश दक्षिणके प्राचीन चालुक्यवंशकी  
 ही एक शाखा था। सौराष्ट्र, मत्तमयूर और लाटमें भी चालुक्योंके छोटे-  
 छोटे वंश स्थापित थे। किन्तु गुजरातके इतिहासमें अन्हिलवाड़ेके चालुक्यों

कर्लिंग आदि और बृहत्तर भारत



शास्त्रका भी ज्ञाता था और सिद्ध चक्रवर्ती कहलाता था। उसने अपना  
 सवत् भी बनाया। रायविहार नामक आदिनाथका सुन्दर जिनालय और  
 गिरनार पर्वतपर नेमिनाथके मुख्य मन्दिरको बनवानेका ध्येय भी इसी  
 राजाको है। मुसल, शान्तनु, उदयन, आलिंग, पृथ्वीपाल आदि उसके  
 अनेक राजमन्त्री जैने थे। पृथ्वीपालने आवुक एक मन्दिरमें अपने सात  
 पूर्वजाकी हाथीनशीन मूर्तियाँ बनवायी थी। राजा जयसिंहने १२ वर्ष तक  
 मालवाके परमारोंके साथ युद्ध करके उनपर विजय प्राप्त की और वह  
 अवन्तिनाथ कहलाया। उसने सर्वराका दमन किया और महावेके चन्देलों-  
 को संधि करनेपर विवश किया। उसकी नीति प्रधानतया आक्रमणात्मक  
 थी और उसक समयमें गुर्जर साम्राज्यकी अभूतपूर्व उन्नति एवं विस्तार  
 हुआ। उसके प्रसिद्धमन्त्री उदयनन सोरठक दुर्द्धर राजा गंगारको पराजित  
 करके मिथराजकी चक्रवर्ती पद दिलाया था और इसी उदयनने कण्वितो  
 ( अहमदाबाद ) में एक जिनालयका निर्माण कराकर उसमें ७२ बहुमूल्य  
 द्रव्य प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करायी थी। उदयनके पुत्र आहड, बाहड, अम्बड,  
 सोल्ला आदि भी विपक्षण राजमन्त्री और प्रचण्ड सेनानायक थे। स्वयं  
 महाराज जयसिंह ज्ञान और कलाका बड़ा प्रेमी था और विद्वानोंका भारी  
 आदर करता था। भाजकी उज्जैनियोंकी भाँति ही उसने अन्हिलपाटनकी  
 ज्ञानका अनुपम केन्द्र बनानेका निश्चय किया और वहाँ एक विशाल विद्या-  
 पीठकी स्थापना की। सुप्रसिद्ध दिग्गज जैनाचार्य हेमचन्द्रको उसने अपने  
 आश्रयमें हानेवाली साहित्यिक प्रवृत्तियोंके नेतृत्वका भार सौंपा। लगभग २०  
 नवीन ग्रन्थोंका निर्माण हुआ, स्वयं हेमचन्द्रने वृधाश्रयकाव्य और सिद्धहेम  
 व्याकरणकी रचना की, उनके शिष्य रामचन्द्रने अनेक नाटक रचे, कवकल  
 कायस्य व्याकरणके आचार्य नियुक्त हुए, यागभट्टने अलंकार ग्रन्थकी रचना  
 की, तथा गुणचन्द्र, महेन्द्रसूरि, देवचन्द्र, उदयचन्द्र, वर्धमानगणि, यशश्चन्द्र,  
 बालचन्द्र, आनन्दसूरि, अमरचन्द्र आदि अनेक जैन विद्वानों एवं साधुओंने  
 राजासे सम्मान प्राप्त किया। राजाको दार्शनिक शास्त्रार्थ सुननेका भी शौक

कलिंग आदि और घृहचर भारत





स्वयं थे। उन्होंने पथ प्रदर्शनमें उसने राज्य संचालन किया, उसके मन्त्री, सेनानायक एवं अन्य उच्च पदस्थ कर्मचारी भी अधिकांशतः जैन थे और सब ही कुशल सुयोग्य एवं विश्वस्त थे। थोड़े ही समयमें उसने बाह्य एवं अन्तर्गत शत्रुओंका दमन करके अपनी स्थिति सुरक्षित एवं सुदृढ़ कर ली और शासन-व्यवस्था सुचारु कर दी। तदनन्तर शेष १५-२० वर्ष उसने कला, ज्ञान और धर्मकी सेवा-साधनामें व्यतीत किये। उसने श्रावकके घृत धारण करके परम आर्हत् विरुद्ध प्राप्त किया, राज्यमें पशुहिंसा, बलि, शिकार, मद्यपान, जुआ आदिका निषेध किया, मृत्यु दण्ड वन्द किया, युद्धासे विराम लिया, राज्य-भरमें अमारि धोषणा करवा दी, दोन दुखियोंका पालन किया, निस्सन्तान विधवाओंके स्वत्वकी रक्षा की, चतुर्विध सघने साथ शत्रुजय, गिरनार तथा अन्य तीर्थ क्षेत्रोंकी यात्रा की, और सोमनाथके मन्दिरका भी विस्मरण नहीं किया। यह राजा भारी निर्माता भी था, कहा जाता है कि उसने १४४० नवीन मन्दिर बनवाये और १६०० का जोर्णोंद्वार कराया, स्वयं राजधानीमें भी अनेक सुन्दर जिनालय निर्माण कराये। प्रारम्भमें वह निरक्षर था किन्तु राजा होनेके उपरान्त सत्सगसे शीघ्र ही उसने लिखना-पढ़ना सीख लिया, विद्वानोंकी सगति एवं वाद विवादमें उसे आनन्द आता था, कवि, पण्डित, चारण, जैनजैन विद्वान्, साधु तपस्वी सभी उसके राज्य और दरबारकी शोभा बढ़ाते थे, राजा चरित्रवान् और एकपत्नीव्रतका पालक था, ब्राह्मण विद्वानों और कवियोंने भी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वास्तवमें कुमारपाल एक आदर्श नरेश था। ११७२ ई० में हेमचन्द्रकी मृत्यु हुई, गुरु वियोगसे सन्तप्त राजा कुमारपाल भी ६ मास पश्चात् ११७३ ई० में मर गया।

कुमारपालके कोई पुत्र नहीं था, उसका दोहित्र प्रतापमल्ल उसका उत्तराधिकारी था, किन्तु उसके भतीजे अजयपालने चालाकीसे सिंहासन हस्तगत कर लिया। वह शैवधर्मका अनुयायी था और बड़ा असहिष्णु था, उसने पुराने मन्त्रियों और सरदारोंको अपमानित किया और उन्हें नष्ट किया।

कलिंग आदि और बृहत्तर भारत

बिन ई इन्को और बाबुजीर की और अन्धकार छिड़े उनकी दुआ का। राती  
 कोर बरीलोका भी नष्ट करवाया। उनके बिन कभी बच-बच काय  
 बाँर भी बचपी बनि चलेवे नमने न हुर। मनु ११७३ ई के एक  
 हाथचमन पड़ने लगा आकर अन्धकार की हाथा कर का। उनके पदमा  
 कीर प्रिय बहीर बिन बर कायक ही का हिन्दु बचका करायक और  
 देवार्थि करान कायक बीना का करान मान बचका भी बरका का  
 और बुर कराने का बचका का बाबुका लनदोने बचने बिनाबुरीन  
 कीपीने करती हाथ छे का ११ ५ ई के दुपुपुलीन देवका का मैन  
 प्रीके इयात हिन्दु ११९ ई के बर लवर् बरुअन दुका और उनके  
 देवका कीपीना लीका को। उनके पदमा बुरका प्रीव और बिर  
 विमान का पका हुर।

मुबारकाके हाथ ही कोरकी बचका बच कायक हो बरा का।  
 इस कायक नामने की बुरकाके पीर कीर अन्धकार का बच-बचकी  
 करका रका उनके बिन रायबिपरीपीने ही की। पीर प्रीके कायक  
 बुर-बुरका बचकाका कायक बीना का बनिन बरेका बचने बरी बच-  
 बरी का। उनके कभी भी कन्नुका और देवका कायके पी बिन काता  
 के। कभीकर कन्नुकाके मुबारके लवार्थकी बर होवेने बचनेके बिर  
 उनके बीरने ५१ का बुर-बुरीन मुर्त बचका बचका का। बाबु  
 (देवका)के बिरबिपुन कायक बचका बचका बीर-बीरपीका बिपेरकर बनिपक-  
 बिरका बिराव इसी कन्नुकाके मनु १२१९ ई के कायक का। कन्नुका की  
 बनेक बीर बिरपीका बचने बिराव कायका और बीर बर बीरपीकी बिर  
 भी काय बिर। एक बुरकीर, कायकीर बर बचकीरने बनेक बीरपी-  
 बीपी काय बिर। १२४६ ई के कायकाके कायक बीरकीरने भी एक  
 काय कन्नुका बरपीन बचकाकाका ही बचका का बनिन कोरकी-  
 बरे बिरुपकाकाकी बरीके बचकाका कायक हाथ हाथका काय और  
 कायका का बरीका बरेकी बीर काकी। इसके बचने की बनिपकर

जने दमन किया किन्तु वह उनका अन्त न कर सका। साथ ही ब्राह्मणों और उनके घर्मका बोलवाला हुआ। छठके पुत्र दाहिरके समय ७१२ में अरब सेनानी मुहम्मद बिन कासिमने सिन्धपर भयकर आक्रमण किया। दाहिर घोरतापूर्वक लड़ने हुए मारा गया और सिन्धपर हिंदूगण्यका अन्त तथा मुसलमानी शासनका प्रारम्भ हुआ। कुछ विद्वानों ने मतस सिन्धके स पत्तनका श्रेय अरबोंकी वीरतासे अधिक सिन्धके बौद्ध और ब्राह्मणोंके प्रसासपातकी है। अरबोंने प्रारम्भिक अत्याचारोंके बाद बहुत कुछ मद्दि-गुनापूर्वक धामन किया। बौद्धधर्म तो शनै-शनै तिरोहित हो गया और इसके विकृत अवशिष्टांश तथा शक्ति घमक सम्मिश्रणसे सिन्धमें वाममार्ग-ता प्रचार हुआ। शैवधर्म पनपता रहा, पार्से-शनै वैष्णवधर्म भी प्रविष्ट हुआ और जैनधर्म भी व्यापारों वगैरहमें बना रहा। कवि श्रोत्रपके नैपथ्य-वरितसे विदित होता है कि ८वीं सनाब्दीमें भी सिन्धमें जैनधर्म अच्छी दशामें था। मुल्तान नगर तो मध्यकालमें भी इस प्रदेशमें जैनधर्मका प्रमुख केन्द्र बना रहा। गोहों पादवनायकी सुप्रसिद्ध मूर्तिसे सम्प्रचित अनुश्रुतियाँ भी प्राचीन कालमें सिन्ध देशमें जैनधर्मके अस्तित्वका समर्थन करती हैं। मध्यकालमें पार्श्व-जिनकी इस प्राचीन ऐतिहासिक प्रतिमाके संरक्षक सिन्ध देशान्तर्गत पौरनगर ( पारकर ) के मोहवशी राजपूत राजे रहे और वे इसे अपना कुल-देवता मानते रहे।

**काश्मीर**—यह पन्जाब और मध्य एशियाक बीच स्थित सुरम्य पर्व-तीय देश है जो हिमालय पर्वत मालाओंमें ही होकर निम्न और नेपालसे भी सम्प्रचित है। यह एक प्राचीन राज्य है। आर्योंने ही इसे सर्वप्रथम सम्भ्यता प्रदान की। मिकन्दरके आक्रमणके समय यह विद्यमान था और चन्द्रगुप्त मौर्यने भी उसे अपने साम्राज्यका अंग बना लिया था। सत्राट् अशोकके पुत्र जलौकने वहाँ स्वतन्त्र राज्य किया। कल्हणकी राजतरंगिणी और अवुलफ़ज़लकी आइनने अकबरीके अनुसार जलौकने ही इस देशमें जैन-धर्मकी प्रतिष्ठा की थी। तदुपरान्त कनिष्क आदि कुषाणोंका वहाँ राज्य

छोटे-छोटे बरगाम्य वे जिन्होंने इस विपत्तिबिम्बी घुमायी ब्रह्माजी को स्तुत  
 किया था। कुछ बाह्य वर्त्मन भीनों का फिर मुक्तिविषी और पङ्करीका  
 इस प्रवेक्षर अधिभार था। प्रथम घटी ई. पू. के प्रथम राज्य ही  
 बाली आक्रमण करके बड़ी धनसम्पत्ती स्थापना की। यह मुझसे इन  
 घटोंमें लिखके बँसकर ही बहार और पश्चिम भारतमें अपने राज्य  
 विस्तार के। बालीके उपरान्त कुषीका अधिभार हुआ और अन्त-  
 म्भारमें इन विदेशियोंका भारतीयकरण हो जानेपर इस देशमें कई  
 एक छोटे-छोटे राज्य बन गये हैं। बाल्याचार्यकी लिखके इनमें बँस-  
 वर्मका प्रचार किया था और बालीके कथन ब्रह्माचार्यमें ब्रह्मके बाद  
 बालीकी बँसवर्मसे शीघ्र विद्या था। मुक्तकाकमें द्विमुक्तमें बँसक-  
 लिखके कुषीकी बँसवर्मका उल्लेख किया था। कुलाम्बिके बाल्यमें ही  
 इस देशमें बनेक विपत्ति बँस काय विपत्ति घटी और भीमें विपत्ति  
 काते थे। अन्तर्गतमें बाल्याचार्यका घुमायीके बालीके यज्ञाचार्य  
 एवं बँस और प्रथम बालीका ही इस देशमें प्रचार हो गया था। इस  
 प्रकार वे सब ही विभिन्न भारतीय वर्ग इस देशमें फैले हुए थे। बँसवर्म  
 अन्तर्गत ही बनेकाहुत भी लिखितमें था। ६वीं घटी ई. के अन्तमें एक  
 मुक्तकाकमें अन्तर्गत द्विमुक्त लिखपर अधिभार करके बड़ी बाल्या राज्य  
 बनाया। यह बाल्याची ब्रह्माचार्यका अनुयायी था। इनके बँसमें विपत्ति-  
 का प्रसिद्ध हुआ है। यह भी बाली वर्त्मन अनुयायी था। इनके बाल्यमें  
 अन्तर्गत। ब्रह्म विष्णु लिखके बाल्यमें अन्तर्गत और देशका भीषण  
 विपत्ति के और वे बाल्यके लिख लिखका थे। वन् ६४४ ई. में लहरा  
 और बाल्याचार्यके प्रसिद्धि करनेमें लिखपर अन्तर्गत लिख एवं ब्रह्म  
 विष्णुके कारण राजा विपत्तिराजकी द्वार हुई और यह बात कथ।  
 बाल्या कुछ बाल्या थी किन्तु ६४६ ई. में बाली की घटी घटी हुई जो  
 बाली लिखकी हुई थी। इनके उपरान्त बालीका बाल्या काली बाली  
 राज्य उत्पन्न कर लिया और अन्तर्गत ४ वर्ष राज्य किया। बालीका

उसने दमन किया किन्तु वह उनका अन्त न कर सका । साथ ही ब्राह्मणों और उनके धर्मका बोलबाला हुआ । छठके पुत्र दाहिरके समय ७१२ ई० में अरब सेनानो मुहम्मद बिन कासिमने सिन्धपर भयङ्कर आक्रमण किया । दाहिर बीरतापूर्वक लड़ते हुए मारा गया और सिन्धपर हिन्दू राजका अन्त तथा मुसलमानी शासनका प्रारम्भ हुआ । कुछ विद्वानोंके मतसे सिन्धके इस पञ्चक श्रेय अरबोंकी बीरतासे अधिक सिन्धके बौद्ध और ब्राह्मणोंके विश्वासघातकी है । अरबोंने प्रारम्भिक अत्याचारोंसे बाद बहुत कुछ सहिष्णुतापूर्वक शासन किया । बौद्धधर्म तो दान-दान तिरोहित हो गया और उसके विकृत अवशिष्टांश तथा दानत धर्मक सम्मिश्रणसे सिन्धमें बाममार्ग का प्रचार हुआ । दौघधर्म पनपता रहा, दान-दान वैष्णवधर्म भी प्रविष्ट हुआ और जैनधर्म भी व्यापारों यगमें बसा रहा । कवि श्रावणके नैपथ्य-चरितसे विदित होता है कि ८वीं शताब्दीमें भी सिन्धमें जैनधर्म अच्छी दशामें था । मुल्तान नगर तो मध्यकालमें भी इस प्रदेशमें जैनधर्मका प्रमुख पेंद्र बना रहा । गौड़ो पाश्वनाथकी सुप्रसिद्ध मूर्ति सम्बन्धित अनुश्रुतिमें भी प्राचीन कालमें सिन्ध देशमें जैनधर्मके अस्तित्वका समर्थन करती है । मध्यकालमें पार्श्व-जिनकी इस प्राचीन ऐतिहासिक प्रतिमाके संरक्षक सिन्ध देशातर्गत पोरनगर ( पारकर ) के सोडवशी राजपूत राजे रहे, और वे इसे अपना कुल-देवता मानते रहे ।

**काश्मीर**—यह पञ्जाब और मध्य एशियाके बीच स्थित सुरम्य पर्वतीय देश है जो हिमालय पर्वत मालाओंमें ही होकर निम्नत और नेपालसे भी सम्बन्धित है । यह एक प्राचीन राज्य है । आर्योंने ही इसे सत्रप्रथम सम्भ्यता प्रदान की । मिकन्दरके आक्रमणके समय यह विद्यमान था और चन्द्रगुप्त मौर्यने भी उसे अपने साम्राज्यका अंग बना लिया था । मौर्य अशोकके पुत्र जलौकने वहाँ स्वतन्त्र राज्य किया । कलहणकी राजतरंगिणी और अबुलफ़ज़लकी आइने अकबरीके अनुसार जलौकने ही इस देशमें जैनधर्मकी प्रतिष्ठा की थी । सदुपरान्त कनिष्क आदि कुषाणोंका वहाँ राज्य

कलिंग आदि और उत्तर भारत



नामशेष हो गया और शैवधर्म इस देशका प्रधान धर्म हो गया। इन नरेशोंने संस्कृत साहित्यकी भारी प्रेरणाह्वन दिया। मैथ्या, भौमक, शिव-  
स्वामिन, रत्नाकर, अमिनन्द, क्षेमेन्द्र, मोमदेव ( कथासरित्सागरका लेखक,  
१०६३ ई० ) विरहण ( १०६४ ई० ), कल्हण ( ११०० ई० ) आदि अनेक  
संस्कृत कवियों एवं विद्वानोंने इन नरेशादे आश्रयमें भारतीयोंके भण्डारकी  
भरा। कल्हणकी राजतरंगिणी कश्मीरके इतिहासका अपूर्व ग्रन्थ है और  
सम्पूर्ण संस्कृत साहित्यमें इतिहास विषयकी बेजोड़ रचना है। इससे पता  
चलता है कि कश्मीरका तत्कालीन इतिहास गृह पद्धत्या, हत्याओं और  
दुराचारोंसे पूरित था।

नेपालमें प्रारम्भमें अनायें लोगोंका निवास था। प्राचीनकालमें लिच्छवि  
राज्योंने यहाँ भारतीय राज्य स्थापित किया जो ७वीं शती ई० के मध्य  
तक चलता रहा। समुद्रगुप्तके शिलालेखमें भी नेपाल राज्यका उल्लेख है।  
इसके समयमें नेपाल राज्य हर्षके राज्य और तिब्बतके बीच स्थित था।  
लिच्छवियोंके द्वारा ही इस देशमें आर्यसम्पत्ता और बौद्ध, जैन आदि धर्मों-  
का प्रवेश हुआ। किन्तु तान्त्रिक बौद्धधर्मकी ही वहाँ प्रधानता हुई।  
अभी हालमें ही स० ४९८की एक जैन प्रतिमा एवं शिलालेख नेपालमें प्राप्त  
हुए हैं। ६४२ ई० में अश्वमेधने नेपालमें ठाकुरिबश नामक एक नवीन  
राजवंशकी स्थापना की। ७२४ ई० में इग वंशके राजा गुणकामदेवने  
काठमाण्डु नगरका निर्माण किया और उसे राजधानी बनाया। ८७९ ई०  
से नेपाली सभ्यताका प्रचलन हुआ। १३२४ ई० में होरासिंहदेवके समयसे  
नेपालमें बौद्धधर्मका अन्त हुआ और शैवधर्मकी स्थापना हुई। तबसे वही  
इस देशका प्रधान धर्म चला आता है। जैन धर्मके भा कतिपय चिह्न  
नेपालमें मिले हैं। जैनियोंका आवागमन इस देशमें प्राचीनकालमें था,  
इसके कई प्रमाण मिलते हैं।

कुल्लुकी घाटी में कुल्लूत लोगोंका एक छोटा सा राज्य था। इसके  
राजे बौद्ध थे। चम्पामें भी कुल्लूतोंका राज्य था किन्तु ये लोग शैव थे।

कलिंग आदि और बृहत्तर भारत



तिम्बरु राम्र बर्षर्ष बा । बीडबनरा बहु एक प्रनुष बहु बन बना  
बा । जोन देपटे बाएत बाँनैक्य बर्षाण मारीं तिम्बरु होकर ही बा । तिम्बरु-  
के राम्रबीने बीनके राम्रपुनैके राम्र विवाह-नगम्य भी हूँ । नबी  
नबी विष्णु बहुत कम तिम्बरुबाबीने कतर बाएतीन राम्रबीने भी  
हममोरे किम विष्णु तिम्बरुना कबिक राम्रम्य बोनेके बाब ही रहा ।  
तिम्बरुमे बीड नाम्रबीना बर्षरात्र बर्षमाण काल एक बल्ला रहा । नरा  
बल्ला है कि तिम्बरुमे बीनबनके भी कुछ बिहू बिने हैं, ही लहला है नबी  
नबी कोई बीन विष्णु बर्ष-प्रचारार्थ बहूँ बा बहूँ ही, विष्णु कर्ष विपीर  
लहला बायीं किसी प्रतीत हीयी ।

आसाम राज्य का सम्पूर्ण राज्यी राजधानी श्रुत मेरिद बी।  
मैनेको और उनके ब्यापने निरु बहु बाण्डर्य प्रीक द्वार का निम्न बाह्य  
बाण्डर्योन इन द्वारी केवनी प्रीक उदक रखा की। इस द्वारी उदक  
बीडर्य, बलबल और बीमिबीके बलु-टीकेरा ही प्रचार रहा। इसके  
इसके द्वारी राजा बालकरबल्य फर्निष्ठ बलिषाकी का और इसमें  
निरु बा। बीके द्वारीके निम्न बल्ये इसी बल्यरा की को बी।  
ऊके बल्यरा बल्ये बीके बीके रखा रहा। १वीं द्वारीके बल्यके  
बाण्डेरे इस द्वारक बलिषार कर बिबा। दुसरेबल्यकी बल्यके  
बल्यरा १९१८ के १८९९ ई तक बल्यार बल्य बल्यकी बल्य  
बाण्डरा श्रुत रहा। प्राचीन बलिषारके बाण्डर्य केव बल्यरा  
ई और इसके निचानी द्वारक। बाण्डर्यकी बहु बुरी बीका बल्यकी  
बल्यी बी।

बर्नालस—शाहीन नाममें जो आठवक विहार-बैराज कहलाता है वह शाही या शाहजि के नामसे प्रसिद्ध था। बीच कनक और कोनक बर्तमान विहार प्रांतके नाम थे। समुद्र पश्चिमी बर्नालस पूर्वी वास्तिनाल, बुध-विहार और विराट नक्षत्री बर्नालस या बीच केक था, बुध तथा (काइ) और बुध नामोंके भी इनकी प्रसिद्धि थी विराट और कोस्तिनाके शिर्षों

युक्त समतट भी इसीका एक भाग था। पुण्ड्रवर्धन, पुण्ड्रनगर या महास्थान-  
गढ़, ताम्रलिप्ति (तामलुक), कोटिवर्ष, वर्धमान (वर्दवान) आदि इसकी  
प्राचीन नगरियाँ थीं। जैन अनुश्रुतिके २५<sup>३</sup> आर्य देशों तथा १८ राज्योंमें  
वगदेश और उसकी रामधानी ताम्रलिप्तिकी गणना है, किन्तु बौद्ध अनुश्रुति-  
के सोलह महाजनपदोंमें इसका उल्लेख नहीं है। वेदोंके आर्य भी वगदेशसे  
मर्वाया अवस्थित थे। उत्तर वैदिक-कालीन साहित्यमें उसे अनाय-देश  
बहा है, ५वीं-६ठी शती ई० पू० के धर्मसूत्रोंमें तो इस स्पेन्ट देशमें जाने-  
वाला आर्य महापातकी समझा जाता था। ६<sup>१</sup>० भण्डारकरका मत है कि  
इस प्राच्य देशके लोग जैना-द्वारा ही सर्वप्रथम सम्य वनाये गये थे। अतः  
मध्यदेशीय सम्यता और धर्मका वग देशमें प्रवेश धम्मण सम्प्रति और  
जैनधर्मके रूपमें ही सर्वप्रथम हुआ। प्रो० राखालदास बनर्जीके अनुसार भी  
प्राचीन कालमें गंगाके दक्षिणी भागमें जैनधर्मका काफी प्रचार और प्रसार  
था। दक्षिण बिहारके हजारीबाग जिल्लेमें स्थित सम्मेदगिरि पर्वत  
जैनियाका सवमहान् सिद्धक्षेत्र है। इस तीर्थसे ही चौबीसमें-से बीस तीर्थकरा-  
ने निर्वाण लाभ किया था। यह पर्वत पारसनाथ नामसे भी प्रसिद्ध है,  
तीर्थकर पार्श्व इस स्थानसे मुक्ति लाभ करनेवाले अन्तिम तीर्थकर थे।  
उन्होंने इस प्रदेशमें जैनधर्मका विदोष प्रचार किया था। आचाराग सूत्रके  
अनुसार वर्द्धमान महावीर भी वज्रभूमि, सुम्हभूमि और रावदेशमें  
धर्मप्रचारार्थ गये थे और वर्द्धमान (वर्दवान) नगरकी प्रसिद्धि भी  
उहींके नामसे हुई। अन्तिम श्रुतकेवली मद्रबाहु पुण्ड्रवर्धनके निवासी थे।  
जनस्यविरोधी गोदासगण शास्त्राके पौण्ड्रवर्धननियोगणका नाम भी इसी  
नगरके नामपर रखा गया था। जैन साधुआकी कोटिवर्ष और ताम्रलिप्ति  
शान्वाएँ भी वगदेशके तन्नाम नगरोंके नामसे ही प्रसिद्ध हुईं। बौद्धग्रन्थ  
बोधिसत्वावदानके अन्तर्गत सुमगधावदानमें वर्णित अनायपिण्डककी पुत्री  
सुमागधाकी कथा प्रमाणित करती है कि ईसाके जन्मसे बहुत पहले ही, स्वयं  
बुद्धके समयमें, पुण्ड्रवर्धन जैनधर्मका प्रसिद्ध केन्द्र था। एक अन्य बौद्धग्रन्थ,

कलिंग आदि और बृहत्तर भारत

विष्णुसत्ता राज्य बनार्थे वा । वीर्यवर्धना बहु एक इन्द्राय बहु ह्य वरा वा । येष देवेषु भार्य्य कोमेरा प्रथम वार्य्यविश्रुत होवर हो वा । विष्णु-के राजाभाके योनेके राजप्रधानके नाव विषय-मन्त्राय भी दूर । कभी-कभी विष्णु बहुत कम विमलतालोने उत्तर भारतीय राजदोर्गिर्भी भी इन्द्रसेर विषय विष्णु विमलता अधिक सम्पन्न योनेके वार ही रहा । विष्णुने ब्रह्म नावाशोरा बर्षतग्न वसुधाय वास एक बनता रहा । वरा मन्त्र है कि निजानके वीर्यवर्धके भी कुछ विष्णु विष्णु है ही मन्त्र है कभी-कभी कोई देव विष्णु बर्ष-उपाचार्य वही वा वरुंके हो, विष्णु कहीं विष्णु एकजना वही विष्णु उनीस हीनी ।

आसाम बनव बनवा वासव राज्यकी उपवासी शायद हीन हो । मन्त्रोको और उनके राजाके कि बहु भाषणा बर्षे हार बहु विष्णु वासु वासवभोज दन ह्यने देवकी करेव एकव रहा की । इव देवने वासवक ब्रह्मवस वासवक और कोविर्भीके वासु-दीनेरा ही इचार रहा । इर्भीके समय वहीरा राज्य बलकरवर्धन कर्मात्त वरिषवासी वा और हर्षक विष वा । योनेके राजाके विषय बनने हर्षने ब्रह्मवस भी की की । उनके उपराज उनके बंश होरा राज्य रहा । १५ वहीने वनाम्ने वाकोने इव देवतर अविचार कर लिया । कुषववासीकी वनाम्ने विषके उपराज १२२८ के १८२५ ई एक आकाशवार दान बर्षकी ब्रह्म वासवका प्रमुख रहा । प्राचीन कश्चित्ने वासव किराज देव ब्रह्मका है और इसके निजानी किराज । वासववर्धको बहु पूर्ण वीरा वसवी बननी की ।

वर्षावर्ध—प्राचीन वाल्यी की वासवक विहार-वनाम्ने वसुधाय है वह प्राची वा वासव देवके नामके अविष्ट वा । यो वसव और योनेक बर्षमल विहार प्राचीके नाम थे । कर्मात्त प्राचीनी वनाम्ने पूर्ण वरिषराज कुष-नीपार और विषम वहाही वनाम्ने वा वंश देव वा, कुषु दवा (बन) और कुषु वासवि भी दनकी अविष्टि की विषरा और कोविषनाके विष्णुने

युक्त समतट भी इसीका एक भाग था। पुण्ड्रवर्धन, पुण्ड्रनार या महास्थान-  
गढ़, ताम्रलिप्ति (तामलुक), कोटिवर्ष, वर्धमान (वर्दवान) आदि इसको  
प्राचीन नगरियाँ थीं। जैन अनुश्रुतिके २५३ आर्य देशों तथा १८ राज्योंमें  
वगदेश और उसकी राजधानी ताम्रलिप्तिकी गणना है, किन्तु बौद्ध अनुश्रुति-  
के सोलह महाजनपदोंमें इसका उल्लेख नहीं है। वेदोंके आर्य भी वगदेशसे  
सर्वथा अपग्नित थे। उत्तर वैदिक-कालीन साहित्यमें उसे अनार्य-देश  
कहा है, ५वीं-६ठी शती ई० पू० के धर्मसूत्रोंमें तो इस म्लेच्छ देशमें जाने-  
वाला आर्य महापातकी ममझा जाता था। डॉ० भण्डारकरका मत है कि  
इस प्राच्य देशके लोग जैनों-द्वारा ही सर्वप्रथम सम्य वनाये गये थे। अतः  
मध्यदेशीय सम्प्रदाय और धर्मका वग देशमें प्रवेश धम्म सत्संस्कृति और  
जैनधर्मके रूपमें ही सर्वप्रथम हुआ। प्रो० राखालदास बनर्जीके अनुसार भी  
प्राचीन कालमें गंगाके दक्षिणी भागमें जैनधर्मका काफ़ी प्रचार और प्रसार  
था। दक्षिण बिहारके हजारीबाग जिलेमें स्थित सम्मेदशिवर पर्वत  
जैनियोंका सबमहान् सिद्धक्षेत्र है। इस तीर्थसे ही चौबीसमें-से बीस तीर्थंकरों-  
ने निर्वाण लाभ किया था। यह पर्वत पारसनाथ नामसे भी प्रसिद्ध है,  
तीर्थंकर पार्व इस स्थानसे मुक्ति लान करनेवाले अन्तिम तीर्थंकर थे।  
उन्होंने इस प्रदेशमें जैनधर्मका विशेष प्रचार किया था। आचार्यग सूत्रके  
अनुसार वर्द्धमान महावीर भी दण्डभूमि, सुम्हभूमि और राट्टदेशमें  
धर्मप्रचारार्थ गये थे और वर्द्धमान (वर्दवान) नगरकी प्रसिद्धि भी  
उन्हींके नामसे हुई। अन्तिम श्रुतकेवली नन्दबाहु पुण्ड्रवर्धनके निवासी थे।  
जैनस्यविरोधी गोदासगण शास्त्राके पौण्ड्रवर्धनियामगणका नाम भी इसी  
नगरके नामपर रखा गया था। जैन साधुओंकी कोटिवर्ष और ताम्रलिप्ति  
शास्त्राएँ भी वगदेशके तन्नाम नगरोंके नामसे ही प्रसिद्ध हुईं। बौद्धग्रन्थ  
बोधिसत्त्वावदानके अन्तर्गत सुमगधावदानमें वर्णित अनाथपिण्डककी पुत्री  
सुमागधाकी कथा प्रमाणित करती है कि ईसाके ज़मानेसे बहुत पहले ही, स्वयं  
बुद्धके समयमें, पुण्ड्रवर्धन जैनधर्मका प्रसिद्ध केन्द्र था। एक अन्य बौद्धग्रन्थ,



समय पंचस्तूप शाखाके वाराणसी-निवासो आचार्य गुह्यनन्दोके शिष्य-प्रशिष्य उक्त विहारके अध्यक्ष थे। इस शाखाका प्रसार नदसौर, मथुरा, हस्तिनापुर, चित्रकूट (चित्तौड़), वाटनगर (महाराष्ट्रमें नासिकके निकट), कर्णाटक और तमिल देश पर्यन्त था। सम्भवतया हस्तिनापुरके पंचस्तूपोंसे इसका निकास हुआ था। वगालमें भी पंचयूपी नामक स्थान अपने मूलकी स्मृतिमें इस शाखा-द्वारा निर्मित स्मारककी याद दिलाता है। ७वीं शताब्दीमें चीनी यात्री हुएनसांगने वग दशके समतट या व्याघ्रतटी राज्यमें, पुण्ड्रवर्धन और ताम्रजिप्तिमें तथा अन्य स्थानोंमें अनेक जैन मन्दिर और निर्ग्रन्थ साधु देखे थे। वस्तुन पुण्ड्रवर्धनसे प्राप्त प्राचीन खण्डित जैनमूर्ति, चटगाँव जिलेके सीताकुण्डके निकट चन्द्रनाथ और सम्भवनाथके प्रसिद्ध प्राचीन मन्दिर, टिपरा जिलेमें कमिल्लाके निकट स्थित मैनामतो और लालमाईकी पहाडियोंमें विद्यमान प्राचीन जैन मन्दिरोंके खण्डहर, बाँकुड़ा जिलेमें वर्दवान और आसनसोलके मध्य प्राचीन जैनस्तूपोंके ऊपर निर्मित ईंटोंके बने एक सुन्दर प्राचीन मन्दिर जिसमें शिवके साथ तोयकर पाश्वकी प्राचीन मूर्ति अब भी विद्यमान है, छोटा नागपुरमें डुलमो, देवली, सुइसा, पकवोरा आदि स्थानोंमें और उनके आस-पास भी अनेक प्राचीन जैन मन्दिर, तोयकर प्रतिमाएँ, यक्ष-यक्षिणियोंकी मूर्तियाँ आदि अनेक जैन अवशेष मिले हैं। राखालदास बनर्जी, विमलचरण लाहा, अट्रोस बनर्जी आदि अनेक पुरातत्त्वज्ञों एवं इतिहासज्ञोंका मत है कि वगदेशके विभिन्न भागोंमें बिखरे हुए उपरोक्त जैन कलावशेष जो ईसवी सन्के प्रारम्भसे लेकर १०वीं-११वीं शताब्दी पर्यन्तके हैं प्राचीनकालमें इस देशमें जैनधर्मके व्यापक प्रभाव एवं प्रसारके द्योतक हैं।

६ठी शताब्दी ई० के अन्तमें, सम्भवतया गुप्त वंशमें ही उत्पन्न, समाचार नामका गुप्तोंका एक सामन्त उनकी ओरसे वग देशपर शासन करता था। गुप्त वंशकी अवनतिसे लाभ उठाकर उसने अपनी शक्ति

हज़ारी। इनका पुत्र या वीर मुसनिह बीड़वा बघाईक था। यह स्वयं  
 पहले वर्षमुसलवा बघाईकमल ही था किन्तु बीड़ ही यह स्वयं  
 बघा और इनके बचने राज्यका विचार भावावने बड़ीका वर्षक कर  
 दिया। इनके बघाईकमलवितामकी बघावि भारत की बाघमकी एक  
 बाघे जिने और बघोर ( बघम ) के बीलीकमनरीककी बचने बघीक  
 दिया। बघाईक बीरकमका बहुत बघुचकी था और बीड़ोंका बरन बघु  
 बचने बघाली मुसा और बीरकमकी यह विचार पूर्व बीड़ोंकर बने-बी  
 बघाईकमल विनी। इनके बघाईक बघुचर्मन बीरकम और माई राज्य-  
 बघीककी कृपुका की थी बघाईक भारत का। बघाईक इनका यह  
 बरन बघु का। इनके इनके बघाईक बहुत बघाल किन्तु किन्तु  
 विनीक बघाईक थी किन्तु। बघीक-बीरकमके बघाईकमल राज्यकी  
 की इनके बघाईकके विचार बघाल विचार बघाईक। ११९ ई के बघाईक  
 बघाईककी मुसु बघाई और बघाईकमल बघाईक वाच ही बघाईक राज्य  
 की बघाईक ही कला। बीड़ वर्षकम बघाईक बघाईकके बघाईकके बघाईक  
 ही ही बघाईक किन्तु यह एक बीर विचारिनी ही बघाईक बघाईक था  
 बघाईकके बघाईक की यह बघाईकमल बघाईक बघाईक बघाईक। मुस-  
 बघाईक बघाईकमल वर्षक की बघाईकके कुछ बघाईक बघाईक किन्तु यह बघाईक  
 बघाईक बघाईक न बघाईक। बघाईकके बघाईकके बीर वर्ष की यह बघाईक विचारिनी  
 बघाईक। ११९ ई के बघाईक बीर बघाईक बघाईकमलके बघाईकके बघाईक  
 बघाईक और बघाईक बघाईक बघाईकमल बघाईक। बघाईक बघाईक ई कि  
 बघाईक बघाईक बघाईक और बघाईक बघाईकके बघाईक ई।

एकी बघाईक पुर्वावने बघाईकके बीर बघाईकमल थी। बघाईकके ई  
 ई बीरकम बघाईक एक बघाईकके यह बघाईकमलका बघाईक बघाईकके  
 बघाईक की। बघाईकके बघाईकके बघाईकके बघाईकके बघाईकके बघाईकके  
 बघाईक बघाईक बीर बीड़ककी थे, बघाईकके बघाईकके ही यह बघाईक बीड़ककी  
 बघाईक प्रकार बघाईक-मुस। बघाईक बीरकमके बघाईकके एक विचारकमल।

इसी समय प्रज्ञा नामक एक बौद्ध विद्वान् हुआ जो कपिलाम जन्मा, नालन्दामें पठा, उड़ीसामें बसा और यहाँ योगम्पास सिखाता रहा और फिर घान चला गया। वत्सराज प्रतिहारने गोपालको युद्धमें पराजित किया था। दूसरा राजा धर्मपाल था। उसने ६४ वर्ष राज्य किया। मगध उसके साम्राज्यका अंग था और उड़ीसाके भीमकर राजे उसका अधीन थे। राष्ट्रकूट ध्रुव और गोविन्द तृतीय तथा प्रतिहार वत्सराज, नागावलोक और भाज उसका प्रतिद्वन्द्वी थे। धर्मपालने कन्नौज विजय करके एक बार इन्द्रायुधको गद्दीसे उतारा और चक्रायुधको उसके स्थानमें बिठाया। इसी राजाने विक्रमशूल विद्यापीठकी स्थापना की थी तथा सोमपुर (पहाड़पुर) के जैन अधिष्ठानको नष्ट करके उसके स्थानमें बौद्ध विहार और मन्दिर बनवाये थे। इसने अपने सिक्कोपर भी धर्मचक्र आदि बौद्ध चिह्न अंकित कराये। ८२४ ई० में उसकी मृत्यु हुई और उसका पुत्र देवपाल ( ८२४-८७२ ई० ) राजा हुआ। यह पालवंशका सर्वाधिक शक्तिशाली नरेश था और कट्टर बौद्ध था। मुद्गगिरि ( मुगेर ) को उसने अपनी राजधानी बनाया। चौद्वेतर जैनादि धर्मोंके लगभग चालीस बड़े-बड़े केन्द्रोंको उसने नष्ट किया कहा जाता है। उसने अनेक बौद्धमन्दिर और विहार बनवाये। धीमन और बोलपाल नामके दित्पी उसके आश्रयभाजन थे। उसने आसाम और उड़ीसाकी भी विजय की और श्रीविजय एवं स्वर्णद्वीपके सुदूरपूर्वी राज्योंसे सम्बन्ध बनाये। उसका नालन्दा साम्रशासन प्रसिद्ध है। इस वंशका आठवाँ राजा राज्यपाल था जिसने एक राष्ट्रकूट राज-कन्यासे विवाह किया था। १०वीं शतीके प्रारम्भसे पालवंश अवनत होने लगा था। ९५० ई० के पश्चात् काम्बोजोंने बंगालपर अधिकार कर लिया जिन्हें महीपाल ( ९७८-१०३० ई० ) ने निकाल बाहर किया। किन्तु राजेन्द्र-चालने उसपर आक्रमण करके उसे पराजित किया। यह पाल-नरेश लोक-कथाओं और लोक गीतोंमें बहुत प्रसिद्ध हुआ। उसका उत्तराधिकारी नयपाल था। इसने बौद्ध भिक्षु धर्मपालकी और फिर अत्तिसकी धर्म-प्रचा-





देशकी नैसर्गिक एवं प्राकृतिक सीमाओंसे बहुत अधिक सकुचित हो गयी है। अंगरेजों शासन-कालमें भारतने अपनी वैज्ञानिक सीमाएँ प्राप्त कर ली थी किन्तु उस समय भी अफ़ग़ानिस्तान और कुन्दहार भारतवर्षमें सम्मिलित नहीं थे, जब कि मध्यकालमें मुग़लोंके शासन-कालमें वे भारतीय साम्राज्यके ही अंग थे। उसके भी बहुत पूर्व यदि मौर्य युगसे लेकर गुप्तकाल पर्यन्तके भारतीय इतिहासपर दृष्टिपात किया जाये तो उस समय भी कपिशा (अफ़ग़ानिस्तान) और गांधार (कुन्दहार तथा ईरानका पूर्वभाग) भारतके ही अंग थे। इतना ही नहीं, प्राचीन कालमें बलूचिस्तान, सीमान्तदेश, कश्मीर, तिब्बत, नेपाल, भूटान, आसाम, अराकान तो भारत-वर्षके अंग समझे ही जाते थे, बर्मा (ब्रह्मदेश या सुवर्णभूमि) और लका (सिंहल) भी भारतके ही अंग थे। इनके अतिरिक्त मध्य एशियाके विभिन्न भागमें यथा काशगर, खोतान, यारकन्द आदिमें भारतीय राज्य एवं उपनिवेश स्थापित हुए थे। उसी प्रकार सुदूर पूर्वमें बर्मा, मलाया, स्याम, हिन्द-चीन, जावा, बाली, बोर्नियो आदि प्रदेशों एवं द्वीपोंमें भारतीय राज्य एवं उपनिवेश स्थापित थे। भारतीयों-द्वारा अनेक प्रदेशोंके आदिम निवासियों-का पूर्णतया भारतीयकरण हो गया था। भारतीयराज्यों और उपनिवेशोंके अतिरिक्त चीन, ईरान, अरब, मिस्र, यूनान, रोम आदि प्राचीन सम्य देशोंमें भारतीय धर्म और सस्कृतिका प्रकाश अभूतपूर्व रूपमें फैला था। समस्त ससारके लिए भारतवर्ष धर्म, सस्कृति, विद्या और ज्ञानका प्रकाश स्तम्भ था। दूर-दूर देशोंसे सैकड़ों-हज़ारोंकी संख्यामें विद्यार्थी भारतीय विश्वविद्यालयोंमें विद्या-प्राप्तिके लिए आते थे। अनेक विदेशों तोर्ययात्राके मिस आते थे और स्वयं भारतसे अनगिनत वणिक् व्यापारी, साहसी वीर विद्वान् और धर्मोपदेशक दूर-दूर विदेशोंको जल और थलके मार्गोंसे जाते थे। इस प्रकार उन्होंने भारतवर्षके व्यापार, व्यवसाय, धन समृद्धि, शक्ति और प्रभावको बढ़ाकर बृहत्तर भारतका निर्माण किया था।

बृहत्तर भारतका यह निर्माण प्रागैतिहासिक कालमें ही हो गया था।

हिन्दुवादीको विचारर सम्झना हो सम्बन्धितवाक्य कुनै, अस्तुर एवं  
 वास्तुकी सम्झनाकोनै तथा गीतवादीकी निती सम्झनाकी घेरक हो ।  
 हिन्दुवादी-सम्झनाको जस्तो होनैपर भारतमें वैदिक सम्झनाका बचन और  
 वैदिक आर्योका प्रकार हुन । कह सकन अनेक मायाम वास्तवीय वास्थि  
 मया राम राम यम वादि कुनै दुर्बल प्रदेशों एवं होनैने न्य वही हिन्दु  
 वास्तविकि कहौने जपना सम्झना बनाई रखा । इतिहास काठमें बृहत्तर  
 भारतको निर्वाचन पुन ज्ञानीर एवं दुर्बल कमजो केर नुसकनन कर्म  
 छद्म हिन्दु इह प्रकार धिक्का बृहत्तर भारत निर्वाचीने स्वाधि वास्तवीय  
 राज्य और कर्मवैदिक सम्झनाक कस्त विचारन रहे और कर्मके ज्ञान  
 भारतको राजनैतिक आचारिक एवं सामाजिक सम्झना बचनर नने रहे ।  
 ५०-५५ वही ई १० के केर नुसकननको काठनन कर्मन कर्मन के  
 छद्म कर्मके कुनैने काठमें भारतकर्मने ब्रह्मचर केन और ब्रह्म के तीन  
 बर्ग हो प्रचलन ने । केरका कोई राम और केरकी सम्झना कोई भी बर्ग  
 वा बर्ग देखा न वा भिन्नने इन तीनो हो कर्मके अनुवाची परोक्ष संस्कार  
 न जाने जाते ने । जस्तु जिन आचारिको, वास्तवी वीरो, विद्वानों और  
 कर्मवैदिककोने कर्मके बृहत्तर भारतका निर्वाच, निष्काह एवं संस्कार  
 किया जस्तो कस्त तीनो हो कर्मके जस्तु सम्झना ने । जस्तु  
 वास्तविकि बाहर जस्तु-जस्तु की वास्तवक ज्ञान और ज्ञानक विद्व  
 कर्मको जो ज्ञान जस्तु-जस्तु इन तीनो बर्गो एवं कर्मको संस्कारकोका हो  
 सम्झनाक कर्मने प्रचलन एवं ज्ञानर पहुँचा । जस्तु कर्मन है कि ज्ञान  
 जो ज्ञान मुनै दुर्बल निर्वाचन प्रदेशों तीनो तथा ज्ञान इतिहासके विविध  
 वास्तवीय कस्त बृहत्तर भारतको सम्झनाकोका अनुसन्धान किया जाता है  
 ज्ञाना ज्ञानीन जिन तीन ईमान ज्ञाना ज्ञान वास्तविके वास्तविके ज्ञान  
 तीन ज्ञानको ज्ञान की जाती है जो ज्ञान हो ज्ञानकस्त ज्ञानाधिक ज्ञाना  
 हो ज्ञानन केन और ब्रह्म—इन तीनो हो ज्ञानों और कर्मको संस्कारकोके  
 विद्वान् बुद्धिमानर होतै है । जस्तो कर्मन नहीं कि बृहत्तर भारतको निर्वाच

भागान अन्तर्गत बौद्ध प्रसार हा सर्वाधिक अन्तिम होना है किन्तु इसके कारण यही है कि यद्यपि वृहत्तर भारतीय प्रारम्भिक निर्माणमें यद्यपि हा बौद्धोंको अपना जैन और शैव वैष्णवादि कुछ भाग ही थे, किन्तु पालाश्वर्म धार्मिक वर्धनोंका समुचित और अनुदार बना देनेके कारण उनका प्रयास इस दिशामें स्थिर हो गया। गुप्तकालमें उपरान्त जिन छह-सात सौ वर्षोंमें भारतीय शैव, वैष्णव और जैनधर्मोंमें धर्मशास्त्रा, पुराणों आदि कारण उपरोक्त धार्मिक प्रतिस्पर्धोंसे समाजको जकड़ा जा रहा था उसी कालमें यही बौद्धधर्म द्रुतवेगसे पतनशील था और बौद्ध लोग स्वदेशको छोड़ छोड़कर बृहत्तर भारतके उक्त प्रदेशोंमें जा-जाकर बस रहे थे। मध्य-कालमें भारतीयों तो अपने देशक इन बाह्य लोगोंका सर्वथा भुला दिया। अतः बौद्धधर्मको हा वही सर्वप्रधानता हा गया तथा चीन, जापान आदि बौद्ध देशोंसे ही उनका सम्भव रह गया।

मध्य एशियाकी फ़रात नदीकी घाटीके उत्तरी भागमें एक भारतीय उपनिवेश २१वीं शती ई०पू० में ही विद्यमान था। लगभग ५०० वर्ष बाद पोप ग्रेगरीने भयानक आक्रमण करके इस उपनिवेशका ध्वंस किया था। एक अनुश्रुतिके अनुसार खोतानमें भारतीय उपनिवेश स्थापित करने का श्रेय अशोकके पुत्र और सम्प्रतिके पिता राजकुमार कृष्णार्कका है। सम्भवतया मध्य एशियामें यही सर्वप्रथम भारतीय उपनिवेश था। ४थी शती ई० के प्राग्मन तक काशगरसे लेकर चीनकी सीमा पर्यन्त समस्त पूर्वी तुर्किस्तानका पूर्णतया भारतीयकरण हो चुका था। उसके दक्षिणी भागमें शैलदेश (काशगर), चांगकुक (याङ्कूद), खोतान (खोतान) और चरन्द (गानशान) नामके भारतीय राज्य थे। उत्तरी भागमें बरुक, कुचि, अग्नि-देश और काओचग नामके राज्य थे। इन सबमें उत्तरका कुचि और दक्षिणका खोतान ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं भारतीय मस्कृतिके सर्वमहान् प्रसारकेन्द्र थे। दक्षिणी राज्यामें भारतीयोंकी संख्या अधिक थी। इन उपनिवेशोंको प्रारम्भ करनेमें निम्न साधुओं और बौद्ध मिश्रत्राका ही फलिंग आदि और बृहत्तर भारत



मध्यकाल तक रही प्रतीत होती हैं।

**सिंहलद्वीप और रत्नद्वीप**—सिंहलद्वीप या लकामें विद्याधर-वशकी ऋक्ष जातिका निवास था। भरत चक्रवर्तिने इस द्वीपको विजय करके वहाँ जैनधर्म और श्रमण संस्कृतिका प्रवेश किया बताया जाता है। एक अनुश्रुतिके अनुसार भारतके पूर्वी भागसँ वरराज नामक असुर सरदार ऋक्ष, यक्ष, नाग आदि विद्याधर जातियोंके व्यक्तियोंका लेकर लका गया था और उसने उस द्वीपको बसाया था। रामायण कालमें ऋक्षवशी रावण लकाका महापराक्रमी नरेश था। जैन अनुश्रुतिके अनुसार रावण और उसका वंश जैनधर्मी था। महाभारत कालमें श्रीकृष्ण सिंहल जाकर वहाँके राजा दलदणरोमकी कन्या लक्ष्मणाको हर लाये थे और उन्होंने उसे अपनी पत्नी बनाया था। पार्श्वनाथके तीर्थमें करकण्ठुनरेशने भी सिंहलकी यात्रा की थी। महावीरके समयमें उड़ीसाके सिंहपुरसे विजय नामक एक राजकुमार लका पहुँचा था और वहाँ उसने एक नये राजवंशकी स्थापना की थी। बौद्धग्रन्थ महावंशसे पता चलता है कि ४थी शती ई० पू० में इसी वंशमें उत्पन्न सिंहलनरेश पाण्डुकाभयने अपनी राजधानी अनुराधापुरमें एक विशाल जैन विहार और भव्य जैन मन्दिर बनवाया था। सम्राट् अशोकके समयमें लगभग २३६ ई० पू० से लकामें बौद्धधर्मका प्रचार प्रारम्भ हुआ और प्रथम शती ई० पू० से लका बौद्धधर्मका एक प्रमुख गढ़ हो गयी। इसका श्रेय लकाके राजा वट्टगामिनीको है जिसने सन् ३८ ई० पू० में उपरोक्त जैन मन्दिरों एवं विहारोंको, जो उसके पूर्ववर्ती २१ राजाओंके राज्यकालमें अक्षुण्ण बने रहे थे, नष्ट करवाकर उनके स्थानमें बौद्ध मन्दिर और विहार बनवाये। उसीके समयमें सिंहलमें बौद्ध त्रिपिटकके सकलन एवं लिपिवद्ध करनेका सर्वप्रथम प्रयत्न किया गया। सिंहल द्वीपका भारतीयकरण इस प्रकार अति प्राचीन कालमें हो चुका था और बादमें भी निरन्तर भारतवासी वहाँ जा-जाकर बसते रहे। जैन पुराणों एवं कथा-

एन्कीमें बिहूड होल्ले उनके बिहूडगी एगड़ीपके ठरा एग होपीमें सेन  
 आगारियोके आगारके बिहू आने-आनेके बिहूडके कठिअ राजाओं एग  
 भारतीय राजाओंके परस्पर सम्बन्धों आदिके अनेक अनेक बरे बरे हैं ।  
 ७वी-८वी कठी है में वो बीच बरे व वैमिबोअ बरिअए बिहूडगीमें  
 एग एग बरके एग निर्बल बिकते हैं । इतना ही गड़ी बम्बकाके  
 आरम्भ वो आचार्य अर नीति-सम्बन्धी एक बिहूडकेबारे पछा बाल्य है  
 कि बिहूडके अनाकीन राजाके अर वैनाचार्यके सम्बन्ध बाल्य किअ बा ।  
 तथापि अनाकीन अनाचार्यका बोलचालानुसार ही एग बीर बरकेबारे अनेके  
 बुरे एक अरकी लक्षण राजासत्ता बनी एही । आरके अमिक एन्कीमें  
 अर वो बिहूडराजके सम्बन्ध बरकर बरे एही ।

बर्मा—बर्मा का बाहुरेअर जो भारतीय आरमें मुगलबुमि बरकता बा,  
 आरकीनकरा वो अरि भारतीय बाल्य हो चुक बा । अनेक (बीर)इतना  
 प्रथम बर बा । अर अनेक बरकेके बाल आरकीन बा । एग ऐकमें  
 ईरकी अने आरके अरबब बोलचालका अरार हुवा बीर बरमान बरके  
 बरी अरका अरान बर बा एही है । किन्तु बर्मा अर आरकीन आर-  
 रिबोअ वो आचार्यक बना एग बीर बीर-बीर बीर बरिमा वो बरी  
 एही ऐग १८वी कठी है के एक आचार्यकरके बिबि अर है । इही  
 अरार बीर-बीरकरी वो बरे एही ; १९वी कठीमें बीरकेबारे अरकि एगामी  
 बरकि करके एग बीरको आरके बिबा बिबा बा ।

मुगल एरके अरब (बीरान्तर, आचार्य (आरकीन) बिब बीरके  
 अरकीनका (अरबुअ) बम्ब (अरब) तथा बरिब (मुगल) कठि  
 एग बिहूडके (बरडीन का बाला) मुगलबीर, आरकेबडीर, इरकीन,  
 अरकीन आदि अनेकी एग बीरके आर बाल्यके आरकीनका सम्बन्ध  
 अरब भारतीय है । सम्बन्धका बाल्यारकीनका अरके बिबान्तरकी बाल,  
 अर एग आरि बरिबीके अर आरके वैमिक आरकि अरके अरब  
 बीरकी बीर-बीरकरी आर आर बरने अर बा । किन्तु अर भारतीय

भारतवासियोंसे भी उनका सम्पर्क बना रहा। कालान्तरमें व्यापारके उद्देश्यसे भारतीय वणिक् जिनमें-से अनेक जैन भी थे इन देशों एवं द्वीपोंके साथ व्यापार करते थे और अपने अलपोतोंमें वहाँ जाते-आते थे। इस बातके अनेक उल्लेख जैन-साहित्यमें पाये जाते हैं। कुछ भारतीय साहसी वीर अपनी भाग्य परीक्षाके लिए भी वहाँ जा पहुँचते थे, इनमें राजवंशों या सामन्तवर्गोंके क्षत्रिय ही अधिक होते थे। कभी-कभी कोई ब्राह्मण-पण्डित या बौद्धभिक्षु अथवा जैन ग्रन्थचारी, श्रावक आदि भी वहाँ जा पहुँचते थे और अपने-अपने धर्म और सस्कृतिका वहाँ जाने-अनजाने प्रसार करते थे। सन् ईसवीके प्रारम्भके उपरान्त ही हम इन देशों एवं द्वीपोंमें नये-नये सुव्यवस्थित राज्य स्थापित होते पाते हैं और उन राजवंशोंके नरेशोंने जो अनुपम कलापूर्ण भवन, देवमन्दिर, नगर आदि बनाये, अपनी स्वयंकी तथा देवी देवताओंकी मूर्तियाँ निर्माण करायीं, शिलालेख अंकित कराये—उन सबके प्राप्त अवशेषोंसे और इन प्रदेशोंमें प्रचलित अनुश्रुतियोंसे बृहत्तर भारतके इन महत्त्वपूर्ण अंगोंके इतिहासका बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस बातमें तनिक भी मन्देह नहीं है कि इन प्रदेशोंका पूर्णतया भारतीय-करण हो गया था। व्यक्तियोंके नाम व उपाधियाँ, नगरों एवं पर्वों आदि-के नाम, वेष-भूषा, आचार-विचार, भाषा, लिपि, धर्म और सस्कार सब भारतीय थे। भारतीय विद्याओं और साहित्यका वहाँ पठन पाठन होता था। भारतीय पौराणिक अनुश्रुतियाँ ही उन देशोंकी पौराणिक अनुश्रुतियाँ थीं। वहाँकी कला भारतीय कलासे ही प्रभावित थी। अस्तु, भारतके साथ इन देशोंका स्पष्ट राजनैतिक सम्बन्ध कोई न रहते हुए भी उनका उसके साथ सांस्कृतिक एवं व्यापारिक सम्बन्ध अबाध बना रहा। इन देशोंमें जो धर्म और सस्कृति प्रचलित हुई वऽ शैव, वैष्णव, जैन और बौद्ध चारोंका ही एक अद्भुत मिश्रण था। कालान्तरमें वहाँ सर्वत्र बौद्ध-धर्मकी प्रधानता हो गयी और अन्वेषकोंने इन स्थानोंके पुरातत्त्व एवं इतिहासका जो भी अध्ययन किया है वह बौद्ध अथवा हिन्दू दृष्टियोंसे ही





## अध्याय ७

### दक्षिण भारत [१]

भारतवर्ष प्राचीन कालसे ही उत्तरापथ और दक्षिणापथ नामक दो विभागोंमें विभक्त रहता आया है। उत्तरमें विन्ध्यपर्वतमालाकी सतपुड़ा, महादेश एव मेकल नामक पहाड़ियों तथा नर्मदा और महानदी नामक नदियोंके द्वारा उत्तरापथसे विभक्त एव दक्षिणमें तीन ओर भारतीय महासागरसे वेष्टित प्रायद्वीपका पठार दक्षिणापथ कहलाता है। प्राग-ऐतिहासिक कालमें ही मध्यकाल पर्यन्त भारतका यह विशाल भू-भाग भौगोलिक ही नहीं, राजनैतिक एव कुछ अंशोंमें सांस्कृतिक दृष्टिसे भी उत्तर भारतसे प्रायः पृथक् रहता रहा। विदर्भ, महाराष्ट्र, कोंकण, आंध्र, कर्णाटक, तमिल, तेलुगु और मलयालम दक्षिणापथके प्रमुख भाग रहे हैं।

वैदिक आर्योंकी दृष्टिमें यह समस्त भू-भाग ईमवी सन्के प्रारम्भके भी बाद तक एक अनार्य अवैदिक देश रहा है जहाँ असुर एवं राक्षस आदिकोंका निवास था। किन्तु जैन अनुश्रुतिके अनुसार मानवी सभ्यताके प्रारम्भसे ही इस प्रदेशमें सभ्य विद्याधरोंकी नाग, ऋक्ष, वानर, किन्नर आदि जातियोंका निवास रहा है जो कि धर्मणः सस्कृतिकी उपासक थीं। ब्राह्मणाय अनुश्रुतिके अनुसार अगस्त्य सवप्रथम आर्य ऋषि थे जो विन्ध्याचलको पार करके दक्षिण भारतमें पहुँचे थे, परशुराम भी वहाँ गये कहे जाते हैं। अपने वनवास-कालमें रामचन्द्र उधर गये थे और वानरोंकी सहायतासे लंकाके राक्षसराज रावणका अन्त करनेमें सफल हुए थे। इससे प्रतीत होता है कि रामायण-कालके लगभग वैदिक आर्योंके

दक्षिण भारत [१]



तीर्थंकर क्षरिष्टनेमिने दक्षिणापथमें स्वधर्मका विशेष प्रचार किया था। उनके भक्त हस्तिनापुरके कुरुवशी पचपाण्डव अन्ततः राज्यका परित्याग करके दक्षिणकी ओर चले गये थे और वही जैन मुनियोंके रूपमें उन्होंने दुर्द्धर तपस्या की थी। उन्ही समयसे सुदूर दक्षिणके पाण्ड्य देश, पचपाण्डवमलय, मदुरा आदि स्थान प्रसिद्ध हुए। पार्श्वनाथके तीर्थमें प्रसिद्ध जिनभक्त करवण्डु दक्षिणापथके ही एक प्रमुख भरोन थे। तिरापुरकी गुफाओंमें प्राप्त पुगतात्त्विक अवशेषोंसे करवण्डु क्षरिष्टकी बधाका समर्थन होता है जिनके कारण करवण्डुको एक ऐतिहासिक व्यक्ति माना जाने लगा है। महावीरने भी दक्षिण देशमें धर्म प्रचारार्थ विहार किया था और दक्षिणापथके हेमांगद देशका जीवधर नरेश उनका भजन हुआ था। इसी प्रकार यशोधर, नागकुमार आदि भी प्रसिद्ध जैनधर्म भक्त दक्षिणी राजपुरुष थे। इन सत्पुरुषोंकी क्षरिष्टगाथाओंका तमिल, कन्नड, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओंमें दक्षिणापथमें प्राचीन कालसे ही प्रचार रहता आया है।

महावीरकी दिव्य परम्परामें उनके प्रधान दिव्य गौतम गणधरके आठवें पट्टधर, अन्तिम श्रुतकेवलि भद्रबाहु प्रथम थे। अपने समयमें वही जैनसंघके अधिपति थे। उत्तरापथमें द्वादशवर्षीय भीषण दुर्मित्त पहनेकी बात उन्होंने अपने निमित्तज्ञानसे दुर्मित्तके पूव हो जान ली थी। अतः अपने बारह हजार शिष्य साथुओंके साथ उज्जैनी एव गिरिनगर होते हुए उन्होंने ई० पू० ३६६ में दक्षिण देशको विहार किया और कर्णाटक देशके कटवप्र नामक पर्वतपर म० स० १६२ (ई० पू० ३६५) में उन्होंने शरीर त्याग किया था। इसके लगभग ५० वर्ष पूर्व ही मगध-नरेश नन्दिबर्धनने दक्षिणदेशके इस भाग (नागरखण्ड) को विजय करके मगध साम्राज्यमें मिला लिया था। भद्रबाहुके इतने बड़े मधको लेकर वही जानेसे यह बात स्वतः प्रमाणित है कि उक्त प्रदेशमें जैनधर्मकी प्रवृत्ति और जैनोंका निवास उसके पूर्वसे ही था। यदि ऐसा न होता तो इतने जैनमुनि एक साथ उस ओर

[illegible][illegible]

एकदेश रह गया। भद्रबाहुको परम्पराके ये मुनि निग्रन्थ दिगम्बर थे और अपने मणको मूलमंत्र कहते थे। महाभारत, चन्द्रगुप्त मौर्य, विन्दुसार और अशोकके साम्राज्यमें दक्षिण भारतका बहुत-सा भाग सम्मिलित था। इन नरेशोंने राजनैतिक या अथवा कारणोंसे दक्षिणकी यात्राएँ भी की प्रतीत होता है। चन्द्रगुप्तके विषयमें सा यह अनुश्रुति है की कि उसने अपने आम्नायगुरु भद्रबाहुके समाधि-स्थान—धवणवेलगालमें जाकर तपस्या की थी और आचार्यके रूपमें जैनसंघका नेतृत्व भी किया था। अशोकके शिला-लेख भी कर्णटिक देशस्थ मस्को आदि स्थानोंमें मिले हैं। अशोकक समयमें ही कुछ बौद्ध प्रचारक दक्षिण देशोंमें सर्व प्रथम पहुँचे और तबसे वहाँ बौद्धधर्मका भी धीरे-धीरे प्रचार होने लगा। इसी समयके लगभग दक्षिणमें शैवधर्मका भा उदय हुआ प्रतीत होता है। सम्राट् खारवेलका दक्षिणय जनक राज्यामें राजनैतिक सम्प्रदाय था। उसने दक्षिणापथका भी दिग्विजय की थी और मूर्षिक, राष्ट्रिक, भोजक आदि राज्योंकी अपने अधीन किया था। पैठनके सातयाहन शातकर्णिकों को उसने हराया था और पाण्ड्य देशका राजा उसका मित्र था। खारवेलके समयमें ही दक्षिण भारतका आधुनिक राजनैतिक इतिहास वस्तुतः प्रारम्भ होता है और उसी समयसे उस देशका साहित्यिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास भी। इस इतिहासके प्रारम्भमें हम यही पाते हैं कि सम्पूर्ण दक्षिण भारतकी प्रधान सृष्टि श्रमण संस्कृति थी। तमिल भाषाका सर्व-प्राचीन साहित्य सगम साहित्य है, जिसके प्राथमिक सृजक अधिकतर जैन विद्वान् थे। उसीके साथ साथ, प्रथम शती ई० पू० से ही, मथुराके सरस्वती आन्दोलनसे प्रभावित होकर दक्षिणके ही जैनधर्मोंने प्राकृत भाषामें भी आगमिक, आध्यात्मिक, धार्मिक एवं नैतिक साहित्यका सृजन करना प्रारम्भ कर दिया था। सुदूर दक्षिणके विभिन्न भागोंमें वित्तन-वासल ( सिद्धोंका स्थान ) आदि स्थानोंमें २री-३री शती ई० पू० के ग्राह्यो लेखोंसे युक्त प्राचीन जैन गुफाएँ जैन धर्मके उपरोक्त प्रसार एवं



प्राचीन ज्ञात लिखित कृतियोंमें-से हैं । तमिल भाषाके सगम साहित्यके भी ये प्राथमिक प्रेरकोमें-से थे । तमिल देशमें ये सम्भवतया एलाचार्यके नामसे प्रसिद्ध थे और तिरुवल्लुवर-द्वारा सकलित तमिल भाषाके विश्वविख्यात नैतिक ग्रन्थ कुरल काव्यके मूल प्रणेता थे । ये कर्णाटक देशके कोण्डकुण्ड नामक स्थानके मूल निवासी थे । गुण्टकल रेलवे स्टेशनसे ४-५ मीलकी दूरीपर स्थित इस नामका गाँव अभीतक विद्यमान है और उसके निकटकी पहाड़ियोंपर बनी प्राचीन जैन-गुफाओंमें इन्होंने तपस्या की थी, ऐसा अनुमान किया जाता है । नन्दी पर्वतकी गुफाओंमें इन आचार्यका निवास रहा प्रतीत होता है । इन आचार्यका मुनि-जीवन सन् ८ ई० पू० से ४४ ई० पर्यन्त ५२ वर्ष रहा । दिगम्बर आम्नायमें कुन्दकुन्दका नाम भगवान् महावीर और गौतम गणधरके साथ-साथ लिया जाता है । रामकृष्ण गोविन्द भण्डारकर, पीटर्सन आदि अनेक प्राच्यविदोंके मतसे ये आचार्य अत्यन्त प्राचीन एवं सर्व महान् जैनाचार्योंमें प्रमुख हैं । अपनी साहित्यिक कृतियों-द्वारा इन्होंने सरस्वती आन्दोलनको सफल किया । इन्हींके समकालीन आरातीय यति शिवायने 'भगवती-आराधना' नामक महान् ग्रन्थकी रचना की, विमलसूरिने सन् ३ ई० में प्राकृत पटमचरित ( जैन रामायण ) की रचना की, सन् २५ ई० के लगभग आचार्य गुणधरने कसायपाहुड नामक आगम ग्रन्थका स्रष्टार, सकलन एवं लिपि-बद्धीकरण किया, इसी समय (४०-७५ ई०) में गिरिनगरकी चन्द्रगुफामें आचार्य धरसेन निवास करते थे जिन्हें महाकर्मप्रकृतिपाहुड नामक आगमका पूर्ण ज्ञान था । इस समय मूलसधके विधिवत् अधिपति एवं पट्टधर आचार्य अर्हद्वलि अपरनाम गुप्ति-गुप्त ( ३८-६६ ई० ) थे और सहारातवशी महाराज नहपान उज्जैन एवं सुराष्ट्रका अधिपति था तथा गौतमीपुत्र शातकर्णी पैठनका सातवाहन नरेश था । ६५ ई० के लगभग युद्धमें गौतमीपुत्र शातकर्णी पराजित होकर नहपान जैन मुनि हो गये थे और भूतबलि नामसे प्रसिद्ध हुए । सन् ६६ ई० के लगभग सघनायक अर्हद्वलिने वेण्णा नदीके तटपर



विषय मद्रिद्यानदरि। ( वर्तमान कीन्हागर धामका मद्रिद्यानम् ? ) में  
 एक विद्यालय मुनि-गामेकन किया और मुद्रियाके लिए मुनबर्बरी की-  
 देन केन ११२ यह मद्रि हल्लेबाई विचारित कर दिया । इसी गामेकन-  
 के आचार्य चरनचंदे आनन्दचर आचार्य पुनरन्त और मुनबर्बरी के इनके  
 नाम मद्रिक्तन केना गया और कानूनि इन विद्यालयकी ओ आनन्द आन  
 कानू बाङ्गान् या इवान दिया और इसे निरिक्तन करकेना आनेह दिया ।  
 इस इवान केनकन ५ ई में उक्त दोनो मुद्राओ-हाउ चरकाधनन  
 विद्यालयके इनके मद्रावीर-हाउ अनैकित आनयोंके इन मद्राकनपूर्व बंङ्गना  
 ओ उद्धार एवं बंङ्गनम् हो गया । ७३ ई में आचार्य चारकेनके लय  
 कीन्हागुड नामक कनयनकनी रचना की थी । मुनमुनके दिव्य कन-  
 हयामिने ( ४०—२ ई ) बंङ्गन आचार्य मुन कीन्हागे कनयनविनकनमुन  
 आनक मद्राकन कानू कानू कनयनी रचना की । चरित्र दिव्य मुनबर्बरीके  
 मुद्राओकी इन मद्राविनीन विनके कनयनके रना मद्राका और कनयनके  
 विचार आन कीन्हागे विनकन मुद्राओका ओ पुन कनयन और कनयन या  
 कीनबर्बरी हल्लेके लिए ओ कनयनकी विचार कर दिया । क ७१—८१  
 ई में मुनबर्बरी दिव्य-नरानयके आनकी कानूकनि ओ यह कनयन एवं  
 कनयनके विनकन के कनयनकन कनयनका कन केनर आने-आनकी मुद्राक-  
 के पुनरु कर किया और येन लंबकी कीन्हागन, कनयन कनयन या  
 निनयन आनयन नाम दिया । ७८ ई में ही चरित्र मद्राके मद्राकन  
 बंङ्गकी रचना हो चुकी थी और मद्राकनक कनयने कनयनकन कनयन  
 कनके कन-कनयन मद्राकेन कर दिया या । इसी कनयनके कनयन कनयन  
 कनयनके कनयन मुद्रा हाउ चरित्राकन या आनयकन बंङ्गके एक कनयन  
 मद्राकन । ९१ ई में कनयन नामक कीनयनके ओ कि कनयन  
 आचार्य विचार्यकी दिव्य-नरानयके में आनकी बंङ्गकी रचना की ।  
 विचार्य मद्रि आचार्य विनयन कनयनकन कनयनकन विचारन करकेके लिए  
 मद्राकनके यह में और कनयनके पकने में । कनयन निनयन होनेन

उनके अनुयायियोंने नया सम्प्रदाय स्थापित कर लिया । सन् १०० ई० के लगभग आचार्य कुन्दकोर्त्तिने सकलित भागमापर सर्व-प्रथम टीका लिखी । सम्भवतया इनके विद्यार्गुरु स्वयं आचार्य कुन्दकुन्द थे किन्तु, दोक्षागुरु माघ-नन्दिके पट्टवर जिनचन्द्र थे । इन कुन्दकोर्त्तिका ही अपरनाम पद्मनन्दि रहा प्रतीत होता है और ये ही नदिसधको पट्टाश्रल्लिमें जिनचन्द्रक पश्चात् उल्लिखित हुए हैं । उपरोक्त विवरण तथा उसमें उल्लिखित जैनगुरुओंके इतिहामसे यह स्पष्ट है कि ई० सन् के आगे-पीछेकी दो-तीन शताब्दियोंमें कर्लिंगसे गुजरात-सुराष्ट्र पयन्त और मध्य भारतसे लंका पयन्त सर्वत्र जैनधर्म और जैनगुरुओंका प्रसार था । गिरिनगर, अकुलेश्वर ( भडौच ), महिमानगरी, वेण्पातट, वनवास देश, द्रविड देश, कर्णाटक आदि विभिन्न भौगोलिक नाम उस सम्प्रदायमें बार-बार आते हैं ।

इन शताब्दियोंमें दक्षिणापथम सवमहान् शक्ति आन्ध्र सातवाहनोंकी थी, पश्चिमी भागमें चण्डनवंशी शक क्षत्रपाका अम्बुदय था और सुदूर दक्षिणमें चोल, चेर, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरल आदि छोटे छोटे आदिम राज्य थे । तमिल-भाषाका प्रथम सगम ( सघ ) इसी कालमें हुआ और उसके प्रेरक द्रविडदेशके कुन्दकुन्द आदि जैनगुरु ही रहे प्रतीत होते हैं । ये तमिलराज्य समृद्ध और शान्तिपूर्ण थे, रोम आदि सुदूर देशोंके साथ भी उनका समुद्री व्यापार बढ़ा चढ़ा था । प्रथम शती ई० के उत्तरार्धमें एक पाण्ड्य नरेशने रोमन सम्राट् ऑगस्टसके दरबारमें राजदूत भेजा था । उसी कालमें चोल-राज्यमें पाण्डुचेरीके निकट एक रोमन व्यापारी कोठी भी स्थापित हुई थी । तमिल देशके राज्यवर्षोंमें नाग प्रभाव अधिक रहा प्रतीत होता है । दूसरी शतीमें सातवाहनोंकी शक्तिका उत्तरोत्तर ह्रास होता गया और दक्षिणापथके दक्षिणार्धमें सातवाहनोंके प्रतिनिधि कतिपय नागमहारथी शासक थे, एव कुछ स्वतन्त्र नाग-सत्ताएँ थी । इन नागराज्योंने मिलकर एक फणिमण्डल (नागमण्डल)की स्थापना की थी । दक्षिणी नागराज्योंका यह शक्तिशाली संघ था । पेरिप्लसके समय (८० ई०) तक पूर्वोत्तरका नागराज्य अविभक्त



राजन् मयूरवर्मन हुआ। कदम्बोंकी अनुश्रुतिके अनुसार वे हारीतकी सन्तान मानव्य गोत्री ब्राह्मण थे। सम्भवतया नाग-ब्राह्मण मिश्रणसे उत्पन्न वे ब्रह्मशत्रिय थे। मयूरवर्मनके समयसे ही कदम्ब वंशका उत्कर्ष हुआ।

इस कालमें जैनसंघमें स्वामी समन्तभद्र (१२०-१८५ ई०) महान् वादी, वाग्मी, तपस्वी, योगी, धर्म-प्रचारक तथा ग्रन्थ प्रणेता थे। दक्षिणी फणिमण्डलमें स्थित उरगपुरके चोलवंशी नाग नरेशके वे पुत्र थे और काची-के नाग महारथी तथा प्रथम पल्लव राजे एवं करहाटकके प्रारम्भिक कदम्ब राजे उनके भक्त थे। ये आचार्य द्रविड़ संघके मूल प्रवर्तकोंमें-से थे। उन्होंने पुष्करधन, पाटलिपुत्र, वाराणसी, ठक्क, सिन्ध, मालवा, विदिशा, दशपुर, काची, करहाट आदि सम्पूर्ण भारतवर्षके तत्कालीन सभी ज्ञान-केन्द्रोंमें भ्रमण किया और अन्य धर्मोंके विभिन्न विद्वानोंके साथ सैंकड़ों सफल शास्त्रार्थ किये थे। बौद्धाचार्य नागार्जुन उनके समकालीन एवं प्रति-स्पर्धी थे। इन्हींके समकालीन मथुरा संघके प्रसिद्ध आचार्य नागहस्ति और उनके शिष्य बहू यतिवृषभाचार्य थे जिन्होंने कसायपाहुड आगमपर चूर्णिसूत्र रचे और १७६ ई० में तिलोयपण्णात्ति नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थकी रचना की थी। इन्हींके जीवनमें सन् १५६ ई० में महावीरकी उस शिष्य-परम्पराका अन्त हुआ जो परम्परागमके साक्षात् ज्ञानकी मौखिक द्वारासे संरक्षित थी। समन्तभद्रके ही एक शिष्य आचार्य सिंहनन्दिको सन् १८८ ई० में दक्षिण और माघव नामक भ्रातृद्वयके हाथों कर्णाटकके प्रसिद्ध गंगवंश और गंगवाडि राज्यकी स्थापनाका श्रेय है।

इस प्रकार दूसरी शताब्दीके अन्त तक दक्षिण भारतमें पाण्ड्य, चोल और चेर नामक प्राचीन छोटे छोटे तीन तमिल राज्योंके अतिरिक्त पूर्वी तटपर तोण्डेयमण्डलमें काचीका पल्लव राज्य, वनवास देशमें करहाट और सदनन्तर वैजयन्तीका कदम्ब राज्य और कर्णाटकमें गंगवाडिका गंग-राज्य—ये तीन प्रसिद्ध नये राजवंश स्थापित हो गये थे। इनके अतिरिक्त दक्षिणार्धमें सातवाहन क्षत्रिके पतनसे लाभ उठाकर दक्षिणके विभिन्न

[illegible][illegible]

धमका प्रभाव रहा प्रसीत होता है। प्रारम्भिक पल्लव राजाओंके, विशेषकर शिवस्कन्दवर्मनके उत्तराधिकारी सिंहवर्मन प्रथमक प्राकृत अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं। शिवस्कन्दवर्मन स्वयं आगमोंके टीकाकार जैनगुरु वप्पदेवका शिष्य था। पल्लवाका राज्यचिह्न वृषभ था इसीलिए ये वृषभवज भी कहलाये। सिंहवर्मनके उपरान्त बुद्धवर्मन और फिर कुमारविष्णु (३२५-५० ई०) राजा हुआ। तदनन्तर विष्णुगोप गद्दीपर बैठा जो समुद्र-गुप्तका समकालीन था और जिसका उल्लेख उषन गुप्त सम्राटकी प्रयाग प्रशस्तिमें काचेयक विष्णुगोप नामसे हुआ है। विष्णुगोपके उपरान्त इस यशका प्रसिद्ध नरेश सिंहवर्मन द्वितीय था जिसके राज्यके २२वें वर्षमें शक स० ३८० ( सन् ४५८ ई० ) में पाणराष्ट्रके पाटलिक ग्रामक जिनालयमें जैनाचार्य सर्वनन्दिने अना प्राकृत लाकविभाग ग्रन्थ पूर्ण किया था। यही सर्वप्रथम सुनिश्चित सिद्धि है जो पल्लवोंके इतिहासमें अवसक मिली है। यह राजा जैनधर्म और जैनगुरुओंका आश्रयदाता था। उसके उपरान्त दो-तीन राजा और हुए और सन् ५५० ई० के लगभग कुमारविष्णुसे प्रारम्भ होनेवाली पल्लव वंशकी इस दूसरी शाखाका अन्त हुआ।

सिंहविष्णु पल्लव (५५०-६०० ई०) से पल्लवोंकी तीसरी शाखाका प्रारम्भ हुआ और इस शाखाके समयमें ही पल्लव राज्यका चरम उत्कर्ष हुआ। सिंहविष्णुके आश्रयमें महाकवि भारविने अपने जीवनके कुछ अन्तिम वर्ष बिताये थे। सिंहविष्णुका उत्तराधिकारी महेन्द्रवर्मन प्रथम (६००-६३० ई०) था। वह जैनधमका अनुयायी था। कई जैनमन्दिर और सित्तनवास-लकी गुफाएँ उसने बनवायी थीं। सुदूर दक्षिणमें पावतीय गुफा मन्दिरोंका निर्माण करानेवाला वही प्रथम नरेश था। इन जैन-गुफाओंमें भित्तिचित्र भी मिले हैं। इन चत्त्यालयोंके निर्माणके कारण उस राजाको चैत्यकन्दर्प उपाधि प्राप्त हुई थी। शैवसत्त अप्परके, जो पहले स्वयं भी जैन ही था, प्रभावमें आकर यह राजा शैव हो गया था और तब इसने जैनोपर अत्याचार भी किये और कई जैन देवालयोंको भी शैवाल्योंमें परिवर्तित

**आवृत्ति** : एक प्रति

पाण्ड्य नरेशोंका दबाव उसे निरन्तर महाना पट्टा जिनमें उसके राज्यको पर्याप्त क्षति हुई। उसका उत्तराधिकारी नन्दिधर्मन तृतीय (८४४-९०६) था। पाण्ड्य नरेशोंको मार धोवन्लमर्क विरुद्ध उसने गंग, चोल, गण्डकूट और सिंहल नरेशोंसे मन्त्रीमन्थन स्थापित किये और तेन्लारुके प्रसिद्ध युद्धमें वह पाण्ड्य राजाको हराकर उसके राज्यमें घुस गया किन्तु वृम्बकोनमके निर्यात स्वयं हारकर वापस लौट आया। इसकी नीन्नेना नो दक्षिणाला थी। उसके पुत्र नृगुणधर्मनने, जो अमोघवर्ष प्रथमकी पुत्री शम्भासे उत्पन्न हुआ था पिताका बदला लेनेके लिए पाण्ड्य राजाको हराया। यह नरेश अपने नानाकी नीति जैनधर्मका समर्थक था। इस वंशका अन्तिम नरेश अष्वराजित था। १०वीं शताब्दीमें चोल सम्राटोंके अन्त्युत्थानने पल्लव राज्यका अन्त किया। पल्लवोंकी ही एक शाखा नीलम्बवालीके नीलम्ब थे। नीलम्बधर्मने जैन धर्मकी प्रवृत्ति प्रायः निरन्तर बना रहीं।

पल्लववशके प्राय सभी नरेश विद्याओं और कलाओंके पोषक थे और विद्वानोंका आदर करते थे। उनकी राजधानी एक प्रसिद्ध ज्ञान-वेदके रूपमें उत्तराश्वकी काशीसे होह करती थी। इस नगरीमें विभिन्न धर्मोंके विद्वान् परस्पर छात्रार्थ करते थे जिनमें राजा और प्रजा सभी रस लेते थे। प्राकृत, संस्कृत और समिल तीनों ही भाषाओंमें श्रेष्ठ धार्मिक एवं लौकिक साहित्यका पल्लव नरेशोंके आश्रयमें सृजन हुआ। ७वीं शता ई० के पूर्व पल्लव राज्यमें जैन और बौद्ध धर्मोंकी ही प्रधानता थी, तदुपरान्त शैव और वैष्णव धर्मोंका प्रसार हुआ। जैन, बौद्ध, शैव, और वैष्णव, चारों ही धर्म इस राज्यमें साथ ही-साथ फलते-फूलते रहे और इस वंशके कुछ-न-कुछ नरेश इनमेंसे प्रत्येक धर्मके अनुयायी रहे। ७वीं-८वीं शताब्दीस शैव और वैष्णवोंने जैनों और बौद्धोंपर शोषण अत्याचार करने प्रारम्भ कर दिये। फलस्वरूप बौद्धधर्म तो इस देशसे शीघ्र ही विरोहित हो गया किन्तु दक्षिणके विद्वान् जैनगुरुओं, उनके दक्षिण भारत [१]





की ओर मदुराको उक्त मघका केन्द्र बनाया। अस्तु ५वीं से ७वीं शती पर्यन्त पाण्ड्य देशमें जैनधर्मका अत्युत्कर्ष हुआ। वज्रनन्दि धीरे उनके सहयोगी गुणनन्दि, वक्रग्रीव, पात्रकेसरि, सुमतिदेश, श्रोवर्धदेश आदि जैनाचार्योंने उक्त द्रविड या द्रमिल सघको एक सजीव शक्ति बना दिया। इन विद्वानोंने अनेक ग्रन्थोंका संस्कृत, प्राकृत और तमिल भाषाओंमें प्रणयन किया तथा अपने भक्तों और शिष्योंसे कराया। तमिल साहित्यके कई महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ इसी कालमें लिखे गये। प्रवृत्तियोंके फलस्वरूप ही ६ठीं शतीके अन्तके लगभग कडुंग नामक राजाने पाण्ड्य देशकी राज्य शक्तिका पुनरुत्थान किया, वह अपने पूर्वजोंकी भाँति ही जैनधर्मका अनुयायी था, उसके क्रमशः चार वंशज भी जैनों थे। इनमें-से अन्तिम नरेश नेन्दुमारन ( कुन अथवा सुन्दर पाण्ड्य ) के समय ( ६५०-६८० ई० ) में गुणसम्बन्धर नामक व्यक्तिने जो स्वयं जैन था, जैनधर्मका परित्याग करके शैव धर्मको अपनाया और राजाको भी शैव बना लिया। सम्बन्धरके प्रभावसे उस राजाने पाण्ड्य देशके जैनियोंपर अमानुषिक अत्याचार किये वताये जाते हैं जिनके दृश्य मदुराके प्रसिद्ध मोनाक्षी मन्दिरकी दीवारोंके प्रस्तरांकनोंमें आज भी विद्यमान हैं। कडुंगसे लेकर नेन्दुमारनके समय तक पुनरुत्थापित पाण्ड्य राज्यकी शक्ति और प्रभाव बढ़ता आ रहा था किन्तु इन धार्मिक अत्याचारोंके कारण फिर लगभग एक शताब्दीके लिए उसकी उन्नति पिछड़ गयी।

९वीं शताब्दीमें श्रीमारन श्रीवल्लभ ( ८३०-६२ ई० ) इस देशका प्रसिद्ध राजा हुआ। महावंशमें भी उसका उल्लेख है और सिंहलपर भी उसने आक्रमण किया था। पल्लव नरेश दन्तिवर्मन और नन्दिवर्मन दोनोंको उसने हराया और अपना राज्य बढ़ाया था। किन्तु उसके अन्तिम वर्षोंमें सिंहलके सेन द्वितीयने तथा काचोके नृपतुंगवर्मनने उसपर आक्रमण करके उसे बुरी तरह पराजित किया और मदुराको लूटा। श्रीमारनकी भी उसी समय आहत अवस्थामें मृत्यु हुई। उसके पुत्र वरगुणवर्मन द्वितीयको



जैन महाकवि घनपालके तिलकमजरी नामक काव्यमें समर्थतुषी समुद्रयात्रा-  
 का वर्णन अनेक विद्वानोंके मतानुसार राजराजा चोलके ही मुद्रवृषके किसी  
 द्वीप या देशपर किये गये समुद्री आक्रमणकी संशयोत्पत्ति सजीव वर्णन है ।  
 कवि घनपाल इसी कालमें हुए थे, मालवेके परमार्थ, यन्त्रीयके प्रतिहारों  
 और कल्याणिके चालुक्योंमें उठेने सम्मान प्राप्त किया था, क्या आश्चर्य  
 है कि वे राजराजा चोल-द्वारा भी सम्मानित हुए हों । राजराजा सामान्यत  
 शैवधर्मका अनुयायी था किन्तु वह एक बहुत उदार और सहिष्णु नरेश  
 था । उसके राज्यमें जैनोके ऊपर कोई अत्याचार नहीं हुआ यन् विद्वानों-  
 का तो यह मत है कि उसके समयमें जैनियोंकी शैवोंके समान ही राजपात्रप  
 प्राप्त था और उसके साम्राज्यमें जैनधर्म उन्नत अवस्थामें था । उसका पुत्र  
 राजेन्द्र चोल ( १०१६-४२ ई० ) सुयोग्य पिताका सुयोग्य पुत्र था । उसने  
 अपनी विजयवाहिनीकी उत्तरमें गंगातट तक पहुँचा दिया और समुद्रपारके  
 देशोंको भी विजय किया । किन्तु वह जैनधर्मका विद्वेषी था, मैसूर प्रान्तके  
 अनेक जिन मन्दिरोंको उसने जलवा दिया था । उसका उत्तराधिकारी  
 राजाधिराज ( १०४५-५४ ई० ) था । तदनन्तर अधिराजेन्द्र राजा हुआ  
 वह भी शैव था । मन् १०७४ ई० में उसके भानजे कोल्लुत्तुग चालुक्यने उसे  
 मारकर चोल और पूर्वी चालुक्य राज्योंको सम्मिलित कर लिया । उसने  
 ११२३ ई० तक राज्य किया । यह राजा भी बड़ा पराक्रमी था और उसने  
 कर्लिंग देशको पुन विजय किया । इस विजय यात्राका सजीव वर्णन तमिल-  
 के प्रसिद्ध महाकाव्य कर्लिंगट्टपरनिमें मिलता है । इस काव्यके लेखक  
 कोल्लुत्तुग चोलके प्रधान राजकवि जयगोदप्त थे जो जैनो थे । यह सम्राट्  
 जैनधर्मका अनुयायी था और उसके आश्रयमें अनेक धार्मिक एवं साहित्यिक  
 कार्य हुए । उसने राजेन्द्र-द्वारा नष्ट किये गये जिन मन्दिरोंका भी जीर्णो-  
 द्धार कराया । कोल्लुत्तुगके भयसे भागकर ही रामानुजाचार्यने होयसल नरेश  
 विद्विश्वर्धनकी दारण ली थी । कोल्लुत्तुगके आश्रयमें अनेक जैन विद्वानोंने  
 अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी । इस नरेशने अपने राज्यमें समस्त निषिद्ध

बिहारी देवायतिने गहीर दिहावा । गढ़ लंछा-मरेज और लच्छरी, ठेकी  
 ही बनीय रहा । उनके बाद १४ और निर्मल बागवत हुए और कठमें  
 १ बी छठीके आरम्भमें चौबीने बागवत देवकी विषय वाले इतने  
 बाधापरने दिहा किया । १२वीं छठीमें बागवतीने फिरसे बलिष्ठ रक्खी  
 और कुनछ बागवत लालाम्भ करवनी आवा । इस कावमें बागवत बीर  
 मारमैन कुन्देकर ( १२५८-१२११ ई ) के बचवने म्भोटीकी म्भक  
 ईनिम दिहाही बापी इस देवमें आवा वा । उनके वृत्तान्तमें यह भी  
 विहित होय है कि इस समय पन्ध्रव देवमें म्भेक बीर म्भ और बीरी  
 विद्यमान थे । म्भरवकमें १२८४ ई में लंछाही जो दिहन की की ।  
 १११ ई में म्भरवहीन म्भरवकी म्भरवमें म्भरवके म्भरव म्भरव  
 म्भर कर दिया ।

धोस्रपन्थ—ईसवी म्भकी आरम्भिक क्काम्भिकोंमें क्काम्भिकों का  
 नाम एक क्काम्भिक नाम था । म्भकी क्काम्भिक म्भरव था और बीरवर्मा  
 क्काम्भिक म्भरव की । किन्तु १०वीं छठी ई में ही लच्छरीके क्काम्भिकों  
 बागवत बीर पन्ध्रव कुन क्काम्भिकों तक बल रहा और यह एक  
 बागवत बीरपन्थके क्काम्भिकों का क्काम्भिक था । १०वीं छठी ई में  
 बीर देवके लंछाकर म्भरवों विषयक बागवत बीरपन्थका कुनल्लव  
 और क्काम्भिकों लंछाही लच्छरी की । क्काम्भिक क्काम्भिकों का विषय बीर  
 और फिर पन्ध्रव बीर ( १७-४१ ई ) पन्थ हुआ । इसमें बागवत देव  
 की विषय करके पन्थ विस्तार किया । इसके क्काम्भिककल्पाविकारी म्भरव  
 कुन नहीं थे । किन्तु म्भरवपन्थ पन्थका बीर ( १८९-१२१ ई ) का  
 लंछाका क्काम्भिक म्भरव था यह बापी विरहीय था और म्भरव क्काम्भिकों  
 म्भरव म्भरवका क्काम्भिक हुआ । क्काम्भिक ( बीर ) और क्काम्भिकों की  
 क्काम्भिक विषय करके क्काम्भिकों पन्थमें म्भरव किया । यह बापी  
 विरहीय की था—लंछाकरका क्काम्भिक बीरमन्थिक क्काम्भिक म्भरव था । क्काम्भिकों  
 विषयक की म्भिके है म्भिके क्काम्भिक म्भरवपन्थोंके विषय की म्भिके है ।

तो दीक्षा लेकर जैनमुनि हो गया था—तमिल भाषाके सुप्रसिद्ध प्राचीन महाकाव्य शिलप्पदिकरम्की रचना इसी राजर्षिने की थी। ३री-४वी शती ई० से चेरोंका अवनति होन लगी और चेरराज्य एक छोटा-सा गौण राज्य रह गया। इस प्राचीन चेरवंशका संस्थापक चेरमान वेदमल था। ८वीं शतीके अन्तमें इस वंशका अन्त हो गया। ९वीं शतीमें चैण्णव अल्वर मतके अनुयायी कुलदीक्षरने अपना वंश स्थापित किया और उसीके साथ साथ चेर प्रदेशमें जैनधर्मके स्थानमें चैण्णव मतकी प्रधानता हो गयी। इस प्रदेशके मलाबार तटपर धरणार्थी यद्वादियों और नवागत ईसाइयोंकी वस्तियाँ भी बहुत प्राचीन कालमें ही स्थापित हो गयी थीं। प्राचीन कालमें केरल भी चेर राज्यका ही अंग था। सन् १३१० ई० में मदुरापर मुसलमानोंके प्रथम आक्रमणके उपरान्त कुछ कालके लिए केरल राज्य एक स्वतन्त्र और शक्तिशाली राज्य हो गया था। चेर, केरल एवं सत्यपुत्र प्रदेशोंमें अनेक प्राचीन जैन पुस्तकवाग्रहोप पाये जाते हैं। चेरोंकी राजधानी कावेरीपट्टन थी। पाण्ड्य, चोल, चेर नामक प्राचीन अधिश आदिम तमिल राज्यों एवं पल्लव नामक नवस्थापित राज्यके साथ सुदूर दक्षिणके तमिल प्रदेशका इतिहास सम्बन्ध हो जाता है। उपरोक्त विवरणसे यह भी विदित होता है कि ३री से ६ठी शती ई० पर्यन्त सम्पूर्ण तमिल देशका इतिहास अघकाराच्छन्न रहा। इस बीचमें वहाँ कलभ्र (कलिअरसन=मम्पताके शत्रु) नामक जातिका प्रभुत्व रहा प्रतीत होता है। अभ्युत शिक्रात कलभ्र इस वंशका प्रसिद्ध राजा था और बौद्धधर्मका समर्थक था। किन्तु ६ठी शतीके अन्तमें पाण्ड्यों और पल्लवोंने कलभ्रोंका अन्त कर दिया था। १०वीं शतीके जेनाचार्य अमितसागरने भी आने तमिल व्याकरणमें उक्त कलभ्र नरेशके अत्याचारोंसे सम्बन्धित कुछ प्राचीन गीताको उद्धृत किया है।

कदम्ब वंश का संस्थापक कदम्ब आद्य सातवाहनोंका सामन्त था जिसने कदम्ब नामक वृक्ष विशेषके नामपर अपने वंश और राज्यकी



के आक्रमणका निवारण किया। उसने महपट्टिदेवके लिए एक दान भी दिया था। उसके पुत्र भगीरथके कुछ सिक्के मिले हैं। भगीरथका पुत्र रघु भारी योद्धा था। उसने पल्लवोंको पराजित करके अपने राज्यको निष्कण्टक किया। युवावस्थामें ही युद्धमें उसकी मृत्यु हो गयी और उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई काकुत्स्थवर्मन् भी छोटी अवस्थामें ही राजा हो गया, किन्तु वह एक महान् नरेश, योग्य शासक, बड़ा नीति-निपुण और दीर्घजीवी था। उसने गग, गुप्त और वकाटक नरेशोंका अपनी कन्याओंके साथ विवाह करके तत्कालीन भारतके प्रसिद्ध राजवंशोंसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये। इस नरेशके हल्सी ताम्रशासनमें वर्षसंख्या ८० दी हुई है जो इस राजाकी ८०वीं वर्षगांठका सूचक प्रतीत होती है। इस अभिलेखकी तिथि सन् ४०० ई० निश्चित की जाती है और लेखसे स्पष्ट है कि यह राजा जैनधर्मका भारी पोषक था। जैनपण्डित श्रुतकीर्ति भोजकको इस ताम्रशासन-द्वारा राजधानीके जैनमन्दिरके लिए दान दिया गया था। काकुत्स्थवर्मन् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका समकालीन था और सम्भवतया राजकुमार कुमारगुप्तके साथ भी एक कदम्ब राजकुमारीका विवाह हुआ था। स्वयं कवि कालिदास इस विवाह सम्बन्धको स्थिर करनेके लिए उज्जैनसे वैजयन्ती आये बताये जाते हैं। काकुत्स्थकी दूसरी कन्या गगनरेश तदगल माधवको विवाही थी और इस प्रकार गग अविनीत इस कदम्ब नरेशका दोहित्र था। काकुत्स्थवर्मन्के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र शान्तिवर्मन् राजा हुआ। उसने कदम्ब राज्यके बन-वासी, त्रिपर्वत और उच्छगो नामक तीनों भागोंको संगठित करके केन्द्रीय शासनके भीतर ले लिया। शान्तिवर्मन् भी जैनधर्म और जैनगुरुओंका समादर करता था। उसका पुत्र मुगेशवर्मन् (४५०-४७८ ई०) जैनधर्मका अनुयायी था। उसके कई उपलब्ध ताम्रशासनोंमें इस नरेश-द्वारा जैन मन्दिरोंका निर्माण कराने, निर्ग्रन्थ जैनगुरुओं, श्वेतपट जैन साधुओं और जैनोंके कूर्चक नामक एक अन्य सम्प्रदायके साधुओंको दान देनेके उल्लेख है। स्वयं राजधानी पलाशिकामें उसने अपने पिता शान्तिवर्मन्की





के आक्रमणका निवारण किया। उसने महपट्टिदेवके लिए एक दान भी दिया था। उसके पुत्र भगीरथके कुछ सिक्के मिले हैं। भगीरथका पुत्र रघु भारी योद्धा था। उसने पल्लवोंको पराजित करके अपने राज्यको निष्कण्टक किया। युवावस्थामें ही युद्धमें उसकी मृत्यु हो गयी और उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई वाकुत्स्थवर्मन् भी छोटी अवस्थामें ही राजा हो गया, किन्तु वह एक महान् नरेश, योग्य शासक, बड़ा नीति-निपुण और दीर्घजीवी था। उसने गग, गुप्त और वकाटक नरेशोंका अपनी कन्याओंके साथ विवाह करके तत्कालीन भारतके प्रसिद्ध राजवंशोंसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये। इस नरेशके हल्सी ताम्रशासनमें वर्षसंख्या ८० दी हुई है जो इस राजाकी ८०वीं वर्षगांठका सूचक प्रतीत होती है। इस अभिलेखकी तिथि सन् ४०० ई० निश्चित की जाती है और लेखसे स्पष्ट है कि यह राजा जैनधर्मका भारी पोषक था। जैनपण्डित श्रुतकीर्ति भोजकको इस ताम्रशासन-द्वारा राजधानीके जैनमन्दिरके लिए दान दिया गया था। काकुत्स्थवर्मन् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यका समकालीन था और सम्भवतया राजकुमार कुमारगुप्तके साथ भी एक कदम्ब राजकुमारीका विवाह हुआ था। स्वयं कवि कालिदास इस विवाह सम्बन्धको स्थिर करनेके लिए उज्जैनसे वैजयन्ती आये बताये जाते हैं। काकुत्स्थकी दूसरी कन्या गगनरेश उदगल माधवको विवाही थी और इस प्रकार गग अविनीत इस कदम्ब नरेशका दौहित्र था। काकुत्स्थवर्मन्के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र शान्तिवर्मन् राजा हुआ। उसने कदम्ब राज्यके बन-वासी, त्रिपर्वत और उच्छगो नामक तीनों भागोंको संगठित करके केन्द्रीय शासनके भीतर ले लिया। शान्तिवर्मन् भी जैनधर्म और जैनगुरुओंका समादर करता था। उसका पुत्र मृगेश्वरवर्मन् (४५०-४७८ ई०) जैनधर्मका अनुयायी था। उसके कई उपलब्ध ताम्रशासनोंमें इस नरेश-द्वारा जैन मन्दिराका निर्माण कराने, निर्ग्रन्थ जैनगुरुओं, श्वेतपट जैन साधुओं और जैनोंके कूर्चक नामक एक अन्य सम्प्रदायके साधुओंको दान देनेके उल्लेख है। स्वयं राजधानी पलाशिकामें उसने अपने पिता शान्तिवर्मन्की



वर्मन्, सिंहवर्मन् और कृष्णवर्मन् द्वितीयका क्रमशः शासन इसके समयमें रहा। रविवर्मन्ने अपने इन सम्बन्धियोंको उभरने नहीं दिया और कृष्णवर्मन् द्वितीय तथा उसके सहायक षण्मदण्ड पल्लवको बुगै तरह पराजित किया। रविवर्मन्ने अपने भाई भानुवर्मन्को हल्दीमें अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। दुर्दिनोत्त गग पल्लवोंके विरुद्ध रविवर्मन्का मित्र था। इस प्रकार रविवर्मन्ने अपने पिताके समय हुए राज्य और वंशके रिभाजनका अन्त करके पुनः एक कर लिया। कृष्ण द्वितीयके वंशज अजयवर्मन्, भोगि और विष्णुवर्मन् कुछ काल तक और विद्रोही बने रहे किन्तु उनका भी अन्त चालुक्य पुलकेशि प्रथमके पुत्र कीर्तिवर्मन्ने कर दिया। रविवर्मन् एक महान् प्रतापी एवं सुयोग्य नरेश था। वह जैनधर्मका भी परम भक्त था। हल्दी, कोरमग आदि स्थानोंसे उसके कई ताम्रनासन मिले हैं जो उसकी उत्कट जिनधर्म भक्ति, धार्मिक आवरण, जिनमन्दिराका निर्माण, जैनगुरुओं और विद्वानोंका सम्मान, वास्तिकी अष्टाह्निका आदि जैनपर्वों और उत्सवोंको मनाने, विविध दान देने आदिका धनन करते हैं।

रविवर्मन्के धर्मगुरु जैनमुनि कुमारश्च तथा हरिदत्त ये और राजगुरु एवं प्रमुख दानपात्र बन्धुसेन भोजक थे जो दामकीर्ति भोजकके उत्तराधिकारी थे। महाराजके भाई भानुवर्मन्ने जो हल्दीका शासक था, प्रत्येक पूर्णिमाको जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक करनेके लिए पण्डर भोजकको दान दिया था। पण्डर सम्भवतया बन्धुसेन भोजकका उत्तराधिकारी था। इसमें सन्देह नहीं कि कदम्बर नरेश रविवर्मन् एक प्रतापी, धर्मार्थी एवं शक्तिशाली राजा था।

इसके उपरान्त इसका पुत्र हरिवर्मन् (५२०-५४० ई०) राजा हुआ। यह कदम्बरवंशका अन्तिम महान् नरेश और अपने पूर्वजोंकी ही भाँति जैनधर्मका भक्त था। उसके राज्यके चौथे और पाँचवें वर्षोंमें लिखे गये ताम्रपत्र प्राप्त हुए हैं जिनमें इस राजाके द्वारा जैनमन्दिरों और गुरुओंको दान देने तथा जैनधर्ममें उपदेशित अन्य धार्मिक कार्योंके करानेकी

ज्योत्स्ना करकेके करीब है । कृष्णक धर्मके बीजाचार्य धारिण्यका यह एक बहुत भार कर रहा था । इस नरेशके बलिबेहोषि यह भी बात होना है कि उहका नामा विवरण भी एभियमन्त्र बुझा जाई था तथा दूधके बा-बाके कृष्ण शिरीयके एक भाई और बहने पुत्र राजकुमार ऐनवर्म्न् योने कर्मन् राजकुम्बके नाम बनेक ज्योति भी बीनवर्म्न्के अनुवाची थे और वह कि कर्मन्की मित्र सैन्यक नरेश धानुबलि भी बीन था । इतिवर्म्न्के कर्मन् एक बंकरा जात ही था । ५६६ ई. तक कृष्ण शिरीयके बंकरा सम्बरतथा बहने रहे, बहने राजकुम्ब पुत्नीकी अवाम और कीर्तिवर्म्न्के कर्मन् बलिबेहोषे कर्मन् करके करीब एकका विस्तार भिन्न । कि एक ईश्वर्य बलिबेहोष बीन कर्मन् करारके करके ११वीं-१२वीं छठी ई. तक चला जाता है, मित्रेकर हीनके कर्मन् एके ११वीं १२ वीं कर्मन् बने बलिबेहोषी थे ।

परम्परागत राजन्य कुशाव एवं सुधन्यताका वा । यद्यपि कयो और कक-  
वर्ति धान कर्तुं निरन्तर कुश करतै रई और बाक-बाकके नाव बरहापेने  
बी कककते प्पुवा पक्क प्पुवाणि ककके प्पुवावे बाक्यरिक्त बाक्यि-कक्यि और  
कककक कयो प्पुवे । कककार-ककककय निरयो-हाता कुशवर्ति वा । क  
नरैबीकये स्वर्गकुशार्तै ककके वेक है । ककककये ककककये और ककककक-  
हाता ककककक ककककय प्रकय वा । कककक और ककककये प्पुवे एवं  
कककककक बी और प्पुवे-कककक कककक ककककये ककक एवं कककक  
कै । परम्पराके प्रमुक्त ककककक कक ककक कुशक, वाव ककके बी कक-  
ककके ककककक है ।

गंगाबंद—एरी कटी है अखिल बापुने स्वयंसेवक होनेवाले कौन एकदमोने हीराए बरसाई बा । अखिलके सम्पूर्ण बंदोने यह कर्माधिक स्वामी एत हीर फलक, फलक बाबुबा एतबुद्ध बाणि एतके बाए एत कल होमैबादी कधी कथाए राजवाडिबोला शक नहिआनी बना एत । कर्मजन मैदुर प्रेसके जणिफाई बाए एत कानैरी कपीने नूरी बादीने

व्याप्त गगवाडि राज्य पश्चिमी गंगवशके नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

इस वंशके नरेशोंके शिलालेखों व ताम्रपत्रों, साहित्यिक आधारों तथा अनुश्रुतियोंसे ज्ञात होता है कि अयोध्यामें तीर्थंकर श्रवणभक्तके इक्ष्वाकुवंशमें राजा हरिश्चन्द्र हुए जिनके पुत्र भरतकी पत्नी विजयमहोदयीसे गगदत्त या गगेयका जन्म हुआ । उसीके नामसे यह वंश गगवश कहलाया । गगेयका एक वंशज विष्णुगुप्त अहिच्छत्रका राजा था और तीर्थंकर अरिष्ट-नेमिका भक्त था । उसका वंशज श्रोदत्त तीर्थंकर पार्श्वनायका उपासक था । श्रोदत्तके वंशमें अहिच्छत्रका राजा कम्प हुआ जिसका पुत्र पद्मनाभ था । इसके ऊपर उज्जैनियोंके राजाने आक्रमण किया अतएव पद्मनाभने सुरक्षाके लिए अपने दक्षिण और माघव नामक दोनों बालक-पुत्रोंको राजचिह्नों-सहित दूर विदेशमें भेज दिया । प्रवासमें ये राजकुमार धीरे धीरे बड़े हुए और धूमते धूमते दक्षिण भारतके कर्णाटक देशस्थ पेरुर नामक स्थानमें पहुँचे । नगरके बाहर स्थित चैत्यालयमें दोनों राजकुमार अपने कुलदेव जिनेन्द्रका दर्शन पूजन करनेके लिए गये । यहाँ आचार्य सिंहनन्दि अपने शिष्य-समूह-सहित विराजमान थे, यह उस काल और प्रदेशके एक प्रमुख जैनाचार्य थे । दोनों राजकुमारोंने जब उन्हें नमस्कार किया तो उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया, उन्हें अपने पास रखकर समस्त राज्योंचित विद्याओंमें पारंगत किया, अन्तमें कर्णिकार-पुष्पोका मुकुट पहनाकर उन राजकुमारोंका राज्याभिषेक किया, अपनी मयूरपिच्छिका उन्हें राजध्वजके रूपमें प्रदान की और मत्तगयन्द उनका राजचिह्न निश्चित किया । उस समय उन्हें आचार्यने यह चेतावनी दी कि 'यदि तुम लोग कभी अपना वचन भंग करोगे, कभी जिन-शासनसे विमुख होगे, पर स्त्रियोंके ऊपर क्रुद्धि डालोगे, मद्य-मासका सेवन करोगे, नीच व्यक्तियोंकी सगति करोगे, याचक-जनोंको दान देनेसे मुँह मोड़ोगे और रणभूमिसे पीठ दिखाकर भागोगे तो तुम्हारे कुलका नाश हो जायेगा ।' राजकुमारोंने गुरुवचनोंकी शिरोधार्य किया और गुरुकी मन्त्रणानुसार अद्भुत उत्साहके साथ राज्य निर्माणमें

संलग्न हो करे : कर्णाले बाग-व्यवस्था की नियम करने संबंधी ११ की नींव रखी : एक विधानसभा के अनुसार इस प्रकार बहिष् और बागाने पत्रिबिरिचो बनना पूर्व कुबकाक (बोल्गार) की अपनी राजधानी ११ बंडक देवको बनना राज्य समुच्चयों नियमको बननी विराडिनी स्त्रिय-की बनना इहरेव नियमको बनना बर्म और बागार्ब सिद्धन्तियको बनना कुब बनाकर इस कुब्धीका उत्तरमें लम्बके पूर्वम्ब कुबमें घोषेवमप्यम्ब एक बंडिचमें बीहु देव एक और पत्रिबनमें बेट देवकी निवास स्थानपर पर्यन्त बीच किया ।

ऐसा उल्लेख ईसाई है कि बहिष्की कुबु राज्यविर्माणके उत्तरके बग ही ही बनी की बग बंडिचके इस पत्रिबकी बंडकडका उत्तर बागार्बिक बरेव और बंडकडि राज्यका प्रथम लयावी बडका उल्लेख आई राज्य कीर्णान्वर्य प्रथम ( १८९-२५ ई ) था । यह बरेव बडा बराकटी एवं बंडिच था । बागार्बिक बाग बंडके निम्नतर कुब बडते थे । बंड बाग केबोमें बडे 'बागकी बगके निम्न राजाणि' बडा है । बंडके लम्बकि राज्य लम्बमें एक बग्य निम्नतर एवं बैकरीक बननावा की सिद्धा और बंडकडिका केन्द्र और विर्णय कुबकोरा बगार्ब-लम्ब था । यह बंडिच बागार्ब बननावा बग बडावा बडा है । बंडके बनलम्ब बंडका कुब बिरिब्यन्त सिद्धिच थावा हुआ । बंडके बनने निम्नका कलुत्तरव किया । यह लोडि-बागकी निम्नतर बंड और बंडकडका बैकरीक कुबोतर बंडने लोका बंडी थी । इनके लोड कुब थे—इलिर्बन्त, बागर्बन्त और कुम्बन्त । हरि बर्न्तुको सिद्धाका उत्तराधिकार किया । बंडने बोकारका धरिबाग करके लम्बाव ( लम्बावपुर या लम्बावन्तर ) की राज्यधानी बनाना । बनने आई बागर्बन्तुको बंडने बैकड निवासका बागड बनावा बंडने बंडर्बन्तु बैकड बाग्या प्रारम्भ हुई । कुबने आई कुम्बन्तुको बैकार निवासका बागड बनावा और बंडने बंडकी बैकार बाग्या प्रारम्भ हुई । कुम्बने कुब बग्यके निम्न बैकडपर की अधिकार कर किया किन्तु लम्ब सिद्धर्बन्तु और उत्तर

त्र स्कन्दवर्मन् पेरुरके गंगोके सहायक रहे और उन्हें उन्होंने फिरसे अपने  
 जयमें स्थापित कर दिया । मूलवंशमें हरिधर्मन् अपनी धनुर्विद्याके लिए  
 सिद्ध था । युद्धमें उसने हाथियाका प्रयोग किया और राज्यको समृद्ध  
 लाया । उसका पुत्र विष्णुगोप नारायणका विशेष भक्त था और जैन-  
 धर्मकी ओरसे उदासीन था । उसका पुत्र पृथ्वीगग गीघ्र हो मर गया ।  
 पृथ्वीगगका पुत्र तदगग माघय या माघय तृतीय एक महान् शासक था ।  
 उसका विवाह कदम्बनरेश वासुत्स्यवर्मन्की पुत्रीके साथ हुआ था । वह  
 शम्बरक और जिनेन्द्रका समान रूपसे भक्त था । मन्नूर तालुकेके नोनमगल  
 स्थानमें एक प्राचीन जैन धर्मदिके भग्नावशेषोंमें प्राप्त इस नरेशके १३वें  
 वर्षमें लिखाये गये ताक्षशासनसे प्रकट है कि उसने परञ्जोल्ल ग्रामके  
 अहत् मन्दिरके लिए दिगम्बराचार्य वारदेवको कुमारपुर ग्राम तथा बहुत-  
 सी अन्न भूमि प्रदान की थी । लुईस गइसने इस दान-पत्रकी तिथि ३७०  
 ई० निश्चित की है । सम्भवतया इन्हीं वीरदयने बिहारके राजगिरिपर  
 स्थित सोनमण्डार गुफामें भी जिनमूर्तियाँ प्रसिद्ध करायी थीं जैसा कि  
 उक्त गुफामें प्रायः उसी कालके एक शिलालेखसे सूचित होता है । इस  
 राजाका एक दानपत्र ३५७ ई० का तथा दूसरा ३७९ ई० का प्राप्त  
 हुआ है । अतः इसका शासनकाल लगभग ३५५ ई० से लेकर ४०० ई०  
 तक चला ।

३री ४थी घातान्दीमें गंगनरेशोंके शासनकालमें कई प्रसिद्ध जैनाचार्य  
 हुए । उच्चारणाचार्यने कसायपाहुडके यतिवृषभ-वृत्त चूर्णसूत्रोंपर वृत्ति  
 लिखी, धामकुण्ड और वण्यदेवने भी आगमोंपर टीकाएँ लिखीं । कृचि-  
 भट्टारक और नन्दिमुनिने पुराणग्रन्थ लिखे । ये नन्दि भट्टारक पेरुर  
 त्रिपयके गंगराज आयधर्मन् आदिके गुह्य थे । इसी कालमें जैन विद्वान्  
 शिवधर्मने कम्मपयहि और सत्तक नामक कर्मग्रन्थोंकी रचना की ।  
 यशोभद्र, प्रभाचन्द्र और श्रीदत्त ( जल्पनिर्णयका कर्त्ता ) आदि विद्वान्  
 भी इसी कालमें हुए । ४०० ई० के लगभग ही कविपरमेष्ठि या कवि



परमेश्वर हमारे जीनाथानी हुए वो कलक थावाके जवन कवि जने कहे  
हैं और जिन्होंने संस्कृत-कन्नड लिखित भाषाओं वाक्य-वैय्याह माकम जवन  
जात वेन महापुराण ( विषहिराज-महापुराण-परिच ) लिखा ।

तदर्थक शासनका पुनः अधिनिति कींयुनि महाप्रशासिकाय को वस्तु-  
तत्त्वदर्शन करम्भका शीघ्रिण बीर प्राप्तिवर्मेन् एवं कृष्णवर्मेन् प्रवचना नि-  
वाकितेन वा अपने सिवाकी मृत्युके समय मन्त्राधी बोधने जीव-  
हिप्पु बाध का । विनाकेधोने उके कान्तीनी कहा क्या है और कहा  
शासन बहुत शीघ्रकाशीन दूधित किया क्या है । जनक ४ -  
४८९ ई. पर्यन्त उके राज्य किया । वह नरैक कहा मन्त्राधी और  
वर्मात्मा था । उके पुत्र कैलाशार्थ निजकपीति ने शिवकी देवदेवीकी  
इन नरैककी विद्या-दीक्षा हुई थी । कन् ४९ ई. में काने काने  
मोनर्मक शासनशासन-शासन इन निजकपीतिको पुनर्वापके वस्तुतत्त्व  
आदि पुनर्वाप-शासन स्वाप्ति करम्भके अर्थ मन्त्राधी और विद्याके नि-  
दान दिया था । ४४९ ई. में काने इकादेही शासनशासन-शासन एक कान  
आर्द्धशासनको दान दिया था । वह अविदेकने कानवर्मात्मा निजकपीति  
कानावा भी कानेक है । वह वस्तुतत्त्व-नरैक कैलाशार्थ वर्मात्माके  
कीक-विद्या ( ४९८ ई. ) में अधिनिति निजकपीति है । मन्त्राधी होता  
है । कन् ४९९ ई. में अधिनिति प्रवर्माती शासनकानकी उक्ति  
कान वस्तुतत्त्वके निदान दान दिया था निजकी दूधना वर्मात्मा शासनकाने पानी  
पाती है । पुनर्विद्य निजकपीति देवकपी पुनर्वाप ( ४९४-५९४ ई. )  
को काने काने पुनः पुनर्वाप अधिनितिवा निजक निजक किया था ।  
अविदेकने अधिनितिको निजकपीति प्रवृत्त पुनर्वाप दानी और  
मन्त्राधीने आदि-मन्त्राधी एवं वर्मात्माकीला मन्त्राधी अन्तक दिया  
है । एक स्वाप्ति किया है कि वह नरैकके कानने कान्ति निजकके वस्तु  
मन्त्राधी देवके कानन निजक है । निजके निजक पुनर्वापके कान वस्तुतत्त्व  
दान कान निजकपीतिको भी काने दान निजक है । शासन और कान

प्रतिस्पर्धकि बीच भी उसने अपने राज्यकी रक्षित और समृद्धिको अधुण रखा । उसका शासन प्रबन्ध भी उत्तम था ।

उसका पुत्र दुर्विनीत कोगुणी (४८२-५२२ ई०) गगवदाया एक महान् मरेया था । वह बड़ा प्रतापी, महत्वाकांक्षी, बोर, विद्वान्, साहित्यपरमिक और गुणियोका आदर करनेवाला था । स्वगुरु आचार्य पूज्यपादया पदानुसरण करनेमें वह अपने-आपको धन्य मानता था । महाकवि भारवि भी कुछ समय तक उसके दरबारमें रहे और उसने उनके किंगतार्जुनीयके १५वें सर्गपर एक टीका भी लिखी । गुरु-द्वारा रचित पाणिनि व्याकरणकी द्वादशवार टीकाका कतह अनुवाद और प्राकृत वृहत्कयाका सम्कृत अनुवाद भी उसने किये बताये जाते हैं । कोगलि नामक स्थानमें उसने चैन्नपाश्वरनाथ बसदिका निर्माण कराया था । उसने कई ताम्रपत्र मिले हैं, गुम्भरेडिपुर ताम्रशासन उसके राज्यके ४०वें और सम्भवतया अन्तिम वर्षका है । कन्नड भाषाके प्रारम्भिक लेखको और बवियोंमें भी दुर्विनीतकी गणना है । चालुक्यबोर विजयादित्यके साथ दुर्विनीतने अपनी बन्धा विवाह दो थी किन्तु षण्डदण्ड त्रिलोचन पल्लवके माथ युद्धमें विजयादित्यकी मृत्यु हो जानेपर दुर्विनीतने उक्त पल्लव-नरेशको बुरी तरह पराजित करके बदला लिया और अपने दोहित्र जयसिंह रणराग विष्णुवर्धनको उसके पिताके सिंहासनपर स्थापित किया । भुजग पुन्नाटकी पीत्री और स्कन्द पुन्नाटकी पुत्रीके साथ अपना विवाह करके दुर्विनीतने पुन्नाट प्रदेशको दहेजमें प्राप्त किया था । अपने पराक्रम और विजयोंके द्वारा उसने पूर्व पश्चिम दोनों दिशाओंमें राज्यका विस्तार करके साम्राज्यकी स्थापना की । वस्तुतः अपने समयमें दुर्विनीत गंग दक्षिणापथका सर्वाधिक दक्षिणशाली सम्राट् था । पुन्नाट देश जो उसके राज्यका अंग हो गया था, जैनधर्मका प्राचीन कालसे ही एक प्रमुख केन्द्र था । जैनाचार्योंका एक प्रसिद्ध सघ, जिसमें हरिवंशकार जिनसेन हुए हैं, पुन्नाट सघके नामसे ही प्रसिद्ध था । दुर्विनीतके प्रधान धर्म एव विद्यागुरु पूज्यपाद देवनन्दि जैनधर्मके सर्वमहान्

वाद्यार्थिनी है। बीमोक्त्यकारण, अत्यावकाशक प्रयासना, कठोरविधि, कमाचिगन्ध आदि अनेक महारसपूर्ण शब्दोंकी कल्पने लक्ष्य की। विष्णु, श्याम आकारक काया, बालुर्वर, कन्दपात्र आदि विचित्र विषयोंमें है विष्णुत्व है। संवगादवाची उत्तमशक्ति प्रभाव जैन वर्णनके से प्रकट है और यह संस्मान इन वाक्यों दक्षिण भारतमें आगरा अनुप केन्द्र एवं बंगाल विद्यापीठ और लालकृष्णक अभिज्ञान का। अन्य शब्दोंके अर्थों की यह प्रमा कठिण्यु था।

दुर्बिरीठके दो पुत्र थे—वीरवीर और मुन्दर। दुर्बिरीठके पत्नरु दुष्ट स्वयं एक दीनवीरने राजर किया अतीव हीला है। अनुपम मुन्दर ( मोन्दर ) प्रमा हुआ। इनमें ५५ ई के समय देवरीके निम्न मुन्दर कवि नामक विनायक्यय निर्वाच कथ्य था। मुन्दरका पुत्र वीरिहय था। इनके समयमें बालक्योंके वृद्धिपट अष्टाके सम्मुख करण वेदका ग्रन्थ बन्त हुआ और वेदपत्र की दुष्ट हयय हो गया। इन प्रमाकी की वीरवीर की एक शोक प्रामुखाती निम्न पुत्रय वृद्धिपट बल्लभ हुआ था और पुनरी निम्नपुत्रकी कन्या विषवार नवययकी अष्ट थी। वीरिहयके पत्नरु वीरवीर केन्द्र और वीरार प्रामुखीय बन्त हुआ और वीरवीरर किन्ने उत्तमशक्त प्रामुखा कविप्रार हुआ। इसी समय वीरवीरने दुष्ट पत्र वीरिहय पत्रे वने और वृद्धिपट कविप्रार वीरवीरकी स्वात्म्य की प्रमा वही करण। वीरवीरने पत्नरु कविप्रार वीर पुत्र वृद्धिपट का प्रामुखय वीरिहय प्रमा हुआ। इनने पत्रय वीरवीर की वृद्धिपट करके कविने एक महामुख्य द्वार कीला किन्ने अतीव प्रामुखा वीरिहय प्रामुखा था। वन् ५५४ ई के पहले देवरी प्रामुखा कविप्रार विषवार हीन्य वृद्धिपट हीला है और यह की अष्ट हीला है कि कविप्रार अष्टय वीरवीरकी प्रामुखा वीर वीरिहय वीरवीर की विषवार था। यह प्रामुखा वीरवीरकी कविप्रार वृद्धिपट वृद्धिपट की वृद्धिपट अतीव हीला है। वृद्धिपटका अष्टयविकापी कविप्रार वीर वीरिहय प्रामुखा

नवकाम शिष्टप्रिय पृथ्वीकोंगुणि हुआ । इसे वृद्धावस्थामें राज्य मिला था । यह राजा परम जैन था, सन् ६७० ई० में इसने जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया था और जैनगुरु चन्द्रसेनाचार्यको दान दिया था । ये आचार्य सम्भवतया पचस्तूपान्वय शास्त्राके थे और स्वामी धीरसेनके दादागुरु थे । सन् ७०० ई० का शिवमारका हीरेमथ ताम्रशासन मिला है जिससे गगोंके पूर्व इतिहासपर प्रकाश पड़ता है और जिसमें गग दुर्विनोत्त और उसके गुरु देवनन्दी पूज्यपादका भी उल्लेख है । ७१३ ई० का उसका एक अय्य अभिलेख मिलता है । उसने उपरान्त उसके पुत्र राचमल्ल एरे गगका अल्पकालीन शासन रहा प्रतीत होता है, तदनन्तर शिवमारका पौत्र श्रोपुरुष ( ७२६-७७६ ई० ) राजा हुआ ।

दुर्विनोत्तके उत्तराधिकारी और श्रोपुरुषके उपरोक्त पूर्वज गगनरेश चालुक्य नरेशोंके प्रायः अधीन रहे, किन्तु उनके राज्यविस्तार एवं राजकीय शक्ति और समृद्धिको विशेष क्षति नहीं पहुँची । चालुक्य नरेश गंग राजाओंका बहुत आदर करते थे । यह युग शान्तिपूर्ण रहा, अनेक विद्वान् जैनाचार्योंने ६ठीं-७वीं शताब्दीमें जैनधर्मकी प्रभावना की और महत्त्वपूर्ण साहित्यका सृजन किया । गगराज्यमें निवास करनेवाले अथवा गगनरेशोंसे सम्मान और प्रश्रय पानेवाले इस कालके जैनगुरुओंमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं— पूज्यपादके शिष्य गुणनन्दि शास्त्रब्रह्म जिन्होंने जैनद्र प्रक्रियाकी रचना की ( ल० ५५० ई० ) नवशब्दवाक्यके कर्त्ता वक्रग्रीव ( ल० ५७५ ई० ), त्रिलक्षण कदघनके कर्त्ता पात्रकेशरि ( ५७५-६२५ ई० ), नवस्तोत्रके रचयिता और मदुरामें द्रमिलसषके सस्यापक वज्रनन्दि ( ५८२-६०४ ई० ), समतिसूत्रके टीकाकार सुमति देव ( ल० ६०० ई० ), कवि दण्डो द्वारा प्रदत्त तथा चूडामणि शास्त्रके कर्त्ता श्रोवधदेव ( ६००-६२५ ई० ), ज्योतिषाचार्य गर्गाचार्य और श्रृषिपुत्र ( ६५० ई० ), पचस्तूपान्वयके गुरु वृषभनन्दि ( ६५० ई० ) तथा चन्द्रसेनाचार्य ( ६७० ई० ) आदि । परमात्मप्रकाश आदिके कर्त्ता अपभ्रंशके महाकवि जोइन्दु, सुशोचनाकृपाके

कहाँ बहाईय बनानेवालेके रचबिठा अटार्थबहुतन्दि कयानुसार तमिरेय,  
कम्बुडोपग्रन्थिके कहीं कयान्दि विजयोरवा टीकाके कहीं कयान्दिभूरे,  
बादाम्बाके कहीं कुआरन्दि कर्षाकानुसार त्रिवेण प्रथम पुष्प-  
टर्की नामनामके कहीं कवि कयान्दि तथा बीरसेनके कुछ कर्म-  
हत्यादि चिहान् बीरकी कालके हुए । इनके-के कुछ कतर वा अन्य कालके  
की रहे अतीव छोटी हैं ।

[illegible]

आदि कई स्थानोंके भग्न जैनमन्दिरोंका जीर्णोद्धार हुआ। गंगोंके अधीनस्थ  
 वाणनरेश भी जैनधर्मके भारी भक्त थे। ७५० ई० के लगभग घल्लमल्ल-  
 में जैनमुनि अज्जनन्दिने आचार्य भानुनन्दिके शिष्य और वाणनरेशके गुरु  
 देवसेनकी मूर्ति स्थापित की थी। इस समयके लगभग थवणवेलगोल प्रशास्ति-  
 के आचार्य प्रभाचन्द्र एक महान् धर्मप्रभाषक एवं राजमान्य गुरु थे।  
 विमलचन्द्र, वृद्धकुमार सेन, परयादिमल्ल, सोरणाचार्य, पुष्पसेन, अनन्त-  
 कीर्ति प्रथम, वृद्ध अनन्तघोर्य, महान् नैयायिक स्वामी विद्यानन्दि आदि  
 इस कालमें बर्णाटक देशके प्रसिद्ध जैनगुरु थे। नरमिहपुरा ताम्रघासनके  
 द्वारा इस राजाने तोल्ल विषयके जिनमन्दिरको दान दिया था। ७७६ ई०  
 में उसने श्रीपुरके पार्श्व जिनालयके लिए दान दिया, सम्भवतया इसी अव-  
 सरपर उक्त जिनालयमें राजाके समक्ष ही स्वामी विद्यानन्दिने अपने प्रसिद्ध  
 श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्रकी रचना की थी। इसी वर्ष इस नरेशने निर्गुण्ड प्रदेश-  
 में स्थित पोण्णलिस्थानके लोकतिलक-जिनालयको कई ग्राम प्रदान किये।  
 इस जिनमन्दिरका निर्माण कदच्चि नामक राजमहिलाने कराया था जो  
 पल्लवाधिराजकी पुत्री थी और निर्गुण्डराज परमगुलकी रानी थी। इस  
 निर्गुण्डराजक पिताके गुरु विमलचन्द्राचार्य थे जिन्होंने इसी गगनरेश श्रीपुरुष  
 'शत्रुभयंकर' की राजसभाके द्वारपर परवादियोंके प्रति शास्त्रार्थका खुला  
 चैलेंज लिखकर लगाया था। इन्हींके किसी शिष्य-प्रशिष्यको उपरोक्त दान  
 दिया गया प्रतीत होता है। महान् तार्किक स्वामी विद्यानन्दिका साहित्यिक  
 जीवन और आचार्य-काल भी इसी वर्षसे प्रारम्भ होता है। श्रीपुरकी ही  
 उन्होंने अपना निवास स्थान बनाया था क्योंकि इसी समयके लगभग उस  
 स्थानके निकट शृगेरीमें शंकराचार्य और उनके शिष्य सुरेश्वर अपने वेदान्त  
 धर्म एवं नवीन धार्मिक आन्दोलनकी प्रधान पीठ स्थापित कर रहे थे।  
 विद्यानन्दिके प्रभाव, प्रतिभा, सहिष्णुता एवं सौजन्यके कारण ही शंकरा-  
 चार्य और उनके सगठनका सारा कोप वीरोंको सहन करना पड़ा, जैनोंके  
 साथ उनका सौहार्द बना रहा।



पुत्र और मारसिंहका छोटा भाई पुष्पापति प्रथम अरराजित भी राज्यके कुछ भागपर अधिकृत हुआ और गंगवश फिर एक बार दो शाखाओंमें विभक्त हुआ ।

इसमें सन्देह नहीं कि शिवमार भारी योद्धा और पराक्रमी था, जैन-धर्मका भी वह महान् संरक्षक एवं भक्त था । वह स्वामी विद्यानन्दिका आश्रयदाता था, उसका पुत्र मारसिंह और भतीजा सत्यवाक्य भी उनके भक्त थे । इन गगनरेशोंके नाम-संकेत विद्यानन्दिके विभिन्न ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं । शिवमारने श्रवणवेलगोलके छोटे पर्वतपर एक सुन्दर जिनालय भी बनवाया था जिसे शिवमारन बसुदि कहते हैं । ७९७ ई० में युवराज मारसिंह लोकत्रिनेत्रके सेनानायक श्रीविजयने श्रीविजय नामक सुन्दर जिनालय राजधानी मायपुरमें बनवाया था, उसके लिए युवराजने विपुल दान दिया था और कुन्दकुन्दान्वयके गुप्त प्रभाचन्द्रका सम्मान किया था । ८०० ई० में युवराज मारसिंह और उसके चाचा दुग्गमारने अमनेय नामक सुन्दर मन्दिर बनवाया था । गजम दान पत्रके द्वारा इसी समयके लगभग इस शासकने जैनगुरुओंको और भी बहुत-सा दान दिया था तथा नन्दि पर्वतपर आचार्य कुन्दकुन्दका स्मारक भी बनवाया था । शिवमारके प्रातीय शासक विट्टिरस और विजयशक्तिरसने भी उसी कालमें जैनमन्दिरोंका निर्माण कराया और उनके लिए दान दिया था । ८०१ ई० में बसवट्टिके ईश्वर जिनालयका निर्माण हुआ । ८०२ ई० में राष्ट्रकूट सम्राट् गोविन्द तृतीयने गंगराज्यमें मायपुरकी उपरोक्त श्रीविजय बसुदिके लिए मन्ने दान-पत्र-द्वारा दान दिया और उदारगणके जैनगुरुओंका सम्मान किया । ८०७ ई० में राष्ट्रकूट गोविन्दके भाई कम्भने चामराजनगर दानपत्र-द्वारा अपने पुत्र शक्रगणकी प्रार्थनापर तालवननगरकी श्रीविजयबसुदिके लिए कुन्दकुन्दान्वयके कुमारनन्दिके प्रशिष्य और एमाचार्यके शिष्य वर्धमान गुरुको दान दिया था । गोविन्दके कदव दानपत्र ( ८१२ ई० ) से विदित होता है कि उस समय गंगराज्यमें राष्ट्रकुर्गोंका प्रतिनिधि चाकिराज





पर्वतपर गुफाएँ निर्माण करायों और उनमें जिन-प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करायों ।  
 उसके गुरु बालचन्द्रके शिष्य आर्यनन्दि थे । सम्भवतया यही पञ्चालमालिनो-  
 कल्पके रचयिता थे । राचमल्लके बाद ऐरंग नौतिमार्ग प्रथम राजा हुआ ।  
 उसकी बहन जयव्ने पल्लव नोलम्बराजसे विवाही थी । अपने पुत्र युवराज  
 वृद्धग (भुतुग) का विवाह राष्ट्रकूट अमोघवर्षको कन्या चन्द्रवेलम्बाके साथ  
 करके उसने राष्ट्रकूटोंकी भी मित्र बना लिया, यह मैत्री स्थायी हुई । वृड-  
 सूर शिलालेखमें इस नरेशको 'परमपूज्य अर्हद्भट्टारकके चरणकमलोंका भ्रमर  
 लिखा है, उसी शिलालेखमें युवराज भुतुगेन्द्र वृत्तरस गुणतुरंगको भी परम  
 जैन लिखा है । उसी शिलालेखके निकट राजन् नौतिमार्गकी जैन सल्लेखना-  
 का प्रस्तरांकन भी मिलता है जिसमें उनका विश्वासपात्र सेवक अग्रय्य  
 उन्हें सम्हाले हुए बैठा है और सम्मुख शोकमग्न युवराज खड़ा है । इस  
 राजाने अनेक युद्धोंमें वीरताके साथ विजय भी प्राप्त की बतायी जाती है,  
 सम्भवतया वे युद्ध इसने राष्ट्रकूटोंकी सहायताके लिए किये थे । नौतिमार्गन  
 ८५३-८७० ई० तक राज्य किया । युवराज भुतुगेन्द्र सम्भवतया पिताके  
 समाधिमरणकी देखकर विरक्त हो गया था, अतः नौतिमार्गके पश्चात्  
 उसका दूसरा पुत्र राचमल्ल सत्यवाक्य द्वितीय ( ८७०-९०७ ई० ) राजा  
 हुआ । यह भी सम्भव है कि भुतुगेन्द्र राचमल्लका छोटा भाई हो और क्यों  
 कि वह स्वयं निस्सन्तान था अतः उसके समयमें ही वह युवराज कहलाया  
 हो । राचमल्लके शासन-कालमें भुतुग कोगुनाह और पुन्नाहका शासक रहा  
 प्रतीत होता है । इस राचमल्ल सत्यवाक्य द्वितीयने सन् ८८७ ई० में वेलूर  
 साम्र शासन-द्वारा पेन्नैकडगके स्वनिर्मित सत्यवाक्य जिनालयके लिए शिष्य-  
 नन्दि सिद्धाभूत भट्टारकके शिष्य सर्वनन्दिको बारह ग्राम प्रदान किये थे ।  
 इन दोनों ही भाइयोंने वेंगि के चालुक्यों, पाण्ड्यों, पल्लवों आदिके साथ  
 अनेक युद्ध किये और प्रशसनीय विजय प्राप्त की । राचमल्लके जीवनमें ही  
 भुतुगकी मृत्यु हो गयी अतः भुतुगका पुत्र एयरण्य ऐरेयग नौतिमार्ग द्वितीय  
 सत्यवाक्य महेन्द्रान्तक युवराज हुआ और साऊकी मृत्युके बाद ( ९०७ ई० में )

राजा हुआ : बनवा विवाह चामुनक-पञ्चमुषारी कर्मचारि के साथ हुआ  
 था । कर्मचारि विवाह कुछ करके बनाने लगेक कुछ बोले थे । इन राजकी  
 नृसंहारि और औरसमुके विन-मन्त्रिणीयें राज दिने थे । इनका पुन एवं  
 कर्मचारिणी हरिकेशीन नरविह कर्मचारि था इनके बोले कर्म ही  
 राज दिना, १२ ई के समय इनकी मुमु ही गयी । इनके पुन हरिक-  
 मन्त्री विनकर्मचारिनी थे । इन राजकी की पुन थे, उनका कर्मचारि  
 कृतीन कोर मुमुनर्यन वनेर । राजमन्त्र कर्मचारि कृतीन ११ के १३८ ई  
 तक राजा था । इनके बौतिके चामुनकीयो कुछने गणित किया । एते  
 समय पञ्चमूर राज्य कृतीनने राज्य कर्मचारि कृतीन कोर कोर कोर कर्मचारि-  
 नर की कर्मचारि किया । कुछने राजमन्त्र कर्मचारि था । कृतीन राज्य राजमन्त्र-  
 की कर्मचारि कर्मचारि चामुन कृतीन एवं वनेर राजा हुआ । ११८-११९  
 ई तक इनके राज किया । मुमुनरा विवाह पञ्चमूर कर्मचारि कृतीनकी  
 पुनी और राज्य कृतीनकी गयी बहुत रियाके साथ हुआ था कर्मचारि कृतीन  
 विवाह कर्मचारि नावक चामुनकीके हुआ था । पञ्चमूर पञ्चमुषारीके  
 साथ इनके कृतीनने, कर्मचारि, विमुनरा वने गयी विनर कृतीन राज्य किने  
 थे । यह राजा की बहुत गणित था कर्मचारि कुछने इनके विनर राज्य की  
 थी । यह एक कर्मचारि राज्य था और कर्मचारि राज्य कर्मचारि था ।  
 कर्मचारि और कृतीनकी इनके कर्मचारि राज दिने थे । कर्मचारि राज्य की  
 यह कर्मचारि और कर्मचारिके कर्मचारि कर्मचारि की को राज था ।  
 एक कर्मचारि राज्य के साथ इनके कर्मचारि कर्मचारि किने ई । यह ११८  
 के इनके पुनी राजमन्त्र था कर्मचारि ई कि कर्मचारि एक कर्मचारि  
 विनकर्मचारि देवी यह कर्मचारि कर्मचारि किन् को कर्मचारि कर्मचारि की यह  
 राज कर्मचारि विना था । कर्मचारि कर्मचारि कर्मचारि कर्मचारि कर्मचारि  
 कर्मचारि कर्मचारि कर्मचारि की कर्मचारि ई । इनके एक कर्मचारि कर्मचारि  
 कर्मचारि थे । यह ११९ ई के कर्मचारि राजमन्त्र कर्मचारि कर्मचारि  
 विनर और इनके कर्मचारि की कर्मचारि कर्मचारि कर्मचारि कर्मचारि ई ।

इस लेखसे यह भी प्रतीत होता है कि सम्भव है अपने भाई राघवमल्ल तृतीय-की मृत्युमें उसका भी हाथ रहा हो। उसके कुछलूर साम्रपत्रसे प्रकट है कि उसके परिवारके अन्ध व्यक्ति भी जैनधर्मके भक्त थे। राजाकी बड़ी बहन पद्मवने, जो बड़ी विदुषी थी एवं पौदियर दोरपय्यकी रानी थी और गुणचन्द्र भट्टारक तथा आर्यिका नाणव्हेरुन्तिकी शिष्या थी, तीस वर्ष पर्यन्त जैन आर्यिकाक रूपमें तपस्या की थी और अन्तमें समाधिमरण-द्वारा उसकी मृत्यु हुई थी। राजाके हृदयपर इस घटनाका प्रभाव पड़ा। बुतुगके स्वयंके तथा उससे सम्बन्धित अन्य भी कई अभिलेख मिलते हैं। बुतुग द्वितीयके पश्चात् राष्ट्रकूट-राजकुमारी रेवासे उत्पन्न उसका पुत्र मरुलदेव ( ९५३ - ९६१ ) राजा हुआ। उसके अभिलेखोंमें उसे 'जिनपदभ्रमर' लिखा है। इसका विवाह अपनी ममेरी बहन, राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीयकी बन्धा वीजव्हे-के साथ हुआ था और उसके उपलक्ष्यमें मरुलका एक राजच्छत्र भी प्राप्त हुआ था। उसकी बहन सोमिदेवीका विवाह राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीयके पुत्रसे हुआ था जिससे इन्द्र चतुर्थका जन्म हुआ। राष्ट्रकूटोंके साथ कई पीढ़ियोंसे चले आते इन विवाह-सम्बन्धोंकी शृंखलाने गगनवंशकी शक्ति काफ़ी बढ़ा दी थी और इसीसे गगनरेश वेंगिके चालुक्व्योंको बार-बार हरा सके, पल्लवोंको दबाये रख सके और चोलाकी बढ़ता हुई शक्तिका निवारण कर सके।

मरुलके पश्चात् उसका सौतेला भाई मारसिंह पल्लवमल्ल नोलम्ब-कुलान्तक गुप्तिगग ( ९६१-९७४ ई० ) राजा हुआ। उसका राज्य-विस्तार बहुत बड़ा था। यह इस वंशका अन्तिम महान् नरेश था। राष्ट्रकूट गगोंको अपना अधीनस्थ सामन्त समझते थे किन्तु वास्तवमें इस कालमें गगनरेश ही राष्ट्रकूट-साम्राज्यके संरक्षक हो रहे थे। मारसिंहके गगकन्दर्प, गगविद्याधर आदि और भी अनेक विरुद्ध थे। उसने मालवापर आक्रमण करके सियक परमारको पराजित किया। अथवणवेलगोलके कूनी ग्रहादेवस्तम्भपर उत्कीर्ण इस नरेशकी प्रशस्तिसे पता चलता है कि उसने



त्यक्त शक्तियाँ थी, राष्ट्रकूट साम्राज्यने दम तोड़ दिया था और  
 कोई योग्य व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ रहा था। गग पचलदेवने,  
 मारसिंहके अधीन सेन्धी विषयका शासक था और सम्भवतया  
 वशसे ही सम्बन्धित था, गगराज्यके बहुभागपर अधिकार कर लिया,  
 कि उसके ९७५ ई० के मूलगुह शिलालेखसे विदित होता है,  
 २३ वर्षके भीतर ही चालुक्य तैलके सेनापति नागदेवने उसे  
 जित करके युद्धमें मार डाला। पचलदेव मारसिंहका न्याय्य  
 अधिकारी नहीं था वरन् राज्य-अपहर्ता था। मारसिंहका वास्तविक  
 अधिकारी उसका छोटा भाई राचमल्ल सत्यवाक्य चतुर्थ था, पचल  
 ने उसे आच्छादित कर लिया था किन्तु पंचलकी मृत्यु (९७६-  
 ७७ ई०) के बाद राचमल्ल ही वस्तुतः गगराज्यका अधिपति हुआ। सन्  
 ७७ ई० के उसके दो अभिलेख नजनगढ़ और मन्दयसे प्राप्त हुए हैं।  
 १२२ ई० के सिद्धेश्वर शिलालेखमें इस राचमल्लको मारसिंहका पुत्र  
 कहा है। राचमल्लके राजत्वका अन्त ९८४ ई० में हुआ। गग इतिहासके  
 व्याकालमें अव्यवस्था एवं विपत्तियोंसे भरा यह युग राचमल्लके अद्वितीय  
 चामुण्डरायके कारण अमर हो गया। चामुण्डराय सम्भवतया गगवश-  
 ही उत्पन्न हुआ था। वह एक महान् राजनोत्तिष्ठ, सुदक्ष सेनानी, धीर  
 योद्धा, परम स्वामिभक्त, कन्नड, संस्कृत और प्राकृतका महान् विद्वान्, कवि  
 और लेखक, विद्वानों और कलाकारोंका प्रश्रयदाता, अद्भुत निर्माणकर्त्ता  
 और जैनधर्मके सर्वमहान् प्रभावकोंमें-से था किन्तु गगोको ऐसे व्यक्ति  
 का लाभ उस समय हुआ जब कि उनका सूर्य अस्ताचलगामी था। ऐसी  
 विरुद्ध विषम परिस्थितियोंमें भी इस द्रुत वेगसे पतनशील वंशको रक्षा एवं  
 अभिभावकता चामुण्डरायने सफलतापूर्वक की और साथ ही दक्षिण भारतमें  
 जैनधर्मकी स्थिति भी सुदृढ़ कर दी। चामुण्डराय राचमल्ल चतुर्थका ही  
 नहीं बल्कि उसके पूर्वज मारसिंह और उत्तराधिकारी रावकस गंगका भी  
 राजमन्त्री और सेनापति रहा प्रतीत होता है। अनेक युद्धोंमें सराहनीय

[illegible][illegible]

भी एक छोटे-से उपराज्यके रूपमें चलता रहा प्रतीत होता है । रावकसगके बाद नीतिमार्ग तृतीय राचमल्ल राजा रहा प्रतीत होता है । १०४० ई० के एक शिलालेखसे ज्ञात होता है कि इस राजाके गुरु मूलसघ द्रविडान्ध्र्य के वज्रपाणि पण्डित थे । १०२२ ई० के एक शिलालेखसे उस समय एक गंग परमानदिका राजा होना पाया जाता है जो सम्भवतया नीतिमार्गका पुत्रवर्ती उक्त रावकसग ही होगा । एक गंग राजकुमारी चालुक्य सम्राट् सोमेश्वर प्रथमकी रानी और सुप्रसिद्ध विक्रमाकदेव (१०७६-११२६ ई०) की जननी थी । उक्त राचमल्ल नीतिमार्गके बाद रावकसग द्वितीय राजा हुआ । उसकी पुत्री ही चालुक्य सोमेश्वरसे विवाही प्रतीत होती है । इस रावकसगके गुरु जैनाचार्य अनन्तवीर्य सिद्धान्तदेव थे । उसका उत्तराधिकारी एव छोटा भाई कलिगंग भी परम जैन था । सम्भवतया इसी गंगनरेशने सन् १११६ ई० में मैसूर प्रदेशसे चोलोको निकाल बाहर करके अपने स्वामी होयसल नरेश विष्णुवर्धनका साम्राज्य स्थापित किया था । इस कलिगंगके ही शासनकालमें उसका प्रधान सामन्त भुजबल गंगपरमादि धम्मदेव था जो जैनाचार्य मुनिचन्द्रका शिष्य था जैसा कि सन् १११५ ई० के उसके एक अभिलेखसे ज्ञात होता है । भुजबलका पुत्र नम्रियगंग आचार्य प्रभाचन्द्र सिद्धान्तका शिष्य था । नम्रियगंगके सन् ११२२ ई० के शिमोगा-तालुकके सिद्धेश्वर बसदि शिलालेखसे गंगोके पूर्व इतिहासके सम्बन्धमें अनेक रोचक तथ्य प्राप्त होते हैं । शिलालेखसे यह भी ज्ञात होता है कि इस राजाने मण्डलि विषयके एहेदोर तालुकाके अन्तर्गत मण्डलि पर्वतपर स्थित उस प्राचीन जिनालयका जीर्णोद्धार कराया था जिसे गंगवर्धन-नस्थापक दहिग और माधवने बनवाया था, जिसके लिए सभी गंग-नरेश दान देते रहे और संरक्षण करते रहे थे, जिसे कालान्तरमें काष्ठसे निर्मित किया गया था और जिसे भुजबलके पिताने पुनः निर्मित कराया था तथा जिसे भुजबलने पट्टदह बसदि ( राज्यमोलि मन्दिर ) नाम देकर उसे राज्यके समस्त मन्दिरोंमें प्रधान पद दिया था, और यह कि उसी बसदिको अब भुजबलके





पाल तक एक महत्त्वपूर्ण एवं बलवान् राज्यशक्ति तो यह बना ही रहा । उसकी पैरवि, कैरवि, पासिण्ड, पूर्वी या कलिंगी आदि अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ हुई, गगवंशमें उत्पन्न अनेक व्यक्ति स्वयं गगराज्यके तथा अन्य दक्षिणी राज्यवंशोंके सामन्त सरदार भी रहे और इस वंशका कुलधर्म एवं बहुधा राजधर्म भी जैनधर्म ही रहा जिसके सरक्षण और प्रभावनाके लिए गगवंशके पुरुषों, स्त्रियों सामन्त सरदारा, राज्यकर्मचारियों और जनताने निरन्तर यथाशक्य उद्योग किया । फलस्वरूप जैनाचार्योंने कन्नड, तमिल, संस्कृत, प्राकृत—विभिन्न भाषाओंमें विविधविषयक विपुल साहित्यका सृजन किया, लोक शिक्षामें प्रधान योग दिया और राजाओंका पय-प्रदर्शन किया, जनताके नैतिक स्तरको उन्नत बनाये रखा और अनेक लोकोपकारी कार्य किये । साथ ही देशमें रूप एवं शिल्प-म्यापत्यकी अनेक सुन्दर कला-कृतियाँ निर्मित हुईं । लक्ष्मेश्वरकी रायरचमल्ल बमदि, गगपरमादि चैत्यालय, गगकन्दर्प चैत्यालय, तलकाड और भायपुरकी धोविजय वसदि, सत्यवाक्य जिनालय, श्रवणबेलगोलकी शिवमारन वसदि आदि अनेक भव्य मन्दिर इस तथ्यके प्रमाण हैं ।



# अध्याय ८

## दक्षिण भारत [२]

पूर्व जलपथने इस देश को जो है कि १०ीं पट्टी ई के सम्य तक दक्षिण भारतमें व केवल आन्ध्र सागरवासीके अनुभवका सम्य हो चुका था वही उनके नाम प्रसारको वही आन्ध्रमूलक सरदार राज्योंकी उता भी बढाता हो चुकी थी । उचित देखके सामर्थ्य और और जोर उन्म की दृष्टि को एक अन्तर्जातीय चरक दिखाकर पुन उदभव हो चुके थे । काय ही १०ीं पट्टी ई के उत्तरपट्टीमें उन्म काय और वर नावक तीव कभी उन्म र्वासीकी स्थापना हो चुकी थी और जाने १०ीं के ऊपर १०ीं पट्टी ई पर्यन्त दक्षिण भारतका उद्भवन इन्हीं १ पट्टीके र्वासी और उद्भवनिकारा सिद्ध हो था । इनमें की १०-१०ीं कर्नाटकीमें कर्नाटके राज्य एवं कर्नाटक इतिहासकी १०ीं और कर्नाट् र्वासी १०-१०ीं कर्नाटकीमें कर्नाटकीके कर्नाटकीका केहा ही पर्यवेक्षण हुआ और १०-१०ीं कर्नाटकीमें उद्भवनके र्वासीके दक्षिण भारतके उद्भवनिक इतिहासकी एवं उद्भवनिक कर्नाट् थे । किन्तु १०ीं कर्नाटकीके उत्तरपट्टीमें दक्षिण भारतके उत्तरपट्टी उद्भवनिक एक कर्नाट पट्टीकाकिता कर्नाट हुआ किन्तु १०ीं कर्नाटकीमें एक कर्नाट और की १०ीं कर्नाटकीमें दक्षिणके ही १०ीं कर्नाट भारतकी उद्भवनिक इतिहासकी एवं कर्नाट राज्यात्मकी परिचय हो गयी । वह पट्टी कर्नाट पट्टीकाकिता की और कर्नाटकी ( कर्नाटकी ) के उद्भवनिक पट्टीका कर्नाट कर्नाट कर्नाट हुआ था ।

कर्नाटकीके पट्टीकी कर्नाटकी—इस कर्नाट कर्नाटकी अनुभूतिकी

अनुमार चालुक्योका मूलपुरुष अयोध्यासे दक्षिण भारतमें आया था ।  
 चालुक्य लोग अपने-आपको सोमवंशी क्षत्रिय, मानव्यगोत्रों और हारीसके  
 पुत्र बतलाते थे । वराहको इन्होंने अपना राज्य-चिह्न बनाया था । ५वीं  
 शताब्दी ई० के उत्तरार्धमें विजयादित्य चालुक्य नामका एक साहसी सैनिक  
 रहा प्रतीत होता है जो तन्त्रवारके द्वारा अपने भाग्यका निर्माण करना  
 चाहता था । कटप्पा जिलेके मुहिवेमि नामक ग्रामको जो उस समय  
 पल्लवोंके राज्यके अन्तर्गत था, उसने अपना केन्द्र बनाया और अपनी दक्षित  
 बढ़ानी प्रारम्भ की । किन्तु पल्लवोंके हाथों युद्धमें उसकी मृत्यु हो गयी ।  
 उसका पुत्र जयसिंह पिताकी मृत्युके पश्चात् उत्पन्न हुआ था । विष्णुभट्ट  
 नामक एक ब्राह्मणने उसका पालन पोषण किया इसलिए जयसिंहने विष्णु-  
 वर्धन उपाधि ग्रहण की । वह भारी योद्धा था और सम्भवतया राजसिंह  
 और रणपराक्रमाक भी कहलाता था । युवावस्थामें महाकवि भारवि  
 यह मित्र और साथी रहा था । दुर्विनीत गगने जो उस समय युवराज ही  
 था, जयसिंहकी वीरता और पराक्रमसे प्रसन्न होकर उसके साथ अपनी  
 पुत्रीका विवाह कर दिया था । जयसिंह पल्लवोंसे अपने पैतृक राज्यको  
 जीतनेका प्रयत्न करता रहा, साथ ही महाराष्ट्रके राष्ट्रिकोंका कुछ प्रदेश  
 छीनकर उसने वातापी ( बदायी ) को अपनी राजधानी बनाया । ऐहोल  
 और अलवतकनगर ( अस्तम ) उसके छोटे-से राज्यके प्रमुख नगर थे ।  
 पल्लव चण्डदण्ड त्रिलोचनके साथ युद्धमें जयसिंहकी मृत्यु हो गयी । इसपर  
 दुर्विनीत गगने अपने दौहित्र रणराग एरेंयप्प सत्याश्रयको, जो जयसिंहका  
 एकमात्र पुत्र था और अभी नवयुवक ही था, प्रथम दिया और उसकी  
 ओरसे पल्लव-नरेशपर भीषण आक्रमण किया । चण्डदण्ड युद्धमें मारा गया  
 और दुर्विनीतने अपने नातो रणरागको उसके पिताके सिंहासनपर बिठाया  
 और उसके राज्य एवं स्थितिको सुदृढ़ किया । इस एरेंयप्प सत्याश्रय  
 रणरागके भुजगसेन्द्रकवशी सामन्त कुन्दशक्तिके पुत्र दुर्गशक्तिने पुलिगेरे  
 ( लक्ष्मेश्वर ) के शखतीर्थ जिनालयके लिए भूमिदान दिये थे । रणरागका

पुन एवं इतराधिकारी कुम्भेष्टी इत्यत्र बहूनां नगराणां नीरं योजयित्वा  
 वा नीरं यद्यपि इत्थं वास्तुशिल्पस्य च कुम्भपुरस्य विस्तारस्य वा उत्तमं न  
 भवता इत्यत्र वास्तविक नीरं नीरं राज्य-सत्कारकं पुनः कुम्भेष्टी  
 ( मुद्राग ) इत्यत्र ही वा । इत्येवं राज्यं नीरवर्धनं कर्त्तव्यं इत्यत्र न,  
 नीर-मुद्राणां विस्तार विस्तार हीता वा नीरं इत्येवं नीरं राज्यं वास्तु  
 नीरं कर्त्तव्यं नीरं नै । इत्यत्र न ५६४ ( अन् ५४९ ई ) नै इत्यत्र  
 इत्येवं राज्यं ११६ नर्ये इत्येवं नीरं नीरवर्धनं वास्तु शिल्पस्य  
 वास्तुस्य वास्तुशिल्पस्य ( वास्तु ) नै एक विस्तारस्य विस्तार इत्यत्र  
 वा नीरं इत्येवं नीरं वास्तु-वास्तु विस्तार वा नीरं विस्तारस्य विस्तार इत्यत्र  
 वा इत्येवं वास्तुशिल्पस्य वास्तु नीरवर्धनं विस्तारस्य, विस्तारस्य वास्तु  
 नीरं विस्तारस्य वास्तुशिल्पस्य नै । राज्यस्य वास्तुशिल्पस्य नीरं इत्येवं इत्येवं  
 एक विस्तारस्य वास्तु इत्येवं इत्येवं । वास्तु नीरं वास्तुशिल्पस्य  
 वास्तुशिल्पस्य वास्तु नीरं पुनः कुम्भेष्टी इत्येवं इत्येवं । इत्यत्र नीरं नीरं  
 वास्तु वास्तु ।

कुम्भेष्टी इत्यत्र वास्तु ५६२ ई ५६५ ई के तत्त्वस्य इत्यत्र  
 इत्येवं इत्येवं । इत्यत्र वास्तु वास्तुशिल्पस्य वास्तु नीरं इत्येवं वास्तु वास्तु ।  
 इत्यत्र वास्तुशिल्पस्य वास्तु वास्तु नीरं इत्येवं वास्तु नीरं, इत्येवं इत्येवं  
 इत्येवं इत्येवं नीरं इत्येवं वास्तुशिल्पस्य वास्तु नीरं इत्येवं नीरं इत्येवं  
 इत्येवं इत्येवं वास्तुशिल्पस्य वास्तु नीरं इत्येवं नीरं इत्येवं । इत्येवं  
 इत्येवं इत्येवं नीरं पुनः नीरवर्धनं इत्यत्र वास्तु इत्येवं नीरं इत्येवं  
 ५६५ ई ५६७ ई इत्येवं इत्येवं वास्तु विस्तारः । इत्येवं इत्येवं नीरं इत्येवं  
 इत्येवं नीरं वास्तुशिल्पस्य वास्तुशिल्पस्य विस्तार विस्तार । विस्तारस्य वास्तुशिल्पस्य  
 वास्तुशिल्पस्य नीरं, वास्तुशिल्पस्य नीरं इत्येवं नीरं नीरं नीरं नीरं नीरं नीरं  
 इत्येवं इत्येवं नीरं : इत्येवं वास्तु नीरं नीरवर्धनं वास्तुशिल्पस्य वास्तु । अन् ५६७  
 ई के तत्त्वस्य इत्येवं नीरवर्धनं इत्येवं नीरवर्धनं वास्तुशिल्पस्य वास्तु  
 पुनः नीरं वास्तुशिल्पस्य नीरवर्धनं पुनः नीरं वास्तुशिल्पस्य वास्तु । इत्येवं

जयकालमें सन् ५८५ ई० में जनाचार्य रविकीर्तिने ऐहोळके निकट  
 गुतीमें एक जिन-मन्दिर बनवाया था और एक विशाल जैन विद्यापीठकी  
 थापना की थी। ऐहोळ ( ऐविल्ल या आर्यपुर ) में स्वयं एक बड़ा जैन  
 मन्दिर था जिसमें सहस्र फगयुवन पार्श्व प्रतिमा स्थापित थी। ५९७ ई०  
 कीर्तिवर्मन् प्रथमकी मृत्यु हुई। उस समय उनके पुत्रकेशिन्, विष्णुवर्धन  
 और जयसिंह आदि पुत्र बालक थे अतएव उनके चाचा मगलीशने राज्य-  
 सहासन हस्तगत कर लिया और ५९७-६०८ ई० तक राज्य किया।  
 मगलीशने कलचुरी-नरेश शकरगणके पुत्र राजकुमार बुद्धको पराजित किया  
 और रेवती द्वीपपर अधिकार किया। सम्भवतया इसी राजाके शासनकालमें  
 महाराष्ट्र देशके अलस्तकनगर ( अल्तेम ) में चालुक्योंके लघुद्वय नामक  
 एक उपराजाकी पत्नीने सुप्रसिद्ध जैनाचार्य भट्टाकलंक देवकी जन्म दिया  
 था। बदामीकी प्रसिद्ध गुफाओका निर्माण भी इसीके समयमें प्रारम्भ हुआ।

मगलीशके उपरान्त उसका भतीजा और कीर्तिवर्मन् प्रथमका ज्येष्ठ  
 पुत्र पुलकेशिन् द्वितीय सत्याश्रय ( ६०८-६४२ ई० ) चालुक्य राज्यका  
 स्वामी हुआ। अपने चाचा मगलीश-द्वारा राज्यापहरण कर लिये जानेके  
 कारण उसे व्यस्क होनेके बाद कुछ वर्ष राज्यसे निर्वासित रहकर बिताने  
 पड़े थे। सन् ६०८ ई० के लगभग कुछ शक्ति सग्रह करके उसने मगलीश-  
 को गद्दीसे उतार दिया और उसे तथा उसके पुत्रको राज्यसे निकाल दिया।  
 सम्भवतया इसी समयके लगभग मगलीशकी मृत्यु भी हो गयी। राज्यको  
 गृह-शत्रुओंसे निष्कण्टक करके और अपनी स्थितिको सुदृढ़ एवं सुरक्षित  
 करके उसने अपना विधिवत् राज्याभिषेक कराया। तदुपरान्त उसने ब्राह्म  
 शत्रुओं तथा राज्य-विस्तारकी ओर ध्यान दिया। पूर्वमें महेन्द्रवर्मन् पल्लव  
 कर्णाटककी ओर बढ़ रहा था और उत्तरकी ओरसे हर्ष शिलादित्य  
 आक्रमण कर रहा था। पुलकेशिने गगों और अलूषोंको अपना मित्र  
 और सहकारी बनाया, उसने वनवासीके अण्णायिक और गोविन्द नामक  
 कदम्ब नरेशोंको पराजित करके कदम्बोंकी स्वतन्त्र सत्ताका अन्त किया,



सीमा रेखा नदीको स्पर्श करती थी और दक्षिणमें समुद्रसे समुद्र पर्यन्त उसका विस्तार था, समुद्र पारके अनेक द्वीपपर भी उसका अधिकार और प्रभाव था। सन् ६३४ ई० में राजधानीमें प्रवेश करनेसे उसका सम्पूर्ण पुलकेशी द्वितीयका मर्थप्रथम कार्य अपने शुभ जैनाचार्य रविकीर्तिजी उनके द्वारा निमित्त ऐहालके जिनमन्दिर एवं अधिष्ठानके लिए उदार दान देकर सम्मानित करनेका था। इस समय मध्ययुगका यहाँ गिनी तबोन जिनालयका भी निर्माण हुआ था। रविकीर्ति भागे विद्वान् एव महाकवि थे। उनकी काव्य-प्रतिभाकी तुलना महाकवि कालिदास और भारवि के साथ की जाती थी। इस दानके उपलक्ष्यमें स्वयं रविकीर्तिने ही ऐहालके जिनमन्दिरमें उत्कीर्ण सम्राट् पुलकेशीजी यह विस्तृत, भाषा एवं कलापूर्ण संस्कृत प्रशस्ति रची थी जो उक्त सम्राट् के परित्र और कार्यकलापोंके लिए हमारा सधप्रधान ऐतिहासिक आधार है। इस कालके सधमहान् जैनाचार्य अकलंकदेव हैं जो स्वयं रविकीर्ति अपर नाम रविभद्रके ही शिष्य रहे प्रतीत होते हैं। सम्राट् पुलकेशीके आदरपूर्ण प्रथममें ही उनको प्रतिभा, विद्वत्ता, वाग्मिता इस समय चमकनी प्रारम्भ हुई थी। इसी कालमें वदामी और अजन्ताके उन प्रसिद्ध गुहामन्दिरोंका निर्माण हुआ जिनमें सम्राट् के प्रथममें जैन एव बौद्ध कलाकारोंने उन विद्वद्विश्रुत भित्तिचित्रोंका निर्माण किया जो अपने कलापूर्ण सौन्दर्यके लिए अद्वितीय हैं। इन चित्रोंमें कतिपय ऐतिहासिक दृश्य भी हैं। इसी वर्ष अदूर (घारयाड) में नगरसेठ-द्वारा निमित्त जैनमन्दिरको सम्राट्ने दान दिया। सन् ६३८-४० ई० के लगभग चीनी यात्री हुएन सागने पुलकेशीके राज्य और राजधानीकी यात्रा की थी। उनके विवरणोंसे भी पुलकेशीकी शक्ति और महत्ता, राज्यका धैर्य, समृद्धि और शान्ति, राजा प्रजा दोनोंमें ही विद्याओं और कलाओंकी साधना आदिका पर्याप्त पता चल जाता है। इस चीनी यात्रीके ही विवरणोंसे इस बातमें भी सन्देह नहीं रहता कि पालुक्ष्य-साम्राज्यमें बौद्धोंको अपेक्षा जैनमन्दिरों, उनके निर्ग्रन्थ साधुओं और गृहस्थ अनुयायियोंकी संख्या कहीं अधिक थी।



[illegible]

गुल्मेयीके दुःख बाधुनक निरुपयित्त ब्रह्म कर्तृत्वक अवयव उपर-  
 दुन ( १४९-१८ ई ) को अपने निराली मुकुट-आपनिब ब्रह्म उपरक  
 ब्रह्मपनिपार ज्ञान हुका, कलपी निराली बनी बांधाकोक नी । एकरानीकी  
 ओ बहुत कुछ जाति हो चुकी नी । कलपी लक्षण ओर दुःखत यत्न के  
 नी नी किन्तु अपने बाधुनी, मुडी, निराल कल-कार, कलानी मुकु  
 कादि बंधनी बाधुनक बाधुनीकी कल-कार कर रिक्त बा, कलक बंध  
 बंधनी नी । लक्ष निरुपयित्तके बाई बाधुनीक दुःख बाधित्तके उपरके  
 निराल कलानीकी ब्रह्म बीडे नी ओर लक्षकी कलानी नीरित कर छे नी ।  
 किन्तु निरुपयित्त बंध नीर, बुद्धिमान् एवं बाधुनी बा । अब ओरके लक्षकी  
 कलनी ओर निरुपयित्त पाकर नी कलने बाधुनक नी ओर । ओर ही कलने  
 कलनी निरालीकी बांधा नी ओर बाधुनी कल कल बाधुनीक बाधुनीकी ब्रह्म  
 करके निरुपयित्त मुकुटित्त रिक्त । बाधुनी, नीर, नीर, बाधुनी, कलनी  
 बाधुनी बाधुनीक नी कलने नीर ही मुकुट करनी नी । कलने बाधुनीके  
 बंध बाधुनी नीरके नीर ही कलने कलने बाधुनी निराले बाधुनी ओर

प्रतिष्ठा पुनर्द्धार कर लिया और सभी ( सन् ६५३ ई० के लगभग ) अपना विधिवत राज्याभिषेक कराया । तदनन्तर भी उसे प्रायः पूरे जीवन-भर युद्धोंमें रत रहना पड़ा और नायद इसीलिए वह रणरसिक भी कहलाता था । पल्लव ही उसके सबसे बड़े शत्रु थे । उनके विरुद्ध उसने पाण्डुपनरेश पराक्रुश मारवर्मन्को मित्र बनाया, गंग चालुक्योंके पुराने मैत्री सम्बन्धको दृढ़ किया । कलशस्थरुण उसने पल्लवोंको एकपक्षे घात एक युद्धमें पराजित किया । गंगोंकी सहायतासे ही उसने पल्लव नरसिंहवर्मन् प्रथमको चालुक्य राज्यमें मिथाल बाहर किया और उसके पुत्र महेन्द्र-वर्मन् द्वितीयको भी बुरी तरह पराजित किया । महेन्द्रवर्मन् द्वितीयके उत्तराधिकारी परमेश्वरवर्मन्को बिलिन्दके युद्धमें चालुक्य सम्राट्की ओरसे भूयिष्क्रम गंगने बुरी तरह पराजित किया और उसमें उग्रोदय नामक प्रसिद्ध रत्नहार छीना । दक्षिणकी ओरसे पाण्डुपाने पल्लवोंपर घावा किया और स्वयं विक्रमादित्य पल्लव-नरेशका पीछा करते हुए कापेरी तटपर उरैयूर तक जा पहुँचा और वहाँ अपनी छावनी डाल दी । विक्रमादित्यने अपने आज्ञाकारी भाई जयसिंहको लाट देशका शासक बनाया । विक्रमादित्यको युद्धोंसे इतना विराम नहीं मिला जो वह विशेष चा-त्रिसे कार्य कर सकता । किन्तु वह भी अपने पूर्वजोंकी भाँति जैनधर्मका पोषक था और पूज्यपाद अकलंकदेवको अपना गुरु मानता था ।

महाराष्ट्र देश और चालुक्य राज्यके अन्तर्गत अलप्तकनगरमें सम्भवतया चालुक्य वंशकी ही एक शाखाके नृपति लघुहर्षके पुत्र अकलंकदेवने ८ वर्षकी आयुमें ही ग्राह्यधर्म ग्रह ल लिया था, तदनन्तर रयिकीर्तिके ऐहोल विद्यापीठमें और कन्हरीके बौद्ध विहारमें क्रमशः जैन एवं बौद्ध दर्शनोंका गम्भीर अध्ययन किया । लगभग बीस वर्षकी आयुमें उन्होंने मुनि दीक्षा ले ली । सम्राट् पुलकेशी और विक्रमादित्य प्रथमके आदरपूर्ण उद्धार प्रथममें उन्होंने अपने विशाल अध्ययन, अद्वितीय प्रतिभा एवं उद्भट विद्वत्ता-द्वारा भारतीय विद्वत्समाजमें शीघ्र स्थान प्राप्त कर लिया था । जैन

सिद्धान्त ब्रह्मन व्यावकाशक व्याकरण विविध भारतीय दर्शनों का विविध  
 विषयों में से निष्कास्य है । तीन व्यासों को ही इसमें जारी प्रतिपादक से हि  
 यह 'अनन्तक व्यास' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । उत्तरार्धपञ्चाशतिक ब्राह्मणी,  
 व्यासविनिरचय विद्विषविनिरचय कवीकृतय प्रमाधर्माहू वादि बनेन  
 प्रसिद्ध म्हाण् व-नीके से प्रयेता से । बीड्याचार्य बर्मन्वेति वात्पञ्चीनवार  
 कर्तृहरि और मीमांसा दर्शनके पुराणकर्ता कुमारिकाल्प उनके उक्तपञ्चीन  
 एवं प्रतिपत्नी से । अक्षरक वैपक्षिके वाचार्य से और द्रुपदा 'वैव' वाच्य  
 भी कनका कनेका किया जाता था । निरुपमविरच काहकतुं कर्तुं अन्त  
 नुव माग्या वा और बलने कर्तुं पुष्पनाथ कथावि ब्रह्मन की थी । अन्त  
 निरुपमविरचके ब्रह्मन वात्पञ्चीन-नरीयोके वादिबैद्यवि अन्तर्कनका कनेका  
 पुराणार ब्रह्मसे हुआ है । अन्तर्कनका १४६ ४२ ई में ब्रह्म पुष्पेकी  
 रत्नकोके साथ पुष्पेकी कथना हुआ था और पुष्पेकी अन्तर्कन की अन्त-  
 र्कनेका कन कर्तुं निरुपमवि वात्पञ्चीन करके और वैपक्षिक  
 ब्रह्मन करके केकेकेके निरुपमका ब्रह्मन कर रहे थे । अन् १४६ ई से वे  
 कर्तुंकेकेके होकर अन्तर्कन कन वैपक्षी पुष्पेकी रत्नर्कनपुष्पके  
 कनकने छूरे हुए थे । अन्तर्कन निरुपमवादिपति द्विपञ्चीनके बीड  
 पुष्पेकी पुष्पेकी स्वीकार करके १ मास वर्षक बीड सिद्धान्तके साथ वही  
 अन्तर्कनके वात्पञ्चीन किया और अन्तर्कन अन्तर्कन किया । अन्तर्कन द्वि-  
 पञ्चीन की हो गया और अन्तर्कन इसी अन्तर्कन पुष्पेकीके अन्तर्कनका अन्तर्कन  
 भी कनेका कन कर्तुं वा अन्तर्कन अन्तर्कन कर दिया । द्विपञ्चीन  
 पुष्पेकी साथ गया अन्तर्कन निरुपमवादिपति अन्तर्कन और अन्तर्कन ब्रह्मणी  
 वैपक्षी वात्पञ्चीनके वात्पञ्चीन अन्तर्कनके अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन और वात्पञ्चीन  
 अन्तर्कन । अन्तर्कन वात्पञ्चीनके अन्तर्कनके अन्तर्कनके 'अन्तर्कन' अन्तर्कन  
 अन्तर्कन है । अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन  
 वात्पञ्चीन अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन  
 अन्तर्कन अन्तर्कन वात्पञ्चीनके अन्तर्कनके अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन  
 अन्तर्कन अन्तर्कन वात्पञ्चीनके अन्तर्कनके अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन अन्तर्कन

महान् जैनाचार्य थे ।

६७८ या ६८० ई० में विक्रमादित्यकी मृत्युके पश्चात् उसका पुत्र विनयादित्य ( ६८०-६९६ ई० ) गद्दीपर बैठा । उसके राजगुरु देवगणके उपरोक्त आचार्य पूज्यपाद अकलकके गृही शिष्य निग्वद्य पण्डित थे जो भारी विद्वान् थे । रविकीर्तिके उपरान्त ऐहोलके विद्यापीठकी अध्यक्षता अकलकको प्राप्त हुई थी, उनके पश्चात् उनका शिष्य-समुदाय उन्नत ज्ञान-केन्द्रका सफलतापूर्वक संचालन करता रहा । विनयादित्यने पल्लव नरेश नरसिंहवर्मन् द्वितीयको युद्धमें पराजित किया, कावेर, पारसीक और सिहल-नरेशोंसे राज्य-कर वसूल किया और उत्तरापथके प्रभु, सम्भवतया कन्नौजके यशोवर्मन्को भी पराजित किया । अन्तिम विजयका प्रधान श्रेय युवराज विजयादित्यको है । गंग और अलूप राजे चालुक्य-सम्राट्के सहायक थे और उसे अपना अधिपति स्वीकार करते थे । तत्पश्चात् विजयादित्य द्वितीय ( ६९७-७३३ ई० ) राजा हुआ । पल्लवोंके विरुद्ध किये गये युद्धोंमें उसने अपने पितामह और पिताकी ओरसे सहायनीय भाग लिया था । एक युद्धमें पाण्ड्य-नरेशने उसे बन्दी भी बना लिया था किन्तु वह निकल भागा और उसने अपने शत्रुओंका दमन किया । पूज्यपाद अकलककी परम्पराके उदयदेव पण्डित इस सम्राट्के राजगुरु थे । सन् ७०० ई० में इस नरेशने उन्नत गुरुकी शिष्यजिनेन्द्र मन्दिरके लिए दान दिया था । इसी समयके लगभग राजधानी वातापीमें भी एक दानसूचक कल्लडी जन शिलालेख अंकित कराया गया । इस नरेशके हलगिरि शिलालेखमें जैनतीर्थक्षेत्र कोपणका उल्लेख है । अकलकके सधर्मा पुष्पसेन और उनके शिष्य विमलचन्द्र तथा कुमारान्दि और अकलकके प्रथम टीकाकार बृहत् अनन्तधोर्य भी इसी कालमें और सम्भवतया इसी नरेशके प्रश्रयमें हुए थे । ७२९ ई० में उत्कीर्ण लक्ष्मेश्वरके शिलालेखसे विदित होता है कि विजयादित्यने पूज्यपाद अकलककी शिष्य-परम्पराके गुरुओंको पुलिगेरेके जिनमन्दिरके लिए ग्रामदान दिया था । उसीके शासनकालमें

७२६ ई. में विक्टोरिया नामक एक राजमाता अफिमिने दुम्बिरेके एक  
 मित्रात्मकी पुष्पक राज दिया। राजादकी कौटी बहुत कुंगुम गढ़ायेटीने बी  
 एक सुन्दर मित्रात्म मिर्वाज कराया था। इसी समयमें बुधराज मित्रात्मिका  
 ने कभीक बालक वरपेन्द्रराजम् द्वितीयपर आक्रमण किया और बहुत  
 कर समूह किया। मिताकी मृत्युपर कही चातुल्य-राज्यका प्रतिपत्ति हुआ।  
 मित्रात्मिका द्वितीय ( ७३३-७४४ ई. ) जी अपने पूर्वजोंकी भाँति वीर-  
 धर्मका पक्ष था और कपड़ोंकी वस्त्रधारने नियम बहिष्कृत करने राजपुत्र  
 थे। वे जाटी जाती और शिखर थे। राजाने अंतर्द्विवाह्य भाँति वसिष्ठ-  
 का जीर्णोद्धार कराया और वीरपुत्रोंकी राज दिया। उनके समयमें  
 हिन्दुके धर्मके अंतर्गत बाह्यपर आक्रमण करनेका प्रयत्न किया किन्तु  
 चातुल्य कुल्लेहीने बी एक कंधी काट काटकर उत्पन्नका राजा था  
 और मित्रात्मिका राज्य का कर्तुं कलकत्तापूर्ण पीछे गया था।  
 इसपर राजादने उसे 'अभिजात' कहा। उसने राज्य बहिष्कृत-  
 वर्मकी जी पदाधिक किया एवं कभीके अर्थ किया और गहने  
 बहिष्कृतकी राज दिया। इस अक्रमणमें उनके पुत्र कीर्तिवर्मने बी राज्य-  
 नीति मान किया था। कीर्तिवर्मन् द्वितीय ( ७४४-७५७ ई. ) इस कंधा  
 प्रतिपत्ति करे था। उनके समयमें चातुल्यके राजपुत्र राजाकी भाँति  
 बहुत बढ़ गये थे। ७५७ ई. में राजपुत्र वसिष्ठकी कीर्तिवर्मकी  
 पदाधिक करके चातुल्य-राज्यको हित-हित कर दिया और ७५७ ई.  
 में राजाकी वसिष्ठ की चातुल्यके राज्यका प्राप्त हुआ। कीर्तिवर्मन् मित-  
 वाल था। उनके भाया भी वरपेन्द्रकी कथादिमें अत्यंत कीर्तिवर्मन् मृगीय,  
 एक समय मित्रात्मिका मृगीय अत्यंत समय और मित्रात्मिका मृगीय  
 राजपुत्रोंके अर्थों भी राजाकी या कपड़ोंकी भाँति बहुत रहे।  
 अंतर्गतके पुत्र एक द्वितीय ( ७५७-७७० ई. ) राजाकी कपड़ोंका अंत  
 करके चातुल्य-राज्य पुनर्द्धार किया और कंधाकी कपड़ोंकी  
 चातुल्य-कंधा स्थापना की। राजाकी चातुल्य वीरवर्मके पित्रा राजाकी

हुए भी शैव वैष्णवादि धर्मोंके प्रति उदार और सहिष्णु थे । बौद्धधर्म कालमें पतनोन्मुख था ।

**वेंगिके पूर्वी चालुक्य**—आध्र देशपर पहले इक्ष्वाकुओं फिर लकायनों और अन्तमें विष्णुकुण्डिनोंका शासन रहा था । सन् ६१५ ई० चालुक्य-सम्राट् पुलकेशी द्वितीयने आध्र देशकी विजय करके अपने पुत्र कुब्जविष्णुवर्धनको उसका प्रान्तीय शासक नियुक्त किया था । वेंगि देशको राजधानी थी । पुलकेशीके अन्तिम वर्षोंमें ही वेंगिके चालुक्य शासकासे प्रायः स्वतन्त्र हो गये थे । नाममात्रके लिए वे उसके उत्तराधिकारियोंके अधीन रहे किन्तु ८वीं शताब्दीके प्रारम्भसे वे सर्वथा स्वतन्त्र हो गये । कुब्जविष्णुवर्धनसे प्रारम्भ होनेवाले इस वंशमें लगभग २७ राजे हुए और उन्होंने लगभग ५०० वर्ष तक आध्र देशपर राज्य किया । कुब्जविष्णुवर्धन स्वयं बहुत योग्य और चतुर शासक था, उसने ही अपने वंशकी विभली प्रकाश सुदृढ़ कर दी थी । चालुक्योंकी इस पूर्वी शाखामें भी लवणकी भांति ही जैनधर्मकी प्रवृत्ति थी । कुब्जविष्णुवर्धनकी रानी अपने पतिसे भी अधिक जैनधर्मकी भक्त थी, इस धर्मकी प्रभावनाके लिए उसने कई ग्राम भेंट करवाये थे । कुब्जविष्णुवर्धनके पश्चात् जयसिंह प्रथम, विष्णुवर्धन द्वितीय, जयसिंह द्वितीय और विष्णुवर्धन तृतीय क्रमशः राजा हुए । अन्तिम नरेयने जैनाचार्य कलिभद्रका सम्मान किया और उन्हें भूदान दिया था । उसके पुत्र विजयादित्य प्रथमकी महारानी अय्यन महारानीने ७६२ ई० में उक्त भूदानपत्रको पुनरावृत्ति की थी । तदुपरात् विष्णुवर्धन चतुर्थ ( ७६४-७९९ ई० ) वेंगि राज्यका स्वामी हुआ । राष्ट्रकूटोंके साथ भी उसके युद्ध हुए किन्तु वह उनके अधीन नहीं हुआ । उसके वैरुद्ध आक्रमणमें सहायता करनेके लिए ही राष्ट्रकूट गोविन्द तृतीयने गंगविजयार द्वितीयको बन्दीगृहसे मुक्त किया था । विष्णुवर्धन चतुर्थ जैनधर्मका बड़ा भक्त था । इस कालमें विजयापट्टम् ( विशाखापत्तनम् ) जिसेकी रामतीर्थ या रामकोंड नामक पहाडियोंपर एक भारी जैन

[illegible]

तुलुवछल विजयसिंह द्वितीय पुनः ( ४९९-८१० ई ), कवि-  
विष्णुवर्धन वंश विजयसिंह तृतीय ( ८४८-८९२ ई ) इत्यादि राजा  
हूँ । छन्दगुरु संश्लेष तृतीय और कवि पुनः राजाद्वयवर्धन बाद-बार  
वैदिकर राज्यक करके पूर्वी बालुचखोकी पराजित सिंध और कई राज्य  
जाने खोज कर सिंध का । तुलुवछल बालुचख भीम वंश ( ८९९-९९९  
ई ) राजा हुआ । यह छन्दगुरु राज्य द्वितीयका अधिपति था । जीवने  
सत्तराधिकारी विजयसिंह बालुचखी तुलु ६ कविने ही ही बनी अठारह  
राज्य वंश ( ९९२-१०९ ई ) राजा हुआ । छन्दगुरु भीम द्वितीय और  
द्विज राज्य द्वितीय राजा हुए । राज्य द्वितीय बहा प्रकटी और बर्षाका  
बर्ष था । यह ९४९-९७ ई तक इनने राज्य सिंध । जने पुनःखोकी  
ही बर्ष यह भी जीववर्धन वीरक और लंकाक का द्विज इन सिंधी  
यह राज्य पूर्वी बालुचख-वैदिकी कुछ जान ही बर्ष हुआ था । कई  
राज्यका-कई द्विज बर्षिक राज्य हुए हैं भी यह अधिपति करते हैं कि

१०वीं शती ई० में जैनधर्म आध्र देशमें अत्यधिक लोकप्रिय एवं उन्नत दशामें था । राजा स्वयं शिव और जिनेन्द्रका समान रूपसे भक्त था । एक लेखके अनुसार इस नरेशने पट्टवर्धक धरानेकी राजमहिला माचकाम्बेके निवेदनपर जैनगुरु सकलचन्द्र सिद्धान्तके प्रशिष्य और अथ्यपोटिके शिष्य अर्हन्दीको 'सर्वलोकाश्रय जिनभवन' के लिए दान दिया था । अम्मका प्रधान सेनापति दुर्गराज था जो कटकाधिपति विजयादित्यका पुत्र था । चालुक्य-लक्ष्मीकी सुरक्षाके लिए उसकी तलवार सदैव म्यानसे बाहर रहती थी । वह पूर्वी चालुक्य राज्यका शक्ति-स्तम्भ कहा जाता था । उसके वंशने महादेश बेंगिके सरक्षणमें सदैव भारी योग दिया था । यह वंश जैनधर्मका अनुयायी था । स्वयं दुर्गराजने धर्मपुरीके निकट 'कटकाभरण' नामका भव्य जिनालय बनवाया था और उसे यापनीय सघके जैनगुरु जिन-नन्दिके प्रशिष्य एवं दिवाकरके शिष्य श्रीमन्दिरदेवको सौंप दिया था । स्वयं महाराज अम्म द्वितीयने मलियापूण्ड दान पत्र-द्वारा इस मन्दिरके लिए ग्राम भेंट किये थे । अम्मके पश्चात् दानार्णव, जटाचोडभीम और शक्ति-वर्मन् क्रमशः बेंगिके राजा हुए । तदनन्तर १०२२ ई० के लगभग विमला-दित्यका राज्य हुआ । यह राजा भी जैनधर्मका भारी भक्त था । देशीय-गणके आचार्य त्रिकालयोगी सिद्धान्तदेव उसके गुरु थे । अनेक जैनमन्दिरोंको इस राजाने दान दिये । उपरोक्त रामतीर्थ ( रामगिरि ) भी ११वीं शताब्दीके मध्य तक प्रसिद्ध एवं उन्नत जैन सांस्कृतिक-केन्द्र बना रहा, जैसा कि वहाँके एक शिलालेखसे प्रमाणित होता है । विमलादित्यके भी एक कन्नड़ी शिलालेखमें ज्ञात होता है कि उसके गुरु त्रिकालयोगी सिद्धान्तदेव तथा सम्भवतया स्वयं राजा भी जैन तीर्थके रूपमें रामगिरिकी वन्दना करने गये थे ।

विमलादित्यके उत्तराधिकारी राजराजनरेन्द्रके समयसे आध्रदेशमें जैनधर्मका ह्रास होने लगा । वस्तुतः ११वीं शतीके अन्त तक बेंगिके पूर्वी चालुक्योकी सत्ताका भी अन्त हो गया । इस प्रकार लगभग ५०० वर्ष





कर हमने दक्षिणमध्य करना आरम्भ किया। उसका पुत्र दन्तिदुर्ग  
 ण्डावलीक वैरमेघ ८वें शतीके प्रथम पादके लगभग अपने पिताका  
 उत्तराधिकारी हुआ। यह अत्यन्त चतुर, साहसी और महत्वाकांक्षी था।  
 ४२ ई० के लगभग उसने एलोरा (एलवर या ऐसपुर) पर अधिकार  
 किया और उसे अपनी राजधानी बनाया। एलारा जैन, बौद्ध, वैष्णव और  
 शीख चारों ही धर्मों और सस्कृतियोंका सन्धिस्थल था। उसका धर्मोप-  
 ण्डावलीक इग स्यान्के पापाणखनित गुहा-मन्दिर भारतीय बनाके अद्वितीय  
 उदाहरण है। सन् ८५८ ई० में रचित धर्मोपदेशमालामें एक और अधिक  
 पुरानी घटनाका उल्लेख है कि एक समय समयज्ञ नामक मुनि मृगुकच्छमें  
 चलकर एलवर नगर आये थे और वहाँकी प्रसिद्ध दिगम्बर बसही  
 (बसदि) में ठहरे थे। इससे विदित होता है कि राष्ट्रपूतोंके शासनके  
 आरम्भसे ही एलोरा दिगम्बर जैनधर्मका प्रसिद्ध केन्द्र था। और इसका  
 कारण यही है कि राष्ट्रपूत-नरेश आरम्भसे ही सर्वधर्मसमदर्शी थे और  
 उनका व्यक्तिगत या कुलधर्म बौद्ध वैष्णवादि होते हुए भी वे जैनधर्मके  
 विशेष पक्षपाती और सरक्षक रहे थे। दन्तिदुर्गने एलोराकी राजधानी  
 बनाकर नासिक विषयके मयूरखण्डी दुर्गकी अपनी प्रधान छावनी बनाया।  
 ७५२ ई० में उसने चालुक्य-नरेश कीर्तिवर्मन्को पूर्णतया पराजित करके  
 महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टारक पृथ्वीवल्लभ सण्ढायलीक वैरमेघ  
 आदि उपाधियाँ धारण कीं और अपने-आपको सम्राट् घोषित किया।  
 अपनी मृत्युसे पूर्व, ७५७ ई० तक उसने वातापीकी चालुक्य सत्ताका  
 प्रायः अन्त कर दिया था और अब वही दक्षिणापथका सम्राट् था।  
 इसके अतिरिक्त उसने सिन्धुमूष, श्रीशैलके खोड, पल्लव नन्दिवर्मन्, पाण्ड्य  
 नेदुजलियन, परान्तक, श्रीहय, तथा परमार, वज्जार, कोसल, मालवा,  
 लाट, टक आदि देशोंके राजाओंको पराजित किया था। इसने पल्लवमल्ल-  
 के साथ अपनी पुत्री रेवाका विवाह करके उसे मित्र बना लिया था।  
 चित्रकूटपुरके श्रीवल्लभ राहुष्यदेवकी पराजित करके उसकी उपाधि और



कृष्णराज प्रथम-द्वारा सम्मानित हुए थे। कृष्णके उपरान्त उसका ज्येष्ठ पुत्र गोविन्द द्वितीय प्रभूतवर्ष विक्रमावलोक ( ७७३-७७९ ) राजा हुआ। वह दुराचारी और अयोग्य था। उसने गग शिवमारको उसके भाई दुग्मार एयरणके विरुद्ध राज्य प्राप्त करनेमें महायत्ना दी थी अतः शिवमार उसका मित्र था किन्तु गोविन्दके भाई ध्रुवने, जो अत्यन्त महत्वाकांक्षी था, गोविन्दका उच्छेद करके राज्य हस्तगत करनेका पट्यन्त्र किया। पल्लव, गग, पूर्वी चातुर्व्य और मालवनरेश गोविन्दके सहायक थे किन्तु ध्रुवने अपने पुत्राको सहायतासे युद्धमें इन सबको परास्त किया। सम्भवतया गोविन्दकी भी युद्धमें ही मृत्यु हो गयी। इस प्रकार ७७९ ई० में धारावर्ष, निरुपम, कलिवल्लभ, आवन्लभ, धोर, घवलइय, वोद्गराय ( वल्लहराय ) आदि रणाधियोंसे युक्त ध्रुव राष्ट्रकूट राज्यका स्वामी हुआ। ७९३ ई० तक उसने राज्य किया। यह महापराक्रमी और वीर योद्धा था। राज्य प्राप्त करते ही उसने गोविन्द द्वितीयके सहायकोंका दमन करना प्रारम्भ किया। गग शिवमार द्वितीयको बन्दी बनवाया, नन्दिवमन् पल्लवको पराजित करके उससे हाथियोंके रूपमें कर वसूल किया, वेंगिके विष्णुवर्धन चतुर्थको हराया और उससे कुछ प्रदेश तथा उसका पुत्री शोलमट्टारिकाको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। तदनन्तर विष्णुवल्लभको पार करके वह गंगा यमुनाके मध्यदेश तक जा पहुँचा। वहाँ गुर्जर प्रतिहार वत्सराजको पराजित करके उसे मरुदेशकी ओर भगाया और गौडके धर्मपालको पराजित करके उसे बंगाल वापस पठाया। कन्नौजमें इन्द्रायुधको उभय दोनों शत्रुओंसे कुछ समयके लिए सुरक्षित करके वह वापस दक्षिण लौट आया। ध्रुवने इस प्रकार राष्ट्रकूट शक्तिको सम्पूर्ण भारतवर्षमें सर्वोपरि बना दिया। वह विद्वानोंका भी बड़ा सम्मान करता था। उसकी रानी चातुर्व्य राजकुमारी शोलमट्टारिका जैन धर्मकी भक्त थी और एक प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ कवयित्री थी। उत्तरापथकी विजय-यात्रामें ध्रुव सम्भवतया कन्नौजसे अपभ्रंश भापाके जैन महाकवि स्वयम्भूको अपने साथ सपरिवार लिवा लाया था। स्वयम्भूने अपनी

रामानन्द हरिश्चन्द्र नामधुनार बलिष्ठ स्वयम्भू कल्प ज्ञानि ज्ञान् कर्मीकी  
 रचना इसी शैलीके आश्रयसे रामकृष्ण रामबालीमें भी और मुखरतन वनजल  
 नामसे जर्मन इस नामधुनारका कल्लिख किया । स्वयम्भूकी राखी  
 बाधिकावा भी बड़ी विपुली भी और बजाइये अपनी रामबुधिराकी निष्ठा  
 ऐकेके सिद्ध रहे निवृत्त किया वा । विनोद नुनारकीने ७८१ ई में  
 अपने हरिश्चन्द्ररामकी रचना करी हुए इस शैलीका कल्लिख 'कुल्लुनार  
 नुन बीनलन को बलिपालनका रानी वा' इस कर्मी किया है । रामकृष्ण  
 रामबालीके निकट ही बालनगर (बालनगर) के वननुरात्मकी रानी  
 बीनलका मुखरतन बालनगर वा । यहाँ पहुँचे हुए ही इस स्वयम्भू बीन-  
 नारकीने नुन रामके बालनगरकी कम् ७८ ई में अपने स्वयम्भू कल्प  
 बीनलकाकी नुन किया वा और वननार वननगरका एक विद्वान् वनन  
 बल तथा बालनगरकी कर्मीका रानी की की । विद्वान्पति ज्ञानि कल्प  
 कल्प की कर्मीने एके से । इस विद्वान् विद्वान्ने कल्लिख कल्प एक कल्प  
 कल्लिख कल्प कल्प रचना की की । विद्वान् कल्प कल्लिखी कर्मीने  
 एवं कर्मीने कल्पकर्म बीनल बीनलकाकी कल्लिख रचना की है ।  
 कल्लिख विद्वान्ने एक विद्वान् नुनल-बल्लिख वा—बाला बल्लिख बीन नुन-  
 कल्लिख कल्प कल्लिखी कल्लिखी कल्प कल्लिख वा । कल्लिख विद्वान्-बल्लिख को  
 विद्वान् कल्प । कम् ९ ई के कल्पन रानी बीनलकी कल्प है । एके  
 कल्लिख रानी विद्वान्, वननारका और नुननारकी कल्प कल्लिख  
 रामकृष्ण रामकी प्रविष्ट बीनलकी से ।

मुखका कल्लिखिकाठी कल्लिख कल्प नुन बीनल नुनल वननुरात्म कल्लिख  
 कल्प बीनलका वननारका बीनलकाकल्प विद्वान् वनन (७९१-८१४ ई )  
 वा । मुखके कल्प कल्प और कल्प कल्लिखी बीन और नुन से । कल्लिख  
 कल्लिख बीनल बीनल है वा । मुखके रानी बीनलके नुन ही कल्लिख  
 कल्लिख बीनल एवं बीनलका कल्लिख कल्लिख से किया वा और कल्लिखी  
 रामकल्लिखी तथा कल्लिख कल्लिखी कल्प कल्लिखी की वर मुखका कल्प

सहायक था। अतः राज्य-सिंहासनपर बैठते ही ध्रुवने गोविन्दको युवराज घोषित कर दिया था और फलस्वरूप मयूरखण्डकी प्रधान छावनीका अध्यक्ष तथा उसके अन्तर्गत प्रदेश (नासिकदेश) का प्रान्तीय शासक नियुक्त कर दिया था। वाटनगर विषय उसीके शासनमें था अतः स्वामी वीरसेन-ने धवलाकी प्रशस्तिमें बल्लहराय ( ध्रुव ) नरेन्द्रचूडामणिके साथ राजन जगत्तुगदेवका भी उल्लेख किया। गोविन्द तृतीयने गद्दीपर बैठनेके उपरान्त गग शिवमारको मुक्त कर दिया क्योंकि अपने शत्रुओंके दमनमें वह उस वीर योद्धाकी सहायता चाहता था किन्तु शिवमारने फिर विद्रोह किया और ७९९ ई० में फिरसे बन्दी बनाया गया। गोविन्दने अपने भाई कम्मदेव-को गगवाडिका राज्यपाल नियुक्त किया। वस्तुतः कम्मने ही शिवमार तथा अन्य दस-बारह राजाओंकी सहायतासे गोविन्दके विरुद्ध विद्रोह किया था क्योंकि वह स्वयं ध्रुवका ज्येष्ठ पुत्र था। परन्तु गोविन्दका राज्याभिषेक भी ध्रुवने अपने ही जीवन-कालमें कर दिया था अतः उसका अधिकार न्याय्य था। उसने अकेले ही बारह नरेशोंके उक्त शत्रु-सघका दमन किया, गग राजको बन्दी करके भाई कम्मको सन्तुष्ट करनेके लिए गंगदेशका शासन उसे सौंप दिया। तदनन्तर उसने लाटकी विजय करके अपने आज्ञाकारी छोटे भाई इन्द्रको गुजरातका शासक बनाया और मालवाकी विजय करके उसे भी गुर्जर राज्यमें सम्मिलित कर दिया। परलव दन्तिवर्मन्को पराजित करके उसने उससे कर लिया। विन्ध्याचलके निकटवर्ती प्रदेशके राजा मार-शर्वको अपना करद बनाया। वैगिनरेश उसका आज्ञाकारी बना रहा और उसीने राष्ट्रकूटोंकी नव-स्थापित राजधानी मान्यखेट ( मलखेट ) की बाहरी प्राचीरका निर्माण कराया बताया जाता है। गोविन्दने ही प्राचीन राज-धानीको एलोरा और मयूरखण्डसे हटाकर नवीन राजधानी मान्यखेटका एक विशाल सुन्दर एवं सुदृढ़ महानगरीके रूपमें निर्माण किया। उसने गुर्जरप्रतिहार नागभट्ट द्वितीयको पराजित किया तथा कन्नौजके चक्रायुध और बगालके धर्मपालसे अधीनता स्वीकार करायी। सिंहल नरेशने भी



गये कार्यकी पूर्तिके लिए प्रयत्नशील थे। उनके सधर्मा दशरथ गुरु, धिनयसेन, पद्मसेन और वृद्धकुमारसेन तथा स्वामी विद्यानन्दि, अनन्तकीर्ति, रविमद्र शिष्य अनन्तवीर्य, परवादिमल्ल आदि अनेक जैनगुरु राष्ट्रकूट राज्यको सुशोभित कर रहे थे। महाकवि स्वयम्भू भी मुनि हो गये थे और सम्भवतया धीपाल नामसे प्रसिद्ध हुए। वे आचार्य जिनसेन-द्वारा जयधवलकी पूर्तिमें उनके परम सहायक सिद्ध हुए। उनके पुत्र त्रिभुवन-स्वयम्भू भी महाकवि थे। पिताके मुनि हो जानेपर उनके रामायण आदि महाग्रन्थोंका सम्पादन, संशोधन, परिवर्धन आदि इन्होंने ही किया। सम्राट गोविन्द तृतीयके ये विशेष कृपापात्र थे। उपरोक्त समस्त गुरु सम्राटसे आश्रय एवं सुरक्षण प्राप्त कर रहे थे। जैनधर्म उसके शासनमें खूब फल-फूल रहा था।

सम्राट् अमोघवर्ष नृपतुंग महाराजशण्ड वीरनारायण अतिशयधवल शर्ववर्म वल्लभराय ( ८१४-८७८ ई० ) जिस समय सिंहासनपर बैठा ९-१० वर्षका बालक मात्र था। अतः उसके चाचा इन्द्रका पुत्र कर्कराज, जो गुर्जर देशका शासक था, अमोघवर्षका अभिभावक एवं सुरक्षक बना। अमोघकी बाल्यावस्थाका लाभ उठाकर साम्राज्यमें जगह-जगह विद्रोह हो गये। गंग, पल्लव, पाण्ड्य, पूर्वी चालुक्य आदि अधीन राजे भी विरुद्ध उठ खड़े हुए। ८१७ ई० में बेंगिके विजयादित्य द्वितीय और गगवाडिके राक्षमल्ल प्रथमके प्रोत्साहनसे साम्राज्यके दक्षिणी भागके अनेक सामन्तोंने भयकर विद्रोह कर दिया। किन्तु कर्ककी स्वामिभक्ति, वीरता, बुद्धिमत्ता एवं तत्परताके कारण इन सब विद्रोहोंका दमन हुआ और ८२१ ई० तक स्थिति क्रावूमें आ गयी तथा शान्ति स्थापित हो गयी। नवीन राजधानी मान्यखेटका निर्माण गोविन्द तृतीयने ही प्रारम्भ कर दिया था किन्तु उसे राजधानीको पूरी तरह स्थानान्तर करनेका समय नहीं मिला था। अब अमोघवर्ष वयस्क हो गया था, उसकी स्थिति भी अपेक्षाकृत सुरक्षित हो गयी थी अतएव ८२१ ई० में गुर्जराधिप कर्कराजने नवीन राजधानी





वदन-तर सेनापति चंद्रचके पराक्रमसे समस्त मनुष्योंका सत्परताके साथ  
 दमन होता रहा और माम्राज्यकी समृद्धि एवं शान्तिमें कोई उल्लेखनीय  
 विघ्न नहीं हुआ। यस्तुतः स्वयं अमोघवर्ष एक शान्तिप्रिय एवं धर्मात्मा  
 नरेश था। युद्ध-कार्य उनके स्वामिभवन सेनापति और सामन्त मरदार ही  
 सफलता-पूर्वक संचालित करते रहे। फल-स्वरूप उनकी शक्ति, वैभवं  
 एवं प्रतापम उत्तरोत्तर वृद्धि ही हुई।

८५१ ई० में अरब सौदागर मुलेमान भारत आया था उगने 'दीर्घावु  
 बलहरा ( बल्लभराय )' नामसे अमोघवर्षका वर्णन किया है और लिखा  
 है कि उस समय ससार-भरमें जो सर्वमहान् चार सम्राट् थे वे भारतका  
 बल्लभराय ( अमोघवर्ष ), चीनका सम्राट्, बगदादका खलीफा और  
 रूम ( कूस्तुन्तुनिया ) का सम्राट् थे। अल-इत्रिसि, मसूदी, एब्न-हौकल  
 आदि अन्य अरब सौदागरोंने भी अमोघवर्षके प्रताप और वैभवं तथा  
 माम्राज्यकी शक्ति एवं समृद्धिकी भरपूर प्रशंसा की है। उनका दासन  
 भी सुचारु रूपसे सुव्यवस्थित था। इसके अतिरिक्त यह नरेश विद्वाना  
 और गुणियोका प्रेमी, स्वयं भी भारी विद्वान् और कवि था। संस्कृत,  
 प्राकृत, कन्नड़ी एवं तमिलके विविधविषयक साहित्यके सृजनमें उसने  
 भारी प्रोत्साहन दिया था। उसकी राजमभा विद्वानोंसे भरी रहती थी।

सम्राट् अमोघवर्ष जैनधर्मका अनुयायी और एक आदर्श जैन-श्रावक  
 था, इस विषयमें प्रायः कोई मतभेद नहीं है। खोरसेन म्नामीके पट्ट दिप्य  
 सेनसन्धी आचार्य जिनसेन स्वामी उसके राजगुरु और धर्मगुरु थे। ये विभिन्न  
 भाषाभिन्न एवं विविध विषयपट्ट दिग्गज विद्वान् थे। लडकपनसे ही उनके  
 साथ अमोघवर्षका सम्पर्क रहा था और वह उनकी बड़ी विनय करता  
 था। जिनसेनके सम्मुख सर्वप्रथम कार्य अपने गुरु-द्वारा अधूरे छोड़े गये  
 जयधवल महाप्रयकी पूर्ति करना था। सन् ८३७ ई० में अमोघवर्षके  
 आश्रयमें तथा उसके प्रधानामात्य गुर्जराधिप कर्कगजके सरक्षणमें गुरु-द्वारा  
 स्थापित वाटनगरके ही अधिष्ठानमें उन्होंने ६०००० श्लोक प्रमाण उक्त

[illegible]

कपटीन विद्रोह-शासक अपने कर्मीयों की सभी सुचनाओंसे वास्तविक वर्तमान अवस्थापर एक सही परिचय प्राप्त करनेमें बहुत कुछ साहज हो जाता है। यह बीच-बीचमें बहुतों राज्य-कार्योंमें अवकाश लेकर सुधारनोंमें सम्मिलित होकर अपने मन्त्रियों सहित सर्व-सर्वत्र विचार करता था, तथापि-

द्याका रसिक था और अपने जीवनके अन्तिम वर्षोंमें तो पुत्रको राज्यकार्य  
 संपन्न कर एक आदर्श त्यागी जैन श्रावकके रूपमें उसने जीवन व्यतीत किया  
 । सन् ८२१ ई० में ही अमोघवर्षका राज्याभिषेक करके और उसकी  
 स्थिति सुरक्षित करके उसके प्रधान सामन्त, अभिभावक एवं चचेरे भाई  
 जैराघिष कर्कराजने जो स्वयं जिनभक्त था सूरत दानपत्रके-द्वारा जैन-  
 धर्म परवादिमन्त्रके प्रशिष्यको नवसारी (नवसारिका) के जैन विद्यापीठके  
 लिए भूमि प्रदान की थी । ८५९ ई० के एक शिलालेखमें राज्य-द्वारा एक  
 जैन वमदिके लिए सिंहवरगणके आचार्य नागनन्दिको दान देनेका उल्लेख  
 है । ८६० ई० में स्वयं सम्राट् अमोघवर्षने सेनापति वकेयरसकी प्रार्थनापर  
 मान्यश्रेष्ठ राजधानीमें त्रैकालयोगीके शिष्य देवेन्द्र मुनीश्वरको दान दिया  
 था । अथ भी अनेक दान उसने दिये ।

उसके सामन्त सरदारोंमें लाट ( गुजरात ) के राष्ट्रकूट, नोलम्ब वाही-  
 के नोलम्ब, सौन्दतिके रट्ट, हुम्मचके सान्तार राजे, गगनरेश, पूर्वी चालुक्य  
 आदि अनेक जैनधर्मावलम्बी थे । उसका प्रधान सेनापति एवं राज्यका  
 वास्तविक रक्षक चेल्लकेतन वीर वकेय ( वंकेश या वंकेयरस ) महान् वीर,  
 भीषण योद्धा, कुशल सेनाध्यक्ष और परम स्वामिभक्त था, साथ ही परम  
 जैन भी था । उसके प्रपितामह वीर मुकुल राष्ट्रकूट कृष्ण प्रथमके, पितामह  
 एरकोरि ध्रुवधारा वर्षके और पिता वीर सम्राट् गोविन्द तृतीय जगत्तुगके  
 राजमन्त्रि एवं सेनानायक रहे थे । प्रारम्भसे ही वकेयका वंश जैनधर्मका  
 अनुयायी था । उनकी माता विजयाम्बा भी बड़ी धर्मप्रिया थी । वंकेय  
 सम्राट् अमोघवर्षका अत्यन्त कृपापात्र एवं प्रिय अनुचर था । उसकी  
 सेवाओंसे प्रसन्न होकर सम्राट्ने उसे विशाल वनवासी प्रान्तका एकाधिपति  
 सामन्त बना दिया था और वहाँ वकेयने वकापुर नगरका निर्माण करके  
 उसे अपनी राजधानी बनाया था । अमोघवर्षका कोशूर शिलालेख  
 ( ८६० ई० ) सेनापति वकेयकी प्रार्थनापर ही लिखा गया था और  
 उसीके द्वारा निर्मित जिनमन्दिरके लिए राष्ट्रपति जयात्वंके उत्त्वावधानमें

[illegible][illegible]

शासनमें ले लिया । कृष्णकी पट्टरानी चेदिनरेश कोषकल प्रथमकी कन्या थी और उसने अपनी पुत्रीका विवाह आदित्य चोलके साथ किया था । कृष्णने वेंगिके गुणग विजयादित्यपर आक्रमण किया किन्तु अमफल रहा । उसके बाद चालुक्य भीमके विरुद्ध भी वह उसी प्रकार असफल रहा । अपने पिताकी भाँति कृष्ण भी जैनधर्मका भक्त था । जिनसेनके पट्टशिष्य गुणभद्राचार्य उसके गुरु थे । ८९८ ई० में गुणभद्रके शिष्य लोकसेन-ने उनकी उत्तरपुराणकी प्रशस्तिका संवर्धन करके वीर वकेयके पुत्र और वकापुरके स्वामी लोकादित्यकी राजसभामें उक्त महापुराणका पूजोत्सव एवं वाचन किया था । लोकादित्य अपने पूर्वजोंकी भाँति ही राष्ट्रकूट-सम्राट्का स्वामिभक्त सामन्त एवं उच्चपदाधिकारी था । ८७५ ई० में कृष्णके सामन्त सौन्दतिके पृथ्वीरामने जैनमन्दिरोंके लिए भूमि प्रदान की थी । एक अन्य प्रमुख सामन्त तोलपुरुष विक्रम सान्तरने हुमच्च-में पलियक्का नामक वसति तथा कुन्दकुन्दान्वयके मौनी सिद्धान्त भट्टारकके लिए एक अन्य वसति ( ८९७ ई० में ) निर्माण करायी थी । सम्भवतया इसी राजाने हुमच्चमें गुहड नामक वसति बनवाकर उसमें भगवान् बाहु-बलिकी मूर्ति प्रतिष्ठित की थी । विक्रमवरगुण नामक एक अन्य सामन्तने पेरियकुडीके अरिष्टनेमि भट्टारकके शिष्यको दान दिया था । कृष्णके ही राज्यकालमें कोप्पण तीर्थपर ( ८८१ ई० में ) एक चटु-गदुभट्टारकके शिष्य आचार्य सवनन्दिका समाधिमरण हुआ था । उस कालमें कोप्पण एक उन्नत तीर्थ एवं जैन-केन्द्र था । स्वयं कृष्ण द्वितीयने मूलगुण्ड, वदनिके आदि स्थानोंके जैनमन्दिरोंको दान दिये थे । उसका सन् ९१४ ई० का वेगुमारा साम्राज्यशासन एक जैन दान-पत्र ही है । इसी नरेशके आश्रयमें कन्नड़ी भाषाके जैन महाकवि गुणवर्मने अपने हरिवंशपुराणकी रचना की थी । एक अन्य जैन महाकवि हरिश्चन्द्र कायम्पने भी अपने धर्मशर्माभ्युदय काव्यकी रचना सम्भवतया इसी कालमें की थी । ९०० ई० के विष्कहनसोगे जैन वसतिके शिलालेखसे ज्ञात होता है कि कृष्णकी जषिकयन्त्रे नामक एक



गगनरेश राक्षमल्ल सत्यवाक्य द्वितीयके विरुद्ध उसके भाई भूतुग द्वितीय-का पक्षपानी और सहायक था, अतः अमोघवर्षने भूतुगके साथ अपनी पुत्री रेवाका विवाह कर दिया ।

कृष्णराज तृतीय अकालवर्ष ( ९३९-६७ ई० ) राष्ट्रकूट वंशके अन्तिम नरेशोंमें सर्वमहान् था । अपने बहनोई भूतुग गगकी सहायतासे लल्लेयको पराजित करके वह पिताके सिंहासनपर बैठा । बदलेमें उसने भूतुगको अपने भाई राक्षमल्लका अंत करके सिंहासन प्राप्त करनेमें सहायता दी, भूतुगको गगवाडि और वनवासीका राजा घोषित किया, उसके पुत्र तथा अपने भानजे मल्लदेवके माथ अपनी पुत्री विजम्बाका विवाह किया और उसकी पुत्रीके साथ अपने पुत्रका । इन विवाह-सम्बन्धों एवं मैत्री-व्यवहारोंके कारण गगनरेश भूतुग द्वितीय, मल्लदेव, मारसिंह आदि कृष्ण और उसके उत्तराधिकारियोंके सबसे बड़े हितू और सहायक बन गये । उसे अपना अधिपति स्वीकार करनेमें उन्होंने अपना सम्मान ही समझा । कृष्णके लिए इन गगोंने अनेक युद्ध किये । भूतुगने उत्तरमें चित्रकूट और कालिंजर तक विजय की, दक्षिणमें कृष्णके साथ चोलों-पर आक्रमण किया और परान्तक चोलके पुत्र राजादित्यको हाथीपर बैठे-बैठे ही बाणसे बेध दिया । गगनरेशकी सहायतासे कृष्णने चोल, पाण्ड्य, केरल, कलन्न, औच एवं सिंहलके राजाओंको पराजित किया तथा रामेश्वरमें अपना विजय स्तम्भ स्थापित किया । उसकी ओरसे गग मारसिंह और उसके वीर सेनापति चामुण्डरायने वनवासी देशको विजय किया, नोलम्बों, गुर्जरो और किरातोंको पराजित किया, उच्छली-जैसे सुदृढ़ दुर्गोंको हस्तगत किया, अल्लण, वज्जवल, मुडुराचय्य आदि सामन्तों एवं उपराजाओंका दमन किया । उसने मालवापर आक्रमण किया और परमार हर्षमियकने उसकी अधीनता स्वीकार की । कृष्ण एक बोर योद्धा, दक्ष सेनानी, मित्रोंके प्रति अति उदार, धर्मात्मा और पराक्रमी नरेश था । उसने राष्ट्रकूट साम्राज्यकी प्रतिष्ठाको गिरते-गिरते बचाया । किन्तु दो-एक राजनैतिक



[illegible][illegible][illegible]

करण विव्रण किया है। समाचार सुनकर गंग मारसिंह राष्ट्रकूटोंकी सहायताको पहुँचा, परमार सेना तुरन्त वापस लौट गयी और खोद्विगका पुत्र कर्क द्वितीय ( ९७२-७३ ई० ) राजा हुआ। यह भारी योद्धा था और थोड़े ही समयमें इसने पल्लवों, गुर्जरो, हूणों और पाण्ड्योको युद्धमें पराजित किया। इन युद्धोंके कारण राजधानी फिर अरक्षित हो गयी और ९७३ ई० में चालुक्य सरदार तैलपने उसपर अधिकार करके कर्कको राज्यच्युत किया और सम्भवतया युद्धमें मार भी दिया। राष्ट्रकूट वंशका अन्तिम राजा इन्द्र चतुर्थ था जो कृष्ण तृतीयका पोता तथा गंग मारसिंहका भानजा था। वह भारी बोर और योद्धा था तथा चौगान ( पोलो ) के खेलमें निपुण था। मारसिंहने उसे अपने पूर्वजोंका राज्य प्राप्त करनेमें भरसक सहायता दी। एक बारको मान्यखेटमें उसका राज्याभिषेक भी कर दिया। दोनोंने वीरतापूर्वक अनेक युद्ध किये किन्तु स्थायी सफलता न मिली। ९७४ ई० में मारसिंहकी स्वगुरुचरणोंमें सल्लेखनापूर्वक मृत्यु हो गयी। अब निस्सहाय इन्द्रराज भी कुछ वर्षों तक प्रयत्न करनेके बाद संसारसे विरक्त हो गया और श्रवणवेलगोल चला गया। हेमावतीके तथा श्रवणवेलगोलकी चन्द्रगिरिके शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि अन्तमें वह जैनमुनि हो गया था और ९८२ ई० में इस 'विश्वविख्यात इन्द्रराजने शान्त-चित्तसे सल्लेखना व्रत धारण करके देवराज इन्द्रके पदको प्राप्त किया।' इस प्रकार इन्द्र चतुर्थकी मृत्युके साथ दक्षिण भारतके महान् राष्ट्रकूट वंश और साम्राज्यका अन्त हुआ।

लगभग २५० वर्षके उपरोक्त राष्ट्रकूट युगमें जैनधर्म और विशेषकर उसका दिगम्बर सम्प्रदाय सम्पूर्ण दक्षिणापथमें सर्व-प्रधान धर्म था। डॉ० अस्तेकरके अनुसार साम्राज्यकी लगभग दो तिहाई जनता तथा राष्ट्रकूट नरेशों एवं उनके परिवारोंके विभिन्न स्त्री-पुरुषों, अधीनस्थ राजाओं, उपराजाओं, सामन्त-सरदारों, उच्च-पदाधिकारियों, राज्यकर्मचारियों, महाजनों और श्रेष्ठियों सभीमें अधिकतर लोग इसी धर्मके अनुयायी थे।

[illegible]

कहपानीको उत्तरावली काहुणक—१०वीं कती ई के तृतीय  
 पत्रके अन्तिम अर्ध काटणीय रहिछाउने अन्तिम कहपानीये । अन्तिम  
 पत्रकीये उत्तर-कोर हुई, कई गरीबोनी मानु, कबीरके सम्पादितके, कई  
 स्थानोनी एम्प एवं अन्तिमका हुए । काहुण बीक-बाल्यको अन्तिम  
 कह गुन गुनरी अन्तिमको अन्तिम कह । अन्तिम कह रहिअ काटणीये  
 कह कहने कह कहान् एम्पाइति हुई । १६७ ई के एम्पाइति कहान्  
 एम्पा तृतीय अर्धको अन्तिमकी अन्तिम कह-अन्तिम एम्पाइति कह

किन्तु दिसम्बर ९७३ ई० में उसका सम्पूर्ण राज्य उसके भतीजे कर्क द्वितीयके हाथोंसे अकस्मात् छिन गया और २५० वर्षसे चला आया विंशाल एवं शक्तिशाली राष्ट्रकूट साम्राज्य एक स्मृतिमात्र रह गया। उसके स्थानमें वातापीके प्राचीन पश्चिमी चालुक्य वंशका चमत्कारी पुनरुत्थान हुआ और इसका श्रेय चालुक्य वीर तैलपको है।

तैलके पूर्वज कहीं रहते थे या राज्य करते थे इसका कुछ पता नहीं चलता। पीछेके चालुक्य अभिलेखमें उसका सम्बन्ध वातापीके पश्चिमी चालुक्य सम्राट् विजयादित्य द्वितीयके साथ जुड़ा मिलता है जिसका पौत्र कीर्तिवर्मन् द्वितीय ७५७ ई० में इस वंशका अन्तिम नरेश था। उसके चाचा भीमपराक्रमकी सन्ततिमें कीर्तिवर्मन् तृतीय, तैल प्रथम, विक्रमादित्य तृतीय, अम्यन प्रथम और विक्रमादित्य चतुर्थ क्रमशः हुए। अन्तिमका पुत्र यह तैल द्वितीय था। कुछ विद्वान् इस वंशक्रममें मन्देह करते हैं। ९५७ ई० में यह तैल या तैलप राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीयके अधीन तरद्वादी १००० प्रान्तका एक साधारण श्रेणीका अज्ञात कुल एवं निरुपाधि शासक था। किन्तु ९६५ ई० में वही उसी प्रान्तको एक अणुगजीवि (जागीरदार सामन्त एवं सेनानायक) के रूपमें भोगता हुआ सत्याश्रय वशी महा-सामन्तादिपति चालुक्यराम आहवमल्ल तैलपरसवना मिलता है। मम्मवतया अपनी महत्त्वपूर्ण युद्ध सेवाओंके कारण कृष्ण तृतीयका कृपापात्र बनकर मात्र ८ वर्षमें ही उसने ऐसी अद्भुत उन्नति कर ली थी। उसकी माँ वोषादेवी चेदिनरेश लक्ष्मणकी पुत्री थी। उसने स्वयं अपना विवाह राष्ट्रकूट सरदार वम्महाट्टकी कन्या जङ्गवे अपर नाम रुद्रमीके साथ किया था। चेदियोंको कृष्णने अपने विरुद्ध कर लिया था। इस प्रकार अपने मामा चेदिनरेश युवराज द्वितीय, अपने स्वसुर वम्महाट्ट, वेंगिके पूर्वी चालुक्य वह्मि द्वितीय, सुयेनदेशके यादवराज भिल्लम द्वितीय आदिकी मित्रता एवं सहायतासे तैलपने अपनी शक्ति बढ़ानी प्रारम्भ की। राष्ट्रकूटोंका सामन्त और सेनानायक बनकर उसने उनकी आन्तरिक दुर्बलताओंको लक्ष्य किया

धीरे सबसारी ताकमें रहा । बालक नामक एक बाल्याब बरदार हुअके  
विपक्ष हो गया था अतः बीच बाएँछहने कहना समझ लिया था । अब वह  
भी ठेकनेसे था दिशा ।

बायींरंधरा वह बाल्याब बालक एक बहान बोझा एवं निजजन राज-  
वीरिण था । ठेकनेसे कहे अपने बहूकने बाकना बह्यज निमुन्य दिश और  
'बह्यजन बह्यजनक अधिविधि' पर दिशा । बालको बह्यजिहि विरि-  
क बह्यजिहि, बहिरीजन बाहि कपविधि राजासे प्राप्त हुई । बालुन कप  
ही ठेकनेसे बह्यजनक ही गया था, राज-बह्यज एवं राज-बह्य  
कहने सुबोध हुअने अनेक ठेकन एवं अनुबोधि राज और राज-  
मित्रारसे बह्यज हुआ । बालका बह्य बह्यजनक बह्यज ही बह्य  
बोझा एवं बह्यज बह्यजनक था ।

ठेकना ठेकना निजजन भी बह्यज बोझा एवं बह्य-बह्यज था ।  
बह्यजनक बह्यजनक बाहि राज-बह्यज कई बह्य बह्यज बह्यज एवं  
बह्यजिहोरी भी ठेकनेसे और किया था । कहने सोचनेसे १ २ ई  
में दिशक बह्यजने बह्यजिहोरी विरि-क और बह्यजिहोरी हुअ करके राज-  
बह्यज विरि-क बह्यज कर दिया था । बह्यज बह्य बह्य राज-बह्य बोझ  
बह्यजनक दिशार ॥ १ ॥ ऐसी विरि-क १ २ ई में ठेकनेसे बह्यजिहोरी  
बह्यज बाधा बोझ । राज-बह्य कई विरि-क भी बाधि बोझा था, बह्यज  
बह्य हुआ निजमें कई बाधा गया और ठेकनेसे राज-बह्य राज-बह्य  
बह्यज कर दिया । बीच बाएँछहने बह्य बह्यके निज बह्यजिहोरी  
बह्यज किया और बह्य बह्यजिहोरी बह्यजनक बह्यजिहोरी किया, निज  
बह्य ही बह्यज बह्य ठेकनेसे राज-बह्य निजजनक बह्यजिहोरी बह्यज राज-  
बह्यज किया ।

बह्यज बह्यज ( १०१-१०४ ई ) ठेकन राजका बह्यज बह्यज था ।  
बह्यजन कहे बह्यजिहोरी किया था । बाएँछह और कहने ठेकना  
बह्यजिहोरी प्रति बह्यजिहोरी बह्यज-बह्यज था निजु भी बोझ कहने बाधा

राष्ट्रकूट राज्यका अपहरण भी सहन नहीं कर सकते थे। अतः परस्पर युद्ध चलते रहे। मारसिंहने तो विरक्त होकर समाधिमरण कर लिया। तैलपने पचलदेव, गोविन्द, मुद्राचर्य आदि गग सरदारोंका दमन करनेमें चामुण्ड-रायकी सहायता की और गग सिंहासनपर राचमल्ल चतुर्थको तथा तदनन्तर रावकसगगको बैठानेमें साधक हुआ, अतएव ये दोनों गग नरेश और उनके महामन्त्री चामुण्डरायसे उसकी मैत्री हुई और वह उनकी ओरसे निश्चक हुआ। तदनन्तर तैलपकी सेनाओंने करहाट, वोंकण, पल्लिकोट, भद्रक आदि प्रदेशोंपर आक्रमण किया और राष्ट्रकूट साम्राज्यके अन्तर्गत जितना प्रदेश था उस सबपर प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसने गुर्जरदेशको भी विजय किया और मालवा नरेशसे युद्ध किये। मुज परमारने छह बार तैलपके राज्यमें आक्रमण किया और प्रत्येक बार पीछे हटा, अन्तिम धावेमें स्वयं बन्दी हुआ। कहा जाता है कि तैलपकी बहन मृणालवतीसे उसका प्रेम हो गया था और फलस्वरूप वह भाग निकला किन्तु तैलपने उसे युद्धमें फिर पराजित किया और उसी युद्धमें मुजकी मृत्यु हुई। तैलपने शिलाहार, रट्ट और नोलम्ब नरेशोंका दमन करके उन्हें अपने अधीन किया। गग भी अब उसके अधीन राजे ही थे। केवल चोल सम्राट् उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे, उनका ध्यान बढ़ानेके लिए उसने वेंगिपर आक्रमण किये, उसे पराजित किया और उसकी राजनोतिमें हस्तक्षेप करता रहा। ९९७ ई०में तैलप द्वितीयकी मृत्यु हुई। मा-मल्लेटका त्याग करके कल्याणीको उसने अपनी राजधानी बनाया था।

वस्तुतः, जैसा कि उसके वंशजोंके अभिलेखोंमें कथन किया गया है। तैलपने प्राचीन चालुक्योंके राज्यका अपहरण करनेवाले राष्ट्रकूटोंको पराजित एवं निष्कासित करके चालुक्य वंशकी साम्राज्य-व्यवस्थाको पुनः प्राप्त किया और प्रतिष्ठित किया। निस्सन्देह वह एक महान् पराक्रमी और योग्य नरेश था। विद्वान् और गुणो पुरुषोंका वह आदर करता था। सेनापति मल्लप, मन्त्री घल्ल, दण्डनायक नागदेव, और सेनानायक

चीनकय कुटेपरेव और चुरेन टैन-रीके राज्य-व्यवस्थाएँ एवं नुकीय  
 सुवर्ण नालाकय आदि मङ्गलीर बोझाही, राजनीति-सु व्यवस्थाएँ, सुवर्ण  
 मातृभाषा-विचारों एवं स्वाधिनता विचारोंकी सेवाओंका व्यव इन्ने ज्ञान  
 हुआ था किन्तु केवल ही इन्ने चीन आरम्भिकक सम्मुख खड़ा ही नाल  
 हुआ । ईसवी गणतन्त्रिक व्यवस्थाके भी इनने प्रत्यक्ष एवं पूर्णतः निर्धार  
 करी रखा । यह सर्व-सर्वतन्त्रित्व, स्वतंत्र और समी करीय था । चीन  
 समीत जाय तो इनने चीन ही प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रत्यक्ष बताया रखा  
 चीन कि पूर्णतः स्वतंत्र, समी, समीचीन चतुर्धरी एवं उन्मुखीने ज्ञान  
 रखा था । ईसावरी इन्नेके इतिहासिक दृष्टिकोणके कोटिगत मानक स्तरने सिद्ध  
 केवलसर्वव्यवस्था का १९२ ई. का विचारकेव दृष्टि करण है कि यह  
 राजा चीनसर्वका अनुयायी था । समीकरी चीन व्यवस्थाएँ एव ( समीकरी )  
 व्यवस्था समीकरी था । १९३ ई. ई. समीके अन्तिमपुत्र का पुत्रसिद्धि  
 मङ्गलान्तरी पूर्ण करकेव उन्नेके इन्ने 'अन्तिमपुत्र' समीकरी सिद्धि  
 किया था और समी-सम, समी, समी समीकरी ईसवरी पुत्रसिद्धि किया था ।  
 मातृव चीनसर्व एवसर्व आदि समी की इन्ने समीकरी थे । इन्ने समीके  
 चीनसर्व सिद्धिकेव-कारा । समीकरीके समी समीकरी एक सिद्धि समी  
 निर्माण करण था और समीके समी 'सिद्धि' समी समीकरी । समीकरी  
 समीकरी करकेवसर्वके इनने समी ( समीकरी ) समी समी ईसवरी  
 समीकरी इन्ने समीकरी-सम समीकरी एवं समीकरी समीकरी किया था ।  
 समीकरी समी ईसावरी समी और समीकरी आदि थी चीनसर्वके समी  
 थे । समीकरी समी और समीकरी समी-सम समी समीकरी समी और  
 समीकरी समी समी समीकरी समीकरीके समीकरी समी समीकरी  
 समी-समसर्व एवं समीकरीके समीकरी समीकरी समी समीकरी  
 समी हुआ । समीकरीसर्वकी समीकरी समीकरी समीकरी समीकरी  
 समी समीकरी समी समीकरी समी समीकरी समीकरी समीकरी समी ।  
 समी समी समीकरीके समी समीकरी समी समीकरी समीकरी

मन्दिरोंमें स्थापित की थीं, अनेक मन्दिरोंका निर्माण एवं जीर्णोद्धार कराया था और आहार, औषध, भ्रमण एवं विद्यारूप चार प्रकारके अनवरत दान-द्वारा वह दानचिन्तामणि कहलायी । ऐसा प्रसिद्ध है कि उसके सतीत्वके प्रभावसे गोदावरीका प्रवाह रुक गया था । उसका पति नागदेव युवराज-का अनन्य मित्र और सम्राट्का अतिमाय अनुचर था । अतः इस देवीके धर्मकार्योंमें सम्राट्की अनुमति, सहायता एवं प्रसन्नता थी इसमें कोई सन्देह नहीं । किसी भी धर्मवीर महिलाके लिए आदर्श नागरी रत्न अतिमन्त्रसे तुलना किया जाना परम सौभाग्य माना जाता था ।

तैलप द्वितीयका उत्तराधिकारी उसका पुत्र सत्याश्रय इरिव वेदेग ( ९९७-१००९ ई० ) था । उसने अपने पिताकी आक्रमणकारी नीति चालू रखी । उसका प्रधान शत्रु राजराजा चोल था । राजराजा चोलने चालुक्य राज्यपर आक्रमण किया, सत्याश्रयने उसका मुकाबला डटकर किया, साथ ही वेंगिपर आक्रमण कर दिया और भीमको पराजित करके शक्तिवर्मनको राजा बनाया । चोलोकी शक्ति इस समय द्रुत वेगसे बढ़ रही थी अतः सत्याश्रयने उनसे सन्धि कर ली । यह नरेश भी जैनधर्मका भक्त था । उसके गुरु सम्भवतया कुन्दकुन्दान्वय पुस्तकगच्छके द्रमिलसधी भट्टारक कनकसेन वादिराज और श्रीविजय ओडेयदेव थे । सत्याश्रयने एक जैनगुरुकी स्मृतिमें अगदि नामक म्दानमें एक भव्य निषद्या निर्माण करायी थी । उसका प्रधान राजकर्मचारी उसके मित्र नागदेव और अतिमन्त्रका पुत्र पदुवेल तैल था, वह भी जैनधर्मका परमभक्त और कवि रत्नका आश्रयदाता था ।

सत्याश्रयके पश्चात् उसका पुत्र कुन्दमरस राजा न हो सका, उसके भाई दशवर्माका पुत्र विक्रमादित्य पचम ( १००९-१३ ई० ) राजा हुआ । सद्युपरान्त इसके भाई अय्यन द्वितीयने लगभग एक वर्ष राज्य किया और फिर तीसरा भाई जयमिह द्वितीय जगदेकमल्ल चालुक्यचक्रो ( १०१४-१०४२ ई० ) राजा हुआ । इसके समय भोज परमारने अपने चाचा मुजका



बरखा केनेके भिए कम्पानीपर लाइजयन किया । बरखाहुने बोखका बुझ-  
 बका किया और बीनोने लायि हो गयी । बेकिके बाब भी कबख मुझ हुमा  
 और रामेन बोखने भी मुझ हुए भिगये बोख हो दिजयी रहै और बरख हो  
 गयी । बरखाहु द्वितीय बीनबर्षका विषेन कसत था अनेक बीन पिछाहीं एवं  
 बुझाका कसै सम्मान किया तथा बाहिर-दिनाचकी शोसाहुन दिया ।  
 बाबाबर्ष बाहिरउरनुरिका बहु बहुत कसैर बरखा था । कनकी पावतवाही  
 पर-बाहिराके बाब कन्नेने कसत पातवाय किने से । कनकी भिगयेके  
 कसकसके पावाय कन्ने तबुडा कुकत बरखत तथा 'कसैरकसकपटी'  
 कपाधि प्रदान की थी । १ २५ ई. में इन्हीं बाबाबर्षके कसत बरिह कसत  
 'पातबरिह तथा था । बरखाबरखाहु एकीछाव लीन तथा कसकसके  
 हुत कसकसिबिबककी टीका ( बिबरन ) बाहि कसत इन्ने भी इन्नेने से ।  
 अनेक कन्नेके रखापिठा बाबाबर्ष बरखत भी रही कसने हुए । कन्ने  
 बापके बोखका कसने भी शाय था । बाबुन कसकसक विजय कसकस-  
 बीर था और बरने कसिनुने कसिनानेन पापनीय बरने कसक बुनर  
 विनाकसक विनाच करण था ।

तबकसैर कसका पुन सोनेसैर कसक कसकसक ( १ ४९-५० ई. )  
 पाया हुआ । बहु बका पावतकी था । कसने बीनोने बुझै रखायि किया ।  
 इन्नी बुझने कसके हावी बीन-बीन बाप कसा । कसके कसकसिबिबकि  
 बाब सोनेसैरका संवर्ष और मुझ बरखर कसै रहै । कसने बाबकस बीन  
 बरखरकी रखायि करके बोके हुय दिया कापीकी विजय करके बरने  
 कसै किया और कसकी कसकसक कस किया । बेकिकी पावतीने रहै  
 बरखर हुतकसैर कसक रहै । बहु एक सिद्धावातु केन था । कसके कसक-  
 केनेने हुत पावतकी स्वादाकसत ( बीनबर्ष ) का कनुवावी किया है । कनी  
 कसके एक बाब सिद्धाकसैर का बरख-बाप कन्नेने बेरपावर्ष बरखिनी  
 भुविजय करकेका कसैर है । बहु बरखि कसत द्वितीने विनाच करण  
 भी और बरनेने बाबुन बरनेके बाबकसे एक बरिह बीन-बीन कस

विद्यापीठ बनी हुई थी। सोमेश्वर प्रथमने जैनाचार्य अजितसेनका सम्मान किया और उन्हें शब्दचतुर्मुख उपाधि प्रदान की। इस नरेशका माहामात्य लक्ष्म 'राय दण्डगोपाल' जो उसका दाहिना हाथ था तथा बाँधे सेनापति (दण्डनाथ) शान्तिनाथ भी परम जैन थे। इन्होंने कई जैनमन्दिर बनवाये और उनके लिए दान दिये। सोमेश्वरकी पट्टरानी केतलदेवीने भी अपने सचिव चाकिराज-द्वारा सेनगण पोगरिगच्छके गुरु ब्रह्मसेनके प्रशिष्य और आर्यसेनके शिष्य महासेनको १०५४ ई० में दान दिया था। इस राजाने राजधानी कल्याणोको विस्तृत एवं अलंकृत किया। अभीतक मान्यखेट भी कल्याणोके साथ साथ राजधानी बनी हुई थी, किन्तु अबसे कल्याणी ही चालुक्योंकी पूणतया राजधानी हो गयी। १०६८ ई० में एक भयानक रोगसे पीडित होनेके कारण इस राजाने तुगभद्रामें जल समाधि ले ली। यह राजा इस वंशके सर्वमहान् नरेशोंमें से था। वह जितना योद्धा था उससे अधिक कूटनीतिज्ञ था।

उसका पुत्र सोमेश्वर द्वितीय भुवनैकमल्ल (१०६८-७६ ई०) भी चोलोंके साथ युद्ध करता रहा। अपने भाइयोंके साथ भी उसका द्वन्द्व चला और राज्यके दो टुकड़े होते होते बचे। सोमेश्वरने कदम्बोका दमन किया और चोलोंपर भी विजय प्राप्त की। अपने पूर्वजोंकी भाँति वह भी जैन रहा प्रतीत होता है। उसने मूलसंघके आचार्य कुलचन्द्रदेवको शांतिनाथ बसदिके लिए नागरक्षेत्र प्रदेशमें भूमि प्रदान की थी और उक्त मन्दिरमें एक नवीन मूर्ति प्रतिष्ठित करायी थी तथा श्रोनन्दि पण्डितको भी दान दिया था।

१०७६ ई० में उसका छोटा भाई विक्रम उसे बन्दी करके स्वयं राजा बना। यह विक्रमादित्य पष्ठ त्रिभुवनमल्ल साहस-सुग (१०७६-११२८ ई०) इस वंशके अन्तिम नरेशोंमें सर्वमहान् था। उसके दीर्घकालीन राज्यकालमें चोलो, मालवाके परमारों और बँगिके पूर्वी चालुक्योंके साथ उसके निरन्तर युद्ध चलते रहे। गौड़, कामरूप, केरल, लाट, चेदि तथा अपने साम्राज्यके



चिन्तामणि अपरनाम राजमानसोल्लास नामक ग्रन्थका वह रचयिता था । इसका शासनकाल शान्तिपूर्ण रहा, वह स्वयं युद्धप्रिय नहीं था वरन् साहित्य-रसिक था । फणस्वरूप उसके होयसल आदि सामन्त स्वतन्त्र होने लगे । उसके पुत्र जयसिंह तृतीय जगदेकमल्ल ( ११३९-११५१ ई० ) के समयमें होयसलोंने चालुक्य राज्यका बहुभाग दबा लिया और उसके छोटे भाई एव उत्तराधिकारी तैल तृतीय ( ११५१-११६३ ई० ) के समयमें स्वयं राजधानी कल्याणीपर विज्जल कलचुरिने अधिकार कर लिया । कलचुरि, होयसल और ककातियोंके बीच चालुक्य-साम्राज्यके तीन टुकड़े हो गये । और तैल तृतीयका पुत्र सोमेश्वर चतुर्थ ( ११६३-८४ ई० ) नाम-मात्रका ही राजा रह गया ।

**कल्याणीके कलचुरि**—कलचुरि भारतका एक प्राचीन राजवंश था । इसका सम्बन्ध मूलतः चेदि ( बुन्देलखण्ड ) प्रान्तसे था अतः यह चेदि वंश भी कहलाता है । चेदि सवत्के प्रवर्तनकाल सन् २४९ ई० से इस वंशका उदय माना जाता है । मध्यभारत, विदर्भ महाकोसल तथा सरयूपार आदिके कलचुरि वंशोंका वर्णन पिछले एक अध्यायमें किया जा चुका है । १२वीं शताब्दीमें इस वंशकी एक शाखाका उदय दक्षिण भारतके कर्णाटक प्रदेशमें हुआ । ११२८ ई० में कल्याणीके चालुक्य-सम्राट् सोमेश्वर तृतीयने कृष्णके वंशज परम्मदि कलचुरिको बीजापुर विषयका शासक नियुक्त किया था । उसका पुत्र विज्जल कलचुरि उसी पदपर उसका उत्तराधिकारी हुआ ।

विज्जल बड़ा वीर और महत्वाकांक्षी था । चालुक्य जयसिंह तृतीयने उसे महामण्डलेश्वर बना दिया और अपना सेनाध्यक्ष नियुक्त किया । चालुक्य तैल तृतीयकी अयोग्यतामें लाभ उठाकर साम्राज्यके सामन्त सरदार स्वतन्त्र होने लगे । विज्जलने इस विद्रोही सामन्तोंका सघ वनाया और उसका स्वयं नेतृत्व किया । ११५१ ई० में उसने इस प्रकार सहज ही राज्यशक्ति अपने हाथमें कर ली । अन्य सामन्त लोग उसकी वढती

हुई धर्मिता प्रसन्न नहीं हुए। जहाँ कबने कबने बाहुराय डीठ नुकीली कमी कर दिया और बिजोड़ी कागसोंका बन्धन बरके ११५९ ई में बान्ने-बातकी दम्पतीका लम्बाई बीसठ कर दिया और जगदा लोन् वी बन्धना। वही कबके एक दिनाभेकमें बलक जलैक 'बलपुरि बुरबक-बल' १ विमुक्तकाल' बिकरके नाच हुआ है। ११६० ई. फर्गल कबब ११६ ई. कबने राज्य दिया और एनके कबबमें ही कबने इबाधित कर दिया कि वह एक बीर बोझ जारी निरीय कोर म्हात्तु बरेय था। जलने कुचकी प्रदलिते अनुसार वह कैकर्मका अनुययी था। राज्य-इति एवं बीरकबने विरजकता कबाब बहापक कलका बहापक एवं इलाल कैगापल ऐधिक्य था। कबुईकबान्धन कबका बिकर था और वह म्हात्तु इलाल दम्पतीका कलकता था। कर कलक दम्पतीकारी कबके बीरक कार्य करते थे। वह कलक एवं बीरिदुपल, बीर बोझ यह कैकवी बरिबकल और बहात्तु कमी था, कबापारी कलकमें कबकी दुकल की बान्ने थी। बहापक विरजकने इलाल होकर कले बाबरकल इलाल कमी-में इलाल किया था। ऐधिक्य बरक कल था और बीरकर्मकी प्रबालकै लिए कबने कौन कार्य किये।

विजयकलक एवं कलक कल कमी बाहुराय कबके था, कबका बाहुराय बाहुराय की कल था। कबकेकमी मुत्तुके कलक कल कलक बाहुराय विमुक्त हुई। वह कलके कलके कलकके कलकके कलके कलके कर था था। कलक बाहुराय कल कलकालाकी था। कलके कुचकर्ममें कले कलके अधिक कलकर्मकी मुगाप्य दिखाई नहीं थी। कलक-कलक और कलकाले कले मुगा थी। जहाँ कबने एक कलीय कलका कलक करके विरज किया कबने कैकर्मके कलकाले बीरकाली एवं विरज तथा कलकाले कलकाले कलक बीरकर्मकी कलक बरकालाकी एवं कलकाले कलक बरके और इन विरककी कलके कलीमुक्त विरज करके कलकाले था बीरक कलकी कलकाला थी। ऐसी कलकाली है कि कलके कलके विरके

लिए उसने राजाका ध्यान अपनी अतीव सुन्दरी भगिनी पद्मावतीकी ओर आकृष्ट किया और राजाकी इच्छाका आभास पाते ही उसके माथे राजाका विवाह कर दिया । पद्मावती अपने भाईकी इच्छानुसार विज्जलको अपने धर्मसे विमुख और वासवके मतका पोषक तो न बना सकी किन्तु उसके मोहपाशमें बँधा राजा राज्यकार्यकी ओरसे असावधान हो गया । इसका लाभ उठाकर वासवने अपने मतके प्रचारमें सम्पूर्ण राजकोष खाली कर दिया और राज्यके विभिन्न पदोंसे जैन राज्य कर्मचारियों और पदाधिकारियोंको अलग करके अपने माथे और सहायकोंको नियुक्त करना आरम्भ कर दिया । अन्ततः राजाकी मोहनिद्रा टूटी और वासवकी कुचेष्टाओंपर उसका ध्यान गया, वह बहुत क्रोधित हुआ । अतएव वासवने राजाको विपाकत आम खिलाकर छलसे उसकी हत्या कर दी । एक मतके अनुसार विज्जलने राज्य अपने पुत्रको सौंपकर शेष जीवन धर्म-साधनमें बिताया था ।

विज्जलके पुत्र सोमेश्वर (११६७-७५ ई०)ने, जो वासवके क्रूरकृत्योंके कारण उससे अत्यन्त रुष्ट था, गद्दीपर बैठते ही उसे धर्म और राज्यका शत्रु घोषित कर दिया । वासव भाग निकला, किन्तु सोमेश्वरके सिपाहियोंने उसका पीछा न छोड़ा, अन्ततः थककर वासवने एक कूँएमें डूबकर आत्म-हत्या कर ली । उसके अनुयायियोंने उसे शहीद घोषित किया और उसके अन्तके सम्बन्धमें अनेक चमत्कार एवं किवदंतियाँ प्रचलित कर दीं । विज्जल और उसके उत्तराधिकारियोंने वासवसे चिढ़कर त्रिगायतोंका क्रूरताके साथ दमन किया बताया जाता है । वीरशैव लोग ब्राह्मणोंके भी विरोधी थे, वे जाति-व्यवस्था, यज्ञोपवीत, वेद और बाल-विवाहको अमाय करते थे तथा विषवा विवाहके पक्षपाती थे । गुरु, लिंग और जगम ( साधर्म्य ) इन तीन पदार्थोंको सर्वोपरि श्रद्धाका पात्र मानते थे । वासव-पुराण और चैन्न वासवपुराण उनके प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ हैं । वासवके एक शिष्य पाशुपतिने इस धर्मको खूब फैलाया । १३वीं से १७वीं शती तक

एकिक शासक के निमित्त बन्यो। इस वर्गका बहुत अन्धार था और इन बीरवीरों का कियाकृतोपम कर्माधिक शीघ्र शिरोव चीनवर्ग और बीबीवर था। यह कही इन्हें कर्मा शान्त हुई बीबीवर इन्होंने जीवित शासकपर निवेदनमें से शायी रोष नयनारों और बीबीवर शासकपरोंसे भी जाने नई की। कर्मा एक शक्तिमानवम मध्य शासकों चीनवर्गके ज्ञान और अन्धकारिक अन्धकार सेव कियाकृतो-द्वारा किने कने कर्माक शासकपारीकी है। निवास्त कर्मा कर्मा और शासकीय इतिहासपर १९ ई के एक बीन शिखरके कर्मा शिखरपर एक शक्ति मानक कर्मा कर्माके कर्मा अन्धकार कर्मा है।

प्रिन्सिपल के अनुसार कच्छ के तीन पुरों सोमेश्वर वा पम्पपुरापी हीमिने  
( ११६०-७९ ई ) तंजाम वा पम्प ( ११७९-८८ ई ) और वाङ्ग-  
नाम ( ११८८-८९ ई ) में समस्त राज्य किया । इन तीनों के एक अन्य  
बान्धव पुत्र कच्छर एक संघना अभिषेक पाया रहा प्रतीय होता है । इन  
कोशों के वाङ्गनाम के ऐतिहासिक कारणों और इतिहास के होमबर्ग के  
वाङ्गनाम के कच्छपुरि-वर्णिका राज्य होता रहा । ११८९ ई में वाङ्गनाम  
सोमेश्वर पम्पने कच्छापीवर जिज्जे अधिकार कर लिया और १२१ ई  
तक सोमेश्वर प्रवेश कर कच्छ राज्य बनाया भी रहा । कच्छ में होमबर्ग और  
वाङ्गनाम कच्छ भी अन्य कर दिया ।

# अध्याय ९

## दक्षिण भारत [ ३ ]

दक्षिण भारतके इतिहासमें चोलो और कल्याणीके चालुक्य-सम्राटोंके उपरांत देवगिरिके यादव, वारगलके ककातीय और द्वारसमुद्रके होयसल प्रसिद्ध हैं। ११वीं शताब्दीमें इन वंशोंका उदय हुआ और १२वीं, १३वीं शताब्दियोंमें सम्पूर्ण दक्षिण देश उन्होंने तीन राज्यशक्तियोंके बीच बँटा हुआ था, इन्हींसे मुसलमानोंने उसे अन्ततः छोड़ा। होयसलोंके अन्तके थोड़े समय उपरान्त ही त्रिजयनगर राज्यकी स्थापना हुई जो १६वीं शतीके अन्त तक चला। उपरोक्त प्रमुख राज्यवंशोंके साथ-ही-साथ कुछ छोटे-छोटे राज्यवंश प्रमुख सामन्तों और उपराजाओंके रूपमें चलते रहे। इन सभीने देशके सांस्कृतिक इतिहासके निर्माणमें भाग लिया। अतः प्रमुख राज्यवंशोंका विवरण देनेके पूर्व पूर्वमध्यकालके उपराजवंशोंके विषयमें संक्षेपसे जान लेना उचित होगा।

**पूर्वमध्यकालके प्रमुख उपराजवंश—(१) पोम्बच्चपुर (हुमच्च)** के सान्तर उपवंशी क्षत्रिय थे और सान्तलिगे १००० प्रदेशके शासक थे। ७०० ई० के लगभग पश्चिमी चालुक्य विजयादित्यके शासनकालमें इस वंशकी स्थापना हुई थी। इस वंशके अम्बुदयका श्रेय हमके वास्तविक मम्बापक जिनदत्तराय ( लगभग ८०० ई० ) को है। वह जैनधर्मका परम भक्त था, हुमच्चको जैन यक्षी पद्मावती उसकी इष्टदेवी एवं फुलदेवी थी। इस देवीकी साधनास जिनदत्तको अद्भुत मन्त्रसिद्धि हुई थी। वह और उसके वंशज गण्डकूटोंके और तदनन्तर चालुक्योंके प्रमुख सामन्तोंमें-से थे।





राज-महिलाओंमें पम्पादेवी, वाछलदेवी आदि भी अपनी धार्मिकता और दानशीलताके लिए प्रसिद्ध हैं। १०८१ ई० के एक लेखके अनुसार वीर सान्तरका मन्त्री नगुलरस जैनधर्मका भारी संरक्षक था। ११०३ ई० में त्रिभुवनमल्ल सान्तरने राजधानीमें पचकूट वसदिके सामने ही एक नवीन बमदि बनवायी। ११७३ ई० में एक अन्य वीर सान्तरका विरुद्ध 'जिनपाद भ्रमर' था। इसके उपरान्त सान्तरोंपर लिगायत मतका प्रभाव हुआ। १३वीं शतीमें उन्होंने अपनी राजधानीको हुमचसे बदलकर कलश नामक स्थानमें बनाया। तदनन्तर वे तुलुवदेशस्थ कार्कलमें जाकर राज्य करने लगे प्रतीत होते हैं। ये उत्तरवर्ती सान्तर यद्यपि बहुधा लिगायत मतके अनुयायी हुए तथापि जैनधर्म और जैन-गुरुओंके प्रति पूर्ववत् उदार बने रहे।

(२) सौन्दत्तिके रट्ट राष्ट्रकूटोंके प्रमुख सामन्त थे और सम्भवतया राष्ट्रकूट वंशको ही किसी शाखासे सम्बन्धित थे। इस वंशमें भी प्रारम्भसे लेकर अन्त तक जैन धर्मकी प्रवृत्ति रही। रट्टवादीके ये शासक थे और सौन्दत्ति इनकी राजधानी थी, ये महामण्डलेश्वर कहलाते थे। ८७५ ई० में राष्ट्रकूट अमोघवर्षके सामन्त मेरद्वके पुत्र पृथ्वीराम रट्टने सौन्दत्तिमें जिन-मन्दिर निर्माण कराके उसके लिए दान दिया था। उसके गुरु इन्द्रकीर्ति थे। यह राजा सम्राट् कृष्ण द्वितीयका दाहिना हाथ था। उसके पुत्र शान्तिवर्मा की रानी चन्द्रकल्ये बड़ी धर्मात्मा थी, अपने पतिसे उसने एक सुन्दर जिनालय निर्माण कराया था। तदुपरान्त कलसेन, बन्नकेर, तीन कार्त्तवीर्य, कलसेन द्वितीय आदि राजा हुए। ११६५ ई० में इसी वंशका रट्ट महामामन्त महाराज कार्त्तवीर्य चतुर्थ शिलाहार-नरेशके राज्यमें स्थित एकसाम्ब्रीके नेमोश्वर जिनालयकी प्रसिद्धि सुनकर दक्षिणार्थ वहाँ गया और महामण्डला-चार्य गुरु विजयकीर्तिको उचित मन्दिरकी पूजा, सगोतप्राद्य, साधुके भोजन, भवनके संरक्षण आदिके लिए उदार दान दिया। ये गुरु यापनीय सधके पुन्नागवृक्ष-मूलगणके साधु थे। इस सुन्दर जिनालयका निर्माण

[illegible][illegible]

१. २-१ १ ई. में सुहृदाय विजयद्वार ब्रह्म अग्निहोत्र राजा और राज  
कीन था। ११वीं शताब्दी में कल्याणराज्य ( १११०-११४ ई. ) राज ब्रह्म  
अग्निहोत्र ब्रह्म राजा। ब्रह्म राजा राजकी ही राजागरीहोत्र ब्रह्म राज। राजकी

अनेक युद्ध किये, विजय प्राप्त की और शत्रुओंसे अपने राज्यको सुरक्षित रखा। वह भारी दानों और सर्व-धर्म समदर्शी था। कोल्हापुरके निकट प्रयागमें उसने एक महत्त ब्राह्मणोंको भोजन कराया और उसके निकट ही अजरेना नामक स्थानमें एक सुन्दर जिनालय बनवाया। उसने एक विशाल सरोवरके मध्य एक ऐसा देवालय भी बनवाया था जिसमें जिनेन्द्र, शिव और बुद्ध तीनों देवताओंकी मूर्तियाँ साथ-साथ स्थापित की थीं। इस प्रकारके धार्मिक समन्वयके प्रयत्नका यह पहला ही अथवा अकेला ही उदाहरण नहीं है, पूर्वमध्यकालमें अन्य कई देव मन्दिर इस प्रकार जैन, शैव, वैष्णव, बौद्ध देवी-देवताओंकी साथ-साथ मूर्तियोंसे युक्त बने थे। ये उस कालके भारतीयोंकी उदारशयता और विवेकके प्रतीक हैं।

गण्डरादित्यका प्रधान मामन्त और सेनापति वीर निम्बदेव था। गण्डरादित्यके उत्तराधिकारी धिजयादित्यके राज्यकालमें भी वह उस पदपर आरुढ़ रहा वलिक शिलाहार-नरेशका दाहिना हाथ बन गया था। शिलालेखोंमें निम्बदेवकी बड़ी प्रशंसा पायी जाती है। उसे 'विजयसुन्दरी-वल्लभ', 'सामन्तशिरोमणि', शत्रुसामन्तोंके सहायमें प्रचण्ड पवनके समान, मण्डजनोंके लिए चिन्तामणि, गण्डरादित्य-महावक्ष-दक्षिण भुजदण्ड आदि कहा गया है। राजाने उसकी सेवाओंमें प्रमत्त होकर उसके नामपर निम्बसिरगांव नामका नगर बसाया था। यह वीर इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसके कई सौ वर्ष बाद कन्नड कवि पार्श्वदेवने निम्बदेवचरित्र बनाकर उसकी यशोगाथा गायी। साथ ही वह बड़ा धर्मात्मा था और उसके जिनेन्द्र-मन्त्रि अमीम थी, जिसके कारण सम्यक्त्वरत्नाकर और जिनचरण सरसिद्धमधुकर-जैसे विशेषण उसने प्राप्त किये थे। वह मन्त्रशास्त्रक भी ज्ञाता था और शासनदेवी पद्मावतीका उसे दृष्ट था। वह धर्मशास्त्रक भी ज्ञाता था और श्रावकोंको धर्मानुकूल आचरण करनेके लिए सदैव प्रेरित एवं उत्साहित करता रहता था। कोल्हापुरके आस-पास कोई वसति ऐसी न थी जिसने निम्बदेवकी दानशीलतासे लाभ न उठाया हो

स्वयं कोरहापुरमें मुसलिम महासखी-मन्दिरके विना ही करने वाला  
मुसल एव फजलुर्न बेगिमियालय बनवाया था। इस मन्दिरके  
दिवारकी मजिदार तीर्थकारीकी कर लहनाशन मूर्तियाँ बसित  
हैं। वर्तमानमें यह मन्दिर दीवारोंके द्वारा है और बेगिमियारी मूर्तियाँ  
स्वामिने विष्णुमूर्ति स्थापित कर दी गयी हैं।

बम्बराविलके स्वपण्ड बनका पुन विजयादित्य विजयाहार ( ११४०-  
११५५ ई ) राजा हुआ। करने चालुख्यकी वराधीकताका युद्ध कर  
केता और यह विजयक नकचुरिके चालुख्यीला अन्त करके और बम्बरा-  
का राजा करनेमें इत्यादि लडावक हुआ। किन्तु यह विजयकने विजयाहार  
नरीयको भी बलीक करवा चला छे बोलीमें अन्तर कुछ हुआ। विजयाहरी-  
की ओरसे भी बेगार्यत विजयकने कुछका लडावक कर रहा था। कभी  
बुद्धने यह बात बहा किन्तु बरते-बरते भी नकचुरिकोके राजा अन्तरित  
कर बहा कि वे मैदान छोड़ जान गये। विजयादित्य स्वयं बहा वराधी-  
का। अपने कपुकोके किहू यह बम्बराय कहा गया है। बम्बराय विजय-  
विल बनका विजय था। अपने चालिक कलाधके कारण यह बम्बरदुष्टि के  
कहावला था। यह चालिकके अन्तरि चालक करता था और अपने के-  
पुन चालिकबन्धि बम्बरदुष्टिकी बड़ी चाल करता था। कोरहापुर एव  
अन्य स्थानीक केनमन्दिरोंको अन्तरी अन्तरी राज मिले थे। अपने अन्तरि  
चैव केनमन्त्रि कोनकके बम्बरान्त्रि विजयापुर विजयकेअने विजय है कि  
यह विजयादित्यके किहू बैदा ही था बीदा कि हरिके किहू बहा एवके  
किहू पावति और कालके किहू बलात्। बुद्धमूर्तियों कपुकोका अन्तर करके  
यह अन्तरिचैव था। राजाके किहू एक विजयक विजयक विजय  
करवानेका बार्थ करने द्वारा है विजय था किन्तु कते पुन करके पुन ही  
कालकी मूर्त ही गयी। विजयादित्यका एक अन्य कपुन बैव-काली एवं  
केनमन्त्रक कालीकर था कालीचैव था। यह अन्तरिचैव पुन विजयकके  
पुनरुक्ति कोरवकका पुन और अन्य कपुविकारी कोनका पावला था।

लक्ष्मीदेव राज्य प्रवन्धमें कुशल और युद्धभूमिमें निपुण नैन्यसचालक था। वह साहित्यरसिक और धर्मात्मा भी था और सम्यक्त्वभण्डार कहलाता था। नेमिनाथपुराणके कर्त्ता कन्नडके जैनकवि वण्णप्पायका वह आश्रयदाता था और उसका धर्मगुरु नेमिचन्द्र मुनि थे। विजयादित्यके समयमें ही उसके एक अन्य धर्मात्मा सामन्त कालनने एकसम्ब्रीनगरमें सन् ११६५ ई० में नेमीश्वर वसदि नागका सुन्दर एवं विशाल जिनालय निर्माण कराया और उसके लिए प्रभूत दान दिया था। उसके गुरु यापनीय सघके पुत्रागवृक्ष-मूलगणके कुमारकीर्तिके शिष्य महामण्डलाचार्य विजयकीर्ति थे। रट्ट नरेश कात्तवीर्यने भी चन्न मन्दिरके दर्शनाथ वहाँ आकर उसके लिए उक्त गुरुको दान दिया था। यह घटना रट्टों और शिलाहारोंकी मैथ्रीकी भी सूचक है। इस वसदिमें चारों दानोंकी नियमित व्यवस्था थी। उसका निर्माता सामन्त कालन धर्मात्मा और दानी ही नहीं था धरन् शास्त्रज्ञ, विद्वान् और कलाममज्ञ निर्माता भी था।

विजयादित्यके उपरान्त भोज द्वितीय (११६५-१२०५ ई०) शिलाहार राजा हुआ। विज्जल कलचुरि और उसके उत्तराधिकारियोंने भोजको अपने अधीन करनेका भरसक प्रयत्न किया किन्तु असफल रहे। अन्ततः दोनोंके बीच सन्धि हो गयी। भोजके जीवनमें ही कलचुरियोंका अन्त भी हुआ। यह राजा भी अपने पूर्वजोंकी भाँति जैनधर्मका परम भक्त था। विशालकीर्ति पण्डितदेव उसके गुरु थे। इसी वीर भोजदेवके शासनकालमें १२०५ ई० में आचार्य सोमदेवने जेनेद्र-व्याकरणकी शब्दार्णवचन्द्रिका नामक प्रसिद्ध टीका रची थी। यह टीका गण्डरादित्यके वनवाये हुए अर्जुनिका ग्रामके त्रिभुवनतिलक नेमिनाथ जिनालयमें उक्त विशालकीर्ति सहयोगसे लिखी गयी थी। राजधानी सुल्तपुर (कोल्हापुर) में भी इस राजाने अनेक सुन्दर जिनालयोंसे अलंकृत किया। भोज उपरान्त इस वंशका कोई इतिहास प्राप्त नहीं होता। शिलाहारों

[illegible][illegible]

प्रभाचन्द्रदेवकी एक गाँव दान दिया था । १११५ ई० के लगभग वीर कोगात्वदय देशीगण-पुस्तकगच्छके माघचन्द्र त्रैयिछके शिष्य प्रभाचन्द्र सिद्धान्तदेवका शिष्य था । इस राजाने सत्यवाक्य नामक जिनालय निर्माण करायें उसके लिए अपने गुरुको एक ग्राम दान दिया था । इसके उपरांत कोगात्वोंका कुछ इतिहास नहीं मिलता ।

(५) चगाल्व वंश—इस वंशके राजे मैमूर कुर्ग प्रदेशके अन्तर्गत चगनादके शासक थे और कोगात्वोंका भाँति ही चोलीके और फिर होयसलोके सामन्त थे । इस वंशमें कुछ राजे जैन रहे और छेप दीव रहे प्रतीत होते हैं । १०९१ ई० में चगाल्व राज मण्यिपेरगढे पिन्डुद्वयने पिल्हु ईश्वरदेवकी मुनिआहारदानके लिए क्षेत्र प्रदान किया था । इनके प्रदेशमें हनसोगे प्रसिद्ध जैन वेद्व था । लगभग ११०० ई० के एक शिलालेखसे प्रकट होता है कि उस समय इस नगरमें ६४ प्राचीन जिन-मन्दिर थे जो इन्द्राकुवशी दाधारयो-शीतापति राम-द्वारा निमित्त करायें गये बताये जाते थे । इन्हींमें-से बन्दतीर्थ नामक वसदिको गंगनरेशोने दान दिये थे और उसी मन्दिरके लिए राजेद्र चोल नम्रि चगाल्वने पूर्वोक्त दानोंकी पुनरावृत्ति की । इन वसदियोंका प्रयत्न मूलसध-देशीगण-पुस्तक-वाक्य-होत्तगगच्छके गुरुओंके हाथमें था । इस राजाने उक्त शास्त्राके तत्कालीन गुरु अयकीर्तिको उपरोक्त दान दिया था । ये गुरु व्रत-उपवासों, विशेषकर चान्द्रायण व्रतके लिए विरूपात थे । इसी होत्तगगच्छके गुरुओंके अधिकारमें तलकावेरीकी वसदियाँ और पनसोगेकी ४ वसदियाँ भी थीं । उपरोक्त चगाल्व नरेशने स्वयं भी १०२५ ई० और १०६० ई० के मध्य कई जिनमन्दिर निर्माण करायें थे ।

(६) अलुप या अलुव वंश भी इस कालका एक प्रसिद्ध सामन्त वंश था । ये तुलुवनाडुके शासक थे । १०वीं शतीमें इस वंशका उदय हुआ, किन्तु उनके आगमनके बहुत पहलेसे ही यह प्रदेश जैनधर्मका गढ़ रहता आया था । मूडविद्री, गेरुसण्णे, भट्टकल, कार्कल, विलिंग, सोदे, दक्षिण भारत [ ३ ]





गोन्मदेयका शासक जूनघन्दिशर्माजी नरेण था जिनका नाम सम्मदाया भूपाल था । किमी कारणसे संसारमें धिखन होकर यह राजा जैन मुनि हो गया था और गोन्माचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ । प्रसिद्ध नृपायनगुर्विंशति स्तोत्रका रचयिता सम्मयतया यही था ।

( ९ ) प्राचीन बद्धम्बोंकी एक उत्तरपालीय जात्या इस जालमें कर्णाटकके कुछ भागपर शासन करती रही थी । उसके गोविन्दव आदि राजे जैनधर्मके अनुयायी थे । नागरगण्ड उनके प्रदेशका प्रधान भाग था और वह जैनधर्मका पेट्र था । बद्धम्बरराज कीर्तिदेयकी पट्टगामी गान्धर्व देवोंने १०७७ ई० में मृगपट्टरमें पादयदेव चैत्यालय बनवाया, शार्णार्थ पद्मनन्दि सिद्धान्तकी उमका शिल्पश बनाया, राजासे ज्ञान ज्ञाया और वहाँके अषट्कार ब्राह्मणसे मान बराकर उमका ब्रह्मजितालय नाम रखा । इस प्रदेशके अनेक ग्रामस्त जैनधर्मानुयायी थे । इन सबमें उल्लेखनीय तैवरतेयका नाष्टप्रभु लोकगावुण्ड था । ११७१ ई० में उमने अपने स्वामी बद्धम्बरनरेण सोविदेवके राज्यकालमें एक सुन्दर जितालयका निर्माण कराया और उसमें 'रत्नत्रय' की मूर्ति प्रतिष्ठित की और उसका मन्दिरके साथ ही एक संगेवर और एक बूष बनवाया तथा प्लाऊ और मयकी व्यवस्था की । मन्दिरमें त्रितय अष्टद्वय पूजनके लिए भूमि प्रदान की । उसके गुरु मूलमध-क्राणुराण-तिथिणीगच्छके जैनाचार्य मुनि चन्द्रदेवके शिष्य भानुकीर्ति सिद्धान्तदेव थे ।

( १० ) गगधाराका चालुक्य वंश—यह प्राचीन चालुक्य वंशकी एक लघु शाखा थी, गगधारा इसका राजधानी थी । आर० नरसिंहाचार्यके मतानुसार इस वंशकी राजधानी पुलिगेरे [ ( लदेयदेवर ) थी, सम्भव है इसीका अपरनाम गगधारा भी हो । यह एक प्राचीन जैनतीर्थ भी था । इस वंशके राजे गण्डकूटोंके महामण्डलेस्वर थे, और प्राय वे सब ही जैनधर्मानुयायी थे । ९६६ ई० में इस वंशके राजा अरिकेसरी तृतीयने अपने गुरु सोमदेवकी अपने पिता-द्वारा बनवाये हुए राजधानी लेंबुपाटके

छात्रार्थिक होश्यावर भाति एह वरीयने प्रसिद्ध बनर ने जो एह ही वीरम-  
के गुरु एह ने । १२वीं छठमिं मुसक अमुने (१११४-१५१) ए  
वमक प्रसिद्ध एया बा । ११५१ ई ने एममुनार गुयाएयने कोरने  
नामक स्थानने जो वीरमकका केन बा, एक विमरुनिके कएने  
महाका ही ही मुनयेकर मजीनदेव बनन ( बनन ११७१-११  
ई ) के बनने मुनयेमन विमनकी एमवीय बाहमका बाउ बी । ए  
एमन कएकरिदेव मयनकन कमाएन भाति वीर-मुनयेका बनन  
किया बा । एमएयने अमुने (१२२५ ई ने कमाकी के इमने  
मिद एन दिया बा । मुनयेकर अमुने कृति ( १२८४ ई ) ए  
वीरमकी एया बा एह एममिदुकर केन बा । एह एन के ही  
बा बीर मुनयेके नाममनयेका बनन बा । एहके बीर बीरमुनयेकर  
( १८८४ ई ) के एमन एह वरीके नाममने मुन बीर एया की  
बनन ।

( ७ ) एह कालके विम कतिवय कए बाकन एह एमन-मनयेकी  
का विमकेकने नम बनन ई बनने एह मुनयेकर काल केने  
बा । एहकी एनी एमके इनी कए बीर कएकी की कि वीर हीने  
हुए की एह विमका कने कतिवय मयनकन कएनेमन बीर  
बीरमन कने मुनिये वीर वीरम एह बीरमकीकी की बनन कने  
मयन बनन करनी की । एहके मुन बीरमके वीरमने कएनेमने ने ।  
११५ ई ने एह एमकेकी बननी मयनेकी मयनकीकी मुन हीने  
एनी एमकेने हीने वीरमने कतिवय विमने कएना बीर क  
कनेने मुन-मन कए मयनकनके मिद कने मुन विमनेने मुन हीने  
एमकेका मुन कने बनन किया । एमके प्रमुन मयनकेकी की एह  
कनेने मिद एन दिने । विमनेने मुन मयनने भातिमनेने मिमन-  
न ने ।

( ८ ) १११५ ई के एह विमकेकने नम बनन ई कि एह कने

गोल्लदेगका शासक नूतनचन्दिलवशी नग्देश था जिसका नाम सम्भवतया भूपाल था । किसी कारणसे मंगारसे विरक्त होकर यह राजा जैन मुनि हो गया था और गोल्लाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ । प्रसिद्ध भूपालचतुर्विंशति स्तोत्रका रचयिता सम्भवतया यही था ।

( ९ ) प्राचीन कदम्बोंकी एक उत्तरकालीन शाखा इस बाल्या कर्णाटकके कुछ भागपर शासन करती रही थी । उसका सोविदेव आदि राजे जैनधर्मके अनुयायी थे । नागरखण्ड उनके प्रदेशका प्रधान भाग था और वह जैनधर्मका केन्द्र था । कदम्बराराज कीर्तिदेवकी पट्टगनी माला देवीने १०७७ ई० में कुप्पटूरमें पाद्वेदेव चैत्यालय बनवाया, आचार्य पद्मनन्दि सिद्धान्तकी उसका अध्यक्ष बनाया, राजासे दान दिलाया और वहाँके अग्रहार ग्राहणोंमें मान्य कराकर उसका ब्रह्मजिनालय नाम रखा इस प्रदेशके अनेक सामन्त जैनधर्मानुयायी थे । इन सबमें उल्लेखनीय तेवरतेप्पका नाडप्रभु लोकगावुण्ड था । ११७१ ई० में उसने अपने स्वामी कदम्बरनरेश सोविदेवके राज्यकालमें एक सुन्दर जिनालयका निर्माण करा और उसमें 'रत्नत्रय' की मूर्ति प्रतिष्ठित की और उक्त मन्दिरके साथ एक चरोवर और एक कूप बनवाया तथा प्याऊ और सत्रकी व्यवस्था कर मन्दिरमें नित्य अष्टद्रव्य पूजनके लिए भूमि प्रदान की । उसके गुरु मूलर क्राणूरगण-तिर्त्तिणीगण्डके जैनाचार्य मुनि चन्द्रदेवके शिष्य भानुकी सिद्धान्तदेव थे ।

( १० ) गंगधाराका चालुक्य वंश—यह प्राचीन चालुक्य वंश एक लघु शाखा थी, गंगधारा इसको राजधानी थी । आर० नरसिंहाचार्य मतानुसार इस वंशकी राजधानी पुलिगेरे [ ( लक्ष्मेश्वर ) थी, सम्भवतया इसका अपरनाम गंगधारा भी हो । यह एक प्राचीन जैनतीर्थ भी । इस वंशके राजे राष्ट्रकूटोंके महामण्डलेश्वर थे, और प्रायः वे सब जैनधर्मानुयायी थे । ९६६ ई० में इस वंशके राजा अरिकेसरी तृतीय अपने गुरु सोमदेवकी अपने पिता-द्वारा बनवाये हुए राजधानी लेंबुपा

[illegible]

( ११ ) हुल्लूकेरुमें बीनवाडिका बीनबंद—यह बंद बालिसे  
कल ठक बीनबंदीनुवाही पण । बाटुमिक बंकरेड बंदपाडिसे बंकरेडमी  
ही एक बालिसे-ने निकले गरीत होतें हैं और वे बाले पाण्डुरोके बीर  
वरमण्डर कनवालीके बाहुलीके बाकल रहि गरीत होतें हैं । यह बंदके  
बाहुलीकर वन अचकको सिन्धुवन होमबकने ११५ ई के कनवन पण  
वित करके मुअरी बार बाक वर बीर कलके पाण्डुरी हुल्लूक कर दिया  
व । बंदके बनाविबकल पुरीदित मली बालिसे बंदके बाकल पुन बीर  
बालिसेको गनेपाडमी किलाकर रखा । होमबक बालिसेके बालुमें पण  
पाण्डुरीकर बी बकल हो गया और बाले कनवा पाण्ड पुन गल वर  
किया । ११५७-१९ ८ ई एक बंदके पाण्ड किया । वरमण्डर बंदके  
बीर पुन कनवाकर वन वितीकने १९ ८ के १९५५ ई एक वितीक पुन  
पाण्डव वन १९५५के १९५९ ई एक बीर पुन वितीकने बीर १९५५के  
१९५८ तक पाण्ड किया । यह बंदी बालिसे बीर पुनीक बालिसे बी  
बाले पुन बंद कलपाडिनापी कलपाडि बीरबालिसे बंकरेड

१२७५ ई० लगभग) को इगने समुचित शिक्षा दी थी। कामिराय बड़ा विचारसिद्ध था। आचार्य अजितसेन उसके गुरु थे। इसी राजाके लिए उन्होंने शृंगारमंजरी और अलंकार-वितामणि नामक संस्कृत ग्रंथोंकी रचना की थी। उसीके लिए विजयवर्णीन शृंगागणवर्त्तिका रचो थी। १६वीं शताब्दीके अन्तमें विवाह-सम्बन्धोंके द्वारा यह वंश फार्गलके भैरवत वंशमें मग्न हो गया। उससे उपरान्त भी सम्भवतया इसका कुछ अस्तित्व १८वीं शती तक बना रहा।

( १२ ) बेजवाटाके परिच्छदि पादुपति राजे और घायकटके कीर्ति राजे आद्य देशक प्रमुख सामन्त वंश थे। ये लोग दौंव थे और जैनधर्ममें भारी विद्वेष रखते थे। आद्य देशमें जैनधर्मके पतनका अधिक श्रेय इहाँ सामन्त वंशकों है।

**वारगलके फकातीय—**११वीं शताब्दीके मध्यके लगभगतेलगानेमें फकातीय वंशका उदय हुआ। वारगलको राजधानी बनाकर इन्होंने शीघ्र ही अपनी शक्ति बढ़ायी और एक अच्छा स्थिर राज्य स्थापित कर लिया। १३वीं शताब्दीमें इस राज्यका अम्युदय रहा। रुद्रका उत्तराधिकारी राजा गणपतिदेव ( ११९९-१२६० ई० ) इस वंशका प्रसिद्ध और शक्तिशाली नरेश था। उसके समयमें तैलेगु मद्रासराज्यके रचयिता टिपकन सोमय्य नामक हिन्दू विद्वान्ने क्षाम्नाथमें जैनियोंको पराजित किया बताया जाता है। उसी समयसे इस राज्यमें जैनधर्मका पतन प्राग्भ हुआ प्रतीत होता है। राजा कट्टर शैव बन गया और जैनियोंपर समने भारी अत्याचार किये। उसके उपरान्त वारगलमें रानी रुद्रम्मा ( १२६१-१२९१ ई० ) का राज्य हुआ। यह इस वंशकी अन्तिम शक्तिशाली एवं महान् शासक थी, उसका उत्तराधिकारी रुद्रदेव ( १२९१-१३२१ ई० ) था। १३२१ ई० में मुहम्मद तुगलकने वारगलके अन्तिम फकातीयनरेशको पराजित करके तेलगानेके इस हिन्दू राज्यका अन्त किया। वारगलका प्राचीन नाम एकपौलनगर था। इस प्रान्तसे सम्बन्धित कैफ़ियतोंके आधारपर प्रो०

[illegible]

( ११ ) तुलसीदासजी वंशशाहिका संग्रह—यह बीच अस्मिन्  
काल तक वंशपरम्पराओं का है । आधुनिक वंशपरिचय वंशशाहिके वंशपरिचयों  
ही एक सामान्य-के भिन्न-से अतीत होती हैं और वे अपने एकदुसरेके बीच  
तुलनात्मक सम्बन्धोंके सम्बन्धोंके कारण ही अतीत होती हैं । यह उनके  
परस्परिक वंश सम्बन्धों विष्णुवन्धन हीनवन्धन ११४० ई के सम्बन्ध पर  
विश्रुत करके पुनर्भी बार-बार का और उनके सम्बन्धों तुलनात्मक कर दिया  
था । उनके स्थानिकता गुणोद्दिष्ट, अपनी आरिषे उनके बापक पुत्र और  
परिवर्तनों मन्त्रिपरिचय कियाकर रहा ; हीनवन्धन परस्परिके सम्बन्धों का  
परस्परिक ही सम्बन्ध ही था और उनके सम्बन्ध परस्पर पुत्र सम्बन्ध कर  
किया । ११५०-१२८ ई तक उनके सम्बन्ध दिया । तुलनात्मक उनके  
स्वीकृत पुत्र परस्परिक वंश शिरीषके १२८ के १२९५ ई तक शिरीष पुत्र  
सम्बन्धन वन्धन १२९५ से १२९५ ई तक और पुत्री विष्णुवन्धनके १२४ के  
१२४४ तक सम्बन्ध किया । वह वन्धन वन्धन और पुत्रीय सम्बन्धों को  
अपने पुत्र एवं वन्धनपरिचारी परस्परिक वंशपरिचय वंशपरिचय ( १२९५

संस्थापक सैलप द्वितीयका मित्र और सहायक था और जिन्होंने सैन्य तथा उससे पुत्र मत्स्यायय चाण्डवर्षकी ओरसे पारके परमारों ( मुन्न और भोज ) के साथ युद्ध किये थे । मुन्नी मृत्यु इसी मित्तमके हाथसे हुई बतायी जाती है । उसका पौत्र मित्तम तृतीय चाण्डवर्ष-सम्राट् सोमेश्वर प्रथमका महासामन्त था और उसका विवाह भी सोमेश्वरकी बहनके साथ हुआ था । इसी समयसे इन सुएन यादवोंकी शक्ति बढ़नी प्रारम्भ हुई । मित्तम तृतीयकी बीवी पौढ़ोमें सुएन द्वितीय विक्रम पंठवा उसके भाईके विरुद्ध सिंहासन प्राप्तिमें सहायक हुआ था । चाण्डवर्षकी अवनतिसे राज ठठाकर यादव शक्तिशाली हो गये ।

सुएन द्वितीयका प्रपौत्र मित्तम पंचम ( ११८७-९१ ई० ) देवगिरि-के स्वतंत्र यादव राज्यका वास्तविक संस्थापक था । उसने पन्नाणीपर भी अधिकार कर लिया था किन्तु देवगिरिकी ही अपनी राजधानी बनाया । ११९० ई० में होयमल-नरेग धीरवल्लाल द्वितीयने सोरतूरके युद्धमें मित्तमको पराजित किया और उसे वृष्णाके पार भगा दिया । मित्तमके पुत्र जैतुगि ( ११९१-१२१० ई० ) ने वारणलके कफातोय राजा धद्रकी युद्धमें मारकर गणपति देवकी कफातोयोंके सिंहासनपर बैठाया । जैतुगिका पुत्र मिहान ( १२१०-४७ ई० ) इस वंशका सर्वमहान् और अपने समय-का सर्वाधिक शक्तिशाली नरेग था । उसने होयमल बन्नालकी भी पराजित किया और १२२२ ई० तक बनवासी प्रान्तको अपने अधिकारमें रखा । उसने गुजरातपर भी आक्रमण किया, फलस्वरूप गुजरातके राजा लावण्यप्रमादने १२३१ ई० में उसके साथ संधि कर ली । मिहानने अजुन, लक्ष्मीधर, मम्मागिरिके सिंह तथा जज्जल, कक्कल, हम्मौर आदि राजाओं और सामन्तोंको भी पराजित करके अपने अधीन किया बताया जाता है । उसका पुत्र जैतुगि उसके जीवनमें ही मर गया था अतः उसके बाद उसका पौत्र कृष्ण ( १२४७-६० ई० ) राजा हुआ । उसने भी मालवा, गुजरात, कोंकण और चोल देशोंकी विजय की थी । कृष्णका छोटा भाई महादेवरा





सर्वाधिक तैलप द्वितीयका मित्र और सहायक था और जिसने तैल तथा उसके पुत्र सत्याश्रय चालुक्यकी ओरसे धारके परमारों ( मुज और भोज ) के साथ युद्ध किये थे । मुजकी मृत्यु इसी भिल्लमके हाथसे हुई बतायी जाती है । उसका पुत्र भिल्लम तृतीय चालुक्य-सम्राट् सोमेश्वर प्रथमका महासामन्त था और उसका विवाह भी सोमेश्वरकी बहनके साथ हुआ था । इसी समयसे इन सुएन यादवोंकी शक्ति बढ़नी प्रारम्भ हुई । भिल्लम तृतीयकी चौथी पीढ़ीमें सुएन द्वितीय विक्रम पण्ठका उमके भाईके विरुद्ध सिंहासन प्राप्तिमें सहायक हुआ था । चालुक्योंकी अवनतिसे लाभ उठाकर यादव शक्तिशाली हो गये ।

सुएन द्वितीयका प्रपुत्र भिल्लम पचम ( ११८७-९१ ई० ) देवगिरि-के स्वतंत्र यादव राज्यका वास्तविक संस्थापक था । उसने कल्याणीपर भी अधिकार कर लिया था किन्तु देवगिरिको ही अपनी राजधानी बनाया । ११९० ई० में होयसल-नरेश वीरवल्लाल द्वितीयने सोरतूरके युद्धमें भिल्लमको पराजित किया और उसे कृष्णाके पार भगा दिया । भिल्लमके पुत्र जैतुगि ( ११९१-१२१० ई० ) ने वारंगलके ककातीय राजा रुद्रको युद्धमें मारकर गणपति देवकी ककातीयोंके सिंहासनपर बैठाया । जैतुगिका पुत्र मिह्न ( १२१०-४७ ई० ) इस वंशका सर्वमहान् और अपने समय-का सर्वाधिक शक्तिशाली नरेश था । उसने होयसल वल्लालको भी पराजित किया और १२२२ ई० तक वनवासी प्रान्तको अपने अधिकारमें रखा । उसने गुजरातपर भी आक्रमण किया, फलस्वरूप गुजरातके राजा लावण्यप्रसादने १२३१ ई० में उसके साथ मन्धि कर ली । सिंहनने अर्जुन, लक्ष्मीधर, भम्भागिरिके सिंह तथा जज्जल, कषकल, हम्मीर आदि राजाओं और सामन्तोंको भी पराजित करके अपने अधीन किया बताया जाता है । उसका पुत्र जैतुगि उसके जीवनमें ही मर गया था अतः उसके बाद उसका पुत्र कृष्ण ( १२४७-६० ई० ) राजा हुआ । उसने भी मालवा, गुजरात, कोंकण और चोल देशोंकी विजय की थी । कृष्णका छोटा भाई महादेवरा



अथवा उसके पोषक रहे प्रतीत होते हैं किन्तु उनके वंशज देवगिरिके यादव नरेश प्रायः सब ही हिन्दूधर्मके अनुयायी थे। किन्तु साथ ही वे जैनधर्मके प्रति भी सहिष्णु थे और साहित्य एवं कलाके भी रसिक थे। सिंहन यादवके आश्रयमें ही ज्योतिषाचार्य भास्करभट्टने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सिद्धान्त-शिरोमणिकी रचना की थी। इस आचार्यकी ज्योतिषविद्याके शिक्षणके लिए उस नरेशने एक विद्यालय भी स्थापित किया था। यह राजा संगीत-विद्याका भी मर्मज्ञ था और उसने सारंगधर नामक संगीताचार्यसे संगीत-रत्नाकर नामक ग्रन्थकी रचना करायी थी। कर्णाटकीय संगीतके सैद्धांतिक पक्षपर यह सर्वप्रथम ग्रन्थ माना जाता है। इसी समयके लगभग जैनाचार्य पाश्वदेवने भी सम्भवतया इसी नरेशके आश्रयमें अपना संगीत-समयसार नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ रचा था। पाश्वदेव श्रीकान्तजातीय आदिदेव और गौरीके पुत्र तथा महादेवाचार्यके शिष्य थे और श्रुतिज्ञानचक्रवर्ती एवं संगीता-कर उनकी उपाधियाँ थीं। आधुनिक विद्वान् उन्हें संगीतशास्त्रका प्रकाण्ड विद्वान् और उनके ग्रन्थकी संगीत विषयकी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति मानते हैं। यादव नरेश महादेवराय एवं रामचन्द्ररायका एक प्रमुख सामन्त कूचिराज था, इसे पाण्ड्यदेशके मध्यमें बेतूर प्रदेशका शासक नियुक्त किया गया था। कूचिराजके गुरु भूलसध-सेनगण-योगलिंगच्छके पद्मसेन भट्टारक थे। उनके उपदेशसे कूचिराजने बेतूरमें लक्ष्मी-जिनालयका निर्माण कराया था और उसके सरक्षणके लिए कुछ भूमि, एक दूकान और कई उद्यानोंकी आय दान की थी। अपने उत्कर्षकालमें उत्तरमें गुजरातसे लेकर दक्षिणमें तुंग-भद्रा तक यादव-राज्यका विस्तार था।

**द्वारसमुद्रका होयसल वंश**—पूर्वमध्यकालमें दक्षिण भारतका यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली राज्यवंश था। पूर्व दक्षिणमें मैसूरसे लेकर उत्तरमें तुंगभद्रा नदी पर्यन्त सम्पूर्ण प्रदेशपर होयसल-नरेशोंका अधिकार था। द्वारावती (द्वारसमुद्र या दोरसमुद्र) इनकी राजधानी थी और ये द्वारावतीपुरवराधीश्वर कहलाते थे। ये लोग अपने-आपकी

नीलकुन्ने कुर्बली करिव बनाई वे । होमबलीका मूल विद्यालय  
पवित्रवीचारेवर मुरवेरे तावळेवे सिवत अंधविचार बाध बाधकुर स्त  
वा । पर स्वाध स्वमेवे ही जैनधर्मका एक प्रमुख वेग उठा मज्ज वा ।  
होमबलीक पुस्तक अस्मिन् राज्यकुटी एवं कतारवादी वापुस्तीके वाचारे  
बोलीके वाक्य बाध वे और मज्जबलया अंधविदे ही बाधक वे ।

११वीं पंथी ई क आरम्भमें हम बंधन मुक्ति का एक मार्ग एक ही  
मार्गदर्शक वा । यह महत्वालाही और कताही का किन्तु सिद्धांत  
एवं व्यवस्था-विहीन वा । १२५ ई के अन्तर्गत अंधविदे ही पुनर्पुनरा-  
वृत्तिवक-मुक्तपदार्थके बोली कटारकके सिद्ध विमलकान्त बलिनीने  
मन्त्रांतरण किया वा और हम कल्पवल्ली बंधनीक इतिवर्तनी एवं कान्त  
मुद्रा स्वरक स्थापित किया वा । कल्पवल्ली इन्ही विमलकान्तों में सिद्ध  
विद्यमानतामें मुनीन्द्र मुद्रा वर्षबाध अंधवि चीन वेगके प्रत्यक्ष दूर वे ।  
बनारके कटार ११-१२वीं पंथानीकी कई मुद्रा विमलकान्तों की मिली  
मकरांतरण और इनके सिद्ध चीन वेनी वाचालिका ( १२५वीं ) का  
विचार दक्षिण वा । इन्ही स्वाधवर कल्पवल्ली मुक्त बंधनवला विचारों  
विद्यमान वा विद्यमान अनेक मुद्रा, पंथानी और मुनि विद्या एवं  
कराई वे ।

एक दिन कल्पवल्ली का वाचालिकोंके बलिनीके सिद्ध अनेक मुद्रा  
मुक्तोंके कहेके ही किसी विमलका कल्पवल्ली कर रहा वा । इनमें एक  
कल्पवल्ली किन्तु बलिनीके विमलकान्त मुद्राके अन्तर्गत था । मुद्रा कल्पवल्ली  
( वा कल्पवल्ली ) कल्पवल्ली और कल्पवल्ली कहा 'नीलकुन्ने' ( ई कान्त,  
होम वा ) । और कल्पवल्ली मुद्रा का एक प्रकार का ही सिद्धि और  
विद्या । कहा कहा है कि मुद्रा कल्पवल्ली कल्पवल्ली और कल्पवल्ली पंथानी  
कराईके सिद्ध ही कल्पवल्ली का सिद्धि मुद्रा की थी । जो भी ही उनके  
एक वाचालिक मुद्रा कल्पवल्ली मुद्रा, कल्पवल्ली कल्पवल्ली सिद्ध, कल्पवल्ली  
सिद्ध स्वाधवर पंथानी स्थापित कराईका कल्पवल्ली सिद्ध और सिद्ध ही कल्पवल्ली

विजय-चिह्न निश्चित किया। इस घटनासे सल, पोयसल कहलाने लगा जो कालान्तरमें होयसल शब्दमें परिवर्तित हो गया और सल-द्वारा स्थापित राज्यवशका नाम हुआ। उपरोक्त घटना लगभग १००६ ई० की है।

पोयसल ( १००७-१००२ ई० ) ने गुरु सुगतके उपदेश और पथ-प्रदर्शनमें अपनी राज्यशक्तिको नींव डालनी प्रारम्भ की। पोयसल कर्णाटककी एक पार्वतीय जातिसे सम्बन्धित था और उसको जननी सम्मन्त्रतया एक गग राजकुमारी थी। इस कालमें चोलो-द्वारा गगवाडि राज्यका अन्त कर दिये जानेसे कर्णाटक देशकी स्थिति सङ्कटापन्न थी अतः पोयसल अपनी वीरता एवं योग्यतासे चालुक्योंका एक महत्त्वपूर्ण सामन्त हो गया और चोलों तथा उनके कोगाल्वर्धशी सामन्तसि युद्धो-द्वारा शनै-शनै प्रदेश छोनकर वह अपनी शक्ति बढ़ाने लगा। उसके पुत्र विनयादित्य प्रथम ( १०२२-१०४७ ई० ) और पौत्र नृपकाम होयसल ( १०४७-१०६० ई० ) ने पोयसल-द्वारा प्रारम्भ किये कार्यको चालू रखा और वे अपनी शक्ति बढ़ाते रहे। गुरु सुगत वर्धमान हो उनके भ्रमर्षगुरु एवं राजगुरु थे और शासन-प्रबन्ध एवं राज्य-सञ्चालनमें उनका सक्रिय भाग-दर्शन करते थे।

नृपकामके उत्तराधिकारी विनयादित्य द्वितीय ( १०६०-११०१ ई० ) के गुरु शान्तिदेव थे। श्रवणबेलगोलकी पार्श्वनाथ वसति ११२९ ई०। शिलालेखसे प्रकट है कि 'गुरु शान्तिदेवकी पादपूजाके प्रमादसे पोयसल नरेश विनयादित्यने अपने राज्यको शीसम्पन्न किया था।' १०६२ ई० अगदिमें ही शान्तिदेवने समाधिमरण किया और उस उपलक्ष्यमें राजा तथा उसके समस्त नागरिक जनोंने वहाँ उनका स्मारक स्थापित किया था 'इस राज-गुरुके उपदेशसे महाराज विनयादित्यने प्रसन्नतापूर्वक अने जिनमन्दिर, देवालय, सरोवर, ग्राम और नगर निर्माण किये।' 'निर्माण कायमें वह बलीन्द्रसे भी आगे बढ़ गया।' उत्तरायण सङ्क्रमण अवसरपर १०६२ ई० में ही इस नरेशने मेघचन्द्रके शिष्य बेलबेके जैन



कर रही थी, वह स्वयं एक असाध्य रोगसे पीड़ित हो गया। उस अवसर-  
पर गुरु चान्कीतिने उसे अपने अद्भुत औषधि प्रयोगसे दीर्घ ही नीरोग  
एवं स्वस्थ कर दिया था। ११०३ ई० में बल्लाल प्रथमने मरघने दण्ड-  
नायककी तीन सुन्दरी बन्ध्याओंका विवाह सुयोग्य वरोंके साथ स्वयं कराया  
था। ११०४ ई० में उसने चंगान्व राजाओंको पराजित करके अपने  
अधीन किया। जगदय मान्तरन स्वयं बल्लालको राजधानीपर आक्रमण  
किया तो उगने उसे बुरी तरह पराजित करके भगा दिया और साथ ही  
उसके कोप और प्रमिद रत्नहारको भी हस्तगत कर लिया। इस राजाने  
बेलूरको अपनी राजधानी बनाया था।

उसका उत्तराधिकारी उसका अनुज सुप्रसिद्ध विट्टिदेव ( विष्णुवर्धन )  
होयसल ( ११०६-११४१ ई० ) था। यह हम वक्ताका सव-प्रसिद्ध नरेश,  
भारी योद्धा महान् विजेता और अत्यन्त शक्तिशाली राजा था। द्वार-  
समुद्रकी उसने अपनी राजधानी बनाया। उसने चालुक्योंकी अधीनतामें  
अपने आपको प्रायः मुक्त कर लिया और चोलोंको देशसे निकाल भगाया।  
स्वतन्त्र होयसल-राज्यका वह वास्तविक सत्पात्र था और होयसल-  
साम्राज्यकी नींव डालनेवाला था। उत्तरकालीन वैष्णव ग्रन्थों एवं अनु-  
श्रुतियोंके आधारपर आधुनिक इतिहास पुस्तकोंमें प्रायः यह लिखा पाया  
जाता है कि इस राजाके समयमें वैष्णवाचार्य रामानुजने जैनियोंको  
शास्त्राथमें पराजित किया फलस्वरूप राजाने जैनधर्मका परित्याग कर  
दिया, वैष्णवधर्म अंगीकार कर लिया, अपना नाम बदलकर विष्णुवर्धन  
रखा, जैनियोंपर अत्याचार किये, यहाँतक कि जैनगुरुओंको धानोंमें पिलवा  
दिया, श्रवणबेलगोलके बाहुबलिकी मूर्ति और अन्य जैन मन्दिर तुहबाये,  
वैष्णव मन्दिर बनवाये और वैष्णवधर्मके प्रचारका अपना प्रधान लक्ष्य  
बनाया। किन्तु वास्तवमें ये कथन मिथ्या और अमपूर्ण हैं। रामानु-  
जाचार्य सिरुचिरापल्लीके निकट थारगम्मे निवासी थे, काचीमें उन्होंने  
शिक्षा पायी थी, शङ्कराचार्यके अद्वैत वेदान्तके विरोधमें वे विशिष्टाद्वैत





परिवर्तनसे नहीं है, यह नाम उसका पहलेसे ही था, अन्यथा स्वयं जैन शिलालेखोंमें इस नामसे उसका उल्लेख न होता। वस्तुतः कर्णाटकके राजा लोग बहुधा अपने मूल कन्नडिग नाम ( यथा विट्टिग या विट्टिदेव ) के साथ-साथ विनयादित्य, विष्णुवर्धन आदि जैसे संस्कृत उपनाम भी रख लेते थे। प्राचीन चालुक्यों, राष्ट्रकूटों आदिमें बराबर ऐसा होता था, स्वयं होयसळ वसमें दोनों प्रकारके नाम पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त ११२१ ई० में महाराज विष्णुवर्धनने अपने प्रधान सेनापति गगराजके अनुज सोवणके हितार्थ हादिरवागिलु जैन वसदिको दान दिया। ११२५ ई० में इस नरेशने जैनगुरु श्रीपाल त्रैविद्यप्रतीका सम्मान किया। चामराजपट्टन तालुकेके शाल्य नामक स्थानसे प्राप्त उसी वर्षके शिलालेखके अनुसार अदियम, पल्लव नरसिंहवर्म, कोग, कल्पाल, अगर आदि राजाओंके विजेता इस होयसळ-नरेशने भक्तिपूर्वक शाल्यनगरमें एक जैन विहार बनवाया और उस वसदिके लिए तथा उसमें जैन ऋषियोंके संरक्षणके लिए वादोमसिंह, वादिकोलाहल, तार्किकचक्रवर्ती आदि विरुद्रप्राप्त स्वर्गणनायक विद्वान् जैनगुरु श्रीपालदेवको वही ग्राम तथा अन्य समुचित दानादि प्रदान किये। ११२९ ई० में इस राजाने बेलूरके मल्लि जिनालयके लिए दान दिया। ११३० ई० में इसके सेनापति गगराजके पुत्र बोप्पने रुवारि द्रोहघरट्टाचारि कन्नै-द्वारा राज्याश्रयमें छान्तीश्वर वसदिका निर्माण कराया। इस कालमें दण्डनायक मरियाने और भरत नामक भर्षेने पाँच वसदियाँ बनवायीं, जिनमेंसे चार देशीगणके लिए और एक काणूरगणके लिए थीं, तथा काणूरगण त्रिंजिणी-गञ्जके गुरु मुनिभद्रके शिष्य मेघवन्दर सिद्धान्तोको दान दिया। राजधानी द्वारसमुद्र ( हलेबिड ) के निकट वस्तिहल्लिकी प्रसिद्ध पाश्वनाथ वसदिका सन् ११३३ ई० का शिलालेख भी इस राजाको परम धार्मिक भव्य सूचित करता है। इस लेखमें यह भी उल्लेख है कि स्वयं राजधानी द्वारसमुद्रमें महाराजके एक महान् जैन दण्डाधिपति विजयपाश्वदेव नामका सुप्रसिद्ध जिनालय बनवाया था और महाराज विष्णुवर्धनने उक्त जिनालयके मूल

कारिक विरहवामनदेवके नामपर अपने कवनात् पात्रकुमारका नाम विम-  
नरनिर्देश कथा था । तथा वह कवनात्तर द्वारकामुखे ही एक वन  
विनायकके किम् आचमन नामका नाम प्रदान किया था । इन दोनों  
पंडितमंडलकी और सम्प्रदायबुद्धानां विषय आने विही वे जो कभी  
बट-गरामण्डपें लखते बराबर भजते रहें । सम्प्रदायबुद्धानां विषय ही जै-  
बनके द्वि शोभनक-मैत्रीकी कनीय विज्ञाना विधायक हैं ।

महाराज विष्णुवर्धनजी महामहिमी उत्तमजीकी अल्प मुदती सिद्धि,  
कही नामकी और कहीका नाटी-रत्न की । उक्तके सिद्ध लंकाई कुल वा  
एवं धर्मधर्मकी क्रांति दूर दूर थी । इसका किता वेमोहोर्ध्वज  
कट्टर धर्म का और अल्प धर्मधर्मकी कही कबार वरद की थी ।  
पानीके पुत्र प्रभावना विज्ञान वैद्योपक-गुणकमंडके देवदत्त वैदिकोके  
विषय थे । महाराजो ज्ञानमोहीनी धर्मधर्मकी प्रभावनाके किम् ल्यागी धर्म  
विषय । उक्तके अनुसन्ध ( मुनिधर्म आश्रमधर्म आरम्भधर्म एवं धर्मध-  
र्म ) का कारण किता धर्म प्रभावके दल देवी और अमराधुनिक  
पुण्यधर्म मुनिके उक्त वरद अल्प ज्ञान था । ११२३ ई . में उक्त  
धर्मधर्मकी लंकाई क्रांति विज्ञानकी कृति अतिविषय की गई अति-  
कवनात्त नामकी एक नाम मुनर कवनि विधीय कराती अमराधुनिक  
अनुसन्धिर्धर्म वनके किम् लंकाईकी एक नाम ईद किया, अल्पधर्म मुन  
ज्ञान मुनि प्रभाव की । अपने अनुसन्ध धर्मधर्मके उत्तम-नाम एक नाम  
ज्ञान की-धर्मधर्म-विनायकके किम् ज्ञान किया । अपने धर्मधर्म नामकी  
आने वह पात्रमहिमी सम्प्रदायबुद्धानां और विनायकमंड कट्टरकी ।  
११३१ ई . में उक्तके विनायक-धर्मधर्म लंकाईकी अति-धर्मधर्म धर्मधर्म  
किता । इनपर कवनी नामकी धर्मधर्मके की अमराधुनिक अमर एक  
नामकी धर्मधर्मधर्मधर्म लंकाईमंड किया । उक्त नाम वही मुनि प्रभाव  
धर्मधर्मधर्म और विनायक धर्मधर्म वे और लंकाई उक्त धर्मधर्मके लं-  
काईकी कृति-मुनि धर्मधर्म की थी । विष्णुवर्धनकी लंकाई मुनो पञ्चमहिमी

विवरसि भी, जो सिंह सामन्तसे विवाही थी, बड़ी धर्मात्मा थी।  
 ११२९ ई० में हन्तियूरमें इस  
 कुमारीने गोपुर आदिसे मण्डित एक उत्तुंग सुन्दर जिनालय बनवाया  
 और उसके लिए अपने पिता महाराजसे निशुल्क भूमि प्राप्त करके  
 रुको दान दी थी। महाराज विष्णुवर्धनके मन्त्रिया, सेनानायको,  
 न्त सरदारों एवं राज्य-कमचारियोंमें-से भी अधिकांश जनधर्मानुयायी  
 वस्तुतः विष्णुवर्धन होयसलकी महत्ता, शक्ति, समृद्धि और विजयोका  
 क श्रेय उसके प्रचण्डवीर जैन सेनापतियोंको है। उन्होंने ही होयसलों-  
 क्षिण, दक्षिणपूर्व, पूर्व और पश्चिमवर्ती समस्त दुर्द्धर शत्रुओंका संहार  
 ा था और द्वांसमुद्रक नरेशोंको एक शक्तिशाली साम्राज्यका अधिपति  
 दिया था।

इन जैन-वीरोंमें सर्वप्रमुख महाराज विष्णुवर्धनका प्रधान सेनापति  
 राज था। यह कौण्डिन्यगोत्री द्विज था। इसका वंश पहलेसे ही जैनधर्मका  
 अनुयायी रहता आया था। गंगराजका पिता एचिगक या बुद्धिमित्र  
 सल नृनकामका मन्त्री और सेनानायक था और मल्लूरके कनकनन्दि  
 का शिष्य था। उसकी माता पोषिकव्वे भी बड़ी धर्मात्मा थी,  
 २० ई० में श्रवणवेलगोलमें इस साध्वीने सन्यासमरण किया था।  
 नी वीरता, पराक्रम, राज्य-सेवाओं एवं धर्मभक्तिके कारण गंगराजने  
 सामन्ताधिपति, महाप्रधान महाप्रचण्ड, द्रोहघरदृ, दण्डनायक, होय-  
 नरेशको राज्याभिषिक्त करनेके लिए पूर्णकुम्भ चार दानमें उत्पन्न,  
 स्निग्ध आदि अनेक विरुद प्राप्त किये थे। शिलालेखोंसे प्रतीत होता है  
 अपने बड़े भाई बल्लाल प्रथमको मृत्युके उपरान्त एक अथ भाई  
 यादित्यके विरोध और पाण्ड्य एवं मातङ्गकी शत्रुताके कारण विष्णुवर्धन-  
 स्थिति बड़ी दुर्वाहाल थी और यह गंगराजका ही पराक्रम था कि  
 ने उन सब शत्रुओंका दमन करके विष्णुवर्धनके लिए मिहासन निष्कण्टक  
 या और उसका राज्याभिषेक कर दिया। वह महाराज विष्णुवर्धनका



चमदियोंके जोर्णोंद्वार एवं सरदारण, मवीनोंके निर्माण और विविध स्तूपोंमें जिनधर्मको प्रभावनाके हित व्यपकी। दिलालेस्वामें उगकी मुलना गोमट्टप्रतिष्ठापक गग-सेनापति चामुण्डरायसे की गयी है। किन्तु ऐसा धर्मात्मा एव जिनभक्त होते हुए भी गगराजके सम्मुख राजनीति पहले और धर्म पीछे था, उसका धर्म उसकी राजनीतिमें सहायक एव साधक था, बाधक नहीं। वह अनन्य स्वामिभक्त था। गगराजका पुत्र और पत्नी भी परम जिनभक्त थे। उसके पुत्र बोप्प और गतोजे एचिराज उसके जीवनमें ही प्रसिद्ध दण्डनायक थे। ११३३ ई० में गगराजकी मृत्यु हो जानेपर एचिराजने राजधानी द्वारममुद्रमें ही अपने पिताकी स्मृतिमें द्रोहधरट्ट-जिनालयका निर्माण कराया जो अत्यन्त विशाल, सुन्दर और कलापूर्ण था। यही जिनालय विजय-पाशवदेवके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा होनेपर जब पुजारो जिनेन्द्रके अभिषेकका पवित्र गघोदक लेकर राजाके सम्मुख पहुँचा तो विष्णुवर्धन उस समय बंकापुरमें छावनी डाले पड़ा था और वह मसण कदम्ब नामक एक दुर्द्वर शत्रु सामन्तका सहार करके निवृत्त हुआ था और तभी उसकी रानी लक्ष्मी महादेवीने पुत्र प्रसव किया था। राजाने अत्यन्त आनन्दित होकर पुजारीका स्वागत किया, खड़े होकर करबद्ध उसे नमस्कार किया और गघोदकको भक्तिपूर्वक मस्तकपर चढ़ाया तथा कहा कि 'भगवान् विजय-पाशवदेवकी प्रतिष्ठाके पुण्य फलसे ही मैंने आज यह विजय और पुत्र प्राप्त किये हैं।' तदनुसार ही उसने नवजात शिशुका नामकरण किया और मन्दिरको ग्राम भेंट किया। सेनापति बोप्प अपने पिता गगराजकी भाँति उदार और वीर था। उसने शान्तोद्भर वसदि और थलोक्परजन अपर नाम बोप्पन चैत्यालयका निर्माण कराया। वह भारी विद्वान् भी था। उसके गुरु नयकीर्त्ति सिद्धान्तचक्रवर्ती थे। बोप्पकी माता और गगराजकी पत्नी लक्ष्मले या लक्ष्मीमती दण्डनायकित्ति गुरु शुभचन्द्रकी शिष्या थी, वह अपने पतिके युद्ध एवं राज्य-कार्यमें भी उसकी सक्रिय सहायक रही थी,



भारद्वाजगोत्री मरियाने प्रथमके पौत्र और दाबरसके पुत्र भ्रातृद्वय मरियाने और भरतेस्वर भी महाराज विष्णुवर्धनके दण्डनायक थे। मरियाने दण्डनायकको तीन पुत्रियाका विवाह राजा बल्लाल प्रथमने स्वयं कराया था और यह स्वयं गगराजके जामाता थे। ये दोनों भाई महाराज विष्णुके समयमें सर्वाधिकारी, माणिकभण्डारी और प्राणाधिकारी पदापर आम्ह रहे। इनका सम्पूर्ण परिवार जिनमस्त था, अनेक जिनमन्दिरोका इन्होंने निर्माण कराया। इनके गुरु भाषनदिने शिष्यगण्डविमुक्तदेव थे।

गगराजका भतीजा और दण्डनाया बम्मका पुत्र एच भी विष्णुवर्धनके समयमें ही दण्डार्थीन हो गया था। यह भी वहा धार्मिक और धीर था किन्तु उसकी मृत्यु थोड़ी ही आयुमें हो गयी प्रतीत होती है।

होयगल एयरगके राजमन्त्री चित्रराज दण्डार्थीनका पुत्र हम्मडि दण्डनायक विद्विमध्य महाराज विष्णुका एक अग्रज और सेनानी था। बाल्यावस्थामें ही इसके माता-पिताकी मृत्यु हो गयी थी अतः स्वयं महाराजों उसका पालन-पोषण किया था। यह बालक इतना न्युत्साह था कि थोड़ी ही आयुमें अस्त्र शस्त्र तथा अथ विविध-विद्याओंमें पारंगत हो गया। एक राक्षसकी पुत्रीके साथ राजाने उसका विवाह कर दिया। युवा होनेके पूर्व ही यह बालवीर महाप्रबल दण्डनायक, सर्वाधिकारी, गवन्द-क्षेत्रकारी आदि पदविषयोंमें विभूषित हो गया था। एक समयके भीतर ही इस बाल-राजापतिने सौगुदेगपर नीगत आक्रमण करके दानुको युगे तथा पराजित करके अर्पण किया था, अतः उसकी पदवीके कारण यहाँ ही आयुमें यह धीर महाराजका दाहिना हाथ हो गया था। साथ ही यह परम धार्मिक भी था। श्रीपाद त्रैलोक्यदेव उसके गुरु थे और स्वयं राजाओं द्वारा मृत्युमें उठने विष्णुवर्धन शिालयका निर्माण कराया था, और वा प्रातः उस शाश्वत पुरस्कार-वस्त्र पहिने उसे उठने उठने मन्दिरके निकट तथा मुम्तिने आशान-दामके लिए गमनित कर दिया था।

इस प्रकार जयम अष्ट प्रधान जैन राजमन्त्रियों और धार्मिक सेनापतियोंके





माताका लोकाभिवेके और पत्नीका पद्मावती था। लक्ष्मण और अमर  
 नामके उसके दो भाई थे। यह पुरा परिवार जैनधर्मका परम भक्त था।  
 स्वयं हुल्ल न केवल उदारचेता, दानशील, मन्दिरोंका निर्माता और धर्मात्मा  
 जैन था वरन् वह व्यवहारकुशल, राजनीतिज्ञ, योग्य प्रशासक और  
 अपने समयका सर्वमहान् सैन्य-सचालक एवं धीर योद्धा भी था।  
 राज्यकी सेवामें वह महाराज विष्णुवर्धनके समयसे ही चला आ रहा था  
 और अब नरसिंहके समयमें महाप्रधान, प्रधान कोषाध्यक्ष, सर्वाधिकारी  
 एवं महाप्रचण्ड दण्डनायक आदि पदोंपर आरुढ़ था। अपने युद्धों, विजयों  
 और सुशासनसे उसने नरसिंहदेवके साम्राज्यको अक्षुण्ण एवं सुरक्षित  
 रखा। उसकी तुलना चामुण्डराय और गगराजसे की जाती थी। हुल्लके  
 व्रतगुरु कृष्णकुटासन मलधारीदेव थे। देवकीर्ति मण्डलाचार्यका भी वह  
 भक्त था और उसके स्वगुरु नमकीर्ति सिद्धातदेव थे। हुल्लने श्रवणघेल-  
 गोलपर चतुर्विंशति-वसदि नामका अत्यन्त सुन्दर एवं कलापूर्ण जिनालय  
 निर्माण कराया था। ११५९ ई० में स्वयं महाराज नरसिंहदेव जब दिग्वि-  
 जयके लिए निकले तो इस जिनालयका दर्शन करनेके लिए गये और प्रसन्न  
 होकर हुल्लकी उपाधि 'सम्पदवच्चूडामणि' के कारण इस वसदिका नाम  
 'भगवच्चूडामणि' रखा तथा उसके लिए एक ग्राम दान दिया। राजाने  
 उक्त स्थानकी वसदियोंकी जिनेन्द्र प्रतिमाओं, गोम्मटेश्वर और पार्श्वनाथ-  
 की भक्तिपूर्वक वन्दना एवं पूजा की। सेनापति हुल्लने केल्लगेरे बंक्रापुर  
 और कोप्पण तीर्थके अनेक जिन-मन्दिरोंका जीर्णोद्धार कराया, नवीन  
 मन्दिर निर्माण कराये, मन्दिरोंके संरक्षणके लिए दान दिये और कई दान-  
 शालाएँ स्थापित कीं। नरसिंहका तीसरा प्रसिद्ध सेनापति दान्तियण्ण  
 था। उसका पिता पारिषण्ण भी एक पराक्रमी योद्धा और राज्य कोषाध्यक्ष  
 था। आहममल्लको उसने पराजित किया था और उसी युद्धमें उसकी  
 मृत्यु हुई थी। दान्तियण्णकी माता वम्मलदेवी मरियाने दण्डनायककी पुत्री  
 थी और वही धर्मात्मा थी। उसके पिताकी मृत्युके बाद नरसिंहने दान्ति-



बेलगोलपर निर्मापित चतुर्विंशति वसदिके लिए दो गाँव दान दिये थे ।  
 ११७६ ई० में राजधानीके देवीसेट्टी नामक धनी सेठने वहाँ वीर बल्लाल-  
 जिनालय नामका सुन्दर मन्दिर राज्याश्रयसे निर्माण कराया और उसके  
 लिए स्वगुरु बालचन्द्र मुनिको दान दिया था । स्वयं राजाने भी कई गाँव  
 उसके लिए प्रदान किये थे । ११९२ ई० में राजधानीके अन्य चार प्रमुख  
 सेठोंने समस्त नागरिका एवं अन्य नगरोंके व्यापारियोंके सहयोगसे वहाँ  
 नगर-जिनालय नामका विशाल एवं सुन्दर मन्दिर निर्माण कराया था ।  
 इस मन्दिरका नाम अभिनव शान्तिदेश भी था । राज्यश्रेष्ठिके साथ महाराज  
 'प्रतापचक्रवर्ती वीरबल्लालदेव' स्वयं मन्दिरमें दर्शनार्थ गया और उसने  
 उसके लिए गुरु वज्रनन्दि सिद्धान्तको कई ग्राम दान दिये । सदैवकी भाँति  
 इस समय भी होयसल राजधानी द्वारसमुद्र जैन धर्मका गढ़ और भव्यों  
 ( जैन ) का प्रधान केन्द्र थी । जैनाचार्य श्रीपाल देव और उनके शिष्य  
 इस कालमें होयसलोंके राजगुरु थे । बल्लाल द्वितीयके समयमें भी होय-  
 सलोंके शौर्य और पराक्रमकी प्रतिष्ठाके आधार उसके जैन सेनापति और  
 मन्त्री ही थे । वृद्ध सेनापति हल्लके अतिरिक्त वसुधैकवाधव रेचिमय्य  
 बल्लालका अन्य प्रसिद्ध सेनानी था । इसके पूर्व वह विज्जल कलचुरिका  
 प्रधान सेनापति था, कलचुरियोंके पतनके पश्चात् वह बल्लालकी सेवामें  
 आया । वह दुर्द्धर योद्धा और कुशल सेनानी था, बल्लालकी अनेक विजयो-  
 का श्रेय उसे ही है । साथ ही वह बड़ा जिनमन्त्र था । उसने भागुदिके  
 रत्नत्रय जिनालयके लिए मुनि मानुकीर्तिको दान दिया, नागरखण्ड देशकी  
 अपनी राजधानीमें एक अति सुन्दर सहस्रकूट चैत्यालयका निर्माण कराया,  
 १२०० ई० में इस मन्दिरके लिए अपने गुरु सागरनन्दिको दान दिया और  
 महाराज बल्लालने भी उस अवसरपर उन्हें एक ग्राम दान दिया । उसी  
 वर्ष श्रवणबेलगोलमें भी उसने एक शान्तिनाथ वसदि बनवायी । मरियाने  
 दण्डनायकके पुत्र भरत और बाहुबलि भी बल्लालके स्वामिमन्त्र जैन  
 सेनानायक थे । बल्लालका एक अन्य सेनानायक वूचिराज था, वह राजाका



रको, तैलव्यापारियों और स्वयं महामण्डलेश्वरने भी इस मन्दिरके दान दिये । १२०० ई० में राज्यके एक अन्य सर्वाधिकारी मम्मट य्यने अपने स्वसुर बल्लय्यके साथ परवादिमल्ल-जिनालयके लिए एक की समस्त तैलमिलोका कर प्रदान किया था । राजाका एक दूसरा अधिकारी 'महापायसम-विरुद-नामोत्तदिष्टायकम' आदि पदारूढ नायक अमृत भी नयकीर्तिका शिष्य था और बल्लालकी उपराजधानी कुंडीका निवासी था तथा जाति एव कुलसे शूद्र था । अपने तीन योंके साथ १२०३ ई० में उस स्थानमें उसने एक्कोटि-जिनालयका ण कराया था और समस्त नगर-निवासियों एव कृषकोंके नायकोंके न भगवान् शान्तिनाथकी पूजा और मुनियोंके आहारके लिए भूमिदान था । सेनापति अमृत इतना उदारचेता था कि उसने ब्राह्मणोंके एक अग्रहार भी स्थापित किया था एवं एक शिवालय भी बनवाया । बल्लालके राज्याभिषेकके अवसरपर उसके एक अन्य पदाधिकारी चैराजने ११७३ ई० में बोगवदिक श्रोकरण-जिनालयके पार्श्वदेवके ए गुह अकलंकसिंहासन पद्मप्रभस्वामीको एक गाँव दान दिया था ।

बल्लाल द्वितीयने विद्वानोंका भी आदर किया और साहित्यको साहज दिया । उसके पूर्वजोंके प्रश्रयमें श्रीधरने जातकतिलक और चन्द्र-चरित ( १०४९ ई० ) की, नागवर्म प्रथमने चन्द्रचूडामणिशतक १०७० ई० ) की, नागचन्द्र 'अभिनवपम्प' ( ११०५ ई० ) ने मल्लिनाथ रेत एव रामचन्द्रचरित नामक चम्पुओंकी, ब्रह्मशिवने समयपरीक्षाकी, त्रिवर्मेने गोवैद्यकी और नागवर्म द्वितीयने काव्यालोकन, कर्णाटकभाषा-रण तथा वस्तुकोपकी रचना की थी । स्वयं बल्लाल द्वितीयके राजकवि मेचन्द्र ये जिन्होंने लीलावती नामक प्रेमगाथा लिखी थी, राजादित्य ११९० ई० ) ने व्यवहारगणित, क्षेत्रगणित और लीलावती नामक गणित य रचे, महाकवि जगन्नाथ ( १२०९ ई० ) ने यशोधरचरित, जगदल्लसोमनाथ-कपट्ट-कल्याणशरक नामक वैद्यक ग्रन्थ, बन्धुवर्म वैश्यने हरिवंशाम्बु-

१५ और बीजबन्धोवन विद्युत्कारके संस्थापना और विद्युत्-  
 कन्दारके बनविना और बहके-बाई बलिबार्जुनने मुक्तिमुक्ति  
 ( १९१५ ई ) की रचना की थी । उपरोक्त विज्ञान शब्द का ही रूप है  
 और बहक नाटिकाके पुरस्कर्ता है । उनके बहके विवरणों में  
 कर्मोंन विज्ञान और मुक्तिकाके बड़े समूह हैं । और बहकने बहके  
 बीजबन्ध-वाद्य-गद्यकी विचार-बुद्धि की हुई विशेषकर बहकनीय ।  
 १९१२ ई में वैश्वविकी कागजीर विज्ञान शब्द काके बहके बीज  
 बहकी कागजीर बलिबार्जुन बहकिक विज्ञानकी पत्रिका का  
 विरा का ।

और बहकनेकी मुक्ति कागजीर इन बहकी बहकिक शब्दों में  
 की । १२१ ई में बहका पुन बहकिक विज्ञान शब्दों का, बहकना  
 बीज बहक बहकना ही बहकी मुक्ति ही की । बहकने बहकने विज्ञान  
 बीज बीजबन्ध पत्रिका का । बहकी मुक्ति १९१५ ई में हुई । बीजबन्ध  
 की पत्रिका की बहका काग विज्ञानकी का और बहकिक बहकिक ।  
 बहकना पुन बहकिक मुक्ति का और बहकिक बहकिक । बीजबन्ध  
 बीजबन्ध-वाद्य ही बहकिकबहकिक बहकिक बहकिक बहकिक ही बहके  
 बहकिक बहकिक पत्रिका बहकिकबहकिक बहकिक ही की की विज्ञान  
 पुनने बहकिक बहकिक बहकिक बहकिक बहकिक बहकिक ही । बहकिक  
 बीजबन्ध काग विज्ञानकी बहकिक बहकिक बहकिक बहकिक बहकिक  
 बहकिक । बहकिक बीज विज्ञानकी बहकिक बहकिक बहकिक बहकिक  
 बहकिक ही का काग बहकिक बहकिक ही का बीजबन्धकी मुक्ति काग  
 १९१५ ई १९१४ ई का बहकिक बीज मुक्ति कागबहकिक बीज बहकिक  
 बहकिक बहकिक बीज ही का । बहकिक बहकिक बहकिक बहकिक  
 बहकिक बहकिक बहकिक बीज और बहकिक बहकिक बहकिक मुक्ति  
 ( १९१४-१९१९ ई ) की काग बहकिक बीज बहकिक बहकिक बहकिक  
 बहकिक ( १९१४-१९१७ ई ) की बहकिक । बहकिक बहकिक का बहकिक

पुरको अपनी राजधानी बनाया ।

ये दोनों ही राजे जिनधर्मभक्त रहे प्रतीत होते हैं । १२५४ ई० में नरसिंह राजधानीके प्रसिद्ध विजय-पार्श्व-जिनालयमें दर्शनार्थ गया, देव-पूजन किया, मन्दिरके पूर्ववर्ती घासनों ( फ़र्मानों ) को देखा, उन्हें स्वीकृत किया और कुछ और भूमिदान दिया । १२५५ ई० में अपने उपनयन सस्कारके अवसरपर भी हम पचदशवर्षीय राजाने भगवान् विजय पार्श्वकी पूजाके लिए दान दिये । हम राजाके गुरु बलात्कारगणके कुमुदेन्दु योगीके शिष्य और कुमुदचन्द्र पण्डितके गुरु माघनन्दि सिद्धान्त थे जो मारचतुष्टयके रचयिता और भारी विद्वान् थे । १२६५ ई० में राजाने राजधानीके कलि होयसल-जिनालयमें उपस्थित होकर अपने महाप्रधान सोमेय दण्डनायककी सहायतासे त्रिकूट-रत्नश्रम-शान्तिनाथ जिनालयके संरक्षणके लिए स्वगुरुको १५ ग्राम दान दिये थे । इसी उपलक्ष्यमें वह जिनालय नर्गिष्ठ-जिनालयके नामसे भी प्रसिद्ध हुआ । १२५७ ई० में राजधानीके जैन नागरिकोंने भी द्रव्य एकत्रित करके शान्तिनाथका एक नवीन मन्दिर बनवाया था और राजान उसके लिए दान दिया था । १२७१ ई० में नरसिंहके उसी सोमय्य दण्डनायकने राजधानीके निकट एक प्राचीन बमदिका पुनरुद्धार किया । १२८२ ई० के एक शिलालेखमें उपरोक्त मण्डलाचार्य माघनन्दिको स्पष्टतया होयसलनरेशका राजगुरु कहा है । उस वर्ष भी राजाने गुरुको दान दिया था । १२८३ ई० में नरसिंहके माघव नामक एक अग्र दण्डनायकने कोप्पण तीर्थकी चतुर्विंशति-तीर्थकर-वसतिमें एक नवीन जित-प्रतिमा प्रतिष्ठित की और अपने गुरु उहीं माघनन्दिको दान दिया । इसी राजाके प्रथममें मल्लिकार्जुनके पुत्र वेशिगज ( १२६० ई० ) ने शब्दमणिदण्ड नामका प्रामाणिक कन्नड व्याकरण लिखा और कुमुदेन्दु ( १२७५ ई० ) ने कन्नड जैन-रामायणकी रचना की ।

नरसिंह तृतीयका प्रतिद्वन्द्वी रामनाथ होयसल भी जितभक्त था । उसने कोगलिमें क्षेत्र-पार्श्व-रामनाथ-वसदिका १२७६ ई० में निर्माण





उसकी मृत्यु हो गयी । किन्तु मरनेसे पूर्व वह ऐसी व्यवस्था कर गया और राज्य एवं स्वदेशकी सीमारक्षाका भार कुछ ऐसे व्यक्तिगणोंको सौंप गया कि जिन्होंने उगके स्वप्नकी उसकी आशाओंसे कहीं अधिक परिश्रम पर दिखाया । अपने राज्य एवं यशकी रक्षा अन्तिम होयसल घोरधत्तलाल भले ही न कर सका किन्तु भावी विजयनगर साम्राज्यके बीज वह ही बो गया था, इस तथ्यमें विशेष सन्देह नहीं है ।



अधिक हो उठता है। उनके प्रतिद्वन्द्वी उनके स्वदेशवासी, सजातीय, साधर्म्यी पड़ोसी राजे-महाराजे नहीं थे वरन् वे विदेशी विघर्षों क्रूर आक्रान्ता थे जो न केवल तत्कालीन भारतकी स्वतन्त्रता और धनका एक अपहरण करनेवाले राजनैतिक शत्रु थे बल्कि भारतीयोंके धर्म, संस्कृति, आचार-विचार और जीवनके भी भयानक शत्रु बने हुए थे।

इस भारत-भोरव साम्राज्यके मूल संस्थापक सगम नामक एक छोटे-से सरदारके पाँच वीर पुत्र थे। १३८५ ई० के एक जैन शिलालेखमें इन्हें यादवराजवशोद्भूत कहा है अतः देशगिरिके सुएन और द्वारसमुद्रके होयसलोंकी भाँति सगमके पुत्र भी यदुवशी क्षत्रिय थे। सगम और उसके पुत्र यद्यपि होयसलोंके अति साधारण श्रेणीके छोटे-से मामन्त और उसकी सीमान्त चौकियोंके रक्षक थे, किन्तु साथ ही वे स्वदेश भक्त, स्वतन्त्रता-प्रेमी, वीर, साहसी और महत्वाकांक्षी भी थे। मुसलमानोंके आक्रमण न होते तो स्यात् ये गुण सुपुष्ट ही रह जाते या वे कोई होयसल आदि जैसा राज्य स्थापित भी कर लेते। किन्तु देखते-देखते ही एक दशकके भीतर दक्षिण भारतकी तीनों महान् राज्य-शक्तियोंका अंत हो गया। इन वीरोंका रक्त उबल उठा, ये सचेष्ट हो गये और पाँचों भाई मुसलमानोंके आक्रमणकी भोपण बाढ़की स्तम्भित करनेके लिए जुट पड़े। इसमें सन्देह नहीं कि उनका यह उपक्रम विशेष रूपसे द्वारसमुद्र और सम्भवतया वारंगलके भी मुसलमानों-द्वारा पतन किये जानेकी प्रतिक्रिया था। इन पाँचा भाइयोंने दक्षिण देशके विभिन्न सामन्त सरदारोंका, जो उत्तर दिशामें आनेवाला इस सवमहारक ववण्डरसे क्षुब्ध थे, अपने नेतृत्वमें संगठन किया और देशसे मुसलमानोंको निकाल बाहर करनेमें जुट गये। इस प्रयत्नमें यह मुसलमानोंके हाथो वन्दी हुए, मुसलमान भी बना लिये गये, किन्तु छूट निकले, और फिर स्वधर्ममें दोषित होकर दृगुने उत्साहसे कार्य सिद्धिमें जुट गये। किन्तु कार्य सरल न था, दिल्लीक सुलतान शक्तिशाली और स्थान-स्थानमें उनके मुसलमान सूवेदार अर्धस्वतंत्र



प्रजामें अधिकांश भाग जैन, उनके पश्चात् श्रीवैष्णव और फिर लिंगायत या वीरशैव और कुछ सद्शैव थे। किन्तु विजयनगर-नरेश प्रारम्भसे ही सिद्धान्तसभों के प्रति सहिष्णु, समदर्शी और उदार थे। स्वयं राजधानी विजयनगर (हम्पी या प्राचीन पम्पा) के वर्तमान खण्डहरोंमें वहाँके जैन-मन्दिर ही सर्वप्राचीन हैं, वे नगरके सर्वश्रेष्ठ केन्द्रीय स्थानमें स्थित हैं और अनेक विज्ञ विद्वानोंके मतसे उनमें से अनेक ऐसे हैं जो वहाँ विजयनगरकी स्थापनाके पूर्व ही विद्यमान थे। इससे स्पष्ट है कि यह स्थान बहुत पहलेसे ही एक प्रसिद्ध जैन केन्द्र था। हरिहरके शासनकालमें ही १३५५ ई० में भोगराज नामक एक प्रतिष्ठित राजपुरुषने रायदुर्गमें अनन्त जिनालयकी स्थापना करके अपने गुरु नन्दिसंघ बलात्कारगण-सरम्बती-गच्छके अमर-कीर्तिके शिष्य माघनन्द सिद्धान्तको समर्पित किया था। इस राजाके अन्तिम वर्ष १३६५ ई० में कम्पाके जैन-गुरु मल्लिनाथको दान दिया गया था। हरिहरका पुत्र राजकुमार विरूपाक्ष ओडेयर १३६३ ई० में मालेराज प्रान्तका शासक था। उस समय उसकी राजधानी अरगमें पार्श्वनाथ वसदि नामक एक प्राचीन जिनमन्दिरसे सम्बन्धित भूमिकी सोमाके प्रश्नपर जैनो और वैष्णवोंमें विवाद हुआ। राज्यकी ओरसे प्रान्तीय सभाभवनमें महाप्रधान नागन्न तथा प्रान्तके प्रमुख सामन्त सरदारों, जननेताओं और जैन एवं वैष्णव मुखियाओंके समक्ष राजकुमारने सर्व-सम्मतिसे जैनोंके पक्षको न्यायपूर्ण घोषित किया, प्राचीन शासनोंमें जो सोमाएँ निर्धारित थीं वे ही स्थिर रखी गयी और एक शिलालेखमें अंकित करवा दी गयीं। इस कालके प्रमुख जैन विद्वान् महान् वादा सिहकीर्ति, धर्मनाथपुराणके कर्त्ता उभयभाषाचक्रवर्ती बाह्वलि पण्डित, गोमटसारवृत्तिके कर्त्ता केशववर्णी और धर्मभूषण भट्टारक थे। सुप्रसिद्ध ग्रन्थ खगेन्द्रमणि-दर्पणके प्रणेता मगरस प्रथम भी इसी राज्यकालमें हुए हैं।

हरिहर प्रथमके बाद उसका छोटा भाई बुवकाराय प्रथम (१३६५-१३७७ ई०) राजा हुआ। इसके समयमें भी बहमनी सुल्तान मुहम्मद और

हृदय की कठोर संघर्षों का प्रत्यक्ष सामना करने पर ।

गा वह राजद्रोही, सपद्रोही और समुदायद्रोही समझा जायेगा। जैन  
 र वैष्णव दोनों सम्प्रदायोंने मिलकर जैन सेठ वृमुयिसेट्टीको अपना  
 मूहिक संधनायक बनाया और उपरोक्त राजाजाको राज्यकी समस्त  
 उदियोमें अक्लि कर दिया। वृषकारायका यह महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक  
 ण्य उसके वंशजोंकी धार्मिक नीतिका आधार बना। दोनों ही धर्मोंके  
 नुयायियोंको धर्म-स्वानन्ध और राज्यसंरक्षण समान रूपसे प्राप्त हुआ,  
 य ही उनमें परस्पर सद्भाव उत्पन्न किया गया।

वृषकाराय प्रथमका पुत्र और उत्तराधिकारी हरिहर द्वितीय (१३७७-  
 १४०४ ई०) एक प्रतापी सम्राट् था। उसका प्रतिद्वन्द्वी बहमनी सुलतान  
 भी शान्तिप्रिय था अतः मुसलमानोंकी ओरसे उसे निश्चिन्तता रही और  
 उसने इससे लाभ उठाकर सुदूर दक्षिणके सम्पूर्ण समिल देशपर, त्रिचना-  
 पल्ली और काचीपर भी अधिकार कर लिया। शासन-व्यवस्था और अधिक  
 सुचारु करके उसने अपने साम्राज्यका संगठन किया और विविध उपा-  
 यियोंसे विभूषित सम्राट् पद धारण किया। इसके प्रमुख मन्त्रियों और  
 सेनापतियोंमें उसके पूर्वजोंके महाप्रधान बच्चका पुत्र दण्डेश इरुग, जो  
 क्षीतिश और धरणीश भी कहलाता था, और उसके भाई मगप्प एव  
 वृक्कन थे। दण्डेश इरुगने जो भारी धनुर्धर भी था, १३८५ ई० में विजय-  
 नगरमें कुन्थुनाथ जितेन्द्रका सुन्दर पाषाण-निर्मित मन्दिर बनवाया था।  
 मन्दिरके सम्मुख दीपस्तम्भपर इस अभिप्रायका लेख उत्कीर्ण है। कालान्तर-  
 में यह मन्दिर गाणित्ति-वसदि (तेलिनका मन्दिर) नामसे प्रसिद्ध  
 हुआ, सम्भव है पीछे किसी समय किसी तेलिनने इसका जीर्णोद्धार कराया  
 हो। इरुगके गुरु आचार्य सिंहनन्दि थे। १३६७ ई० में भी इरुगने एक  
 मन्दिर चेलुमल्लूरमें बनवाया था। उसका बड़ा भाई मगप्प भी जैनागमका  
 परम भक्त और जिन-धर्मका स्तम्भ कहलाता था। इरुगका नामधारी  
 और भतीजा तथा मगप्पका पुत्र दण्डाधिनायकेश इरुगप्प अपने पूर्वजोंसे





भी इसी कालमें हुए ।

हरिहर द्वितीयके पदचात् उत्तरा ज्येष्ठ पुत्र दयाराय द्वितीय ( १४०४-६ ई० ) और तदनन्तर द्वितीय पुत्र दवराय प्रथम ( १४०६-१० ई० ) और फिर देवरायका पुत्र विजय या घोरविजय ( १४१०-१९ ई० ) राजा हुए । इन राजाओंके समयमें बहमनी मुलतानोंके साथ घरायश युद्ध चलते रहे । १४०६ ई० में तो बहमनी क्रिरोजने विजयनगरपर ही आक्रमण किया । चार मास तक वह राजधानीका घेरा छोड़े पड़ा रहा और एक बार नगरमें भी घुस आया, किन्तु निषाल बाहर किया गया । अन्ततः मन्चि हो गयी और वह वापस लौट गया । यहाँ जाता है कि देवराय प्रथमने अपनी कन्याका विवाह उसके साथ करनेका वचन दे दिया था, किन्तु मुसलमान बादशाहका देवरायने सम्मान नहीं किया, इसीसे शत्रुताका अन्त न हुआ ।

कुछ इतिहासकारोंने इस कालमें विजयनगर राज्यमें दक्षिणभुजा और वामभुजा नामक दो जातियोंका उल्लेख किया है और उन्हें राज्यके दो प्रधान वर्ग बताये हैं । वस्तुतः ये जातियाँ या वर्ग 'मध्य' और 'भक्त' शब्दोंसे सूचित जैन और वैष्णव ही थे जिन्हें विजयनगरके राजागण अपनी दक्षिण और वाम भुजाएँ समझते और मानते थे । राज्यकी अधिकांश जनता एवं सम्प्रान्त जन इन्हीं दो समकक्ष और प्रायः समसंख्यक वर्गोंमें बँटे हुए थे । हरिहर और बुक्काकी आदर्श नीतिका प्रभाव उनके वंशजों पर भी हुआ, फलस्वरूप इस वंशके राजे, रानियाँ, राजपुमार और अन्य व्यक्ति तथा सामन्त सरदार राजकर्मचारी और प्रजाजन सभीने जिनधर्मको उन्मुख प्रथम दिया । राजा लोग व्यक्तिगत रूपसे अधिकतर शिवविरूपाक्षके उपासक थे किन्तु राज्यधर्म जैन और वैष्णव दोनों ही धर्म थे, और साथ ही विभिन्न धर्मोंमें परस्पर सद्भाव और सहयोग था । १३९७ ई० के एक शिलालेखमें सेनापति इरुगपके साथी गुण्ड दण्डनाथने लिखाया था कि 'जिसकी उपासना शेष लोग शिवके रूपमें, वेदान्ती ब्रह्माके, बौद्ध बुद्धके,



तलक आदि कई अन्य जैन वसदियोंको भी भूमिदान दिये थे । १४३१-१२ ई० में देवरायके एक उपराजे कार्कल नरेश भैरवरायके पुत्र एवं उत्तराधिकारी धीरपाण्डयने कार्कलमें जो लोकविश्रुत बाहुवलिकी उत्तुंग मूर्ति प्रतिष्ठित करायी थी उसके समारोहमें महाराज देवराय स्वयं सम्मिलित हुए थे । जैनाचार्य नेमिचन्द्रने राजसभामें अन्य विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ करके इस राजासे विजय-पत्र प्राप्त किया था । इस राजाके जैन होनेमें प्रायः कोई सन्देह नहीं है, अपने राज्यके प्रथम वर्ष ( १४२० ई० ) में ही इसने वेलगोलके गोमटस्वामीकी पूजाके लिए एक गाँव दिया था और अपने जैन महाप्रधान वैचप दण्डनायकको, जो सेनापति इरुगपका बड़ा भाई था, उसका उत्तरदायित्व सौंपा था । ये दोनों भाई राजा हरिहर द्वितीयके समयसे ही राज्यके महत्त्वपूर्ण स्तम्भ रहते आये थे । १४२२ ई० में महासेनापति इरुगपने भी वेलगोलके गोमटेशकी पूजाके लिए गुरु श्रुतमुनिके उपदेशसे एक गाँव प्रदान किया था । १४४२ ई० में इरुगप गोआ प्रान्तका शासक बना दिया गया था । इस प्रकार इस वीर, विद्वान्, विविध विषय पटु कुशल प्रशासक एवं प्रसिद्ध सेनानीने लगभग ६० वर्ष पर्यन्त राज्यकी सेवा की । राज्यका एक अन्य तत्कालीन सेवक महाप्रधान गोप चमूप या गोप महाप्रभु भी परम जैन था । १४०८ ई० के पूर्वसे ही वह राज्यका एक उच्च पदाधिकारी था । उसके पूर्वज भी राज्यमें उच्च पदों पर रहे थे । गोपने स्वगुरुके उपदेशस कई मन्दिर बनवाये, दान दिये और अतः समयमें घर-द्वार छोड़ त्यागी बनकर धर्मसाधन किया था । उसके अभिलेखोंमें उसका उत्कट देश प्रेम भी स्पष्ट झलकता है । मसनहल्लिका कम्पन गौड एक अन्य तत्कालीन उल्लेखनीय जैन सामन्त था । १४२४ ई० में उसने स्वगुरु पण्डितदेवकी गोमट पूजाके लिए दान दिया था । इस राज्यकालके अन्य अनेक अभिलेख उस कालमें जैनधर्मकी प्रभावना, राज्याश्रय एवं प्रतिष्ठित पुरुष स्त्रियों तथा जनताकी जिनभक्ति और जैनगुरुओंके लोकोपकारी कार्योंके उल्लेखोंसे भरे पड़े हैं । जैन विद्वानोंमें

वैयर्थिक वस्तुति किन बावबदे अनुवाची कईरूके और तीसरेवक कबो  
 जाने कारे है के देवबदेन गुगुली कबीबावका नूरी कर १' १४ ई  
 बे कीलके बाके वसिष्ठ विद्यान् दृष्टान्त-बावबोवाले की विविधियु एगरी  
 अगला क ववालीको दीवबबके बाव-बाव दीवबब जीवका बावली अगला  
 वा : १५वीं एगरीके की अनेक वसिष्ठकींके विविध बबोके अनुवाची-बाव  
 विवेक दिव विगुली एक बाव लुगि हव बावने कर्बबब-बाव-बावली  
 वसिष्ठक है रावा ओव वकव ववा-नवबब वरवक अगला 'वर्बबब-  
 नवक वदवनेके औरक बावक वे : वव वदवक देववक ववली  
 वदवली वीवबदेवी दीवबबकी ववक ववली की : ववबदेवलीके वदवली  
 वीवबबके ववक वव वे : १४ ई की वव वदवलीके वव वीवकी ववविव  
 वववि ( विवववव १३३५ ई ) की वववववकी ववव वववि ववली  
 की और वव विव वा : वव ववववव वववव देववक वव वव  
 वव वववक ववके व-विव और वदव वववक वववव ववके वव  
 ववक वा : कई वववकी वववकेके वव ववव-वदव दीवबबके वव  
 वव वव और वववकी वव ववके ववके है : १४ क १४०५  
 १४१ १४१० वव ववके ववके ववके ववके ववके ववके ववके  
 ववके वववकी एवं वववव वववि वववि वववि ववके ववके  
 ववकी एवं वववि ववकी ववके ववके है :

और ववके वव और वववववकी देववक ववके ( १४१५  
 १४१६ ई ) की वव वव ववके वव वव ववके ववके ववके  
 १४२४ ई की ववके ववके ववके ववके ववके ववके ववके  
 ववके ववके १४२६ ई की वव ववके वव वववकी ववके  
 ववकी ववकी ववकी ववकी ( वव गुगुली ववके ) की वव  
 ववववका एक ववववव ववके ववके ववके ववके ववके  
 ववके ववके ववके ववके ववके ववके ववके ववके ववके  
 ववके है : वव ववके वववकी ववके ववके ववके ववके

तिलक आदि कई अन्य जैन वसदियोको भी भूमिदान दिये थे । १४३१-३२ ई० में देवरायके एक उपराजे कार्कल नरेश औरवरायके पुत्र एव उत्तराधिकारी वीरपाण्ड्यने कार्कलमें जो लोकविश्रुत बाहुवलिकी उत्तुंग मूर्ति प्रतिष्ठित करायी थी उसके समारोहमें महाराज देवराय स्वयं सम्मिलित हुए थे । जैनाचार्य नेमिचन्द्रने राजसभामें अन्य विद्वानोंके साथ धास्यार्थ करके इस राजासे विजय-पत्र प्राप्त किया था । इस राजाके जैन होनेमें प्रायः कोई सन्देह नहीं है, अपने राज्यके प्रथम वर्ष ( १४२० ई० ) में ही इसने वेल्लगोलके गोमटस्वामीको पूजाके लिए एक गाँव दिया था और अपने जैन महाप्रधान वैषप दण्डनायकको, जो सेनापति इरुगपका बड़ा भाई था, उसका उत्तरदायित्व सौंपा था । ये दोनों भाई राजा हरिहर द्वितीयके समयसे ही राज्यके महत्त्वपूर्ण स्तम्भ रहते आये थे । १४२२ ई० में महासेनापति इरुगपने भी वेल्लगोलके गोम्मटेशकी पूजाके लिए गुरु श्रुतमुनिके उपदेशसे एक गाँव प्रदान किया था । १४४२ ई० में इरुगप गोळा प्रान्तका शासक बना दिया गया था । इस प्रकार इस वीर, विद्वान्, विविध विषय पटु कुशल प्रशासक एवं प्रसिद्ध सेनानीने लगभग ६० वर्ष पर्यन्त राज्यकी सेवा की । राज्यका एक अन्य तत्कालीन सेवक महाप्रधान गोप चमूपा गोपा महाप्रभु भी परम जैन था । १४०८ ई० के पूर्वसे ही वह राज्यका एक उच्च पदाधिकारी था । उसके पूर्वज भी राज्यमें उच्च पदों पर रहे थे । गोपने स्वगुरुके उपदेशसे कई मन्दिर बनवाये, दान दिये और अन्त समयमें घर-बार छोड़ त्यागी बनकर धर्मसाधन किया था । उसके अभिलेखोंमें उसका उत्कट देश प्रेम भी स्पष्ट झलकता है । मसनहल्लिका कम्पन गौड एक अग्र तत्कालीन उल्लेखनीय जैन सामन्त था । १४२४ ई० में उसने स्वगुरु पण्डितदेवकी गोम्पट पूजाके लिए दान दिया था । इस राज्यकालके अग्र अनेक अभिलेख उस कालमें जैनधर्मकी प्रभावना, राज्याश्रय एवं प्रतिष्ठित पुरुष-स्त्रियों तथा जनताकी जिनमयि और जैनगुरुओंके लोकोपकारी कार्योंके उल्लेखोंसे भरे पड़े हैं । जैन विद्वानोंमें

जीवाश्मरचरितके कर्ता भास्कर ( १४२४ ई ) बालकगाम्मुख रामक-  
 बदे अनुग्रहे विजल्लुप्ति और बालमेराहणके कर्ता बम्बाचरीति ( १४२९  
 ई ) अचिरचरितके कर्ता विमदेव ( १४४४ ई ) शास्त्रानुवेकाके  
 कर्ता निम्ब बालावासी विद्याभरीति आदि कर्मेगनीय हैं । इनके अति-  
 रिक्त बम्बकम्मीन बम्बहारोही जीक-अतिष्ठ मल्लिमादभूरि कोतमकन को  
 बम्बाचरि वाग्मिवात आदि प्राचीन अंगुष्ठ-चरितके कर्ते-अतिष्ठ दीराभार  
 हैं इन्हीं वामन औरप्रताप प्रोद-वेवरावके आश्रित थे । इनके कर्मेकडे  
 कर्तुमे वैश्य-वीरगुणार्थक बालक एक बहम्ब कम्पडे बम्ब विर्वाच विज  
 था । मल्लिमाच बृह बर्वाचिक वा बहाम्प्याचिक लोचिक कर्तुलके कर्मे-  
 म्मात्तु जीव प्रवेता थे मल्लिमाचके पुत्र-दारा की विवहृत आदि बम्बोली  
 पुत्र दीराई कित्ते बालेका कहा गया है । १४४९ ई में वैद्यपद विरीक-  
 की मृत्युका कालिक की कटी कर्ते बम्बदेवकीकले की विद्याकेहीमें  
 निज्जा है ।

वैद्यपद विरीकका अतिष्ठानी विरोध बह्मणी व्यासबंकर एवं मुर्ख  
 हत्याप था । विज तिल मणिकड बह्मण्य बम्बोके ९ एटी-मुल  
 और बालकीक बह्म बच कर केता जीव तिल एक जलक माला । १४९९  
 ई में बारीकके दिम्बु एम्बपद पूर्ण बला कर्तुमे किया । कर्तुमे निम्ब-  
 मवरपर की हैं और व्याज्जन किया । कर्तुमे बह्मण्यिकापी बम्बोकीके  
 काय की वैद्यपके पुत्र बके । एम्बोने अनुभव किया कि मुनकम्बोकी  
 बम्बारोही एक और अनुर्बर एक अधिक विपुल है । मरः कर्तुमे कर्तो  
 केकाकी हल मुदिगीपी वृत्ति कर्मेका बलक किया मुनकम्बोकीकी की केव-  
 में कर्ता किया और कर्तुमे प्रबल रक्तेके निम्ब कृष्णकी एक प्रति बर्तु  
 विज्जम्बके निम्ब रक्ताकी । एम्बके मर-बम्बो अतिथी रोक्केके निम्ब  
 एम्बोने पुत्र बम्बके निम्ब बह्मण्योकी कर की केता कीवार किया । निम्ब  
 की बह्म कर्तुमे बम्बका मारणका एक बाल्यधिक कर्तुवाकी और कर्तुमे  
 अधिक वैद्यपकी मरिह था । कर्तुमाके कर्तुमापी कर्तुमे कर्तुमे एम्बप

विस्तार था। इटलीवासी पर्यटक निकोलो कोण्टी और ईरानी राजदूत अब्दुरेजाक इसीके शासन-कालमें विजयनगर आये और उन्होंने राज्य एवं राजधानीके प्रताप, सौन्दर्य एवं वैभवकी तूरि-नूरि प्रशंसा की है।

देवरायके उपरान्त मगमवसकी अवसति होने लगी। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी मल्लिकार्जुन इम्मडिदेवराय (१८४७-६७ ई०) के समयमें १४५५ ई० से सालुव नरसिंह राज्यका प्रधानमन्त्री हो गया। इम्मडि-देवरायके उपरान्त विरूपाक्षराय (१४६७-७८ ई०) और फिर पदियाराय (१४७९-८६ ई०) राजा हुए। ये शासक निर्वल थे और वे बाहरसे बहमनियोंके आक्रमणों तथा भीतर गृहकलह एवं पक्ष्यन्त्रोंसे ग्रस्त रहे। अतएव १४८६ ई० में मन्त्री नरसिंह सालुवनें जो अत्यन्त क्षमिशाली हो गया था और उस समय चन्द्रगिरिका प्रायः स्वतन्त्र शासक भी था, अन्तिम नरेश पदियारायको गद्दीसे उतार दिया और स्वयं विजयनगरका राजा बन बैठा। नरसिंह सालुव (१४८६-९२ ई०) ने थोड़ेसे समयमें ही दक्षिणके सम्पूर्ण तमिळ देशको फिर विजय करके राज्यकी प्रतिष्ठाका उद्धार किया और अपने सुशासनसे साम्राज्यकी जनताके हृदयपर ऐसी छाप बैठा दी कि युरोपवासियोंने बहुधा विजयनगर राज्यका 'नरसिंहका राज्य' कहकर उल्लेख किया। मुसलमानोंके साथ भी उसके निरन्तर युद्ध चलते रहे। इस कालमें बहमनी राज्यका मन्त्री महमूदगवाँ अत्यन्त योग्य था किन्तु १४८२ ई० में पक्ष्यन्त्र-द्वारा उसका वध हुआ और उसके मरनेके थोड़े वर्ष बाद ही बहमनी राज्य पाँच टुकड़ोंमें विभक्त हो गया। इनमेंसे बीजापुरके सुलतान ही विजयनगर राज्यके निकट पड़ोसी और आगेसे उसके प्रधान शत्रु हुए। शत्रु राज्यकी इस क्रान्तिके कारण नरसिंहको अपनी स्थिति सुदृढ़ करने और शक्ति बढ़ानेका अच्छा अवसर मिल गया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी इम्मडि नरसिंह (१४९२-१५०५ ई०) ने भी प्रायः शांति-पूर्वक राज्य किया, किन्तु उसके समयमें अरसनायक नामक एक सुलुव सामन्त शक्तिशाली हो उठा और





सगीतपुर नरेश सगमके आश्रित कोटीश्वर ( १५०० ई० ), धर्मशर्मा-  
भ्युदय-टीकाके कर्त्ता यश कीर्त्ति, नरपिंगलीके कर्त्ता शुभचन्द्र आदि इस  
कालके अन्य जैन विद्वान् और ग्रन्थकार थे ।

१५०५ ई० में अपने स्वामीकी हत्या करके भरसनायक राजा हुआ  
था किंतु उसके इस कृत्यसे राज्यमें एक व्यापक विद्रोह भडक उठा और  
एक वर्षके भीतर ही वीर नरसिंह भुजवल ( १५०६-९ ई० ) राजा हुआ ।  
तदुपरान्त कृष्ण देवराय ( १५०९-३० ई० ) विजयनगरके सिंहासनपर  
आरुढ़ हुआ । विजयनगरके नरेशोंमें यह सर्वाधिक प्रसिद्ध, प्रतापी, शक्ति-  
शाली और महान् था । इसके राज्यकालमें विजयनगर साम्राज्य अपने  
चरमोत्कर्षको प्राप्त हुआ । राज्याभिषेकके उपरान्त लगभग डेढ़ वर्ष  
तक राजाने राजधानीमें ही रहकर अपनी स्थिति सुदृढ़ की, अपने  
कर्त्तव्यों, उत्तरदायित्व और समस्याओंका सूक्ष्म अध्ययन किया तथा  
राज्यकी अभिवृद्धिकी योजनाएँ बनायीं । तदनन्तर निश्चित कार्य-क्रमके  
अनुसार उसने कौशलसे अपनी विजय-यात्रा प्रारम्भ की और थोड़े ही  
समयमें नेल्लोर जिलेके सुदृढ़ उदयगिरि दुर्गको हस्तगत कर लिया और  
फिर अग्रे अनेक दुर्ग विजय किये । उसका सर्व-प्रसिद्ध युद्ध १५२० ई०  
का रायचूरका युद्ध था जिसमें उसने बीजापुरके सुलतान इस्माइल  
आदिलशाहके ऊपर बड़ी शानदार विजय प्राप्त की । उसने वह दुर्ग तो  
छीना ही, स्वयं बीजापुरपर भी अधिकार कर लिया । इस युद्धमें उसके  
सोलह हजार सैनिक काम आये । उसने बहमनियोंको प्राचीन राजधानी  
कुल्बर्गको भी भूमिसात् कर दिया । उसके सैनिकोंने बीजापुरको लूटा  
और क्षत-विक्षत किया । किन्तु सम्राट् कृष्णराय एक उदार चेतन दूरवीर  
नरेश था । उसने अपनी विजयका भी मानवता एव दयाके साथ उपयोग  
किया । उसने शत्रुकी प्रजाको नहीं सताया, निहत्थों और आत्म समर्पण  
करनेवाले शत्रु सैनिकोंको भी अमर्य दिया, मुसलमानों-जैसी क्रूरता और  
वर्चरताका उसने किसी अंशमें भी प्रदर्शन नहीं किया । पुतगाली इतिहास-

विजयनगर साम्राज्य



किये थे। १५१९ ई० में फिर उसी मन्दिरको और दान दिया था। १५२८ ई० में बैलारी जिलेको एक अन्य वसदिको प्रभूत दान दिया था और शिलालेख अंकित कराया था, उसने मूढविद्वीकी गुरु-वसदिको भी स्थायी वृत्ति दी थी। १५३० ई० के एक जैन-शिलालेखमें स्पाद्वादमत और त्रिनेन्द्रके साथ-साथ आदि वराह और शम्भुको नमस्कार करना इस नरेश-द्वारा राज्यकी परम्परा नीतिके अनुसरणका परिचायक है। १५०९ ई० में उसके सामन्त चगात्व नरेशके राजमन्त्री चेत्र-शोम्बरसने बेलगोलपर एक सुन्दर मण्डप बनवाया था। इसी कालमें चगात्व-नरेशका सुप्रसिद्ध सेनापति मंगरस था। वह बड़ा वीर और पराक्रमी था तथा अपने पिता महाप्रभु विजयपालकी ही भाँति परम जैन था, साथ ही विद्वान् और कवि भी था। उसने सम्राट्के कई युद्धोंमें वीरता दिखायी थी, कई जिनमन्दिर और सरोवर निर्माण कराये थे तथा जयनृपकाव्य, प्रमजनचरित, नेमिजिनेशमगति, सम्यक्त्वकौमुदी (१५०९ ई०), सूपशास्त्र आदि ग्रन्थोंको कन्नडोमें रचना करके कन्नड साहित्यमें अपना नाम अमर किया था। कृष्णदेवके सामन्त संगोतपुरके सालुव-नरेश भी बड़े जिनमन्त्र थे, इसी प्रकार काकलके भैरव-नरेश थे। एक अन्य महिला सामन्त एवं प्रान्तीय शासक काललदेवी (१५३० ई०) भी बड़ी जिनमन्त्र थी। १५१७ ई० में चामराज नगरके शासक वीरय्य नायकने वहाँ एक जिनमन्दिर बनवाकर दान दिया था। गेरुसप्पेके ओडेयर शासक भी परम जैन थे, १५२३ ई० में इन्होंने कई मन्दिर बनवाये और दान दिये। जैनगुरु वादी विद्यान् इस कालमें सर्व प्रसिद्ध थे। महाराज कृष्णदेवकी राजसभामें विभिन्न दर्शनो एवं मतोंके विद्वानोंके साथ कई बार शास्त्रार्थ करके वे सप्सार-प्रसिद्ध हो गये थे। महाराज स्वयं उनका बड़ा आदर करते थे। अनेक राज-सभाओंमें इस गुरुने वाद विजय की थी। इस राज्यकालके प्रसिद्ध कन्नडो जैन ग्रन्थकारोंमें भारत, शाग्दाविलास,

बेमीरपरबलिष्ठ और वीर-शायक के कर्ता राजा बन्धुपुराण के कर्ता होय्य भरवैरव के कर्ता बाबरन बादि कालेकरीय है विपुलि पञ्च-मर्मे बाहिन्म निर्वाण विद्य । इन विरसपरवीर म्हापु वीर के बाबरन बाबर्मे बरगदावीन बाग्रीन नसुतिपी बर्बहोमुरी बरयी हूँ ।

हम्परेवरी मुमुके काउण्ड बनका भाई बन्धुपुराण ( १५१०-५१ ई ) राजा हुआ । यह बुद्धक बलिष्ठ बाबर एवं बाबरबापी का भाई है । मुद्रक और पञ्चपुर के पूर्व जिन्हें हम्परेवरी कठिणवि प्रान्त विद्य बा, कने छान्ने लि बने । राजसी स्वर्ण बाग्रीक बन्धुन कने कने, एक पञ्च वीरपुर के मुक्याली राजबलीने ही ठकीन बुद्ध विद्य । विपुल इय देकर ही कने बाबर बीरमा बा बका । बन्धुपुराण की मुमु-पर बनका कयीमा बरविबारा ( १५४१ १५४ ई ) जो एक पुनरे बाईका बुध का राजा हुआ । यह बाबरबाब ही पञ्च पञ्च । पञ्च की बन्धु वलिष्ठ कने बकाबली एवं कैपारि पञ्चपञ्च-बाबुर ( पञ्च-पञ्च ) के बाबने कनी कनी ।

पञ्चपञ्च हम्परेवरी के मुदीन कनी निम्नपञ्च कानुनका बुध का और निम्न बन्धुन-पञ्च की राजबलीने बन्धुविद्य बा । यह वह कनी-कनी बाग्रीक पञ्चक बर बीर : १५४१ ई में पञ्चपञ्चने बहबलपर और वीरपुराण के मुक्यालीके बाब यह बलिष्ठ की कि बीरों निम्नकर वीरपुराण बरबलीन करे, किन्तु वीरपुराण के मुदीन कनी कनरुकि वीरबाब बा वीरबाब निम्नक हुई : १५५८ ई में पञ्चपञ्चने वीरपुराण को कनी और निम्नक और बाबरनपर बाबा बीर विद्य । निम्नपञ्च की कैपारे वीरपुराण राजने निर्बन्धुपूर्वक कृन्-बाब की । स्वर्ण पञ्चपञ्च कने बहबीनी मुक्यालीन मुक्यालीके बुध कने बुध कया बा । बीर की पञ्चविष्ठ कृन् बीर-बीर बली रहे । बन्धुः यह मुक्यालीने यह निम्नक विद्य कि निम्नकर वीर पलिष्ठ कना है बीर निम्नपञ्चका कने कर है वीर कने पञ्च है कनी निम्नपञ्चके वीरके यह मुक्याली

राजधानी हठ पर जायेंगे। १५६४ ई० में यह समझौता पक्का हुआ।  
 केवल बरारका सुलतान इसमें सम्मिलित नहीं हुआ। उसी वर्षके  
 अन्तमें अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा और बीदरके सुलतान अपनी  
 सेनाओंके साथ विजयनगरकी ओर चल पड़े, और जनवरी १५६५ ई० में  
 कृष्णा नदीके उत्तरमें बीजापुरकी हदमें ही स्थित तालिकोटा नगरमें  
 वे सब एकत्रित हुए। विजयनगरवाले आत्म-विश्वस्त और अभावधान थे।  
 वे समझते थे कि मुसलमान उनका कभी कुछ न बिगाड़ सके, अब भी  
 कुछ न कर सकेंगे। राजधानी और राज्यमें सब कार्य पूर्ववत् शान्तिसे  
 चल रहे थे। विजयनगरकी सैन्य शक्ति भी सर्वोपरि थी। जहाँ मुसल-  
 मानोंके लिए युद्ध अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था, हिन्दू इसे खेल समझ रहे थे।  
 किन्तु विश्वासघात, जासूसी और पड़्यत्र भीतर ही-भीतर उनकी शक्तिको  
 खोखला कर रहे थे। रामराजा विशाल सेनाके साथ रणक्षेत्रमें उतरा,  
 कृष्णाके दक्षिण और तालिकोटासे २५-३० मीलकी दूरीपर सग्राम छिड़ा।  
 रामराजा बीरताके साथ लड़ा, एक बार तो मुसलमानोंके पैर उखड़ गये  
 किन्तु वे सँभले और प्राण हथेलीपर लेकर पिल पड़े। रामराजा पकड़ा  
 गया। अहमदनगरके सुलतानने अपने हाथसे तुरन्त उसका वध कर दिया।  
 विजयनगरकी सेनाके पैर उखड़ गये। मुसलमानोंकी बल आयी और वे  
 राजधानीके ऊपर दौड़ चले। विजयनगरके एक लाख सैनिक खेत रहे और  
 राजधानी विजयनगरकी मुसलमानोंने इस बुरी तरह लूटा और विध्वंस  
 किया कि जिसका अन्य उदाहरण नहीं है। देव-प्रतिमाओंकी पवित्रता,  
 शिल्पकृतियोंकी कलात्मकता, स्त्रियोंके सतीत्व, बच्चोंकी मासूमियत, वृद्धोंकी  
 असहायता, ग्रन्थ-भण्डारोंके महत्त्व, किसीकी भी रक्षा न हुई। उनकी  
 धर्माध्वरता, नृशंसता और क्रूरता पैशाचिक थी। प्रत्येक मुसलमान  
 सिपाही इस खुली लूटसे मालदार होकर लौटा। पाँच महीने तक विजय-  
 नगरकी यह लूट-मार जारी रही। अलकापुरी-सदृश इस नगरीके घन-जन-  
 भवन और प्रत्येक वस्तुका सर्वथा नाश करके ही दम लेनेपर आततायी



साहित्य, कला आदिकी ओर ग्यान देना राजाओं और उनके सामन्तों को कोई अवकाश न था। वत उस कालके जैनधर्मके इतिहासमें कतिपय उन छोटे मोटे सामन्तों या उपराजाओं और मेड-व्यापारी आदि प्रमाजनाके ही कतिपय धार्मिक कार्योंका उल्लेख मिलता है। इस चीनके जिनलिंग एव साहित्यिक रचनाएँ भी बिरल ही हैं। महाराज अच्युतरायके समयमें १५३१ ई० में मुदगिरिकी जैन बसदिया ओर १५३३-३४ ई० में समिल देवकी कुछ अथ बसदियाको दान दिये गये थे। मदादिवरायके सामन्त-रम्ममें, १५४२-४३ ई० में, सुलुय देशकी कुछ बसदियोंका दान दिये जानेके उल्लेख मिलते हैं। १५६० ई० में गेदसपेके जैन राजा सालुव छम्महिदवरायके आश्रयमें उनके राजसेठ तथा अथ धनो व्यापारियोंने उस नगरमें कई सुन्दर जिनालयोंका निर्माण कराया था और अथ धार्मिक कार्य किये थे। इस कालमें अथगवेलगोल तीर्थका प्रबन्ध भी गेदसपेके जैनमेठोंके ही हाथमें रहा प्रतीत होता है, और उसका प्रारम्भ उपरोक्त सालुवराज-द्वारा १५३९ ई० के लगभग गोम्मटेश्वरका महामन्तकामिपेव महोत्सव मनाये जानेसे हुआ प्रतीत होता है। इस कालमें मूडबिंदी और गृगेरीकी जैन-बसदियोंकी भी दान दिये जानेके कुछ उल्लेख मिलते हैं। इसी युगमें अनेक राजाओंसे सम्मानित महान् बाद-विजेता, वाशो-विद्या नन्दिने यत्र-तत्र जैन-शासनका उत्कर्ष किया। श्रीरंगपट्टनमें ईसा पादगियोंकी भी शास्त्रार्थमें इन्होंने पराजित किया था। ये पूर्वकालों प्रसिद्ध वादी विशालकीर्तिके शिष्य थे। काव्यसार नामक ग्रंथ इन्हींकी कृति बताया जाता है। १५५७ ई० में रत्नाकरनन्दिने भिलोकशतक नाम का दस हजार श्लोक प्रमाण ग्रंथ ९ मासमें रचकर तैयार किया था भरतेश्वरचरित और पदजाति इनकी अथ रचनाएँ हैं। १५५९ ई० में मयने ज्ञानभास्करचरित्र और वाहवल्लिने १५६० ई० में नागकुमार चरित्रकी रचना की थी। इस कालमें भी जैनोंने अपनी संहिष्णुता और सहन शीलताके कारण छैथो और वैष्णवोंके साथ सद्भाव बनाये रखा





भगवान् आदीश्वर, शान्तिनाथ और चन्द्रनाथकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित  
 करायी थीं। विजयनगर-नरेश वेंकटराय प्रथम ( १५८६-१६१७ ई० )  
 की राजसभामें जैनगुरु भट्टाकलकने सारथ्य और अलंकार-त्रयका व्याख्यान  
 करके कीर्ति समर्जित की थी। कर्णाटक शब्दानुशासन नामक प्रसिद्ध  
 वद्वहो व्याकरण भी इन्हींकी कृति है। १५८६ ई० में कार्कल  
 नरेश इम्मडि भैरवेन्द्र ओडेयरने कार्कलमें सुप्रसिद्ध चतुर्मुख वसदिक  
 निर्माण कराया था और १५९८ ई० में उसी तथा अन्य वसदियोंको दान  
 दिये थे। इसी वर्षका एक अन्य शिलालेख जिन शासनकी प्रशंसा और  
 वीतरागदेवके साथ-साथ शम्भुको नमस्कार करनेसे तत्कालीन जैनोंके  
 सहिष्णुताका परिचायक है। १६०४ ई० में पाण्ड्य-नरेशके भाई तिमिरा  
 जने वैनूरमें वेलगोलके मठाधीश चारुकीर्ति पण्डितदेवके उपदेशसे गोम्मट  
 बाहुबलिकी उत्तुग विशालकाय प्रतिमा निर्मित करायी थी। यह मूर्ति  
 दक्षिणकी सुप्रसिद्ध विशालकाय गोम्मट मूर्तियोंमें तीसरी है। मूर्ति-प्रतिष्ठा  
 पक तिमिराज गंगकालीन प्रसिद्ध चामुण्डरायका वंशज था। १६१० ई०  
 में महाराज वेंकटरायके प्रान्तीय शासक एव राज प्रतिनिधि वोम्मन हेगडे  
 मेलिगेमें अनन्त-जिनालयकी स्थापना की थी। १६१२ ई० में श्रवण  
 वेलगोलके गोम्मटेशका महामस्तकाभिषेक हुआ था। १६३८ ई० के ए  
 लेखसे ज्ञात होता है कि इस कालमें प्रसिद्ध जैन-केन्द्रोंमें भी लिंगाय  
 आदि अजैन मतावलम्बी जैनमन्दिरोंमें अपनी मूर्तियाँ या चिह्न आ  
 स्थापित करके उनपर अधिकार कर लेनेका प्रयत्न यदा-कदा करते रह  
 थे, किन्तु उनके मुखिया और उत्तरदायी नेता ऐसी प्रवृत्तियोंका अनुमोद  
 नहीं करते थे, यहाँतक कि उन्होंने सर्वसम्मतिसे यह विज्ञप्ति प्रचारित क  
 दा थी कि 'जो कोई जिनधर्मका विरोध या अनादर करेगा वह महाप  
 ( वीरशैवधर्मके सबसे बड़े अध्यापक ) के चरणोंसे बहिष्कृत कर दि  
 जायेगा, शिव और जंगमका बोही माना जायेगा और विभूति, रुद्र  
 तथा काशी एवं रामेश्वर तीर्थोंके लिंगके प्रति अभय समझा जायेगा।

मिशनरीज् वद् विवेक प्रकाशकाजी जीविके काजीकेलने के सम्बन्धर मिश्र  
कहा था, तथानि जलान्तेन नीर नीच कलाम्बुजिके विवेक नीर सम्बन्धना  
परिचायक मो है छी । १६४६ ई में काकाके बीमारीकाला अज्ञानतरा-  
मिषेक चलन हुआ था । मिश्रजलर काकाके बीमर मिश्र स्वस्व-कालाके  
सर्वेज्ञर विचारना एक प्रमुख केन्द्र था । सर्वेक कुमर एवं बकातुर्न  
कीन बीमर एवं दीन देवाकांछिके बहु शोध करीतुत था । १६८ ई  
में जी बहूके बहुराक काजीकेलनी प्रेरणाके मिश्रकेल नमक एक  
कुमर मिश्रम्बुजा मिश्रीन हुआ था । वे बीमरुन स्वर्न की जी काजीय  
के नीर सर्वेक राकांछिके सम्पादित हुइ वी ।

एन कालके बीच सिद्धांतों और वास्तविकताओं के संबंधों हैं—  
 विश्वकुम्हारपरिचय के कर्ता कुम्हारों (१५७६ ई.) कलशकुम्हारों के  
 कर्ता योग (१५७८ ई.) गुंवारकाल के कर्ता वधवार (१५९९ ई.)  
 और कुम्हारों के क्रिय ने और जो अतिष्ठ बलिष्ठवर्षी भाषि ही ऐसे  
 ब्रह्मात्मपरिचय ने कि कलकलकुम्हार के कलकल-विशालताओं एवं बने बने  
 कलकल कलके आकारों के बीच कलके इच्छा में विश्व-वर्षी और कलकली  
 भी लुप्त की है अतिष्ठ ब्रह्मकल कलकल-ब्रह्मात्मकता के कर्ता कुम्हार  
 कलकल कलकलपरिचय एवं बने विश्वकलके रचना में ब्रह्मात्मकता के  
 विनिर्दिष्ट-विशालता के बीच कल कलकलपरिचय एवं कल के कर्ता वेदोक्त  
 (१९ ई.) कलकलीपरिचय के कर्ता ईश्वर (१९ ई.)  
 कलकल ईश्वर के कर्ता गुंवारकाल (१९ ई.) ब्रह्मात्मक-विशालता के  
 कर्ता कलकली (१९ ई.) कलकुम्हारपरिचय के कर्ता कलकली  
 (१९ ई.) कलकुम्हारपरिचय के कर्ता कलकली (१९ ई.)  
 कुम्हारपरिचय के कर्ता कलकली (१९९४ ई.) वेदोक्त कलकली  
 कलकली एवं कलकलीपरिचय कलकली कलकली के कर्ता कलकली  
 (१९९४ ई.) कुम्हारपरिचय के कर्ता कलकली (१९९४ ई.) कलकली  
 कलकली-वास्तव और कलकली-वास्तव कलकली के कर्ता कलकली

विजयनगरके इतिहासके प्रधान आधार इटलीवासी पर्यटक निकोलो कोण्टो ( १४२० ई० ), हिरातके सुलतान शाहखानके विद्वान् राजदूत अब्दुर्रजाक ( १४४३ ई० ), पुर्तगाली लेखक डोमिंगो पाइझ ( १५२२ ई० ) और नूनिज ( १५३५ ई० ) आदि कई विदेशी यात्रियों-द्वारा लिखे गये आँखों देखे वर्णन, फरिस्ता आदि मध्यकालीन मुसलमान इतिहासकारा-द्वारा दिये गये विवरण, तत्कालीन विलालेख जिनमें जैन शिलालेखोंकी ही अधिकता है, तत्कालीन साहित्य ग्रन्थ—इनमें भी कन्नड़ी भाषाकी जैन धार्मिक एवं लौकिक रचनाओंकी ही बहुलता है, स्वयं राजधानी विजयनगर और उसके आस-पास दूर-दूर तक फैले हुए भग्नावशेष, मुसलमानोंके प्रकोपसे बच रहनेवाले कन्नड़, तुलुय, तमिल प्रदेशोंके जैन, शैव, वैष्णव तीर्थ एवं मन्दिर आदि और इनके आधारपर वर्तमान शतीके प्रारम्भमें लिखे गये राबर्ट मिवेलकी पुस्तक तथा एच० कृष्णा शान्श्रीके लेख हैं । तदुपरान्त भी अध्ययन और अनुसन्धान चलता रहा है और अनेक विद्वानोंने इस सम्वन्धमें कार्य किया है ।

उपरोक्त साधनोंसे पता चलता है कि राजधानी विद्यानगरी ( विजयनगर ) अपने समयके सम्पूर्ण विषयमें अद्वितीय नगरी थी । ६० मीलके घेरेमें फैली हुई, एकके भीतर एक मात परकोटोंसे घिरी हुई, अनेक सरोवरो, बाग़ी, कूप, तड़ाग एवं जलप्रणालियों, उपवनों, उद्यानों, उत्तुंग कलापूर्ण जैन, शैव, वैष्णव-देवालयों, अत्यन्त दर्शनीय राजप्रासादों ( एक भवन निरे हाथी दाँतका ही बना हुआ था ), सामन्त सरदारों एवं धनी नागरिकोंके सुन्दर भवनों, पचासो हाट-बाजारों और धीधियों आदिसे समलंकृत एक लाख घरों और लगभग दस लाखकी जन-सङ्ख्यावाली इस अलकापुरी-सदृश महानगरीमें मणि मुक्ता और सोने-चाँदीसे लेकर छोटीसे छोटी प्रत्येक वस्तुका खुला व्यापार होता था । लोग ईमानदार थे, चोरी-छाँकेका भय नहीं था, प्रजा प्रसन्न, सम्पन्न, सुखी और शीक्रान्ति थी । धर्म, कला और साहित्यमें विद्यानगरी अपने नामको चरितार्थ करती



रामस्वामी मन्दिर ( १५१३ ई० ) अपने प्रस्तराकर्मोंके लिए प्रसिद्ध है । तत्कालीन विदेशी यात्रियोंने विजयनगरके शिल्पियों, रूपकारों, चित्रकारों तथा अन्य कलाकारोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है । इस सबके अतिरिक्त ये सम्राट् स्वदेशभक्त, सर्वधर्म सहिष्णु, उदारशय और प्रजा-वत्सल भी थे, अतः प्रजाके सभी वर्गोंने साम्राज्यके बहुमुखी उत्कर्षमें योग दिया ।

मध्यकालीन भारतीय राजनीतिकी यह अद्वितीय सृष्टि विजयनगर और उसका साम्राज्य तालिकोटाके युद्धमें भस्मसात् हो गये । लगभग सो-सवामी वर्ष तक चन्द्रगिरिके महाराजाओंने उसकी स्मृतिको सजीव बनाये रखा । १७वीं शतीके अन्तमें वह स्मृति भी निर्जीव हो गयी । किन्तु निर्जीव होनेमें पूर्व ही वह मराठा वीर शिवाजीको राष्ट्रोद्धारकी प्रेरण देनेमें सफल हो चुकी थी । महाराष्ट्रमें जब शिवाजी दक्षिण और उत्तरमें मुसलमान नरेशोंके विरुद्ध विद्रोह एवं सघर्ष करके स्वदेशी स्वधर्मो राज्यस्थापनाका उपक्रम कर रहे थे तो चन्द्रगिरिका छोटा-सा अवशिष्ट विजयनगर-साम्राज्य भी विस्तारकर तमिल, तैलेगु और दक्षिणी कन्नड़ प्रान्तोंमें अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्योंमें परिणत हो गया था । इस काल राजनैतिक पतनके फलस्वरूप नैतिक पतन भी हुआ जो इन सामन्त सरदारोंके व्यवहारमें चरितार्थ हुआ । इन छोटे-छोटे राजाओंमें अधि-तर वीर शैव, सद्शैव या श्रीवैष्णव थे और तत्कालीन शैव वैष्णव ग्रन्थोंसे ही पता चलता है कि इन्होंने जैनधर्म और उसके अनुयायियों पर अमानुषिक अत्याचार किये, बारूकुरु, मारुडिगे, कल्याण आदि नगरों एक एक दिनमें सैकड़ों जैन-मन्दिरों, मूर्तियों, ग्रन्थ-मण्डारों, विद्यालयों, दानशालाओं आदिमें युक्त जैन-धर्मदियोंका ध्वंस कर दिया गया, जैनो-बरवस धर्मत्याग कराया गया, उनका वध कर दिया गया, बारूकुरु जैसे अनेक सुन्दर जैन-केन्द्र उजाड़ हो गये । समर्थ आश्रयदाता केन्द्रों राज्य-शक्तिका अभाव हो गया था और जैन गुरुओंमें युगान्तरका



राजवंशोंमें प्रमुख थे—

(१) सगीतपुरके सालुव या कदम्बराजे—भट्टकल इनको राजधानी थी, मोतियोंके व्यापारके कारण यह मोतीभट्टकल भी कहलाता था। सगीतपुर, भट्टकल, गेरुमप्ये जिसे उत्तरकाशी भी कहते थे, मूढविद्री जिसे दक्षिणकाशी भी कहते थे और जहाँ १७वीं-१८वीं शतीमें भी सात-सौ चेत्यालय और सात सौ सतहत्तर घर जैनियोंके थे, और मगलूर प्रसिद्ध जैन-केन्द्र थे। इस वक़्तमें पुत्रियाको भी राज्यका उत्तराधिकार मिलता था। १६वीं शतीमें तत्कालीन कदम्ब-नरेशकी मृत्युपर यह राज्य उसकी सात कुमारी कन्याओके बीच सात भागोंमें बँट गया था और १७वीं शतीके प्रारम्भमें उन सातोंने योग्यतापूर्वक शासन किया।

(२) कार्कलके भैरवस राजे—मयूराके राजकुमार जिनदत्त रायकी सन्ततिमेंसे ये और बड़े धर्ममत्त थे।

(३) वेणूरका अजिलवश—इसीकी एक शाखा वगवाडिपर वग वशके नामसे राज्य करती थी और एक नन्दावरमें राज्य करती थी। यह वंश विजयनगर नरेशोंसे भी सम्बन्धित था, और अबतक वर्तमान रहा है।

(४) उल्लालका चौटवश—१२वीं शतीके मध्यसे लेकर १८वीं शतीके अन्त तक चलता रहा।

(५) विलिक्केरेका अरसुवश—१९वीं शताब्दीके अन्त तक चलता रहा। इस वशके राजा देवराज ( मृत्यु १८७७ ई० ) बड़े वीर योद्धा और आत्मतत्त्वपरीक्षण नामक ग्रन्थके कर्त्ता थे तथा मैसूर-नरेशके प्रधान अंगरक्षक थे।

(६) वारुकुरुके पाण्ड्य राजे—इस वशके कई राजे प्रसिद्ध अय-कार भी हुए हैं। इनकी राजधानी वारुकुरु वशी समृद्धिशाली सुन्दर नगरी थी। इसकेरि वशी वैकप नायकने, जो शैव था, इस नगर और वहाँके जैनोंका १६१९ ई० में विध्वंस किया था।



(७) मैसूरके खोजेदार राजा—प्रथमजेवरीन तीर्थके प्रथम संरक्षक  
 ने ही यह । १८वीं शताब्दी ईसवीकी और हीनू गुल्शनने इन्हें सब सिखा  
 था । जैदरजेन इस बीच एवं राजाका बखार किया और यह वर्तमान तक  
 बखला रहा ।

(८) लखरीके बख्शबखी राजे ।

(९) बख्तपुर ( बिहिने ) के जेव राजे ।

(१०) बेईमजिहके मुह ।

(११) मुस्लिमके सार्वजनिक इलाक़े ।

इन सब राजाके कब्रियाँ बीच-पानीमें छोड़ीय तीर्थों एवं पैनाम  
 संरक्षक किया बखारबोका बीबीखार किया और राजा की बखारबोका  
 रचना कपटी बिहनी और बुझीना बखार किया और बखारबोका  
 बीजबखरी कल देखें बीजिन राजा ।

## खण्ड २

विदेशी-शासनमे भारत

[ मुसलमान और अंगरेजी-शासन



## अध्याय १

### इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुलतान

१३वीं शतीके प्रारम्भसे लेकर १८वीं शतीके अन्त पर्यन्त, लगभग ५०० वर्षके, इस मध्यकालकी सबसे बड़ी ऐतिहासिक विशेषता इस देशमें उत्तर-पश्चिमी सीमान्तको पार करके मध्य एशियाई मुसलमानोंके आक्रमण, यहाँ उनके राज्योंका प्रारम्भ और विकास और फलस्वरूप स्वदेशी राज्य-सत्ताओंका धीरे-धीरे अन्त अथवा पराधीनताकी बेडियोंमें जकड़ जाना है। भारतीय राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति और समाजमें एक प्रबल, नवीन, अपरिचित, विरोधी अथवा प्रतिकूल तत्त्व प्रवेशने विविध प्रकारकी उथल-पुथल, क्रान्तियों और आन्दोलनोंको जन्म दिया। देशका स्वरूप ही बहुत कुछ बदल गया।

गुप्तकालके अन्त तक मध्य-एशियाके बहुभागपर भारतीय संस्कृतिका प्रभाव था, वहाँ हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि भारतीय धर्मोंका प्रसार था और उसके कई भाग बृहत्तर भारतके अंग थे। किन्तु पिछली दो-एक शताब्दियोंसे भारतकी ओरसे उन्त भारतीय प्रभावका पोषण होना रुक गया था। आर्यजनोंको म्लेच्छ देशों और नातियोंसे सम्पर्क रखना पाप है, ऐसी भावना हिन्दुओं और जैनोंमें बल पकड़ती जा रही थी। परिणामस्वरूप बृहत्तर भारतके मध्य एशियाई भागकी सम्पूर्ण भारतीयता धनै-शनै बौद्ध रूपमें ही अवशिष्ट रह गयी। वह भी स्थानीय तथा अवशिष्ट हिन्दू जैन आदि प्रभावोंके अत्यधिक मिश्रणके कारण बौद्ध संस्कृतिके भी अत्यन्त

इस्लामका भारत प्रवेश और दिल्लीके सुलतान

संविधान एवं विरुद्ध अपने ही राज्य का रही थी ।

[illegible]

राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक, तीनों सत्ताओंको एकत्र (संयुक्त) करके अपने धर्म-राज्यकी स्थापना की, वे स्वयं उसके पूर्णतया स्वेच्छाचारी और सर्वशक्ति एव सत्ताधारी नेता बने और उन्होंने अपने अनुयायियोंको एक हाथमें कुरान और दूसरेमें तलवार लेकर इस धर्मके प्रचारार्थ निकल पड़ने की आज्ञा दी। इस मतमें विवेक और तर्कको विशेष गुजायश नहीं थी, पैगम्बरकी आज्ञा ही प्रमाण थी। जैसा प्राय होता है, मुहम्मदका विरोध भी बहुत हुआ और फलस्वरूप ६०९ ई० में उन्हें मक्का छोड़कर मदीनेको पलायन कर जाना पड़ा। तभीसे हिमरी सन्धी प्रवृत्ति हुई। अन्ततः इस्लाम जोगेंके साथ फैलने लगा। मुहम्मद (मृत्यु ६२५ ई०) के उत्तराधिकारी खलीफा कहलाये। अरबोंमें नवीन जीवन और उत्साहका संचार हुआ। नवीन धर्मोन्मादसे मत्त होकर वे देश-देशान्तरके काफ़िरोको बर्बर मुसलमान बनानेपर तुल पड़े। खलीफाओंकी शक्ति, धन, राज्य-विस्तार और अनुयायियोंकी मर्यादा दिन दूनो रात चौगुनी बढ़ने लगी। थोड़े-से समयमें ही इस्लाम विश्वकी एक प्रबल शक्ति बन गया। अलममूर, हार्न-अलरशीद आदि कुछ खलीफा नेक, उदार और विद्याप्रेमी भी हुए और विभिन्न देशोंके ज्ञान-विज्ञानका लाभ उठाकर अरब संस्कृति एव साहित्यका भा अच्छा विकास हुआ। किन्तु उनके धर्मकी नीरम एकागी कठोरता और उनकी धर्मांध कट्टरता दान, न्याय, तत्त्वचिन्तन तथा स्यासत, मूर्ति, चित्र, संगीत, काव्य आदि ललित-कलाओंके क्षेत्रमें अनिवार्य रुकावट बनी रही।

हज़रत मुहम्मदकी मृत्युके कुछ ही वर्ष बाद, ६४४ ई० में, मकरान और बिलोचिस्तानके मार्गसे अरबोंने भारतके सिन्धु देशपर सर्व-प्रथम आक्रमण किया। तत्कालीन सिन्धु-नरेश सिहरसराय युद्धमें मारा गया। ६४६ ई० में फिर आक्रमण हुआ उसमें सिहरसरायके पुत्रकी भी वही गति हुई। दोनों बार मुसलमान आये और चले गये। ७१२ ई० में जुन्नैदके सेनानी मुहम्मद बिन कासिमने एक प्रबल आक्रमण किया। सिन्धका ग्राह्यण राजा दाहिर वीरता-पूर्वक लड़ा किन्तु मारा गया और



दुर्ग और कुछ हाथी अमीरको देकर उसने सन्धि कर ली और तुरन्त उसे तोड़ भी दिया। फल-स्वरूप मुसलमानोंने गोमान्त देशके जलालाबाद जिलेको तहम-नहस कर दिया। ९९१ ई० में जयपालने राजपाल प्रतिहार और घग चन्देल आदि नरेशोंका एक मुसलिमरिनेषी सघ बनाकर गजनीवालके माय कुर्रम घाटीमें भयंकर युद्ध किया और मुसल-मानोको पैदावरसे आगे न बढ़ने दिया। ९९७ ई० में मुयुबनगीनका बेटा महमूद गजनीका सुलतान हुआ। मध्य-एशियामें अपने राज्य विस्तारसे उसने बहुत धन बढ़ा ली थी और वह अपने समयका सर्वाधिक शक्ति-शाली मुसलमान सुलतान समझा जाता था। भारतके धन-वैभवंकी कहानियोंने उस अत्यन्त लालचो बना दिया था। किन्तु यीर-योद्धाओंने इस महान् देशमें घुसने और लूट-मार करनेके लिए अपने नैनिकोंमें पर्याप्त साहम पैदा करनेके लिए केवल अतुल लूटका लोभ दिखाया पर्याप्त न था, अतः उसने उनके घमों-मादको भटकाया, वृत्तपरस्त्वै युक्तोकी सीढ़कर, उनके कल्पनातीत दौलतसे भरे मन्दिरोंको लूटकर और बाफिरोंको मुसल-मान बनाकर या तलवारसे घाट उतारकर गाजी बन इस जीवनमें धन, विजय और धर्मभक्ति तथा मरनेके बाद जन्नत मिलनेकी महज आशा दिलायी। ९९९ से १००७ ई० के बीच महमूदने भारतपर लगभग १७ आक्रमण किये। भटिण्डेके यीर साही गजे प्राणपणसे उसका प्रतिरोध करते रहे और इसी प्रयत्नमें होम हो गये। १००१ ई० में जयपाल पेशावरके निकट युद्धमें पराजित होकर बन्दी हुआ, महमूदने उसे मुक्त भी कर दिया किन्तु उस अपमानशुब्ध नरेशने चित्तार्थ प्रवेश करके जीवनका अन्त कर लिया। उसके पुत्र आनन्दपालने महमूदका प्रतिरोध करनेके लिए अजमेरके वीमलदेव चौहानके नेतृत्वमें मालवा, खजराहो, कन्नौज, शाकम्भरी आदिये भारतीय नरेशोंका एक प्रबल सघ संगठित किया। पेशावरके निकट ४० दिन तक दोनों सेनाएँ आमने-सामने पड़ी रहीं। पजाबके खोखरोंने भी भारतीय सघको सहयोग दिया। सुलतानकी सुदृढ़ मुरझित

इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुलतान



छावनीपर पहले बालीके कुछ मिमिटीमें ही भारतीय सौपेने कहीं  
 मुहकमालीकी कानूने पास करार दिया । किन्तु कानूने इतिहासिक विषय  
 मानेने भारतीय सैन्यमें बलवत् प्रभाव गयी और मुहकमाल विजयी रहे,  
 फिर भी भारत लीज कानूने ही कानूने रखा कानूनी । १ १ ई में  
 मद्रासी कानूने के कुर्नर आक्रमण किया और मद्रास के सुपरींटेंडेंट रज-  
 मन्तिरको छोड़ा और कूटा । १५ वर्ष तक इस कुर्नर मुहकमालीका  
 बनिस्तर भी रखा जिसके उपरान्त भारतीयोंने इसे कानूने फिर लीज  
 किया । १ १८ ई में ( जब ब्रिटिशोंके हाईकोर्ट और एक्सा कानूनी  
 गया था ) मद्रासी कानूने रखा इतरकानूनी पराजित करने कानूने कानूनी  
 किया तथा मद्रासी बनिस्तरको कूटा और विजय किया । मद्रासे कानूने  
 कानूनीका कानूनी बलवत्ताका बलवत्ता विजय कानूनी एवं ब्रिटिश बनिस्तर  
 था जिसे भारतीयोंने बलवत्ता कानूनी कर कानूनी । मद्रास कानूनीके  
 बनिस्तर कानूनी बनिस्तरकी प्रथम विजयकानूनी कानूनी-ब्रिटिशोंको भी मद्रास  
 के गया । इस कानूनीके मद्रासी भारतीयोंने बलवत्ता कानूनी कानूनी  
 कानूने कुछ पूर्व ही निर्मित कानूनी और ब्रिटिशों ने कानूनी ब्रिटिश  
 रखा कानूनी । सम्भव है कि कानूनी बनिस्तरकी कानूनी कानूनी कानूनी  
 लीजकानूनी और इस कानूनीके भी मद्रास गया । मद्रासी कानूनी कानूनी  
 कानूनीकर आक्रमण किया और इसे कूटा । तथा कानूनी मद्रास छोड़कर  
 गया गया था । कानूनी इस कानूनीके फिर विजय कानूनी ब्रिटिश  
 ब्रिटिशोंने इसे कानूनी दिया । कानूनी वर्ष मद्रासी कानूनीकर आक्रमण  
 किया । कानूनी ब्रिटिशकी कानूनीके मद्रास कानूनी और कानूनी कानूनी  
 कानूनी कानूनी । कानूनी कानूनीके भी कानूनी कानूनी कानूनी छोड़ा दिया ।  
 १ १४ ई में मद्रासी मुहकमाली ब्रिटिश कानूनी-बनिस्तरको कूटा और  
 विजय किया । ब्रिटिशोंकी गयी लीजकानूनी कानूनी किन्तु पराजित होकर  
 गया । कानूनी कानूनी विजयकानूनी कानूनी कानूनी कानूनीका लीज किया  
 और कानूनी कानूनी मद्रास कुछ इतिहास की । १ १ ई में मद्रास मद्रास ।

भारतके इन आक्रमणोंमें अपार धन उसके हाथ लगा था जिसके कारण भारत-वाह्य समस्त ससारमें वह सर्वाधिक धनशक्ति-सम्पन्न नरेश हो गया था । भारतके लिए उसके आक्रमण प्रलयकर किन्तु अस्थायी ववण्डर थे । देशके असंख्य जन-धन, मन्दिर, मूर्तियों एवं अनुपम कला-कृतियोंका विध्वंस इस नृशंस लुटेरेके हाथो हुआ, किन्तु देशके साधन ऐसे असीम थे कि थोड़े समय पश्चात् ही उसकी दशा पूर्ववत् हो गयी और इन भयंकर आक्रमणो एवं लूट-मारका चिह्न भी न रहा । इसमें भी सन्देह नहीं कि तत्कालीन राजपूत राजाओंका दुरभिमान और उनमें परस्पर सहयोग, सगठन और एकताका अभाव तथा अश्वारोही सेनाकी अपेक्षा गजदलपर अधिक भरोसा रखना ऐसे तथ्य थे जो मुसलमानोंकी सफलताके उस समय भी और आगे भी प्रधान कारण हुए ।

व्यक्तिगत रूपसे महमूदमें राजनैतिक और धार्मिक उदारता भी थी । तिलक नामक एक हिन्दूके नायकत्वमें उसकी सेनामें एक हिन्दू सैनिक दल भी था और उन्हें मुसलमान छावनी तथा गजनीमें भी अपने धर्म-पालनकी स्वतन्त्रता थी । महमूदने साहित्य और कलाको भी प्रश्रय दिया, गजनीमें सुन्दर महल और मसजिदें बनवायीं और फारसीके फ़िरदौसी आदि कवियोंको प्रश्रय दिया । उसके एक महान् विद्वान् अनुचर अल्बेस्लीने, जो उसके साथ कई बार भारत आया और कुछ समय यहाँ रहा भी, भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य, इतिहास, ज्ञान-विज्ञान आदिका प्रशंसापूर्ण विवरण दिया है । इस विद्वान्ने संस्कृत-भाषा भी सीखी और भारतीय धर्मशास्त्रोंका भी अध्ययन किया था । फिर भी भारतीय इतिहासकी दृष्टिसे तो महमूद गजनीवी एक धर्मान्ध विध्वंसक एवं बर्बर लुटेरा ही था । पजाबके कुछ भागपर उसका अधिकार भी स्थायी हो गया ।

इस भारतीय प्रान्तके सुरक्षणके लिए उसके पुत्र और उत्तराधिकारी मसूदके समयमें भी भारतपर कई आक्रमण हुए । किन्तु जब पजाबसे आगे बढ़कर पूर्वी-उत्तर प्रदेशमें उसकी सेना घुसी तो बहराइशके युद्धमें

आरम्भिके तीन-चरण मुद्रिकरीय-प्राप्त परामित्त हुई और बहस विपरी-  
ताचार बड़े में बाध गया । यह विपरीताचार ॥ सम्भवतया देवर आचार  
अनुर काहीके चरणों प्रतिष्ठ है । १८ ई के समय अनुरके बहस-  
विपरीत इष्टीयने आचार आक्रमण किया । उनके समय १ वर्ष  
बाद एक परिचयोत्तर बीसपर मुद्रकगर्भीके उत्तर आत्त री और  
कोई सम्भवनीय आक्रमण नहीं हुआ । पंजाब समय ही उनके बहि-  
कारमें रहा ।

१२वीं शतीके पूर्वार्धमें शीरी संघका पतन हुआ । अथवा इस्लामीके  
संघ बहसमें से शीरी संघ-संघीयों द्वारा करवा दी थी ब्रह्म ११५  
ई में शीरी मुस्लिम आचारगर्भी हुकेने इस्लामी आक्रमण किया, उसे  
दुष्ट छद्म ज्ञान किया और मृदा । अथवा बहसविपरीत मुसलमानों  
जलकर संघमें बहस की और अष्टीयकी जलने राजधानी बहस विपरीत  
केवल संघके कुछ समय ही करवा राज्य रहा । ११७ ई में शीरी  
मुस्लिम बहसमुद्रक राज्य-विपरीत आचार-विपरीत ही विपरीतकी बहस का  
विपरीत कि बहस केवलमें अथवा बहसकी था । बहस वर्ष बहस केवल राज्य  
का पूर्वी राज्य विपरीत बहस और बहस विपरीत के बहस काई बहस  
विपरीत विपरीत मुद्रक मुद्रक शीरीके है विपरीत । यह बहस शीरी  
अनुर, दुराचारी और अथवाकाही था । आचारकी विपरीत करके यह विपरीत  
आचार राज्य-विपरीत काहीकी बहस आचार की अन्य विपरीतमें करके  
विपरीत मुद्रक थी न थी । ११७-१ ई में बहस मुसलमान आक्रमण  
करके बहस विपरीत किया । आचार अथवा शीरीके विपरीतकाही  
अथवा पुर्वार विपरीत किया । इस आचार अथवा विपरीत करके  
परमात् ११८ ई में बहस मुसलमान आक्रमण किया । अथवाकाही  
राजाकीय राजा बीस विपरीत औरकी बहस था विपरीत उनके बीसकी  
एक विपरीत बहसके आचारकी अथवाकी मुद्रके मुद्रक शीरीकी पूर्वी  
बाद परामित्त करके विपरीत बना विपरीत । यह विपरीत समय ही बहसके

लिए गुजरातको मुसलमानों आक्रमणोंसे प्रायः सुरक्षित कर दिया। ११८७ ई० में मुहम्मद गोरीने खुशरूशाह गज्जनवीको, जो उस वंशका अन्तिम प्रतिनिधि था, पदच्युत करके पंजाबपर अधिकार किया। पंजाब और सिन्धपर अपना शासन सुदृढ़ कर लेनेके उपरान्त ११९१ ई० में उसने एक भारी सेनाके साथ उत्तर-भारतके मध्य भागमें प्रवेश किया। शत्रुको उसकी इस घृष्टताके लिए दण्डित करनेके लिए दिल्ली और अजमेरके समुक्त नरेश और पृथ्वीराज चौहानके नेतृत्वमें उत्तर-भारतके विभिन्न राजे आपसी वैर-भाव भुलाकर एक हो गये और मुसलमानोंको देशसे निकाल बाहर करनेके लिए यह समुक्त सैन्यदल द्रुत वेगसे चल पड़ा। कर्नाल और घानेस्वरके मध्य तराइन या तलावढीके मैदानमें दोनों दलोंकी मुठभेड़ एवं भयंकर युद्ध हुआ। पृथ्वीराजके वीर भाईने स्वयं मुहम्मद गोरीको द्वन्द्व युद्धमें उलझाया। गोरी सुल्तान वुरी तरह जलमी होकर रण-क्षेत्रको छोड़ प्राण बचाकर भाग निकला, उसके सैनिक भी पराभूत एवं तितर-बितर होकर भाग निकले। भारतीय शूरोंने भागते हुए शत्रुओंका पीछा भी न किया और उन्हें सुरक्षित वापस लौटने और नवीन आक्रमणके लिए शक्ति संग्रह करनेके लिए छोड़ दिया। अगले वर्ष (११९२ ई० में) ही और अधिक सेना, बल एवं उत्साहके साथ गोरीने फिर आक्रमण किया। पृथ्वीराजने इस बार भी पूर्ण उत्साहके साथ तलावढीके मैदानमें उसका मुकाबला किया। किन्तु जहाँ इस बार मुसलमानोंका बल और सकल्प द्विगुणित था, कन्नौज-नरेश जयचन्दके असहयोगके कारण पृथ्वीराजको बंधु नरेशोंकी पिछले वर्ष जितनी और जैसी सहायता प्राप्त न हुई। फिर भी वह वीर और उसके सूरमा अत्यन्त वीरताके साथ लड़े। पृथ्वीराज आहत होकर घन्टी हुआ और मार खाया गया। भारतीय सेनाके पैर उखड़ गये और विजय मुसलमानोंके हाथ रही। तलावढीके इस युद्धने भारतके भाग्यका निर्णय कर दिया।

पंजाबको पार करते ही दिल्लीके उत्तर-पश्चिमकी ओर फैली हुई

**आर्य समाज** **द्वारा** **दत्त**

था। ये राजा लोग अपने या अपने राज्यके लिए ऋते थे, मगध देशके लिए लटनेकी भायना उनमें न थी। बौद्धधर्मके प्राय मर्यादा अभाव और जैन प्रभावके अपेक्षाकृत मन्द पद जानेके कारण ब्राह्मण-पण्डितोंकी कृपामें इस कालमें जाति-पाँतिका भेद कुछ ऐसा पुष्ट हो चला था कि राजपूत जातिक अलावा अन्य कोई व्यक्ति मैनिक ही नहीं हो पाता था जिममें देशके सैन्य साधन एकागी और सीमित हो गये, और अन्ततः देश पराधीन हुआ।

शोध ही गौरीकी सेनाने अजयचद्रको भी पराजित किया जो श्वर्य मुसलमानोंकी क्रान्तिकारी विजयका एक प्रधान यद्यपि परोक्ष साधक बन चुका था। ११९३ ई० में ही मुहम्मद गौरीके सेनानी कुतुबुद्दीनने मेरठ और दिल्लीपर अधिकार किया तदनन्तर कन्नौज, वागणसी और ग्वालियरपर अधिकार किया, अजमेर भी दिल्लीके साथ-ही साथ मुसलमानोंके अधिकारमें आ गया। ११९७ ई० में कुतुबुद्दीनने अहिलवाड़ेपर फिर आक्रमण किया किन्तु भीम द्वितीय-द्वारा नाममात्रकी अधीनता स्वीकार कर लेनेपर वापस लौट आया। उसी वर्ष उसके उपसैनाने मुहम्मद बिन बख्तियार खलजीने बिहार प्रदेशकी राजधानी बिहार दुर्गपर अधिकार कर लिया। यह स्थान उस समय बौद्धोंका प्रधान केन्द्र रह गया था और यहाँका बौद्धधर्म इस कालमें अपने अति अवनत एवं विवृण रूपमें था। थोड़े से ही परिधमसे मुसलमानोंका बिहार प्रदेशपर अधिकार हो गया, अनेक बौद्ध-बिहार, पुस्तकालय, मन्दिर और मूर्तियाँ नष्ट कर दी गयीं, बौद्ध भिक्षुओंकी तलवारके घाट उत्तार दिया गया, जो किसी प्रकार बचकर भाग निकले उन्होंने नेपाल, तिब्बत आदि देशोंमें आकर शरण ली। ११९९ ई० में इस खलजी सेनानीने बंगालकी राजधानी नदियाकी भी मात्र १८ अश्वारोहियोंके साथ छल-कौशलसे हस्तगत कर लिया कहा जाता है। बूढ़ा ब्राह्मण राजा लक्ष्मणसेन बिना लड़े ही महल और राजधानी छोड़ भाग गया। नदियाको तहस-नहस करके खलजीने

कनवीरी या बौद्धी अङ्गीत राजधानी बनाया । १२ १ ई. में तीसरे  
 गुप्तसम्राट् गणपदेन बम्बोधरी पराजित करवाकर वर्धनवासा मुद्रा  
 देने लग्यवन किया । इसी वर्ष बम्बोधरी छोटीसी मुद्रा देनेसे सम्भव  
 होटी इसके भी सम्भवता इसकी मुद्रा और एक प्रकार बहु उक्त सम्भवता  
 नवौचित्य धर्मिवासी नयेक मुद्रा बम्बोधरी वासाम्ब की नवौचित्य लिखत  
 था । इसी वर्ष यह भारतमें भारत छोड़ा : बहुत जाता है कि यह सम्भव  
 होटी भारतमें उक्त बनने विमानिनी-द्वारा देवके विविध भाषाओं की निज  
 बना । हा था की बम्बोधरी बननेके बादद्वार एक विमानिनी की  
 मानुकी किन्तु उनमें विमानिनी अनुसार बम्बोधरीका याता या बनने दत्त  
 भारतमें बम्बोधरी नवौचित्य किया था । सम्भव है बम्बोधरी सम्भवता  
 मुद्रापर बम्बोधरी देवके विमानिनीके विद् बम्बोधरी बना किया हो । जो सम्भव  
 होटी और इसके विमानिनी की विमानिनी सम्भवताकी बम्बोधरी, मुद्रा  
 वर्धनवासा बम्बोधरी दिया कहे बहु-बहु किया और मद्रा । वर्धनवासा और  
 मुद्राकीकी छोटी और मुद्रा की बम्बोधरी बनने वर्ष बनने से । सम्भव  
 नवी बम्बोधरी बननेके दिनु और बौद्ध-विमानिनी । वर्धनवासाके बनने वर्धनवासा  
 किया गया । कनवीरी मुद्राके सम्भव वर्धनवासा बनने की बम्बोधरी और  
 बौद्ध विमानिनी बनने वर्धनवासा से और बम्बोधरी बनने बनने वा । विद्  
 भी बम्बोधरी छोटीका सम्भव वर्धनवासा मुद्रा-वार और वर्धनवासा-मुद्रा की बना मद्रा  
 था बम्बोधरी सम्भवता बनने था, मद्रा इसके देने वर्धनवासा बौद्धि की  
 रहे । की वर्ष बाद ही कने वर्धनवासा लोकार बम्बोधरी बनने बननेके विद्  
 बनने बना था किन्तु बम्बोधरीमें अनु १२ १ ई. में सम्भव विमानिनीके बम्बोधरी  
 बनने बनने बननेके एक देव वर्धनवासा बौद्धि बनने बनने की  
 बननेमें बम्बोधरी बौद्धि बनने बनने किया । कनवीरी मुद्राके नाम हो  
 भारतके बम्बोधरी सम्भवता बनने बनने बनने हुई ।

पुस्तकसंग्रह ( १२ १-१२२ ई ) भारत भारतमें बम्बोधरी बम्बोधरी  
 बनने बनने बनने था । यह विमानिनी विमानिनी विमानिनी था कि यह

महादेशको सर्वप्रथम गुलामीकी वेढियोंमें जकड़नेवाले स्वयं गुलाम थे। मुहम्मद गोरीकी मृत्युके उपरान्त उसका प्रिय क्रोतदास (जरखरीद गुलाम) और प्रधान सेनानायक कुतुबुद्दीन ऐबक (१२०६-१० ई०) गोरी द्वारा विजित भारतमें उसीके द्वारा स्थापित मुसलमानों राज्यका सर्वप्रथम स्वतंत्र शासक हुआ। गोरीके उत्तराधिकारीने स्वयं उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली और उसे सुलतानकी पदवी दी। खलीफाने भी स्त्रीयाराधिन दे दी। वास्तवमें भारतमें मुसलमानों राज्यका प्रथम सम्पापक ऐबक ही था, उसीने स्वयं तथा अपने उपसेनानायक द्वारा, जिनमें से अधिकतर उसीकी भाँति गोरीके गुलाम थे, पिछले १५ वर्षोंमें उत्तरी भारतक विभिन्न देशों राजाओं की एक एक करके पराजित किया था और इस दशमें दिल्लीको बन्दर एव राजधानी बनाकर मुसलमानों राज्यका विस्तार किया था तथा गोरीके वाइसरायक रूपमें शासन किया था। बिहार, बंगाल-विजेता खलजीका आसामकी चढ़ाईमें १२०६ ई० में ही अन्त हो गया था। दल्दुजकी लड़की-के साथ अपना, कुवाचाके साथ अपनी बहनका और इस्तुतमिशके साथ अपनी पुत्रीका विवाह करके ऐबकने प्रधान मुहम्मिज गुलाम सरदारोंको अपना सहयोगी और सहायक बना लिया था और इस प्रकार अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी।

ऐबक और उसके साथी तथा उनके उत्तराधिकारी ये प्रारम्भिक मुसलमान सुलतान और सरदार धर्माघ, क्रूर, निर्दयी एव बर्बर मध्य-एशियाई योद्धा थे। जो मुल्ला मौलवी अनिवार्यतः इनके परामर्श-दाता और इतिहास-लेखक रहते थे वे उनके धर्मोन्मादका और अधिक प्रज्वलित करते रहते थे। प्रत्येक मुलतान या सरदारके महत्त्वपूर्ण और प्रदासनीय कारनामे यही होते थे कि उसने कितने सशस्त्र या निहत्थे काफ़िरोंको मर उनके निस्सहाय स्त्री-बच्चोंके दोखल पठाया, कितनोंको ख़बरदस्ती मुसलमान बनाया, कितने मन्दिरों और मूर्तियोंको तोड़ा और लूटा आदि। उनकी द्रुत सफलताका कारण भी उनके निर्दय अमानुषिक व्यवहारसे



[illegible]

मुजसुद्दीनकी मृत्युके बाद कब्रस्थान पर आधमशाह ( १२११ ई ) मुजसुद्दीन हुआ । वह कबोला या कला मुजहदी खानिवाँ के बड़े बन्धुपुत्र के ऐलकहा मुजसुद्दीन की रक्षा के लिये आधमशाह के पुत्र ( १२११-१२१९ ई ) को एक समय कलानुवा खानेदार या मुजसुद्दीन बन दिया । कबुल मुजसुद्दीन की पुत्री की रक्षा के लिये मुजसुद्दीन के पुत्र की रक्षा के लिये

प्रतिद्वन्द्वी थे उनका उसने दमन किया और उत्तरी भारतके बहुभागको अपने अधीन किया। यह एक योग्य 'यायी' एवं कुशल शासक था। इसके समयमें भयंकर मंगोल सरदार चंगेजखाने भारतपर सर्व-प्रथम आक्रमण किया किन्तु इल्तुतमिशकी चतुराईसे यह सिन्धसे ही वापस लौट गया। इस सुलतानने ऐवक-द्वारा प्रारम्भ की हुई कुतुबमीनार आदि इमारतोंका पूरा किया, अजमेरकी विशाल मसजिद जैन मन्दिरोंको तोड़कर धनवायी और दिल्लीमें अपना मक़बरा बनवाया। इल्तुतमिशका पुत्र रुकुनूद्दीन अयोग्य और दुराचारी था अनएव कुछ ही महीने राज्य करनेके बाद सरदारोंने उसे मारकर उसकी बहन सुलताना रजिया बेगम (१२३६-३९ ई०) को गद्दीपर बैठाया। वह योग्य और बुद्धिमती थी, पुरुष-वेषमें ही रहती थी, युद्धोंमें भाग लेती थी, किन्तु कुछ सरदारोंके प्रेमपाशमें पड़कर उसने अन्य सरदारोंको अपना विद्रोही बना लिया और जीवनसे हाथ धोया। तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारोंने उसकी बड़ी प्रशंसा की है और उसके पतनका कारण उसका स्त्री होना लिखा है। उसके बाद उसके भाई बहरामने और फिर एक भतीजेने थोड़े-थोड़े समय तक राज्य किया। ये दोनों ही निकम्मे शासक रहे। तदनन्तर इल्तुतमिशका ही एक अन्य छोटा लड़का नासिरूद्दीन (१२४६-६६ ई०) सुलतान हुआ। उसके एक मुल्ला राजकर्मचारी मिनहाज सिराजने 'तक्काते नासिरी' नामका प्रथम भारतीय मुसलमानी इतिहास-ग्रन्थ फ़ारसी भाषामें लिखा। सुलतान नासिरूद्दीन एक बहुत सीधा नेक और धर्मात्मा व्यक्ति कहा जाता है। समस्त शासनकार्य उसके स्वसुर एव प्रधान मन्त्री चलुगखान बलवनके हाथमें था। उसीको सुलतानने अपना उत्तराधिकारी भी बनाया। नासिरूद्दीनकी ओरसे बलवनने भी हिन्दुओंके विरुद्ध अनेक जहाद किये, असंख्य काफ़िरोंको मारा, कितनों ही को मुसलमान बनाया, उनके मन्दिरों और मूर्तियोंको तोड़ा, उनका धन लूटा और राज्यकोष भरा। मुल्ला इतिहासकार इन जहादोंका वर्णन करते अघाता नहीं। इस कालमें भी

बंदीबंदी कई व्याज्यय हुए । बाहीर एक कम्पीने लु-अर की । ईदक बनकने बीजान्जरेइकी रखाकी बीर बरिह आन रिह ।

बहीर बीजनेके बार बनकन ( १९९९-८९ ई ) ने इरिजय बन बान्जय गली गन्धन करारोके बनका बनन रिह रिह इन्जानिरी नईरिह रिह या बीर बा इन बनन बनकनका बीजय इरिजनी बना हुआ बा । बनकन बहू कभीर बनकनका बा, रिजिहियेकी बना बना बीर बा बीर बनका बीर नाह कर रीह बा । बनकन रिजिहो बुरेपर मुहरिह बीर बनका बनकन है । रिजिहोके रिजिहोकी बीरने बिनु बीरनी बा बनकन बनने बाते है । बनने बहू बुरी उप बनक रिह । बननेके बनक बनकनका बन की । बनकने के ले बाने बन बनकनीकी लुईर बनाय रिहक बीरन बहू बन बनक १९९८ ई एक बनने है । बनकने बाने बनकन बाते बीर बीर बीर रीह है । बातीयेकी बा पात्रिहोके बिनुल गरी बनका बा । बा बनने बनकनी बन-बीरनी बीर बी बन बन रीह बा । बीरनीके बनने बाने हुए बनक बन रिजिहो बाते बनकी बनने बाते है । रिजिह बाते बीर बननी को हरी बनकनिकी बाते बहू बन बा । बिनु रिजिहोके रिजि बनकनेके बनकनका बन बनकनिकी बी बरिह बनकनिकी है । बीरनीके बाते बिनका बीर बा रिजिहोके बीरनेके बनकनका बनकन बनकन बन है । बीरनीके बी बनक व्याज्यय हुए रिजिह बाते बा पात्रिहियेकी बीर बनक है न है बना । बनकी बीरनेके बनकनी मुकन बनक की बिनु बनके बाते ही बनकन बीर बनकनका बन की । बनक बनकनिकी बनका बीर बीरन ( १९८९-९ ) बनकनका बनकन मुकन बा । बा बा बनकनी बीर रिजिह बनक बा । बा १९९ ई बी बनके बनकन बनके बाते इन बनकन बन हुआ । इन बनकनोका बनकन बीर बनकनिकी बिह ही बा बा बीर बनकनका बाते बीरनीके बिह बा । बाते बनका

आखेट क्षेत्र और भारतीय जनता आखेट मात्र थी ।

**खलजीवंश (१२९०-१३२० ई०)**—कैकुवादका वध करके सरदारों-  
ने समानाके हाकिम वृद्ध खलजी सरदार जलालुद्दीन फिरोज ( १२९०-९६  
ई० ) को सुलतान बनाया । आले ही वर्ष दिल्लीके आस-पास भेषण  
अकाल पड़ा जिसमें अनेक भारतीयोंने यमुनामें डूबकर प्राण दे दिये ।  
फिर मंगोलोंका आक्रमण हुआ । उन्हें सुलतानने घूम देकर वापस लौटा  
दिया किन्तु उनमें-से कुछ मुसलमान बनकर यही बस गये और नव-मुसलिम  
कहलाये । इस सुलतानने मिर्जिमीला नामक एक मुल्लाको मरवा डाला,  
इससे मुल्ला मौलवी भटक उठे । वैसे वह नम्र प्रकृतिका था । हिन्दुआपरा  
उसने अधिक अत्याचार नहीं किये प्रतीत होते । सुलतानकी नरमीके  
कारण राज्यमें ठगोंका जोर बढ़ गया था । १२९४ ई० में उसका भतीजा  
एव दामाद अलाउद्दीन सुलतानकी अनुमतिसे मालवा विजय करनेके लिए  
गया किन्तु तदुपरान्त दक्षिणमें घुसकर उसने देवगिरिके यादव राजा  
रामचन्द्ररायको भी पराजित किया और लूटका विपुल धन लेकर वापस  
लौटा । कड़ामें प्रेमविह्वल वृद्ध सुलतान यशस्वी उत्तराधिकारीका स्वागत  
करने गया तो उसीके हाथों छत्रसे मारा गया ।

अलाउद्दीन खलजी ( १२९६-१३१६ ई० ) ने लूटके धनको सर-  
दारोंमें बाँटकर उन्हें अपनी आर मिलाया और अपनी स्थिति सुदृढ़ एव  
सुरक्षित करके अपने विद्रोहियों एव विरोधियोंका शनै शनै कुचल डाला ।  
१२९७-१३०५ ई० के बीच मंगोलोंक कई आक्रमण हुए, एक बार तो वे  
दिल्लीपर ही आ घमके, किन्तु छल-बल, चतुराई और घूस आदिके  
प्रयोगसे सुलतानने उनसे त्राण पाया । १२९८ ई० में नव-मुसलिम  
मंगोलोंके विद्रोह करनेपर उसने सहस्राकी सख्यामें उन्हें मरवा डाला ।  
उसने स्थय तथा अपने मलिक काफूर, उलुगखाँ, अलपखाँ, जफरखाँ,  
नसरतखाँ आदि सेना-नायकोंके द्वारा राजपूतानेके रणयम्भोर ( १३०१ ई० )  
और विसौड ( १३०३ ई० ) जैसे प्रसिद्ध दुर्गोंको अधिकृत किया । राज-

इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुलतान

[illegible][illegible]

कर ली थी और विद्वानोंका आदर करता था। सुप्रसिद्ध अमीर खुसरो उसका राजकवि था। राघो और चेतन नामक दो ब्राह्मण पण्डितोंका भी मुलतानके ऊपर पर्याप्त प्रभाव रहा, उसका एक हिन्दू मन्त्री माधव था। जिनप्रभूमूर्तिके विविधतीर्थकल्पके अनुसार मन्त्री माधवकी प्रेरणापर ही मुलतानने अपने भाई उलुगखांको गुजरातकी विजय करनेके लिए भेजा था। दिल्लीका नगरसेठ उस समय पूर्णचन्द्र नामक अप्रवाल जैनी था और सुलतान भी उसे काफी मानता था। इसी सठमे बहकर सुलतानने दिगम्बराचार्य माधवमेनको लिखा बुलवाया था, सुलतानने अपन दरबारमे उनका व्याख्यान सुना और सम्मान किया। राघो और चेतन नामक विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थमे जैनाचार्यन विजय प्राप्त का वतायी जाती है। दिल्लीमे काष्ठामधकी गद्दीके मस्थारक भी यही आचार्य थे। इस सुलतानने इन्होंने कई क्रमान भी प्राप्त किये बताये जाते हैं। नन्दिमधके आचार्य प्रभाचन्द्रने भी इसी समयक लगभग दिल्लीमे अपना पट्ट स्थापित किया था। गुजरातके अपने पहले आक्रमणमे भडौंचके दिगम्बर जैन साधु श्रुत-वार स्वामीन भी इस मुलतानका साक्षात्कार हुआ बताया जाता है। श्वेताम्बरगन्धर्व रामचन्द्रमूर्ति और जिनचन्द्रमूर्तिको भी उसने सम्मान किया था, ऐसी अनुश्रुति है। उसीके शासन-कालमे सठ पूर्णचन्द्र सुलतानके क्रमान पञ्च महायतावी प्राप्त कर जैनाका एक बड़ा पथ गिरनार तीर्थकी यात्राय लिए ले गया था। उसी समय पयटशाहके नवतुल्यमे वहाँ गुजरातका मध भी आया था और दाना मघान सद्भावपूर्वक साथ साथ तीर्थ वन्दना की था। गुजरातके सूबेदार अलपखान भी पाटनके सठ समर-शाहको शत्रुजय तीर्थका जीर्णोद्धार करन एवं यात्रामध ले जानेके लिए महर्ष सैनिक महायता भी दी थी। इन तथ्योंमे विदित होता है कि विजयाथ या विद्रोह दमनाथ किये गये युद्ध अवसर्गको छाड़कर सामान्यत इस कालमे भारतीयका स्वधर्म पालनकी सीमित स्वतन्त्रता हो जाने लगी थी, और भारतीयोंको राज्यमे यदा-कदा पदादि भी दिये जाने लगे थे।

इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुलतान

मध्यप्रदेशमें नई बनवियें बचन आदि भी बनवाने और छोटी चानक  
 आगमें नदी बिल्लीके निर्माणका कार्य भी आरम्भ किया था । मुजफ्फर  
 कदौर शासनके परिचायस्थान परी टीपी आदि भी बहुत कम हो गये  
 थे और साथ पराबोंके मुख्य टी बहने हुअने कम निर्धारित दिने वे कि  
 बतना बल्ल बचन आने फिर आरम्भ कभी नहीं आया । इनके अतिरिक्त  
 हरनमें इनके मन्त्री अधिक कमचूरकी वसति बहुत बढ़ गयी थी ।

मुजफ्फरकी मृत्युके बाद नायूरने इनके एक सिन्धु पुत्रों को  
 पिछवा जारी वसति करने आरम्भ कर ती और एकत्रकी को  
 अतिरिक्त कर कर दिया । सिन्धु अन्तर्गत एक नाम अन्तर्गत ही जारी  
 और इनके अतिरिक्त ही हुता कर ही गयी । यह मध्यप्रदेशका एक नाम पुन  
 मुजफ्फर शासनका अन्तर्गत ( १४११-१४१२ ई ) मुजफ्फर हुता सिन्धु  
 यह भी एक पुत्रपरी अन्तर्गत एवं निकला था । अतिरिक्त सिन्धु  
 पुत्र अन्तर्गत देखी इनके साथ सिन्धु की भी और अन्तर्गत अन्तर्गत  
 अन्तर्गत कर दिया था । सिन्धु यह सिन्धुकोन वर ही अन्तर्गत था अन्तर्गत  
 ईश अन्तर्गतकी सिन्धु अन्तर्गत को इनके एक अन्तर्गत अन्तर्गत  
 किया था । मुजफ्फरके एक तीव्र अन्तर्गत अन्तर्गत सिन्धुको अन्तर्गत अन्तर्गत  
 अन्तर्गत मृद-अन्तर्गत बना किया था । यह अन्तर्गत अन्तर्गतके अन्तर्गत अन्तर्गत  
 हुता और अन्तर्गत अन्तर्गत करके अन्तर्गत मुजफ्फर बन ईश । इनके  
 अन्तर्गतकी अन्तर्गत किया और अन्तर्गत अन्तर्गतकी अन्तर्गत अन्तर्गत  
 भर किया । पुत्रपरी अन्तर्गत और अन्तर्गतका तीव्र और अन्तर्गत  
 अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत कर दिया ।

मुजफ्फरशासन ( १४११-१४१४ ई )—अन्तर्गतकी अन्तर्गत सिन्धु  
 अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत  
 अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत था । यह एक अन्तर्गत अन्तर्गत था । अन्तर्गत अन्तर्गत  
 अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत  
 ही अन्तर्गत अन्तर्गत ( १४११-१४१५ ई ) के अन्तर्गत अन्तर्गत

यना । वस्तुतः उसका बाप बलवनका एक तुर्क गुलाम था और माँ एक जाटनी थी, भारतमें ही इसका जन्म हुआ था, अतः वह अत्यंत प्रारम्भिक मुलताना जैसा निर्दय क्रूर और घमाँच नहीं था, साय ही एक योग्य शासक भी था । थोड़े से समयमें ही उसने आन्तरिक शासन व्यवस्थित कर लिया और मगोलोंके निरन्तर होनेवाले आक्रमणोंसे राज्यकी रक्षा करनेके उपाय भी कर लिये । कतिपय भारतीयोंको भी उसने उच्च पदोंपर नियुक्त किया था । पाटनके मेठ सम्राज्ञाहको वह पुत्रवत् मानता था और उसे उसने तैलिलाने भेजा था । सोमचरित्रगणिकृत गुरुगुणरत्नाकर ग्रन्थ ( १४८५ ई० ) के अनुसार सूर और नानक नामके प्राग्जाट जातीय दो जैन भ्राता भी उसके प्रतिष्ठित सगदार थे । अपने पुत्र जूनाखाँको उसने दक्षिण-विजयके लिए भेजा । बारगलके प्रथम युद्धमें तो जूनाखाँ बुरी तरह पराजित हुआ किन्तु दूसरे आक्रमणमें उसने ककातीय राज्यका अन्त करके बारगल और बीदरपर अधिकार कर लिया । इस समय मुलतान स्वयं बंगालके उत्तराधिकारकी समस्या सुलझानेके लिए गया हुआ था । उसके लौटनेके पूर्व ही जूनाखाँ दिल्ली लौट आया । मुलतानके स्वागतके लिए राजधानीसे बाहर उसने अपने विश्वासी अनुबर भ्राजाजहाँद्वारा एक अस्थायी काष्ठमण्डप बनवाया । मुलतान जब अपने छोटे पुत्र महमूदके साथ उस भवनमें घूमन कर रहा था तो जूनाखाँके पट्ट्यात्रसे वह मण्डप गिरवा दिया गया और मुलतान व उसका पुत्र उसीमें दबकर मर गये । मुसलमान फकीर निजामुद्दीन औलियाका भी इस पट्ट्यात्रमें हाथ रहा बनाया जाता है । गयासुद्दीनने दिल्लीके निकट ही तुगलकाबाद नामक एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया था और उसमें अपार धन संचयन किया था । वहाँ उसने अपना मक़बरा भी पहलेसे ही बनवा लिया था ।

अब जूनाखाँ, मुहम्मद बिन तुगलक ( १३०५-५१ ई० ) के नामसे मुलतान बना । इस वंशका यह सर्वमहान् शासक था । उसका व्यक्तित्व

इसका नाम गयेय और दिल्लीके मुलतान





चावने सुनता था और उक्त विद्वानोंसे स्वयं भी वाद करता था ।

विविधतोषकल्पके कर्त्ता जिनप्रभसूरिका सुल्तानने सम्मान किया और उन्हें कई फरमान न्यिये जिसमे उन्होंने हस्तिनापुर, मथुरा आदि तीर्थों-की समष्टि यात्राएँ की और अनेक धर्मोत्सव किये । राजा-मन्त्रियों ने उन्हें वाद विवाद भी किये । उनके शिष्य जिनदेवसूरि बहुत समय तक सुल्तानके साथ रहे और सम्मानित हुए । इनके कटनसे सुल्तानने कन्नौज नगरकी महावीर प्रतिमाको दिल्लीमें स्थापित करवाया । यह प्रतिमा कुछ दिन तुगलकाबादके शाही सज्जानमें भी रही । एक पोषघशाला भी उस समय सुल्तानकी आज्ञा और सहायतासे दिल्लीमें बना । सुल्तानकी माता मल्लभूमेजहाँ बेगम भी इन जैन-गुरुआका आदर करती थी । जैन यति महेन्द्रसूरिका भी सुल्तानने सम्मान किया था । पाटनके शाह समरसिंहको सुल्तान भाई-जैसा मानता था और उसे उसने तेलिगानेका शासक नियुक्त किया था । ज्योतिषी घराघर भी सुल्तानका कृपापात्र था । १३३४ ई० की एक जैन-ग्रन्थ प्रशस्तिमें दिल्लीका नाम योगिनीपुर मिलता है । राज-घानी तुगलकाबादके शाही किलेमें ही 'दग्धार चैत्यालय' नामका एक जैनमन्दिर विद्यमान था जिसमें १३४२ ई० में उस चैत्यालयके निकट रहनेवाले पाटन निवामी अग्रवाल जैन साह सागियाके वंशजोंने एक महान् पूजोत्सव किया था । इन लोगोंके गुरु काष्ठामघो जयमेनके शिष्य भट्टारक दुर्लभमेन थे । सुल्तान भी उनका आदर करता था । इस अवसरपर अनेक ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ करायी गयीं जिनका लेखक गन्धर्वका पुत्र पण्डित बाहूड था । इस सुल्तानके समयमें दिल्लीमें नन्दिसंघके पट्टाधीश प्रसिद्ध भट्टारक प्रभाचन्द्र थे जिनसे सुल्तान बहुत प्रसन्न था ।

अपने शासनके प्रथम वर्षमें ही इस सुल्तानने अपने राज्यके जैनियों ( सयुरगान = सराओगान, श्रावकों ) के हितार्थ एक फरमान भी जारी किया था । १३२७ ई० में ही सुल्तानने दक्षिण देशस्थ दोलताबाद ( देवगिरि ) को राजधानी स्थानांतरित करनेका निश्चय किया और

विन्सीको माली करनेवा हुनन हे विना । कपार बक-उमारी हुमि हुने विन्नु प्रयोग कइल गइी हुवा । हुने १३९० ई. मे ही उनमे शारबकुले होचममाला जन्म करके दक्षिण भारतका अरविह बहूमान भी मुचममाली माननके अन्तकन चलिमलित कर भिया । अमीकाके बाइबलनके नात्त मुचममाली मुन्त कपार जला पडा और मुच देकर ही बहने प्रयोगी पीछा लगवा । हुनाम और चीनपर बाइबल करनेकी योजनाई की रह मुन्तमाले बहावी विन्नु रोमोमे ही मजकन रहा । १३४ ई. के कक-बद फिर बकम पिलीको छोडकर चीनप्रवासकी प्रयत्नकी बमालेवा बयल विना और इस बार भी विफल हुवा । उनके पावन-नाकी कपार बहने चीनम मुकाम पडा अरबम प्राची मुन्नी कर रने । चीनकी बाइबलमो मुन्तमाली अरुपी योजनाकी अनुसारही बकमाला और राजमाली-बिकमम अरुके नारम प्रयकीम जाली हो मवा पर अरबम बहने बोले-बादीके स्वाकमे ठामे और चीनमकी प्रयोग मुन्त बकमाले पाइ । यह योजना भी विफल हुई । कपार पावन-ममाला भी बकम-माला हो गइी । तिम्य अंजल दक्षिण भारि बाइबलनके विभिन्न भावोमे पिछे हुने लगे बिकमे बहम करनेके प्रयत्नमे बकमम चीनम बीछ और फिर भी बकमे अरबम अरुमम हुने और बाइबलनके फिल-बिल हुनेकी बह न रीक बहा । इस प्रकार विन्नु मुन्तम बहाकम और कपरेम होये हुने भी मुन्तम मुचकुले कपुनी, अरुमि मुन्तम—बहने बिकमम देवी बिमम परिउममि बकमम कर बी कि बके लद और विभिन्न कपमे बहने कपु-की-कपु बीछ पडने लगे यह विभिन्न-बीछा हो मवा बकमि अरुमिहा बकम बके और बकमे कपुनी एवं पिरेमिहाके फिल-मोम रकममममे यह बह मवा । अरुममम मुचममम अरुमममम विममममम विममममम बरपी बिकमम हु कि चीन ती बकमे विमम पिछे करके गइी मरठी मे और मुन्तमम कपु कपुमे कपुमे बकम मेरी गइी मममम वा । इस प्रकार बम बिकमे पिछेहुवा बमम करनेके प्रयत्नमे यह विन्नुमरके फिल

छायनी छाले पड़ा था तो घोमार पड़ गया और वहीं १३५१ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी ।

वह निम्सन्तान था अतः उसका चचेरा भाई फीरोजशाह तुगलुक ( १३५१-१३८८ ई० ), जो उस समय छावनीमें ही उपस्थित था तथा बड़ा सूवेदार था, सभी उपस्थित हिन्दू एवं मुसलमान सरदारोंके आग्रहमे गद्दीपर बैठा और सेनाके साथ दिल्ली लौटा । वहाँ बृद्ध नगरपाल ख्वाजा-जहाने एक शिशुको सिंहासनपर बिठा दिया था, अतः विद्रोहके अग्रगण्यमें उन दोनोंका वध करा दिया गया । १३५४ ई० में फीरोज न बंगालपर आक्रमण किया और एक साल तक युद्ध चलता रहा, लाखों व्यक्ति मारे गये किन्तु वह सूबा प्रायः स्वतन्त्र ही बना रहा और सुल्तान दिल्ली लौट आया । १३६० ई० में उसने वहाँ फिर आक्रमण किया, किन्तु शीघ्र ही सिन्धु हो गयी और बंगालका सूबा पूर्णतया साम्राज्यसे अलग हो गया । दक्षिणको फिरोज अधीन करनेका उसने प्रयत्न ही नहीं किया, बल्कि यहमनी मुल्तान और माबरक सुल्तानकी स्वाधीनताको ही प्रायः स्वीकार कर लिया । १३६१ ई० में उसने सिन्धुपर आक्रमण किया । प्रथम बार तो अपनी भारी हानि करके उसे गुजरातकी ओर हट जाना पड़ा किन्तु दूसरे आक्रमणमें सिन्धुका शासक पराजित हुआ और सुल्तान उसे बन्दी करके दिल्ली ले आया, फिर भी सिन्धुका सूबा उसके अधीन न हुआ । इसके उपरान्त फीरोजने युद्ध एवं आक्रमणोंको सिलसिले में दे दी और अपने सकुचित साम्राज्यपर शान्तिसे शासन करने लगा । वह अपने मजहबका बड़ा पक्का था, मुल्ला मोलवियोंका बड़ा आदर करता था तथा उन्हींके परामर्शसे कुरान शरीफ और शरीयतके अनुसार राज्य-काय करता था । आन्तरिक शासन प्रबन्ध सब उसके सुयोग्य मन्त्री सैयिदोंके हाथमें था जिसकी मृत्युके बाद उसीके पुत्रने वह कार्य सम्हाला । सुल्तान स्वयं भी नरमदिल था । अपराधियोंको भीषण दण्ड और नाना प्रकारकी यत्रणाएँ देनेकी प्रथा उसने बन्द कर दी ।

इस्लामका भारत-प्रवेश और दिल्लीके सुल्तान

**आलोचक इतिहास का पी**

नामक इतिहास ग्रन्थ भी उसीके आश्रयमें लिखे गये ।

१३८८ ई० में ८० वर्ष की अवस्थामें फीरोजशाहकी मृत्यु हुई और उसके मरते ही राज्यमें अव्यवस्था एवं अराजकता उत्पन्न हो गयी । सब सूबेदार स्वतन्त्र बन बैठे । मन्त्रियोंके पङ्क्तियोंसे एकके बाद एक कई नाममात्रके सुल्तान हुए । एक माथ कई-कई दावेदार भी चलते रहे । अन्ततः फीरोजका पोता महमूद तुगलुक नाममात्रका सुल्तान बना रहा । उसके समयमें १३९८ ई० में मध्यएशियाके मवशकिनशाली एवं रक्त-पिपासु अमीर तैमूरलंगने भारतपर आक्रमण किया । पंजाब, दिल्ली, मेरठ, हरद्वार आदिको लूटता-पाटना, असंख्य नर-नागियोंको तलवारके घाट उतारता, यह भयानक नर-महारक देशकी रही-सही दुर्दशा कर गया । अब सर्वत्र अराजकता, दुष्काल, भुखमरी और त्राहि-त्राहि मच रही थी । तुगलुकोंके नाममात्रके राजत्वमें १४१४ ई० तक प्रायः यही हालत चलती रही ।

**सैयदवंश ( १४१४-१४५० ई० )**—१४१४ ई० में पंजाबके सूबेदार खिज्रखाने, जो अपने-आपको सैयदवंशमें उत्पन्न हुआ कहता था और तैमूरलंगका प्रतिनिधि घोषित करता था, दिल्लीपर अधिकार कर लिया । दिल्लीके आस-पासके थोड़े से प्रदेशपर उसका राज्य था । उसने और उसके तीन उत्तराधिकारियोंने न अपने आपका सुल्तान घोषित किया और न अपने नामके सिक्के ही चलाये । सैयद मुबारकशाहका एक मन्त्री हिसार-निवासी अग्रवाल जैनी हेमराज था जो भट्टारक यश कीर्तिका शिष्य था । इस वंशका अन्तिम शासक अलाउद्दीन १४५० ई० में पदच्युत कर दिया गया और वह दिल्लीका परित्याग करके बदायूँमें जाकर एक साधारण जागीरदारकी तरह रहन लगा ।

**लोदीवंश ( १४५०-१५२६ ई० )**—अफ़ग़ान सरदार बहलोलखान लोदीने, जो सैयदोंके शासनकालमें पंजाबका स्वतन्त्र सूबेदार बन बैठा था, १४५० ई० में दिल्लीपर अधिकार कर लिया और अपने आपको सुल्तान घोषित कर दिया । उसने दिल्लीका जो छोटा सा राज्य बचा था उसमें

५२-५३ अंग्रेजों की और बीकानूरकी पत्नी गल्लगलवा जग्न करके अपने पुत्र  
 बालरामदासकी उपाय सुनेसार मिथुन किया। इन प्रकार बंगालमें  
 बागावती रहल थी। इनका विधाने हिमालयकी राज्यमें केन्द्र कुम्भनगर  
 की नीला बगल प्रवेशगत इनमें बगला बगिहार बहुत दुष्ट बना किया  
 था। बहमोन मोदीका एक बगल बगिहारकी पत्नीका था जिसे पुत्र  
 नाम स्वामी ( १४४८ ई १५ ई ) जाने समयके इतिहास की मुबारक  
 हुए, इनमें बलिबाला विशेष किया और तारक एक बगला। एक  
 करीर, पुत्र नामके बगिरे बगलामोन तथा करीरकी बगि विराजते  
 इबारत नाम स्वामी की अपने समयके एक बगल नाम थे।

बहमोनके बगल इनका पुत्र निहालमई मुकनाल निरन्तर जारी  
 ( १४ ९ १५ ई ) दिल्लीके निहालनगर बगल। यह इन बगला  
 सबके अधिक बगल और बगिहारकी बगल था। किन्तु इनकी भी एक  
 मलिन बगल नामका मुबारक बहमनी बगि मुकनाली राज्य की और  
 बेबाक बगिहार, बगलनगर आदि किन्तु राज्यमें-के विभीने भी बगल,  
 बगिहार या बगिरे विशेष बगल नहीं थी। इनमें बीकानूरमें जाने बगल  
 को निहालनगर के निहाली राज्यमें निहा किया और बिहारमें सुनेकी भी  
 अपने बगल किया। बेबाकना राज्य मुबारक बगिहारका बगलित्ता ठावर,  
 बगलना नामिहारी और मुबारकना बहमुर केवला इनके बगल बगिहारी  
 रहे। इनके बाद इनके बगल-बगल और मुबारक रहे। फिर भी निहालने  
 दिल्ली राज्यकी बगिहार मुबारक बना की। इनके बादरा कि हे बगलना एक  
 नामका निहालकी नाम निहालना बगिरे राज्यमें इतिहास हुआ। १५  
 ई ई में इसीके समयमें एक बगलर बेबाकनाली मुबारक नाम था  
 यह मुकनाल जाने बगलना बहमुर पगलानी था किन्तु बगिरे बगि बगलना  
 बगिहारी या और मुकनाली काबुलना बगलनगर करका था। एक बार  
 बहमुरनगर बगलनगर करके बगिरे बगिहारीकी भी अपने दोहा और इनके  
 समयमें बगिरे बगलानी विहितना-बगलने बगि बगल निहालने की।

कर्णाटकके कुछ तत्कालीन शिलालेखोंमें पता चलता है कि वहाँके महान् वादो एव वक्ता प्रसिद्ध जैनाचार्य विशालकोत्ति मुल्तान सिकन्दर लोदीको राजसभामें आये थे और उसके द्वारा सम्मानित हुए थे। सिकन्दरके राज्य कालमें अत्यधिक सुकाल था, सभी पदार्थ अत्यन्त सस्ते थे और अल्प साधनवाले व्यक्ति भी सुखमें रह सकते थे, ऐसा उस कालके इतिहास-ग्रन्थोंमें पता चलता है।

उसका पुत्र इब्राहीम लोदी (१५१७-२६ ई०) निदयी और अयोध्या शासक था। उसके समयमें भी वस्तुएँ अत्यधिक सस्ती थी किन्तु उसने अपनी उद्धृष्टतामें अपने अफगान अमोरोंका रुष्ट कर दिया और उनसे निरन्तर लड़ता-झगड़ता रहा। जब कभी उनका अपने हाथमें कर पाता तो उनपर बड़े निदर अत्याचार करता। धुन्न अफगान सरदारान पञ्चायक सूबदार दीलतख़ाँ लादाको अपना नेता बनाया और उसने फावुलके बादशाह बाबरको भारतपर आक्रमण करनेका निमन्त्रण दिया। बाबर आया और १५२६ ई० में पानोपतकी प्रसिद्ध गणभूमिमें इब्राहीमकी विशाल सेनाको उसने पराजित किया। इब्राहीम मारा गया और उसके साथ ही लादीवंशका अन्त हुआ। दिल्लीमें मुगलवंशकी स्थापना हुई किन्तु अस्थायी रही। १३ १४ वर्ष बाद ही बाबरके उत्तराधिकारी हुमायूँ-को एक अन्य अफगान सरदार दोस्तान निकाल बाहर किया।

**सुरिवंग—(१५४०-१५५५ ई०)—**लोदी सुल्तानोंके शासनकालमें पूर्वी भागमें अनन्त अथस्थित छोटो-छोटे अफगान अमोर उत्पन्न हो गये थे। उन्हींमें बिहार प्रांतस्थ महसगमका जागीरदार हमन था। उसका बेटा फरीश अपनी सीतली माँके दुष्प्रवहारमें निडर घर छोड़कर जौनपुर चला आया। वहाँ उस जानहार मुक्कने पाँट हो समयमें शासन एवं राजनीति-मन्त्रणों विविध नाम और अनुभव प्राप्त किया। लौटकर हमन अपने बापका जागीरका बड़ा निपुणतासे साथ प्रबन्ध किया और उस अन्तर्गत बना लिया। बाबरके आक्रमणसे उत्पन्न विषम परिस्थितिमें





## अध्याय २

### पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है मुहम्मद तुगलुक के समयमें ही दिल्ली-साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा था और अनेक नवीन एवं स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य यत्र-तत्र अस्तित्वमें आ गये थे, जिनमें बंगाल, जोनपुर, गुजरात, मालवा एवं बड़गोरे के राज्य और दक्षिणका बहमनी राज्य उल्लेखनीय हैं।

बंगाल ( १३४०-१५७६ ई० )—मुहम्मद तुगलुक के समयमें बंगाल के सूबेदार फख्रुद्दीनने १३४० ई० में विद्रोह करके अपने प्रान्तको साम्राज्यसे प्रायः पृथक् कर लिया था। १३५३-५४ ई० में क्रोरोजशाहने बंगालके सूबेदारका अधीन करनेका विफल प्रयत्न किया था, १३६० ई० में फिर उसने एक प्रयत्न किया और अन्ततः उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। तनीसे लेकर अकबरकी विजय पयःत सूबेदार फख्रुद्दीनके वंशज सिकन्दरशाह ( १३६८ ई० ) आदि जो अश्वदशाय सैन्य जातिके थे स्वतन्त्र सुल्तानके रूपमें उस प्रांतपर राज्य करते रहे। देशके अन्य राज्योंके साथ उनके प्रायः कोई युद्ध नहीं हुए किन्तु तत्कालीन सभी मुसलमानी राज्योंकी भाँति गुप्त हत्याएँ, गृह-कलह, उत्तराधिकार संघर्ष पड़्यन्त, विश्वासघात आदिसे इस वंशका इतिहास भी ओत प्रोत है। शासन व्यवस्था भी प्रायः दिल्ली-सल्तनत एवं अन्य सभी भारतीय मुसलमानी राज्योंके प्रतिरूप ही थी। उसमें मुसलमानों एवं इस्लामक हित प्रधान था और शासन प्रायः नागरिक ही था। अतएव ग्रामीण

जगति बाराह करके स्वर्गका ही दिल्लीका समान चोमित कर दिया ।  
 मिला १५५६ ई. में बालीपुत्रक कुम्हने बनार और बीरबर्मा-बाप बराहिल  
 हीनर एक पाठा बापर बराह और उसके बाप ही बालीपुत्रक कुम्हने  
 दिल्ली राज्यका अधिकारका अन्त ही गया । औरबाहुवा एक बाल गलेका  
 निबलरमाह कुम्हने भी प्राप्तकरे ही कुम्हने बाबिलपुत्रका बालीपुत्र  
 और राज्यके परिचयी बाल ( बालीपुत्र ) का अधिकार था । कुम्हने और  
 कुम्हने का बाल बालीपुत्र का बाल पत्राकरे का बनार था । बालीपुत्र कुम्हने  
 बरपाण उनका बालीपुत्रकर कर दिया और बालीपुत्र के बाल बनार कर  
 दिया । इन बालीपुत्र कुम्हने का बाल १५ बाल के बाल बनार कुम्हने ।



## अध्याय १

### पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है मुहम्मद तुगलुक के समयसे ही दिल्ली-साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा था और अनेक नवीन एवं स्वतंत्र मुसलमानी राज्य यत्र तत्र अस्तित्वमें आ गये थे, जिनमें बंगाल, जोनपुर, गुजरात, मालवा एवं कश्मीरके राज्य और दक्षिणवा बहमना राज्य उल्लेखनीय हैं।

बंगाल ( १३४०-१५७६ ई० )—मुहम्मद तुगलुक के समयमें बंगाल-के सूबेदार फखरुद्दीनने १३४० ई० में विद्रोह करके अपने प्रान्तको साम्राज्यसे प्रायः पृथक् कर लिया था। १३५३-५४ ई० में फ़ोरोज़शाहने बंगालके सूबेदारका अधीन करनका विफल प्रयत्न किया था, १३६० ई० में फिर उसने एक प्रयत्न किया और अन्ततः उसकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। तभीसे लेकर अकबरकी मियत पयन्त सूबेदार फ़खरुद्दीनके वंशज सिकन्दरशाह ( १३६८ ई० ) आदि जो अरबदशीय संयद जातिके थे स्वतन्त्र सुलतानाके रूपमें उस प्रांतपर राज्य करते रहे। दशके अन्त्य राज्याके साथ उनके प्रायः कोई युद्ध नहीं हुए किन्तु तत्कालीन सभी मुसलमानी राज्योंकी भाँति गुप्त हत्याएँ, गृह-कलह, उत्तराधिकार सघर्ष, पड़्यन्त्र, विश्वासघात आदिसे इस वंशका इतिहास भी ओत-प्रोत है। शासन व्यवस्था भी प्रायः दिल्ली सल्तनत एवं अन्य सभी भारतीय मुसलमानी राज्योंके प्रतिरूप ही थी। उसमें मुसलमानों एवं इस्लामका हित प्रधान था और शासन प्रायः नागरिक ही था। असह्य ग्रामीण

पूर्व मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

प्रवाची भूमि-कर देनेके अतिरिक्त यातकी अन्ध कोई बिरोध हासि-  
काम नहीं था । किन्तु इन नुवा राज्योंके मुख्यालय दिल्लीके मुख्यालयमें  
जनेछा सामान्यतया अधिक बढ़िष्णु होती है ।

बंगालके मुख्यालयमें बर्न-बन्निट्ट हूईनबाह ( १४९३-१५१९ ई )  
था । वह पूर्ववर्ती मुख्यालय मुजफ्फरबाहका प्रवाल जमी था । मुजफ्फरके  
आकाशारोहे कारण कहने के परम्परा करने कहना सब कर भिन्न था  
और बरबादकी सम्पत्तिके लक्ष्य मुख्यालय बन गया था । कहना एम्बराल  
अलन्त मुक्त-प्राप्ति और समुद्रिपूर्व रहा । कहनी इया करने डेव करती  
थी और गोली एने कहना आर करती है । बंगालमें कहना कम  
कर एक अवर है । किन्तु और मुख्यालय दोनों ही बने बढ़ती है ।  
कहना पुन महारकाह आकरका कहनीलीय था । यह भी एक कम  
मुख्यालय था । मुजफ्फराल-नरेखोकी इयाके प्रतिभुल यह जमी १ छोटे  
भारतीके इतिहास डेव कहता था और कई मुक्तके रहता था । यमके  
काम कहने सामान्यपूर्ण बर्निक की थी । एक बंगाल अन्तिम मुख्यालय  
यमकाह था जो १५७९ ई में अकरके नान्दिक आरि केनार्तिनी-  
हाय पधमिह हुआ और मुजरी बारा गया ।

बंगालके इन मुख्यालयोंके आसनकायमें विजयनकाह-राय यमकायमें  
निर्मित अलन्त विद्यालय एवं मुन्दर नारील नवनिद, गीतमें हूईनबाहका  
कामका एवं छोटी मुनहकी नवनिद, महारकाहकी बरी मुनहकी नवनिद  
और इकरमुक्त तथा यमकाली गीह एवं अन्य प्रभुय बरबोई निर्मित  
यमक कामातुर्न एवं बरनीय है । इन्हींके यमकायमें १५४९ ई में कनि  
हूतिपायमें बंगाल यमायन लिखी और हूईनबाह एवं महारकायमें  
महारायके की बंगला अनुवाद करनी । एक अकर इन मुख्यालयोंके व  
बंगला प्राचीन आर्योव आहिल्यमें अधिकवि विद्यापी बरन् बंगला यमके  
विजयनकी की गीतकाहय विद्या । बंगालमें सब बीच और आलत नारीय  
ही यमकाय था किन्तु एही यमके वीकल यमायनमें हल्लनमिह और

वैष्णवधर्मका भी प्रचार किया ।

**जौनपुर ( १३९९-१४७६ ई० )**—फ़ोरोजशाह तुग़लुक़ने अपने भाई जूनखाँकी स्मृतिमें जौनपुर नगर बसाया था । १३९४ ई० में उसके उत्तराधिकारी महमूद तुग़लुक़ने अपने कृपापात्र खोजे सरदार ख़ाजाजहाँको मलिकुद्दशर्कको उपाधि देकर जौनपुरका सूबेदार नियुक्त किया । तैमूरके आक्रमणसे लाभ उठाकर १३९९ ई० में ख़ाजाजहाँका दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी मुबारकशाह शर्की स्वतन्त्र हो गया । इसके उपरान्त उसके भाई इब्राहीमशाह शर्की ( १४००-४० ई० ) ने शान्तिपूर्वक राज्य किया । वह पक्का मुसलमान था, रक्तपात तो उसने अधिक नहीं किया किन्तु हिन्दुओंपर अन्य सुलतानोंकी भाँति जोर-जुल्म किये ही । उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी महमूदशाह शर्की भी सफल शासक रहा । सम्भवतया इसी सुलतानके दरबारमें कर्णाटकके जैनाचार्य वादी सिङ्गकीर्त्तिने आकर शास्त्रार्थ किया था और जयपन्न प्राप्त किया था । सिंहकीर्त्तिका समय १४५० ई० के लगभग है । 'अश्वपतेर्हिततनय-वगात्मदेशावृत-दिल्लीपुरेऽह महम्मद सूरीत्राण'-वर्णन उस कालके सुलतानोंमें सबसे अधिक इसीपर लागू होता है । तदुपरान्त हुसैनशाह शर्की सुलतान बना । १४७६ ई० में दिल्लीके सुलतान बहलोल लोदीने उसे पराजित करके जौनपुरसे निकाल दिया और उसने जाकर बगालके सुलतानको शरण ली । बहलोलने जौनपुरका सूबा अपने बेटे बारबकशाहको दे दिया, किन्तु सिकन्दर लोदीने बारबकशाहको भी मारकर जौनपुरको दिल्ली राज्यमें ही मिला लिया । जौनपुरके शर्की सुलतान अरबी और फ़ारसी साहित्यके भारी प्रश्रयदाता थे । उन्होंने जौनपुरमें अनेक सुन्दर एवं विशाल मसजिदें भी बनवायीं जिनमें अटालादेवी मसजिद अति प्रसिद्ध है । इनकी निर्माण-कलामें भारतीय प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

**मालवा ( १३८७-१५६४ ई० )**—मध्य भारतका वह बहुभाग जो उत्तरमें घम्बल, दक्षिणमें नर्मदा, पूर्वमें बुन्देलखण्ड और पश्चिममें गुजरात-पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य



है। उसकी हिंदू और मुसलमान प्रजा समान रूपसे सुखी और सम्पन्न थी। चित्तौड़के राणा कुम्भके साथ उसके जो युद्ध हुए उनकी स्मृतिमें राणाने चित्तौड़में कीर्तिस्तम्भ बनवाया और महमूदने माण्डूमें। उसका पुत्र सुल्तान गयासुद्दीन ( १४८३-१५०१ ई० ) दिल्लीके सिकन्दर लोदी, गुजरातके महमूद बेगदा, खालियरके मानसिंह तामर और चित्तौड़के राणा रायमल्लका प्रतिद्वन्द्वी था। उसका पुत्र नासिरुद्दीन ( १५०१-१५१२ ई० ) भी अपने पिताको विपद् द्वारा मारकर सुल्तान बना, वह बहुत दुराचारी और निर्दयी था। उसका पुत्र महमूद द्वितीय ( १५१२-३१ ई० ) इस वंशका अन्तिम सुल्तान था जिसे १५३१ ई० में गुजरातके बहादुरशाहने पराजित करके मार दिया और मालवाको अपने राज्यमें मिला लिया। १५३५ ई० में हुमायूँने मालवाको गुजरातसे छोनकर अपने अधीन किया और मालवाके राज्यवशके ही एक व्यक्तिको जो उसके आश्रयमें चला गया था अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। किन्तु हुमायूँका अधिकार अल्पस्थायी ही रहा। अन्ततः मालवाके बाजबहादुरको १५६४ ई० में अकबरने समाप्त करके इस प्रदेशको अपने राज्यमें मिलाया। बाजबहादुर और रूपमतीको प्रेम-गाथा सुप्रसिद्ध है।

मालवाके इन सुल्तानोंने माण्डूका विशाल सुदृढ़ दुर्ग एवं नगर, हिंडाला महल, जहाज महल, बाजबहादुर और रूपमतीका महल आदि सुन्दर राजप्रासाद, भव्य जामामसजिद, होशग गोरीका सुन्दर मकबरा आदि अनेक कलापूर्ण दशनीय कृतियोंका निर्माण किया जिनमें माण्डूके प्राचीन जैन एवं हिन्दू मन्दिरोंकी सामग्री भी प्रयुक्त हुई। वे धर्म-सहिष्णु भी थे और हिन्दुओंपर उन्होंने धर्मके नामपर विशेष अत्याचार नहीं किये। सुल्तान होशग गोरी अलपख्वाके समयमें, १४२४ ई० में दिल्लीके मूल-मधी मट्टारक शुभचन्द्रके उपदेशसे इस सुल्तानके राज्यके सघनपति होलीचन्द्र आदि अनेक धनी धावकोंने देवगढ़में सोथकरों और गुरुओंकी कई प्रतिमाएँ निर्माण कराकर भारी प्रतिष्ठोत्सव किया था। शिलालेखमें



मुक्तपत्रकी भी बहुत प्रशंसा है। नाकवाले इस नाकमें रिमरर बाग्याले गलि नाग्य बीर सैन्यबोके नई पदु विधान ने। बनेक दिनु बीर बीन मान्नु पामये कल्प पात्रकीय बरोपर भी विमुक्त के जिनके-ने एक बीनबय बहुत प्रशिक्ष हुमा—मंथरनि मन्थन सुबेदार रिमररएकि पुत्रबोके नमनमें पात्रकभी ना। कथभा पुत्र बाहुय स्वयं रिमररएकी कपनाम पिछमुहोन बोरीका कभी ना बीर कथना घाई पय भी। बाहुय का पुत्र लप्पन मुक्तपत्र हीर्षन बोरीका बाहुयबाय ना प्रथम कभी ना। बाहुय कथा पात्रक-कुसक बीर ताव ही बाहुय रिमरर स्वयं बाहुयकार था। कल्पकपत्र ना बीरक-प्राप्तबोरकथना प्रचारकपत्र कंठकपत्र तापकपत्रकपत्र बाहुय विविधविधक बाहुयपुत्र कभीकी उरवे रकथ भी बी बीर बहु कथिबायिबाय बाहुयता ना। कल्पके कने घाई कथरति कल्पकपत्रे जो १४१४ ई. में कथकपत्रकी रकथ की थी। कल्पकपत्र कल्पके ही कथना बीन नाक ललि मुक्तपत्र कल्पकी कथकीना कभी ना बीर कने 'कथक-कथिनी कथनि प्रथ बी। इतना कथीका पुत्रपत्र भी कल्प पत्रर बाहुय ना बाहुय दिनुना एक बीर कथनाका ना बीर घाटी रिमरर ना। १५ ई. में कने कथकपत्रकथि नाक लालकपत्रकी कथकी रकथ की थी बीर कथकी कथकपत्र रिमररएकी कथिबायिबायकी रकथ की थी। कथपुत्रके कथकी ही १४९७ ई. में मुक्तपत्रके इतिहासपुत्रके एक प्रशिक्षिनी बीरुद नगरमें कथकी कथी थी। कथ स्वयं है कि मुक्तपत्र सुबेदारों बीर मुक्तपत्रके नाक ( कल्प १३ — १५९ ई. ) में नाकवाले दिनु बीर बीन कथी कथनामें ने। इस नाकके नाक बीन-कथिनी की बाहुय कल्प कथकीमें पाते बाहुय है। मुक्तपत्रकी बाहुय कथना कथर ही कथमें नाक की।

मुक्तपत्र ( ११९१-१५७१ ई. ) का पुत्रपत्र कि मुक्तपत्र की नहा नाग्य ना बीर रिमरर कथिबायिबाय कथिबाय है, नाकपत्रकी कथि

ही समृद्ध, सुरम्य और उर्वर प्रदेश रहा है। समुद्रतटके निकट होनेके कारण विदेशोंके साथ समुद्री व्यापारका भी वह प्रमुख द्वार रहा है। १२९७ ई० में अलाउद्दीन खलजीके सेनापति उलुगखाँ और नसरतखाँ ने कर्ण घघेलेका अन्त करके इस देशको दिल्ली-साम्राज्यमें मिला लिया था, और तभीसे दिल्लीके सुलतानोंके सूवेदार यहाँ शासन करते थे। १३९१ ई० में जफरखाँ गुजरातका सूवेदार नियुक्त हुआ। वह नाम मात्रको ही दिल्लीके अधीन था। १४०१ ई० में उसने अपने पुत्र तातार-खाँको सुलतान नासिरुद्दीन मुहम्मदशाहके नामसे गुजरातका स्वतन्त्र वादशाह बना दिया। किन्तु १४०७ ई० में स्वयं ही उसे विष देकर मार डाला और मुजफ्फरशाहके नामसे स्वयं ही सुलतान बन गया। १४११ ई० में उसके पोते अलपखाने उसे भी विष देकर मार डाला और अहमदशाह (१४११-१४४१ ई०) के नामसे सुलतान बना। कर्णावतीको अहमदाबाद नाम देकर उसने अपनी राजधानी बनाया और उसे इतना सुन्दर बना लिया कि विदेशी यात्री इस नगरीकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। वहमनी सुलतान फीरोज उसका मित्र था तथा मालवाके सुलतान, चित्तौड़के राणा और अजमेरगढ़के राजा उसके प्रधान शत्रु थे। वह निरन्तर युद्धोंमें संलग्न रहा और प्रायः सदैव सफल रहा, फलस्वरूप अपने राज्यका उसने काफ़ी विस्तार कर लिया। हिन्दुओंके मन्दिरोंको तोड़ना, उनपर अत्याचार करना और इस्लामका प्रचार एवं मुसलमानोंकी सख्या बढ़ाना सभी सुलतानोंका खूब था, उसका भी था। किन्तु ये कार्य युद्ध और विद्रोहदमन आदि अवसरोंपर, सो भी प्रायः दिखावेके लिए ही अधिक किये जाते थे। सामान्यतः अपनी हिन्दू, जैन प्रजाके साथ उदारता और सहिष्णुताका ही बर्ताव होता था। उसका उत्तराधिकारी सामान्य श्रेणीका व्यक्ति था, किन्तु पोता सुलतान महमूद बेगड़ा (१४५९-१५११ ई०) अपने दीर्घकालीन शासन, विशाल काय, दानवों-जैसे भोजन, चारित्रिक विशेषताओं और कार्य-कलापोंके लिए दूर-दूर प्रसिद्ध हो गया। राज्यकी भी उसके



वे । जैनियोंके देलवाटा, आन, शत्रुजय, गिरनार, अहिंसवाटा, अहमदा-  
वाद आदिके प्रसिद्ध मन्दिर उस कालमें भी अधिकांशतः सुरक्षित रहे और  
कुछ नवीन भी बने । इस कालमें दिगम्बर आम्नायके लाटवागड मण्डपा  
भी इस प्रदेशमें काफी प्रभाव था । १५वीं शताब्दी तक सूरत, सीजिना,  
भटौच, ईडर आदि कई स्थानोंमें दिगम्बरी भट्टारकोंकी गद्दियाँ स्थापित  
हो चुकी थीं और उनमें-से आचार्य सबलकीर्ति, ब्रह्म श्रुतसागर, ब्रह्म  
नेमिदत्त, ज्ञानभूषण, गुणमन्द आदि अनेक विद्वानोंने विविधविषयक विपुल  
संस्कृत-साहित्यकी रचना की थी । इनके अतिरिक्त जिनेश्वर और भट्टे-  
श्वरकी कथावलिर्वा ( लगभग १२०० ई० ), प्रभाचन्द्रका प्रभायकचरित्र  
( १२७७ ई० ), मेरुतुगकी प्रबन्ध चिन्तामणि ( १३०५ ई० ), जिनप्रभ-  
सूरिका विविधतीर्थवृत्त ( १३३२ ई० ), राजसोखरका प्रबन्धकोष  
( १३४८ ई० ) आदि महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ भी मुसलमानों के कालमें  
ही लिखे गये । उपरान्त कालमें भी जैन मुनियों, यतियों और विद्वानों-  
द्वारा साहित्य-सृजन होता रहा । १५वीं शतीमें अहमदावादमें जैन-ग्रन्थोंकी  
प्रतिलिपियाँ करनेका कार्य कई संस्थाओंमें बड़े पैमानेपर होता था । इसी  
कालमें अहमदावादके लौकाशाह ( १४२०-१४७६ ई० ) नामके एक जैन  
सुधारकने मुसलमानों के शासनकालको मन्दिर और मूर्तियोंके प्रतिकूल समझ-  
कर मन्दिर और मूर्तियोंका विरोध किया । उसके द्वारा प्रचालित लुण्ठामत-  
में, जो कालान्तरमें जैनोका श्वेताम्बर-स्थानकवासी सम्प्रदाय कहलाया,  
मूर्तिपूजा निषिद्ध मानो जाती है । नारायणके पुत्र मण्डनमिश्र ( १४३०  
ई० ) अहमदशाहके राजवैद्य थे और उनके पुत्र अनन्तने १४५७ ई० में  
काम-समूहकी रचना की थी ।

**कश्मीर ( १३००-१५८६ ई० )**—कश्मीरमें १३वीं शती ई० के अन्त  
तक उत्पलवशी हिन्दू राजाओंका स्वतन्त्र राज्य बना रहा । १४वीं शती-  
के प्रारम्भमें स्वातके शाह मिर्जा या मोर नामक मुसलमानने जो अन्तिम  
पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

राजाका कभी इन बातों का राजाकी भावना विचारन हुआ  
 कर दिया और कभीरका मुन्हाव नव बीछ । इन बीछना कय मुन्हाव  
 विचार ( १९८९ ई ) नवा कर, जालावाटी और कभीन वा ।  
 तैमूरके जावनकले जीवापुटी कभीरकी रखा हो नयी किन्तु तिनवारके  
 जालावाटीव बकिनाय हिन्दु नवावाकी मुनकमान नालेवर विचार कर दिया ।  
 जालेक हिन्दु देव जोकर नले पन । नो राव नयी डकर बकिना कय  
 और नयी कुरपाने कनका बीचन बीछा । कलिटी और कृतिबीचा लो पन  
 देना पन वा कि कलका नाल ही कति-कडक नव नवा । किन्तु इनके  
 कुरपाने जाली मुन्हाव तैमूरकालीन ( १४९०-१४९७ ई ) इनके  
 विचारन विचार वा । नव नवा बकिन्तु और कुरा वा । इनके हिन्दुकी-  
 नर-त बकिना कर कय दिया विचारित हिन्दुकीको फिर देवने नाल  
 मुन्हा दिया और कभी कभी नालके विचारिकी नो कुरा कुरा दे  
 ही । इनके नालके बीचन कय कय दिया, नव नाल नो नाल न जाल  
 वा एकलीवाटी और नवा कुरावाटी वा । इनके कलक और नाली  
 कभीके नववाव कुरा और कलिन्त कभीक एवं विचारककी नाली  
 जालेक दिया । नव नाली जालाव जालाक ही कय और नाल कुरा  
 नाल नाले कय नाल नो कुरावाटी 'नववाव' कुरावाके नाले नो नाल  
 कुरा है । इनके नाल कय जालाव एवं नालाव पालक हुए । कुराकी  
 कभीरकी विचार कुरा जाले एक कभीकी विचार हुए ( १९४१-४२ ई )  
 नो कभीरका पालक निम्न किता । कुरावाव एवं देवने नालावका  
 पाल नाल विचार १९८९ ई नो कभीरकी कय कुरा कभीरकी नाली  
 जालावकी किता किता ।

बहुमनीराज्य ( १९४०-१९९९ ई )—इल नालक एक दुर्ग वा  
 ईली विचार बीकलावाके ननु नालक जालावका कलक वा । नव जालाव-  
 नो कुराकी कुरावा कुराव हुए कुरा नव नालावकी कुरावाव कुरा  
 वा । कुरावा कुरावा नाल कुरा नव कलिन्त-कलक कुरा कय और

१३४७ ई० में जब मुहम्मद तुग़लक़ सानाऊधमें सर्वत्र विप्लव एवं विद्रोह हो रहे थे ज़फरख़ाने दोलताबादपर कब्ज़ा कर लिया। वह अपने-आपको ईगानवे बहमनशाह-अब्दशीर-दरगज़स्तका वंशज कहता था अतः अलाउद्दीन बहमनशाहके नामसे दक्षिणापथका स्वतंत्र सुलतान बन बैठा। उमने ही बहमनी-राज्य और यशकी स्थापना की और गुन्धग (गुन्धग) को बहमनाबाद नामसे अपनी राजधानी बनाया। १३८७-१३५८ ई० तक उसने राज्य किया।

दक्षिणमें १३३६ ई० में मगमके पुत्रा-द्वारा विजयनगरके हिन्दू-राज्यकी स्थापना बहमनी राज्यको स्थापनामें प्रधान प्रेरक थी। उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिममें प्रदेश विजय करके उमने अपना पर्याप्त राज्यविस्तार कर लिया। अथ सुलतानोंकी भाँति बहमनी-सुलतान भी कट्टर मुसलमान थे, हिन्दुशा और उनके धर्मके विद्वेषों दानु ये तथा निर्दयी एवं रक्तपिषामु थे। उनके प्रधान राजनैतिक दानु विजयनगरके हिन्दू सम्राट् थे, जिनके साथ प्रारम्भसे अन्त तक उनके निरन्तर युद्ध चलते रहे। उत्तर और पश्चिममें मालवा एवं गुजरातके सुलतानोंके साथ उनके राजनैतिक सम्बन्ध कभी मित्र रूपमें और कभी दानु रूपमें चलते रहे।

उमका उत्तराधिकारी मुहम्मदशाह प्रथम (१३५८-१३७३ ई०) अत्यन्त नृशत्रु हत्यारा था, नरसंहार करनेमें उसे आनन्द आता था। विजयनगरके साथ उसके भीषण युद्ध निरन्तर चले जिनमें लाखों श्रमित मारे गये। इस नरपशु सुलतानको पाँच लाख हिन्दुओंकी हत्याका श्रेय दिया जाता है, देशका जनसंख्या अत्यधिक कम हो गयी अन्ततः दाना पक्षोंन यह निर्णय किया कि युद्ध-वन्धियों एवं युद्धमें भाग न लेनेवालोंकी हत्या न की जायेगी। राज्यका सुयोग्य मन्त्री सैफुद्दीन गोरी प्रथम सुलतान-के समक्ष हा चला आ रहा था और छठे सुलतानके समय तक उसी पदपर चलता रहा। उसके कारण आन्तरिक शासन बहुत कुछ सुव्यवस्थित रहा।

[illegible]

कानून दल कुछ मुकदमोंकी लड़ाई काई अदालतमें ( १९२५-२६ ई ) के अदालत-द्वारा कानून कानून के तार दाखल का और यह सर्व मुकदमा बन गया । हिन्दु-विरोधमें यह कानून पूर्वजोषों की भाँति यह कानून । श्रीरामजी परमेश्वर का कानून केनेके लिए कानून विद्वानोंपर दाखल कीलन जायजल किया और विद्वानों केनेके कानून कानून केनेके कानून कानून

लाताकी सभ्यामें वध किया, खैली उजाड़ी, जनताकी सूटा और इस सम्बन्धमें पिछली सन्धियोंकी भी अवहेलना की। उसने १४२४-२५ ई० वारंगलके हिन्दू राजघरा भी अन्त कर दिया। इसके राजघरालके प्रारम्भ-में भी नयकर अकाल पड़ा। गुजरात और मालवाक सुल्ताना तथा बोंरलके हिन्दू राजाओंके साथ भी उमने युद्ध किये। तदनन्तर गुजरातके साथ मैत्री-सन्धि कर ली। उमने राजधानी कुलबर्गका त्याग करके बीदरका स्थानान्तरित कर दो। यह नगर अधिक स्वास्थ्यप्रद था और इस उमने सुदूर बनानेका भी प्रयत्न किया।

उसका पुत्र अलाउद्दीन द्वितीय ( १४३५-५७ ई० ) ने विजयनगरक साथ फिर युद्ध छेद दिया किन्तु दोनों राज्योंमें अन्ततः सन्धि हो गयी। सुल्तान मध्ययान और विषयभोगमें फँस गया। दरबारमें दक्षिणी अमीरों, जो अधिकांशतः सुन्नी थे, और विदेशी अमीरों, जो अधिकांशतः शिया थे, के बीच बड़ा संघर्ष और कलह चलन लगी। दक्षिणी दलने हजारा विदेशी सैनिकों और मुगलोंका विद्रोहवाचनपूर्वक वध कर डाला जिनमें अहमदशाहका सहायक और मंत्री खल्लहसन भी मारा गया।

अलाउद्दीनका पुत्र हुमायूँ ( १४५७-६१ ई० ) भारी हत्याका था और अपने सम्पन्न जुल्माके कारण यह जालिम कहलाता था, स्त्री-पुरुष आवाज वृद्ध सभीको जिसपर तनिक भी विद्रोहका मन्देह होता वह भीषण यात्रणा देकर मरवा डालता। अन्ततः उसके श्रेष्ठकोंने इस मध्यपायी नर-पशु-का वध कर दिया जिससे सारी प्रजाने आनन्द मनाया। किन्तु उसका मंत्री तवाजा महमूदगवाँ अन्यन्त योग्य व्यक्ति था और उसके उत्तराधिकारियोंके समयमें भी कुशलतापूर्वक शासन-संचालन करता रहा।

हुमायूँका उत्तराधिकारी थोड़े समय ही राज्य भर पाया, तदनन्तर मुहम्मदशाह तृतीय ( १४६३-८२ ई० ) सुल्तान हुआ और उसका सफलता एवं उन्नतिका प्रधान कारण उसका राजनीतिनिपुण, कुशल सेनानी, सुयोग्य शासक एवं विचक्षण मंत्री महमूदगवाँ था। १४७३ ई० में उसने बेलगाँव-



का मुद्रा वर्ष निरन्तर किया मोबायर बहिष्कार किया। अन्तर्गत वर्ष पहले  
 पहले जेम्स ब्रिग्सका नामका किया १४८१ ई. में सेंटम्बरी  
 ब्राह्मण किया महा मुन्नायने जाने हावसे प्रमुख विष्णु-रत्न  
 और उद्योगी प्रतिष्ठो तीसरा तथा ब्रह्मण मुन्नायियोंका वध करके यह जारी  
 गया। तत्पश्चात् उनमें बहिष्कार स्थानवर्षी नामकी एक ब्राह्मण किया  
 और ब्राह्मण ब्रह्मण बहिष्कार तीसरा तथा मुन्नायियों और राजाओंका वध  
 किया तथा ब्रह्मणों बहुत कुछ विध्वंस किया। यह मुन्नाय अन्तर्गत  
 पगारी का बहिष्कार करने ब्रह्मण करके अन्तर्गतवर्षी, जो ईरानी थे,  
 मध्यवी मुन्नायकी ब्रह्मणोंका अन्तर्गत बहिष्कार किया किया। अन्तर्गत ईसा  
 करमानके बाद मुन्नाय बहुत बलात्ता और अन्तर्गत बारह ही अन्तर्गत  
 कर गया। अन्तर्गतवर्षी अन्तर्गत ही ब्रह्मणका वध आरम्भ हो गया।  
 अन्तर्गतवर्षीके अन्तर्गतवर्षी वध अन्तर्गतवर्षी ( १४८२-१५१८ ई. ) के  
 नामवायके अन्तर्गत ही पालन किया। यह अन्तर्गत और निरन्तर था, निर-  
 प्तत और निरन्तर ही अन्तर्गत।

अन्तर्गत अन्तर्गत निरन्तर वृद्ध अन्तर्गत ॥ वर्ष और अन्तर्गत-मुन्नाय-  
 का बहिष्कार गजबानी औरके अन्तर्गत औरके अन्तर्गत ही यह गया।  
 अन्तर्गत ही अन्तर्गत अन्तर्गत एक ब्रह्मण वृद्ध अन्तर्गत अन्तर्गत वृद्धोंके  
 अन्तर्गत था। अन्तर्गत बाद अन्तर्गत वृद्ध अन्तर्गत वृद्धोंके अन्तर्गत ही गया।  
 मुन्नाय अन्तर्गत वृद्धोंके बाद एक-एक करके अन्तर्गत बाद मुन्नाय वृद्धोंके  
 अन्तर्गत और अन्तर्गत १५२५ ई. में अन्तर्गत वृद्धोंके अन्तर्गत अन्तर्गत करके  
 यह अन्तर्गत अन्तर्गत मुन्नाय का अन्तर्गत। अन्तर्गतवर्षीका अन्तर्गत वृद्धोंके  
 अन्तर्गत, अन्तर्गत, अन्तर्गत अन्तर्गत और अन्तर्गतवर्षी वृद्धोंके अन्तर्गत  
 के अन्तर्गत यह एक बहिष्कार अन्तर्गत ना अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत  
 अन्तर्गतवर्षी वृद्ध अन्तर्गत ही। अन्तर्गतवर्षीके अन्तर्गत वृद्धोंके अन्तर्गत  
 अन्तर्गत, अन्तर्गत और अन्तर्गत अन्तर्गतवर्षीके अन्तर्गत अन्तर्गत  
 अन्तर्गत अन्तर्गत निरन्तरवर्षीके अन्तर्गत वृद्धोंके अन्तर्गत वृद्धोंके  
 अन्तर्गत वृद्धोंके अन्तर्गत वृद्धोंके अन्तर्गत वृद्धोंके अन्तर्गत वृद्धोंके

दुर्ग, ममजिदें, महल आदि उन्होंने अवश्य बनवाये, मुसलमानों विद्याको भी प्रोत्साहन दिया तथापि शान्तिपूर्ण सांस्कृतिक कार्योंके लिए नृशस सुलतान उपयुक्त ही न थे ।

वहमनी-साम्राज्य विखरकर जिन विभिन्न स्वतन्त्र मुसलमानों राज्योंमें परिवर्तित हुआ उनमें सर्वप्रथम वरारकी इमादशाही ( १४८४-१५७४ ई० ) थी । वरार ( प्राचीन विदर्भ ) वहमनी-साम्राज्यका घुर उत्तरी सूबा था । १४८४ या १४९० ई० में फ़तहुल्ला इमादुल्मुल्कने, जो पहले हिन्दू था, अपनी स्वतन्त्रता घोषित की । उसके वशमें चार सुलतान हुए और १५७४ ई० में इस राज्यका अन्त होकर यह अहमदनगर राज्यमें ही मिल गया जिसने इस सूबेको १५९६ ई० में अकबरके पुत्र मुरादको दे दिया ।

बीदरकी बरीदशाही ( १५२६-१६०९ ई० )—अन्तिम वहमनी-सुलतान महमूदका मन्त्री क़ासिम बरीद १४९२ ई० से ही सर्वेसर्वा हो गया था, १५२६ ई० में उसके पुत्र अमीर बरीदने वहमनी राज्य और वशका नामके लिए भी अन्त कर दिया और अपने-आपको ही सुलतान घोषित कर दिया । १६०९ ई० के लगभग इस वशका अन्त करके उसके राज्यको बीजापुरने अपनेमें मिला दिया । बीदरमें अमीर बरीदकी दरगाह तथा एकाध अथ इमारतोंको छोड़कर इस छोटी-सी सल्तनतके सम्बन्धमें कुछ उल्लेखनीय नहीं है ।

गोलकुण्डाकी कुतुबशाही ( १५१८-१६८७ ई० ) वारंगलके प्राचीन ककातीय राज्यके प्रदेशपर स्थापित हुई । मन्त्री महमूदगवाँ-द्वारा नियुक्त इस प्रदेशका सूबेदार एक तुर्की सरदार सुलतान कुली-कुतुबशाह इस वश और राज्यका संस्थापक था । १५१८ ई०में वह स्वतन्त्र हो गया और ९० वर्षकी आयुमें अपने पुत्र जमशेद (१५४३-५० ई०) द्वारा मार डाला गया । जमशेदका भाई इब्राहीम (१५५०-८० ई०) इस वशका सर्वमहान् शासक था । गोलकुण्डाके सुलतान विजयनगर, बीजापुर और अहमदनगरके

पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

[illegible]

महम्मदगारकी निज़ामगारकी ( १४९०-१५१ ई )—तीसरे के महमदी गारगारने बकिमी दलके निज केस निजामुलमुल्क ब्यूटीके वरकन के ब्यूमुदल्लीको हुया हुई की नीर की स्वर्न बोरे दलक परचतु की प्रकार गार दालम बना था उसके केरे बकिम बहमदने की कि बुडीरन बुडीरन वा १४९ ई के बिग्रीह कर लिया । उसने ब्यूमुद बहमदीकी पदस्थित करके अपनी वरकनका बकिम कर की बहमदगारकी अपनी राजधानी बनाया और वह स्वर्न बहमद निजामगारके नामसे इन वंश का प्रथम मुल्कान ( १४९०-१५८ ई ) बना । १४९९ ई के बीसठे गारके मुल्की हुलकत करके उसने अपने राजकी बुसबस्थित कर लिया । उसके वरपदस्थित की मुल्कान निजामगार ( १५८-१९१ ई ) ने १५१ ई के किया यह बीबीकार किम । वह अपने बहमदी हुलु और मुल्कान

राज्योंके साथ बराबर लड़ता रहा और १५५० ई० में उसने विजय-नगरके साथ सन्धि करके बीजापुरके विरुद्ध उसका साथ दिया। उसके उत्तराधिकारी हुसैनशाहने १४६५ ई० में विजयनगर विरोधी मघमें सक्रिय भाग लिया और उस महानगरीकी लूट तथा हिन्दू-राज्यके प्रदेशोंमें अपना हिस्सा प्राप्त किया। १५७४ ई० में उसने बरार राज्यको विजय करके अपने राज्यमें मिला लिया। तदुपरान्त निजामशाहीकी अवनति होने लगी। सम्राट् अकबरके पुत्र मुरादके आक्रमणोंमें अहमदनगरकी राजकुमारी और तत्कालीन बालक सुलतानकी बुआ चाँदबीबीने, जा कि बीजापुरके सुलतानके साथ विवाही थी, अहमदनगर आकर अपने भतीजे-के राज्यकी वारतापूर्वक रक्षा की थी। अन्ततः १५९६ ई० में बरारका सूबा लेकर तथा चाँदसुलतानके साथ सन्धि करके मुराद लौट गया। १६०० ई० में मुग़लोंने फिर आक्रमण किया और इस बार चाँद सुलताना युद्धमें मारी गयी। किन्तु पूरे राज्यपर मुग़लोंका फिर भी अधिकार नहीं हुआ। १६३७ ई० में शाहजहाँने इस राज्यका सर्वथा अन्त किया।

**बीजापुरकी आदिलशाही ( १४८९-१६८६ ई० )** इन समस्त सल्तनतोंमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसका मस्थापक बीजापुरका बहमनी सूबेदार यूसुफ आदिलखाँ था जो १४८९ ई० में स्वतन्त्र हुआ और यूसुफ आदिलशाह ( १४९०-१५१० ई० ) के नामसे बीजापुरका प्रथम सुलतान हुआ। वह शिया मुसलमान था और १५०२ ई० में उसने इसी धर्मको अपना राजधर्म बनाया। विजयनगर तथा दक्षिणको उपरोक्त मुसल-मानी सल्तनतोंके साथ उसके निरन्तर युद्ध चलते रहे। सुन्नी होनेके कारण उन्होंने उसका और भी विरोध किया। गोआको उसने अपना प्रिय आवास बना रखा था, जिसके लिए पुर्तगालियोंके साथ इसके युद्ध हुए, अन्ततः उन्होंने १५१० ई० में उस नगरको अधिकृत कर लिया और वहाँके मुसलमानोंका बुरी तरह संहार किया। इस सुलतानने मराठा

नरदार कुलदराजी की बहिनके साथ विवाह किया तथा नयाई और  
कन्ये द्विपुत्रीकी राज्यकी कन्ये यतीर भी विवाह किया । इनके राज्य  
लोचननगरमें नयाई भाग्यश्री प्रबोध दीया था । बहु धन-सम्पत्ति  
आपदा बुद्धिमत्ता, ज्ञानी कुलार, सुविचित्र, विचारमिश्र और निपुण  
कौशल्य का साथ ही कदार की बहिन भी था । बीजापुरके दुर्जन इनके  
कुल विनाश करवा था ।

कनका एक समादरक्या ( १५२०-१४ ई ) की मराठ छौने  
 इलाक म कनकी पिनाली बगिछी हो चुकीछ थ । मुळतम कनकी के बाप  
 म्हा बापक बा म्हा कनकी कीरकड कीर कनकी क्माकछौने म्हा राज  
 इलाक करवा बाबा निजु कीर मुळ कन कीर म्हा बाप कन । कनका  
 की क्मोली राजकी के बाब कनकर म्हा राज कीर निजमनारी राजकु  
 का रीकाव कीर केनेने कनक ह्म । राजकी राज्ने कनकी कनका के एक  
 राजकु म्हा निजम कनकी की कनका के बाब कनका निज ।

कलका मुन कलू खरीम और दुधराणी या अरुः कुछ मज नमई  
ही बने मन्ना नरके बरम्भुत कर दिया गया और कलका मज की  
हथड़ीन भातिनकाह प्रथम ( १९१९-२० ई ) मुकदम हुआ । बने  
मुकी मज और एलिनी एक हुकी सराफाईया का किया गया बाप-ने  
ईयनी भादि विवेकी सराफाईने विमलनवरके एकाग्रताकी मोकरी कर  
की । १९१५-१६ ई के मुकदम विमलनवरके कुछ सराफाईके निम्नक-  
वर बाई गया और बहुत-का मज कैकर बापक भीय । कलका कली मज-  
का बाप मजुर का कलीकी मूलीतिके विमलनवरके विमल मोकी मुक-  
मल मुकदमोका मज बंधित हुआ था । बारे मालनकाकी मूलीतिक  
मज-नेय बाईरी रहीं । अन्तिम कलीके मुकदम मजमल और मज-विमलकी  
मजमलिक मज ही गया और मुकी मोक मज ।

कनका पुत्र बन्धी नाथिबहादुर ( १९५७-८ ई ) कपुर मिया क  
कीर कुमिर्बोना मिर्बोना का । १९५८ ई में एमएचके कार्य बर्नि

करके उसको सहायतामें उसने अहमदनगरपर आक्रमण किया और वहाँ निर्दयताके साथ लूट मार की। इस अवसरपर रामराजाने मुसलमानोंपर जो अन्यायकार किये और उनके प्रति जैसी घृणा प्रदर्शित की उससे अभी मुल्तान आपसी शगणोंकी मुलाकर उगता अन्त करनेपर कटिबद्ध हो गये। इसी उद्देश्यसे आपसी सम्बन्धोंकी और अधिक पुष्ट करनेके लिए उसने अहमदनगरके हुसैन निजामशाहकी बहिन चाँदबीबीसे साथ अपना और उसकी पुत्रीके साथ अपन पुत्रका विवाह कर लिया।

१५६४ ई० के दिसम्बर मासमें बीजापुर, अहमदनगर, बीदर और गोलकुण्डाके सुल्तान अपनी-अपनी सेनाओं-सहित तालिकोटामें एकत्रित हुए और १५६५ ई० के प्रारम्भमें मंगलवार २३ जनवरीके दिन तालिकोटासे २५ मील दूर उनका विजयनगरकी सेनाके साथ भोपण युद्ध हुआ। वृद्ध रामराजा और उसके घोर सैनिक अत्यन्त वीरताके साथ लड़े और उन्होंने मुसलमानोंके पैर उखाड़ दिये। किन्तु विजयनगरके दुर्भाग्यसे कुछ हाथा भटक गये, गडबडमें रामराजा बन्दी हुआ और तुरन्त उसका सिर काट दिया गया, हिन्दुओंमें भगदड़ मच गयी, मुसलमानोंने बड़ी निर्दयताके साथ हिन्दुओंका सहार किया और लूट-मार करते हुए विजयनगरपर चढ़ दौड़े तथा कई सप्ताह पर्यन्त उस महानगरीका ऐसा भयंकर विध्वंस किया जिसका अन्य उदाहरण नहीं। सभी मुसलमान सुल्तान घनी बन गये और विशेषकर अली आदिलशाह अपार धन लेकर बीजापुर लौटा। १५७० ई० में सुल्तानने अहमदनगरके साथ मिलकर पुतगालियोंकी दस्तियोंपर अधिकार करनेका विफल प्रयत्न किया। १५७९ ई० में एक खोजके हाथों अली-आदिलशाहकी मृत्यु हुई।

उसका पुत्र इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (१५८०-१६२६ ई०) राज्य प्राप्त करनेके समय बालक ही था और १५८४ ई० तक उसकी माँ चाँदबीबी ही सब राज्यकार्य करती रही। तदुपरांत वह अपने मायके अहमदनगर चली गयी और उस राज्यकी रक्षामें ही उसका अन्त हुआ।

१५९५ ई में बीजापुर और महाराष्ट्र के बीच प्रतिष्ठित युद्ध हुआ। छत्रपति बीजापुर ही अपने-आपने शासन एवं सेवा और मुगल साम्राज्य ही उसके प्रधान शत्रु थे। यह युद्धमान बहुत ही महत्वपूर्ण था क्योंकि इस युद्ध में बीजापुर और मुगल के बीच एक युद्ध हुआ था जिसमें मुगलों ने जीत हासिल की। इसके बाद मुगलों ने बीजापुर पर कब्जा कर लिया और इसे अपने शासन के अन्तर्गत ला लिया। इसके बाद मुगलों ने बीजापुर के लोगों को बर्बरतापूर्वक मार दिया। इसके बाद मुगलों ने बीजापुर के लोगों को बर्बरतापूर्वक मार दिया। इसके बाद मुगलों ने बीजापुर के लोगों को बर्बरतापूर्वक मार दिया।

उन्हीं पुत्र मुहम्मद आलिखान ( १९१९-१९२९ ई ) के १९१९ ई में आहून्दाकी जमीनका स्वीकार कर ली। जमीनें जल्दमें ही सिवाजीके कर्मचारी पराक्रम-बलिदान बख्त हुआ भी बीरानुरके जल्दमें प्रभाव पारण बनी। उन्हीं पुत्र जमी आलिखान ( १९२९-३१ ई ) के काम सिवाजीके जल्दमें कुछ हुए। अन्त में सिवाजीके कर्मचारी पराक्रम-बलिदान बख्त बीरानुरकी स्वीकार करली गयी। अन्त में मुहम्मद आलिखान ( १९३१-८९ ई ) की बीरानुरकी जमीनका स्वीकार कर लिया।

[illegible]

आन्ध्रप्रदेश प्रादेशिक (१९८०-१९८१)—श्री ०५  
मुन्नुचमी कुन्ने चम्प बालीबका बुवा च्चल्लु बुवा । यद् बोल्लु-बा

मुसलमानों राज्य अपने मुदूह असोर्गद-दुर्गके लिए प्रसिद्ध था जिसे १६०१ ई० में अकबरने विजय करके इस राज्यका अन्त किया। फ्राम्को सुलतानोंकी राजधानी बुरहानपुर थी। साप्तीकी घाटीमें स्थित यह छोटा-सा मुसलमानों राज्य भी पड़ोसी राज्योंके साथ युद्धोंमें सलग्न रहा और कुछ काल तक गुजरातके सुलतानोंके अधीन भी रहा।

**राजपूत राज्य**—उपरोक्त मुसलमानों राज्योंके अतिरिक्त इस कालमें कुछ शक्तिशाली हिंदू राज्य भी थे जिनमें सर्वाधिक शक्तिशाली एवं महत्त्वपूर्ण दक्षिणका विजयनगर-साम्राज्य था जिसका वर्णन पिछले खण्डमें किया जा चुका है। उसके अतिरिक्त कोण्ण, कर्णाटक, तुलुव और सुदूर दक्षिणमें कुछ छोटे-छाटे हिंदू और जैन राज्य थे। गोआकी पुर्तगाली शक्ति भी अपने ममुद्री बलके कारण महत्त्वपूर्ण थी। उत्तरापथमें राजस्थानमें कई प्रसिद्ध राज्य थे यथा बीकानेर, जोधपुर, जयपुर (अम्बर), हाहाबूंदी, रणथम्भौर, चित्तौड़ आदि। इन सबमें चित्तौड़ राजधानीस राज्य करनेवाले मेवाड़के गुहिलौत या क्षीरोदियावशी राणा सबसे अधिक शक्तिशाली एवं महत्त्वपूर्ण थे। वास्तवमें ये ही सम्पूर्ण राजस्थानके नेता थे और मुसलमान सुलतानोंके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे। दिल्लीके तथा गुजरात और मालवाके सुलतानोंके साथ उनके निरन्तर युद्ध होते रहे। महमूद गजनवीके लुटेरे आक्रमणों, मुहम्मद गोरी और उसके सिपहसालारोंके देश विजयके लिए किये गये हमलों तथा गुलामबशके शासकोंके धावोंसे भी अबमेर और रणथम्भौरको छोड़कर प्रायः सम्पूर्ण राजस्थान सुरक्षित रहा।

१०वीं शताब्दीमें मेवाड़का राजा शक्ति कुमार था। उसकी दसवीं पीढ़ीमें विजयसिंह (११०८-१६ ई०) प्रसिद्ध राजा हुआ। इसका पुत्र अरिसिंह था जिसके प्रपौत्र रणसिंह (कर्ण) के पुत्र क्षेमसिंहके वंशज रावल कहलाये और मूल राजधानी नागहद (नादा) से ही राज्य करते रहे। रणसिंहके एक पुत्र राहुपके वंशज राणा कहलाये और वे मिसोदमें



एकछत्ति छत्तसौंके कर्म एतत् करी रही । १२वीं कही ई के बरतर्ष-  
 में सेमाँछके पुन रावत पावतछिहने बरतर्षका मुन्नीराजके छोटी  
 बिरौजी बंधये एवं लकाबजीके मुन्नीमें मान किया बा । ११११-११ ई ई  
 बीरबिह ( बीरत ) एक बहान् गरीब हुआ । कहीने बितीकपर अधिकार  
 करके बडे राजधानी बनाया । १११ ई के जनमन बरतर्ष पुन ठेगाना  
 बिबाहपर पावन करता बा । कहीनी बहूछनी बरतर्षकीबीकी बीन-बर्नर  
 बहुत बड़ा रही बरतर्षी कही ई । इस रानीने बितीक पुनके बीरत ही  
 लकाब बरतर्षकापना मुन्नीर मन्त्रि बरतर्षा बा और भी बनेक मन्त्रि-  
 बन्धि बरतर्षी ने । कहीने पुन बीरकेछटी एतत् बरतर्षिहने बरतर्ष  
 बरतर्षमन्त्रिपुरिके बरतर्षके कर्मने एतर्षी बीन-बिह बरतर्ष कय बी बी ।  
 बरतर्षाह बरतर्षी बीरताके मन्त्रि छिहारा-बिह ई ।

एतर्षातर्षके लकाबजीके बनेक कर्मबता कर्मबन मुन्नीर  
 लकाब बरतर्षाहीन कही बा बिहने ११ ई के लकाबजीपर  
 बीरत बरतर्षा किया मन्त्रि एतर्षाकी बीरताके कारण बडे बार बने  
 बिहने होकर छोटता बडे । कहीने कई कहीने और बरतर्ष बीरत बरतर्षा  
 किया और कई नाह एक बेरा कही एतर्षके लकाब बरतर्षा एतर्ष  
 बीरत-छाट बा बरे एतर्ष बडे मुन्नीर अधिकार कर कय । इस बरतर्ष ल-  
 काबजीके लकाबी मुन्नीराज बीरतका बीरत बीर बिहने एतर्षा हम्मीर  
 बीन ( १२८१-१३ ई ई ) बा बी हम्मीर-मन्त्राज, हम्मीर-मन्त्रि  
 बादि कय बरतर्षा नाह ई । मुन्नी बंधके बहुराज बरतर्षाका बडे कय  
 बा । लकाबजी एतर्षी लकाब-बरतर्षी ही कहीने बीरबिह बरतर्ष की ।  
 एतर्षातर्ष बरतर्षीने बितीकपर अधिकार किया । कय बरतर्ष एतर्ष बीरबिह-  
 का बरतर्ष बा । बड़ा बाता ई कि कहीने बहुराज बीरतके बहुत क-  
 बीरबर्षी बरतर्षी लकाबजी बितीककी और बाहुर किया बा । एतर्षा-  
 की बीरताके कारण कई बार कहीने बरतर्ष बिहने हुए, बरतर्षा ११ ई  
 ने बहुराज बीरतकी लकाबी लकाबीके बाब मुन्नी बरतर्ष-मुन्नी किया बा

गया बार बार राजपूत कसारया धाना पहन लड़ते लड़ते जूस मरे ।  
 भयकर जोहरमें चित्तौड़के समस्त स्त्री-पुरुषोंका अन्न ही जानेपर ही  
 लमान किलेपर अधिकार कर मके । चित्तौड़पर कुछ वर्ष तक अलाउद्दीन-  
 पुत्र खिजूरचा मूवेदार रहा और उसपर मुसलमानोंका अधिकार रहा ।  
 नन्तर राजपूतोंने उन्हें निकाल बाहर किया । १३२५ ई० के लगभग  
 सोदिया शाखाके राणा हम्मीरके समयसे चित्तौड़ राज्यका उत्कर्ष वेगके  
 प हुआ । और फिर कई घातान्दियों तक मुसलमानोंको उसकी ओर  
 एपात करनेका साहस न हुआ ।

१४वीं शती ई० के उत्तरार्धमें मेवाड़के वपेस्वाल जीजी माहजीजाने  
 चौहानोंमें प्राचीन चन्द्रप्रभु चैत्यालयके निकट एक सतसना उत्तुग एवं  
 यन्त्र कलापूर्ण कीर्तिस्तम्भ ( मानस्तम्भ ) बनवाया या पुरातन अपूर्ण  
 स्तम्भका जीर्णोद्धार कराके उसे पूर्ण किया था । कहा जाता है कि इस  
 स्तम्भ से ठीके १०८ प्राचीन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार, उतने ही नवीन  
 मन्दिरोंका निर्माण एवं प्रतिष्ठा करायी थी, अठारह स्थानोंमें अठारह  
 शाल श्रुत भण्डार स्थापित किये थे और सवालाख धन्धियोंको मुक्त  
 राया था । उसके गुरु दिगम्बराचार्य सोमसेन भट्टारक थे ।

१५वीं शतीके प्रारम्भमें राणा लाक्षाके समयसे मेवाड़-राज्यकी शक्ति  
 और अधिक बढ़ने लगी । रामदेव नामक जैन भी इनका एक मन्त्री था,  
 लाक्षाका उत्तराधिकारी राणा मोवल भी योग्य क्षामक था । तदनन्तर  
 हाराणा कुम्भ दिल्ली, मालवा और गुजरातके मुसलमान सुलतानोंका  
 बल प्रतिद्वन्द्वी हुआ । मालवाके सुलतानपर विजय पानेके उपलक्ष्यमें इस  
 णाने चित्तौड़में एक नौ-मजिला उत्तुग कीर्तिस्तम्भ या जयस्तम्भ  
 नवाया था । इसीके आश्रयमें उसके एक ओसवाल महाजन गुणराजने  
 ४३८ ई० में जैन-कीर्तिस्तम्भके निकट स्थित महावीर स्वामीके प्राचीन  
 मन्दिरका जीर्णोद्धार कराया था । स्वयं महाराणा कुम्भने मर्चोद दुर्गमें  
 एक सुन्दर चैत्यालय बनवाया था । महाराणा कुम्भके प्रतापके आगे

बघेकी मुन्धाल बार-बार बोलती थे । १४४८ ई में उनको गेहलोटी ( गोवाप्यत ) बंगालमें, जो बाद केहूरावा गुजरात राज्यके भिन्न ही एक छोटा-सा कजाख जिन-बनिर बगवावा था । शांतिमानके लव बनिारकी सुधार-बैररी बघते हैं । इनकी प्रतिष्ठा बरछाबन्धके भाष्य जिनकेमूर्ति की थी । मुन्धका बरछाबन्धकी राजा राजका बहोला और भिन्न-बनिर लोरीका प्रतिष्ठा की था । बहोला मुन्धकाके लव इनके की बनेक बूढ़ हुए । इनके लवमें बिलीब बुकि बोकुलीबके भिन्न १४८६ ई में एक बिक-बनिरका भिन्न बूढ़ा था जिनके लोरीके बगवावा देखने लाकर जिन-बनिर लवली की बली थी ।

[illegible]

उसके राज्यको स्पर्श करनेका उसे फिर भी साहस न हुआ। इस युद्धके परिणामसे राणाको बड़ा सदमा पहुँचा और १५२९ ई० में उस वीरकी मृत्यु हो गयी। इस महाराणा सागाके राज्यकालमें ही दिल्लीके मूलसघो पट्टाचार्य जिनचन्द्रसूरिके शिष्य अभिनवप्रभाचन्द्र (१५१४-१५२४ ई०) ने चित्तौड़में स्वतन्त्र पट्ट स्थापित किया था। मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र (१५२४-१५४६ ई०) उनके उत्तराधिकारी थे। इनके प्रशिष्यके समय चित्तौड़का पतन होनेपर यह पट्ट आमेरको स्थानान्तरित हो गया था। चित्तौड़के इस पट्टके आश्रयमें अनेक ग्रन्थोंकी रचना हुई। आचार्य नेमिचन्द्रन गोमट्टसारकी संस्कृत टीका १५१५ ई० में चित्तौड़में ही जिनदास-शाहके पार्श्वजिनालयमें की थी। लाला वर्णोंकी प्रेरणापर नेमिचन्द्र दक्षिणसे यहाँ आये थे। राणाने जैनाचार्य धर्मरत्नसूरिका भी ज्ञापी, घोड़े, सेना और वाजे-गाजेक साथ स्वागत-सत्कार किया था तथा उनके उपदेशसे प्रभावित होकर शिकार आदिका त्याग कर दिया था, ऐसा कहा जाता है। इन जैनाचार्यका ब्राह्मण विद्वान् पुष्पोत्तमके साथ सात दिन तक राजसभामें शास्त्रार्थ भी हुआ था। राणा सांगाके पुत्र भोजराजकी पत्नी ही कृष्ण भगवान्की परम भक्त सुप्रसिद्ध मोराबाई थीं जिनके कारण राजस्थानमें कृष्ण-भक्तिकी अपूर्व लहर दौड़ गयी थी।

सांगाके उपरान्त उसका पुत्र रत्नसिंह राणा हुआ। उसके समयमें उसके मन्त्री कर्माशाहने १५३० ई० में शत्रुजय तीर्थका जीर्णोद्धार कराया और इस कायमें गुजरातके सुलतान बहादुरशाहने भी उसकी सहायता की थी। कर्माशाहके लिए तत्कालीन शिलालेखोंमें लिखा है कि वह 'श्रीरत्नसिंहराज्ये राज्यव्यापार-भारधोरिय' था। इसका पिता तोलाशाह राणा सागाका मित्र और मन्त्री था। राणा रत्नसिंहकी मृत्युके कुछ ही समय पश्चात् १५३४ ई० में गुजरातके बहादुरशाहने चित्तौड़पर भीषण आक्रमण किया। इस विपत्तिमें राणा सांगाकी विधवा महारानी कर्णवतीने मुगल-बादशाह हुमायूँक पास राखी भेजकर सहायता माँगी। हुमायूँ उस

[illegible][illegible]

श्वेताम्बर जैन साधुओंका सम्पूर्ण राजस्थानमें चम्बुक्त विहार था। अनेक स्थानोंमें उनके तीर्थ, सांस्कृतिक केंद्र और भट्टारकीय गढ़ियाँ थी। राज्य-वंशों एवं सामन्तवर्गोंके अनेक स्त्री-पुरुष और कभी-कभी कोई-भी नरेश भी जैनधर्मके अनुयायी या भक्त होते रहे। उस कालमें वहाँ जैनोकी सस्था अवकी अपेक्षा कमसे कम दुगुनी थी, और क्योंकि उस कालमें जैनी प्रायः क्षत्रिय और वैश्य जातियो एवं मध्यम वर्गमें से ही थे, अतएव उस वर्गमें आवेसे अधिक उन्हीकी सस्था थी और इन जैनोंने मेवाड़ तथा अन्य राजपूत राज्योंके संरक्षण, उन्नति, शासन-प्रबन्ध, धर्म, साहित्य एवं कलाके क्षेत्रमें और सांस्कृतिक विकासमें स्तुत्य योगदान दिया। स्वयं मेवाड़ राज्यमें ही जब-जब किलेकी नींव रखी जाती तब-ही-तब राज्यकी ओरसे एक नवीन जैनमन्दिर बनवाये जानेकी रीति थी। राज्य-भरमें राजाशासे रात्रि-भोजनका निषेध था। कोई भी जैनसाधु राजधानीमें पधारता तो महारानियाँ उस राजमहलमें आदर-भूयक आमन्त्रित करके उसके आहार आदिका प्रबन्ध करती थीं। राज-सभाओंमें जैनसाधुओंके भाषण और शास्त्रार्थ होते और उनका सम्मान किया जाता था। उनके तीर्थोंका संरक्षण राज्यकी ओरसे होता था। प्रायः यही व्यवहार अन्य राजपूत राज्योंका भी था। इसी कालमें सन् १४९१ ई० में राजस्थानके एक धनकुवेर साहू जीवराज पापहीवालने दिल्लीके भट्टारक जिनचन्द्रके उपदेशसे धातु और पापाणकी असह्य जिन-मूर्तियोंका निर्माण और प्रतिष्ठा करायी थी और भारतके विभिन्न भागोंमें बहुसंख्यामें इन मूर्तियोंको भेजा था। आज भी उत्तर और मध्यभारतके अनगिनत स्थानोंमें इन मूर्तियोंमेंसे अनेक पायी जाती हैं।

राजपूतानके अतिरिक्त श्वालियरमें तोमरवंशी राजपूतोंका राज्य भी इस कालका शक्तिशाली राज्य था। श्वालियर ( गोपाचल या गोपगिरि ) का प्रसिद्ध सुदृढ़ दुर्ग कमसे कम गुप्तकाल-जितना प्राचीन है। गुर्जर प्रतिहारोंके बाद चन्देलोंका और कच्छपघट राजपूतोंका इस प्रदेश

पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य

समय दोरगाहके विरुद्ध विहारमें फैला हुआ था, किन्तु वह पवित्र राष्ट्रीय  
 सम्मान रखनेके लिए सुरक्षित विहीनकी रक्षाके लिए बल दिया। फिर  
 भी विरुद्ध हो डी गया। और महापद्मोंने और कबके और राजपुत्रों  
 बंदी करके अपना बल दिया। केवल एक ही महापद्मों द्वारा दुर्योधन बलिष्ठ  
 कर दिया। किन्तु उनकी विरुद्ध महापद्मों की हारों का युद्ध और  
 १५३५ ई. में ही महापद्मों की युद्ध लड़ाई करके बने विहीन-  
 विरुद्ध बल दिया। उपरान्त विहीनका राजा अन्धकार एक बल  
 युद्ध विरुद्धों द्वारा किन्तु राजपुत्रों की बलों द्वारा कर ही  
 और स्वयं राजा बल दिया। बने बाबाके बलविद्ध युद्ध बाबाके बल-  
 विहीन द्वारा करनेका भी प्रयत्न किया किन्तु स्वयंविद्ध कलाशालों  
 स्वयंकी बलिष्ठ बल स्वयंके युद्धों द्वारा की। राजपुत्रोंके बल  
 बनेक बाबाके बल करके-बलिष्ठ लिए बनी किन्तु महापद्मों की बलोंके  
 बने विहीन की राजपुत्रोंके बल बनी। बने युद्धोंके बनी  
 विरुद्ध बाबाद्वारा बल और बल की बल राजपुत्रोंके बल  
 की बल और बाबाकी बल बल करके बल बलिष्ठ किया बल बल  
 बनेक बल की विहीनके विरुद्ध बल बाबा। बाबा  
 बाबाकी राजा बलिष्ठोंके बल प्रयत्न बना। राजा राजों ही  
 बने बलके युद्ध करके-बलिष्ठ विरुद्ध विरुद्ध किया बल।

युद्ध-युद्धोंकी बलाके बलके और राजाकी भारतीय स्वयं-  
 बलिष्ठों की बल और ने बने केवल की बने बल राजपुत्रोंकी  
 बल बलिष्ठ विरुद्ध-बलिष्ठोंकी बलिष्ठ करके युद्धोंके बल  
 विरुद्ध की है, और एक बलके बलके बलिष्ठ बलाशालोंके बलिष्ठ-  
 का बल की बलिष्ठ है। राजाकी युद्धोंके बल का बने राजों द्वारा  
 राजपुत्रोंके बल राजपुत्र राजों की बल और बल बलिष्ठ  
 ही बली की। राजा की बलिष्ठके बलिष्ठ बल बली राजा और बल राजों  
 बला बलिष्ठ-बलके युद्ध बल और बलिष्ठ की। विरुद्ध और

श्वेताम्बर जैन साधुओंका सम्पूर्ण राजस्थानमें उन्मुक्त विहार था। अनेक स्थानोंमें उनके तीर्थ, सांस्कृतिक केन्द्र और भट्टारकीय गढ़ियाँ थीं। राज्य-वशो एव सामन्तवशोंके अनेक स्त्री-पुरुष और कभी-कभी कोई-कोई नरेश भी जैनधर्मके अनुयायी या भक्त होते रहे। उस कालमें वहाँ जैनोकी सख्या अवकी अपेक्षा कमसे कम दुगुनी थी, और क्योंकि उस कालमें जैनी प्रायः क्षत्रिय और वैश्य जातियों एव मध्यम वर्गमें से ही थे, अतएव उस वर्गमें आधेसे अधिक उन्हींकी सख्या थी और इन जैनोंने मेवाड़ तथा अन्य राजपूत राज्योंके सरक्षण, उन्नति, शासन-प्रबन्ध, धर्म, साहित्य एव कलाके क्षेत्रमें और सांस्कृतिक विकासमें स्तुत्य योगदान दिया। स्वयं मेवाड़ राज्यमें ही जब-जब किलेकी नींव रखी जाती तब-ही-तब राज्यकी ओरसे एक नवीन जैनमन्दिर बनवाये जानेकी रीति थी। राज्य-भरमें राजाज्ञासे रात्रि-भोजनका निषेध था। कोई भी जैनसाधु राजधानीमें पधारता तो महारानियाँ उसे राजमहलमें आदर-पूवक आमन्त्रित करके उसके आहार आदिका प्रबन्ध करती थीं। राज-सभाओंमें जैनसाधुओंके भाषण और शास्त्रार्थ होते और उनका सम्मान किया जाता था। उनके तीर्थोंका सरक्षण राज्यकी ओरसे होता था। प्रायः यही व्यवहार अन्य राजपूत राज्योंका भी था। इसी कालमें सन् १४९१ ई० में राजस्थानके एक धनकृवेर साहू जीधराज पापड़ीवालने दिल्लीके भट्टारक जिनचन्द्रके उपदेशसे धातु और पाषाणकी असंख्य जिन-मूर्तियोंका निर्माण और प्रतिष्ठा करायी थी और भारतके विभिन्न भागोंमें बहुसंख्यामें इन मूर्तियोंकी भेजा था। आज भी उत्तर और मध्यभारतके अनगिनत स्थानोंमें इन मूर्तियोंमेंसे अनेक पायी जाती हैं।

राजपूतानेके अतिरिक्त ग्वालियरमें तोमरवशो राजपूतोंका राज्य भी इस कालका शक्तिशाली राज्य था। ग्वालियर (गापावल या गोपगिरि) का प्रसिद्ध सुदृढ़ दुर्ग कमसे कम गुप्तकाल-जितना प्राचीन है। गुर्जर प्रतिहारोंके बाद चन्देलोंका और कच्छपघट राजपूतोंका इस प्रदेश





गज़नवीका इन भार-राजाओंने हटावाके निकट मुजके दुर्गसे भीषण विरोध किया था, तदनन्तर असाई दुर्गसे भीषण युद्ध किया, अतत महमूदने उन्हें पराजित किया, दुर्ग और मन्दिरोंको लूटा और विध्वंस किया । उस समय राजपूत स्त्री-पुरुषोंने जोहर करके अपना अन्त किया था । तदनन्तर फ़तह-पुर, इलाहाबाद, अलीगढ आदि जिलोंमें भारोंने अपने छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिये । महमूद गज़नवीके समयमें मेरठ, हापुड, बुलन्दशहर (वरन) का दोर राजा हरदत्तराय प्रसिद्ध था, उसोंने मेरठका वह सुदृढ़ दुर्ग बनवाया था जिसे तरमेशरीनखा भी नहीं जीत सका था और जिसे सर करनेमें तैमूर लंगको काफ़ा कठिनाई हुई थी । इसी राजाने हापुड नगर भी बसाया था ।

स्वय असाईखेहामें भारोंका अन्त होनेके बाद उसके निकट चन्दवाड (चन्द्रपाठ) में, जिसे रपरी-चन्दवाड भी कहते थे, चन्द्रसेनके पुत्र चन्द्रपाल नामक चौहान राजपूतने अपना राज्य स्थापित किया, और चन्दवाड दुर्ग एवं नगरका निर्माण करके उसे अपनी राजधानी बनाया । राजा चन्द्रपाल जैनी था और उसका दीवान रामसिंह हासल भी जैनी था । १३वीं-१५वीं शतियोंमें यह नगर बड़ा सुन्दर समृद्ध और प्रसिद्ध था । इस राज्यमें चन्दवाडके अतिरिक्त ५-६ अथ महत्त्वपूर्ण दुर्ग एवं नगर थे जिनमें रायवट्ठोय, रपरी, हथिकन्त, शीरोपुर (वटेश्वर) आगरा आदि प्रमुख थे । अटेर हथिकन्त, (हस्तिकान्त) और शीरोपुरमें जैन मठार-कोंकी गढ़ियाँ स्थापित थीं जा महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्रोंका काय करती थीं । वहाँके मठारकोंने उत्तर मध्यकालमें साहित्यरचनाको भी भारी प्रारसाहन दिया । शीरोपुरको गढ़ी गत शताब्दी तक विद्यमान थी । अत चन्दवाड राज्यमें जैनधर्म और जैनोंकी पर्याप्त मान्यता एवं प्रतिष्ठा थी । राजागण प्रायः सब स्वयं जैन थे और प्रधान मन्त्री आदि भी प्रायः जैन ही होते थे । राज्य-संस्थापक चन्द्रपालके उत्तराधिकारी भरतपालका नगरसेठ हल्लण था । उसके उत्तराधिकारी अमयपालका मन्त्री हल्लणका



... .. मुजक दुगस मापण । वरोध  
 किया था, तदनन्तर असाई दुर्गसे भीषण युद्ध किया, अतत महमूदने उन्हें पराजित किया, दुग और मन्दिरोंको लूटा और विध्वंस किया । उस समय राजपूत स्त्री-पुरुषोंने जौहर करके अपना अन्त किया था । तदनन्तर कृतह-पुर, इलाहाबाद, अलीगढ़ आदि जिलोंमें भारोने अपने छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर लिये । महमूद गजनवीके समयमें मेरठ, हापुड़, बुलन्दशहर (वरन) का दौर राजा हरदत्तराय प्रसिद्ध था, उसोंने मेरठका वह सुदृढ़ दुर्ग बनवाया था जिसे तरमेशरीनखाँ भी नहीं जीत सका था और जिसे मर करनेमें तैमूर लंगको काफ़ा कठिनाई हुई थी । इसी राजाने हापुड़ नगर भी बसाया था ।

स्वय असाईखेडामें भारोफा अन्त होनेके बाद उसके निकट चन्दवाड (चन्द्रपाठ) में, जिस रपरी-चन्दवाड भी कहते थे, चन्द्रसेनके पुत्र चन्द्रपाल नामक चौहान राजपूतने अपना राज्य स्थापित किया, और चन्दवाड दुर्ग एव नगरका निर्माण करके उसे अपनी राजधानी बनाया । राजा चन्द्रपाल जैनी था और उसका दीवान रामसिंह हासल भी जैनी था । १३वीं-१५वीं शतियोंमें यह नगर बड़ा सुन्दर समृद्ध और प्रसिद्ध था । इस राज्यमें चन्दवाडके अतिरिक्त ५-६ अथ महत्वपूर्ण दुर्ग एवं नगर थे जिनमें रायबहीय, रपरी, हयिकन्त, शोरीपुर (वटेपवर) आगरा आदि प्रमुख थे । अटेर हयिकन्त, (हस्तिकान्त) और शोरीपुरमें जैन मठार-कोंकी गद्दियाँ स्थापित थी जो महत्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्रोंका काय करती थीं । वहाँके मठारकोंने उत्तर मध्यकालमें साहित्यरचनाको भी भारी प्रोत्साहन दिया । शोरीपुरकी गद्दी गत शताब्दी तक विद्यमान थी । अत चन्दवाड राज्यमें जैनधर्म और जैनोंकी पर्याप्त मान्यता एव प्रतिष्ठा थी । राजागण प्रायः सब स्वयं जैन थे और प्रधान मन्त्री आदि भी प्रायः जैन ही होते थे । राज्य-संस्थापक चन्द्रपालके उत्तराधिकारी भरतपालका नगरसेठ हल्लण था । उसके उत्तराधिकारी अभयपालका मन्त्री हल्लणका



इब्राहिम लोदीने अपने भाई अलमखाँको चन्दवाड़का सूबेदार बनाया किन्तु वह बाबरसे मिल गया। चन्दवाड़के हिन्दू राज्यकी रक्षाके लिए राणा सागा भी आये थे किन्तु हुमायूँके साथ चन्दवाड़के युद्धमें पराजित होकर उनकी सेना लौट गयी। मुगलकालमें इस राज्य और नगरका अन्त हो गया। आगे जिलेके हथिकत नगरमें इन्ही चौहानोंकी एक शाखा भदोरिया राजपूतोंका राज्य था जिसका संस्थापक राजुलरावत (१२वीं शती) था। सोकरीमें मीकरवार राजपूतोंका राज्य था। कटेहर (रहेलखण्ड) में कटेहरिया राजपूत सर्वोत्तम थे।

इस प्रकारके और भी कई छोटे-छोटे हिन्दू-राज्य यत्र तत्र उस कालमें रहे प्रतीत होते हैं जिन्होंने दिल्लीके मुलतानोंका नाफा दम किये रखा। प्रत्येक मुलतानकी मृत्यु, दुर्बलता या अभावधानीका लाभ उठाकर ये स्वतन्त्रताका क्षण्डा खड़ा कर देते थे।

लगभग ३५० वर्षके इस मुगलमानी शासनकालके प्रारम्भिक डेढ़-सौ वर्ष (लगभग ११९०-१३४० ई०) तक ता इस्लाम और उसके राजनैतिक प्रभुत्वका द्रुत वेगसे प्रसार हुआ यहाँतक कि सम्पूर्ण देशको, अटकमें अटक और हिमालयसे कन्याकुमारी पयन्त उमने आच्छादित कर लिया। ये नवागस्त मुसलमान धर्म विदेशों से, धन और राज्यके लोभ तथा इस्लामके प्रचार और कृष्णके विनाशकी भावनासे उत्पन्न थे। उनके रोमांचकारी अत्याचार और उनकी अमानुषिक क्रूरता भारतवर्षके लिए सधथा नवीन वस्तुएँ थीं। धर्म एवं न्याय युद्धके आदि भारतीय धर्म इन नृशंस धर्मांध वर्चुरोंकी उस पैशाचिकताकी समझ ही न पाये जिसमें आत्म-समर्पण करने-वाले या युद्धमें बन्दी हो जानेवाले योद्धाओंकी भयानक यन्त्रणा दे-देकर अनिवार्यतः हत्या कर दी जाती थी, भागते हुए शत्रुओंका पीछा करके उनका संहार कर दिया जाता था, निहत्थी प्रजापर लूट-मार आदि भीषण अत्याचार किये जाते थे, स्त्रियोंकी लाज लूटना और असहाय बच्ची, स्त्रियों एवं वृद्धोंका प्राणान्त कर देना एक खेल था, खेतोंको उजाड़ देना,

बाँटने का काम कर देना विद्यालय कक्षाओं को विध्वंस करना देवमण्डिरों और मूर्तियों की तीक्ष्णता बाबुओं मुनिओं, बापूयों और अधिवक्ताओं की सेवा देना और उनका पक्ष कर डालना जन्म-मरणार्थों को जन्म डालना मरने के लिये जन्म का बोझो पशुका मध्यम करना इत्यादि तात्पर्य करते हैं। सम्पूर्ण व्यापक बुद्धि एक-एक भारतीय और एक-एक बाबूयों का जन्म करने में समर्थ था कम और तथा एवं निर्भीकता से यह करने नहीं करिष्ये भेष्य था किन्तु अपने प्राण होय केवलर अथवा पराधीनता स्वीकार कर देने पर भी इन जालसाजियों से अपने कम रोक रही और अपनी ही छाया करने में समर्थ नहीं था। संकल्प करने की शक्ति करने का भी भारतीयों से अक्षर नहीं निकल सकता एक-एक बुद्धिमानों की ही सम्पूर्ण भारतीय जीवन एकदम स्तम्भित हो गया। उनके सामूहिक आर्थिक एवं सामूहिक धर्मिक-मौलिक मुक्त शक्ति हो गये और वैश्विक दुर्बलता यह पश्यने लगे। कहीं कम कारणों से अथवा १५ कम फलस्वरूप भारतीयों के अन्तर्गत एक एक पश्यता गया।

किन्तु कभी-कभी भारतीयों में यह भी देखा कि बुद्धि विवेक और तर्किक करने के लिये यह कम ही लेखा होय है। वेद-की वरके क्षेत्र निम्नो में बार-बार परिपूर्ण हुए और अनेक वरके अधिकांश बुद्धिमान अपने आत्मोन्माद-प्राप्त पक्ष विवेक गये। मुक्त इत्यादि, पदस्थ लोके वरके, स्वविचार, बुद्धिचार, ज्ञानाचार सभी कम मुक्तता में बार-बार किने हुए हैं। बुद्धि, ज्ञानि मुक्तता-प्राप्ति संकल्पने के लिये बुद्धि हो गये की किन्तु अथवा मुक्त अथवा की विवेकी मुक्तता-प्राप्ति ज्ञानाप्त नहीं था वरन् सभी के लिये पश्यन् चर्क-परिपूर्ण एवं एक-विवक्ती ही देखा हुआ था। पूर्व विवेकी मुक्तता-प्राप्ति अनुपात ही की-कीरे कम ही होया था प्या था। लोचने, किन्तु और कम बाबू-कर्मों एवं ज्ञानात्मिक भारतीय पश्य एवं अविशिष्ट भारतीय पश्यों के लिये चर्क-वेग वेद-वेग, संस्कृति-वेग एवं लक्ष्य-वेग की सम्पत्ति किने रही। कहीं मुक्तमान मुक्तता

पूरेदारों और सरदारों को भी अपनी विद्वत्ता एवं पारिवर्षिक प्रभावित  
 करके उनको दूर धर्मापत्ताको हलवा दिया और इस देशको अपना ही  
 समझकर हमारी संस्कृति और जन माधारणका आधार बननेकी प्रेरणा दी।  
 अलाउद्दीन खलजीके समयमें ही मुन्दा-भोजवियोंका प्रमाण राज्य-न्याय  
 में घटने लगा था। फलस्वरूप भारतीय जीवा फिर बल पकड़ने लगा।  
 मुहम्मद तुगलकके समयमें ही दिल्लीया मुगलमानी साम्राज्य छिन्न-भिन्न  
 होने लगा। यस्मृत परे दशपर यह कठिनाईसे तास चालीस वर्ष ही रह  
 पाया था। अनेक नवीन एवं स्वतंत्र हिन्दू और मुसलमान राज्य स्थापित  
 हो गये और पुनः हिन्दूराज्याने भी बल पकड़ा। दक्षिणमें विजयनगर-  
 का शक्तिशाली हिन्दूसाम्राज्य मुगलमानीको उग दिनाम प्रगतिवा  
 लगभग सवा दो सौ-वर्ष पयन्त सफल अवरोधक रहा। उत्तरमें मेवाड़के  
 वीर राणाओंके नेतृत्वमें राजस्थानके अनेक विभिन्न राजे, गुजरात,  
 मालवा और दिल्लीके मुसलमानोंपर मवल एवं सफल नियन्त्रक रहे।  
 आलिपर, चन्दबाद, वरन, फटेहर आदिके अनेक छोटे-बड़े हिन्दूराज्यों  
 मुगलानाका सुलतानों नौद न मोने दिया। दिल्ली, बंगाल, गुजरात, मालवा  
 खानदेशकी तथा यहमनी-राज्य एवं उसके पतनमें उत्पन्न दक्षिणकी पाँच  
 मुसलमानी सत्ताएँ जो प्रायः सब ही समान थोटिकी और स्वतंत्र थीं,  
 अपने आचरण और व्यवहारमें दिल्लीके प्रारम्भिक सुलतानोंसे बहुत कुछ  
 भिन्न थी। इनके शासक नाम और दिग्वाधेक लिए ही मुगलमान थे,  
 इस्लामके नियमोंके विरुद्ध मद्यपान, धूम्रपान, संगीत, चित्र, मूर्ति आदि  
 कलाओंकी रसिकता, हिन्दुओं और जैनियोंको बहलताका गाय शासनके  
 विभिन्न विभागमें नियुक्त करना, उनके धर्म और जातीयताका प्रति उदार  
 और सहिष्णु रहना, उनके गुरुओंका सम्मान करना, प्रादेशिक भाषाओंको  
 प्रोत्साहन देना, प्राचीन भारतीय ग्रन्थोंके अनुवाददि कराना, भारतीय  
 आयुर्वेद, ज्योतिष आदिमें विश्वास करना, इत्यादि कार्योंसे कतिपय  
 अपवादोंको छोड़कर वे आधे भारतीय ही बन गये थे। युद्ध और विद्रोह-

पूर्व-मुगलकालके प्रादेशिक राज्य



[illegible][illegible]

वनवाये जिनमें अवश्य ही हिन्दू एवं जैन-मन्दिरोंके विध्वंससे प्राप्त अतुल सामग्रीका ही बहुधा उपयोग किया, तथापि एक नवीन भारतीय मुसलिम स्थापत्य-कलाको भी जन्म दिया और उसका विकास किया। प्रान्तीय भेदोंसे प्रान्तीय सुलतानोंने उसमें और भी विचित्रताएँ उत्पन्न कीं। भारतीय भाषाओंका भी प्रोत्साहन मिला और विशेषकर जन-भाषाके रूपमें अपभ्रंशसे विकसित दिल्लीके आस पासकी जन-भाषा (सही बोली हिन्दी) में अरबी फारसी तुर्की शब्दों और लहजोंके समावेशसे एक नवीन जन भाषाके विकासको प्रोत्साहन दिया जो उस समय जबान हिन्दवी कहलाती थी।

मुसलमान-सुलतानोंका शासन चाहे जितने बड़े या छोटे प्रदेशपर रहा वह मुख्यतया नागरिक ही था। राजधानियों, प्रमुख दुर्गों और नगरों पर अपनी-अपनी सेनाओंके बलपर मुलतान और उनके सूबेदार या सरदार निरंकुश शासन करते थे। सामान्य नागरिक शासन पूर्ववत् ही देहाती एवं नगरमें हिन्दू अधिकारी करते थे। जो हिन्दू-राजे, उपराजे या सामन्त-सरदार पहलेसे चले आते थे वे उसी प्रकार चलते रहे और प्रजासे भूमिकर आदि पूर्ववत् वसूल करते रहे। उन्हें केवल अपने प्रदेशके मुलतान-की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती थी और उसको या उसके प्रतिनिधियोंको जैसा जितना निश्चित होता कर देना पड़ता था। अल्पसंख्यक मुसलमानोंके लिए इससे अधिक सम्भव भी न था, विशेषकर जब शासित हिन्दू-जनता उनकी अपेक्षा बीसियों गुना अधिक थी। इस प्रकार उस कालका मुसलमानोंका शासन प्रधानतया क्रीड़ी और शहरी ही था। बहुभाग जन-साधारणको वह युद्ध, विद्रोह, लूट-मार और कर आदि वसूल करनेके अवसरोंपर ही, सो भी उसी सम्बन्धमें, स्पर्श करता था।

बहुसंख्यक भारतीयोंके बीच विदेशोंसे आगमन, प्रजनन और धर्म परिवर्तन आदि कारणोंसे बढ़ती हुई मुसलमानोंकी संख्या एक नवीन समस्या थी। प्राचीन यवन, पल्लव, शक, कुषाण, हूण आदिकी भाँति मुसलमान भारतीय समाजमें आत्मसात् न हो सके। बाहरसे आते रहने



जहाँ धोरोँके स्वातन्त्र्य-प्रेम, युद्ध और देश-प्रेमको प्रज्वलित रखा और उनके धर्मभावको पुष्ट बनाया वहाँ उनके उत्तराधिकारियोंने मुसलमान सूफ़ी-सन्तोंके सदृश निर्गुण भक्तिका, किन्तु उनके प्रतिकूल उसके प्रेम-मार्गका नहीं, वरन् ज्ञान-मार्गका प्रचार किया। इस भारतीय धर्म एवं समाज सुधार आन्दोलनके प्रमुख पुरस्कर्ता पूर्वोत्तर भारतमें रामानन्द, सन्त कबीर, पंजाबमें गुरु नानक, मध्यभारतमें सन्त दादू, सन्त सुन्दरदास, दक्षिणमें ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम और रामदास थे। बंगालमें चैतन्यदेव, बिहारमें विद्यापति ठाकुर, गुजरातमें लोकाशाह, बुन्देलखण्डमें तारणस्वामी थे। इन सभी सन्तोंने अपनी बोल-चालकी सघुक्कड़ी भाषामें पदरचना और व्याख्यानों एवं सत्सर्गों द्वारा हिन्दू मुसलिम विद्वेषको दूर करनेका भी प्रयत्न किया। उन्होंने मन्दिरों और मूर्तियोंका विरोध किया, सरल निर्गुण धर्मका प्रचार किया, जाति-पाँति और अन्य सामाजिक क्रूरतियोंके विरुद्ध आन्दोलन किया। इनके शिष्य और अनुयायी हिन्दू, जैन, मुसलमान सभीमें-से होते थे। अपभ्रंश भाषास हिन्दीके विकासका भी इन सन्त-कवियोंने भारी प्रोत्साहन दिया। उन्होंने भारतीय जीवनमें एक नयी स्फूर्ति भर दी, हिन्दू-मुसलिम वैमनस्यको बहुत कुछ कम कर दिया। इनके अतिरिक्त ब्राह्मण पण्डितों, जैन मुनियों, भट्टारकों और यतियोंने भी अपनी-अपनी धर्म-संस्थाओंमें समयानुकूल परिवर्तन करके तथा अपने प्रभावसे जनता एवं शासकोंको प्रभावित करके और अपने कार्यों एवं प्रेरणासे देशके नैतिक स्तरको उन्नत करके तथा धर्म, कला, साहित्य आदि क्षेत्रोंमें उसकी सांस्कृतिक अभिवृद्धि करके देशके पुनर्निर्माणमें स्तुत्य योग दिया। उन्होंने कमसे कम भारतीयताको सजग और अक्षुण्ण बनाये रखा। उपरोक्त अच्छाईयोंके साथ ही आततायियोंकी कुदृष्टिसे अपनी बहु-त्रेष्टियोंकी रक्षा करनेके लिए परदेकी, बाल-विवाहकी, ससीकी, छूतछातकी जैसी कुप्रथाओंका जन्म भी हिन्दुओंमें इसी कालमें हुआ और जाति-व्यवस्था भी अविकाशिक जकड़ती चली गयी।

## अध्याय ३

**मपत्त-साम्राज्य—ऊर्षगव**

१९५० संवत्सरी ई. के विहीन सत्रके आरम्भमें ही भारतीय संसदों में एक नवीन संसदसदस्य राज्य-सदस्य हुई और बुद्ध-बोधके जन्म एक ऐसी वर्षीय एक नवक राज्य-सदस्यता करार हुआ कि जिसने न केवल कमोन्सस्य मुखमंडली संसदीय इस देशमें तथा चीनस्य एवं रूसस्य इसमें किया वरन् इस देशमें राजनीतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्रांतिके जो क्रान्तिपर बहुरा किया ।

[illegible]

मारणोंसे उनमें घर्माघटाया उन्माद और अनुदारताया विष भी कुछ कम होने लगा था । किन्तु वे यह भी समझते थे और उनमें मुत्ता मोल्थी उन्हें यह समझानेमें अभी न सकते थे कि इन दानों उपयोगके बिना उनकी और उनके धर्म एवं राज्यका रक्षा हम देशमें असम्भव है, अतः स्वरक्षार्थ वे इन उपायाका अकारम्बन लेते ही थे । उनकी राजनैतिक एकाग्रता भी कभीकी नग हो चुकी थी । दगाल, मानवा, गुजरात तथा दक्षिणापथके उत्तरी भागकी मुसलमानी मस्तानतों और दिल्लीमें मुल्तान सब एक दूसरेसे सर्वथा स्वतंत्र और पृथक् थे । उन सबमें ही परस्पर फूट, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य और युद्ध निरन्तर चलते थे । उन मथका प्यान अपने अपने राज्यको अधुण बनाये रखने और ही मरना तो अपने निकट पड़ोसियोंकी क्षति करके अपनी-अपनी शक्ति और विस्तार बढ़ाने तक ही सीमित था । मिथमें अनेक छाटे छाटे अरबी अमीर इमा प्रणार परस्पर कलहमें व्यस्त थे । पंजाबमें लेकर बिहार तक पठान सरदार फैले हुए थे । दिल्लीके लोदी मुल्तान उनमें मुगिया थे । किन्तु पंजाब और पूर्वी भारतमें पठान सरदार नाम मात्रका ही उनके अधीन थे । वे लोदियोंके पतनके ही दृष्टांत थे और परस्पर भी कलहमें रत थे । भारतकी इन सभी मुसलमान राजा-शक्तियोंका उस समय एक सूत्रमें संगठित होना असम्भव था ।

इसके विपरीत, जन-साधारणमें गैर मुसलिम भारतीयोंका अत्यधिक सख्या-वाहुन्य था । विभिन्न मुसलमानी मस्तानतोंमें वे राज्य-कमचारियों उपराजाओं एवं सामन्तों, जागीरदारों आदिके रूपमें भाषाकी संख्यामें थे । इसके अतिरिक्त, दक्षिणापथके आधेसे अधिक दक्षिणी भागपर विस्तृत एवं शक्तिशाली विजयनगर-साम्राज्य था और उत्तरापथमें सम्पूर्ण राजस्थानके अनेक स्वतंत्र राजपूत राज्य थे जिन्हें मेवाड़के शक्तिशाली राणाओंका नेतृत्व प्राप्त था । दक्षिण पूव भारतमें गोडवानाके विस्तृत हिन्दू-राज्य था, वुदेसखण्डके बहुभागपर ग्वालियरके तोमर राज्यका शासन था तथा खन्दवाड़, बरन, तराई आदिके अन्य अने

मगल-साम्राज्य—ऊर्ध्वगत



ऐसी परिस्थितिमें बाबर आया, सहज ही उसने लोदीयोधा अन्त यग्ये  
 दिल्लीपर अधिकार कर लिया और इस देशमें मुगल-वंश एक राज्यकी  
 नींव डाली। वह शीघ्र ही मर गया। उसके उत्तराधिकारीको दग बगले  
 भीतर ही देश छोड़ भाग जाना पड़ा। १५ वर्ष बाद वह पुन आया और  
 उसके पुत्र अब्दुरने मुगल-वंश और साम्राज्यकी इतना मज्जित-गाली और  
 स्थायी बना दिया कि यह अपन समयकी मगारकी एक स्पृहणीय शक्ति  
 हो गया। मुगल-वंशका अस्तित्व और दिल्लीपर उसका अधिकार तो  
 लगभग तीन सौ वर्ष पयन्त बना रहा किन्तु मुगल साम्राज्यका चरमावस्था  
 बाल लगभग एक सौ वर्ष ही रहा। अब्दुर राज्यकालके मध्यमें लेकर  
 औरंगजेबके राज्य-कालके मध्य पयन्त भारतका मुगल साम्राज्य और उसके  
 सम्राट न केवल आग्नीय द्वातहागमें ही यग्य सम्पन्न सत्ताधीन विषयमें  
 मर्वाधिक शक्तिशाली प्रतापी और वैभव-मम्पन थे। भारतमें मुगलमानी  
 राज्यवशाम इतना दीर्घकालीनवश ना अब कोई न हुआ। औरंगजेबके  
 राज्य-कालके उत्तरार्धमें साम्राज्यमें अनेक दुर्घटनाओंने घर घर लिया था  
 और शीघ्र-पतनक चिह्न दृष्टिगोचर जान लगे थे। उसकी मृत्युके कुछ वर्ष  
 उपरान्त ही साम्राज्य द्रुत वेगसे छिन्न-भिन्न होने लगा। उत्तरवर्ती मुगल  
 नरेशकी अयोग्यता एवं अकर्मण्यता, उनके मुसलमान सरदारोंके विद्वान-  
 घात और स्वाभिमता, जोधपुरके राठौर राजाओंके नेतृत्वमें राजपूतोंका  
 उत्थान, महाराष्ट्रक पेशवाओं और उनके सरदारोंकी द्रुत प्रगति, राज-  
 धानोंके निकट ही जाटाका और पजाबमें सिक्खोंका उदय, नादिरशाह  
 और अहमदशाहके आक्रमण और सात समुद्र पारमें व्यापारार्थ आनयाले  
 अंगरजाकी छल-बलपूर्ण कूटनीति, सबने मिलकर मुगलका पतन सम्पादित  
 किया। सम्पूर्ण भारतके एकच्छत्र शक्तिशाली सम्राट औरंगजेबकी  
 मृत्युको साठ वर्ष बीतते-न-बीतते उसका यशज शाहआलम नाम भायका  
 ही मुगल-सम्राट रह गया था और मात्र दिल्ली आगरापर उसका अधिकार  
 शेष रह गया था। १८५६ ई० में अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाहका



[illegible]

अथर्ववेदः सूक्तम् १००

ऐसी परिस्थितिमें बाबर आया, सहज ही उसने लोदियोंका अन्त करके दिल्लीपर अधिकार कर लिया और इस देशमें मुगल-वश एवं राज्यकी नींव डाली। वह शीघ्र ही मर गया। उसके उत्तराधिकारीको दस वर्षोंके भीतर ही देश छोड़ भाग जाना पड़ा। १५ वर्ष बाद वह पुन आया और उसके पुत्र अकबरने मुगलवश और साम्राज्यकी इतना शक्तिशाली और स्थायी बना दिया कि वह अपने समयकी ससारकी एक स्पृहणीय शक्ति हो गया। मुगलवशका अस्तित्व और दिल्लीपर उसका अधिकार तो लगभग तीन सौ वर्ष पर्यन्त बना रहा किन्तु मुगल साम्राज्यका चरमोत्कर्ष काल लगभग एक सौ वर्ष ही रहा। अकबरके राज्यकालके मध्यसे लेकर औरंगजेबके राज्य-कालके मध्य पर्यन्त भारतका मुगल साम्राज्य और उसके सम्राट् न केवल भारतीय इतिहासमें ही वरन् सम्पूर्ण तत्कालीन विश्वमें सर्वाधिक शक्तिशाली प्रतापी और वैभव-सम्पन्न थे। भारतके मुसलमानों की राज्यवशमें इतना दीर्घकालीनवश भा अथ कोई न हुआ। औरंगजेबके राज्य-कालके उत्तरार्धमें साम्राज्यमें अनेक दुबलताओंने धर कर लिया था और शीघ्र-पतनके चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे। उसकी मृत्युके कुछ वर्ष उपरान्त ही साम्राज्य द्रुत वेगसे छिन्न-भिन्न होने लगा। उत्तरवर्ती मुगल-नरेशोंकी अयोग्यता एवं अकर्मण्यता, उनके मुसलमान सरदारोंके विद्वाम-घात और स्वार्थपरता, जोधपुरके राठौड़ राजाओंके नेतृत्वमें राजपूतोंका उत्थान, महाराष्ट्रके पेशवाओं और उनके सरदारोंकी द्रुत प्रगति, गज-घानीके निकट ही जाटाका और पंजाबमें सिक्खोंका उदय, नादिरशाह और अहमदशाहके आक्रमण और सात समुद्र पारसे व्यापारार्थ आनेवाले अंगरेजोंको छल-बलपूर्ण कूटनीति, सबने मिलकर मुगलोंका पतन सम्पादित किया। सम्पूर्ण भारतके एकच्छन्न शक्तिशाली सम्राट् औरंगजेबकी मृत्युकी साठ वर्ष बीतते-न-बीतते उसका वंशज शाहआलम नाम मात्रका ही मुगल-सम्राट् रह गया था और मात्र दिल्ली-आगरापर उसका अधिकार छेप रह गया था। १८५६ ई० में अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाहका

माझाज्य ही छिन्नीके जी केवळ ज्ञान द्विकेही चह्मर-बीचारीके भीतर ही सीमित ना । अहं ब्रह्म होय ह्म जी इतके बनेहूँ नाही हे कि मुक्क-जाल भाण्णीत इतिहासका एक कल्पना यद्वातपूर्ण मुन हे । अन्ने मुठीर अन्ने दाढमें इतक देहकी बकनीमुनी बन्निन देवी ।

[illegible]

राजनीति में धर्म का अर्थ ही कथमती सिद्धि प्राप्त न हो । ऐसी स्थिति में राज्यधर्म ही वह दृष्टांत प्रस्तुत मान्य रहित रहा और हमारे

इस देशकी ओर ध्यान दिया । भारतकी तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति भी संयोगसे उसके अत्यन्त अनुकूल थी । दिल्लीका पठान सुलतान इब्राहीम लोदी अयोग्य, मूर्ख और अत्याचारी था । उसने स्वयं अपने पठान सरदारों और सम्बन्धियोंको भी अपना शत्रु बना लिया था । उसके वशके ही आलमख़ाँ लोदी और दालतख़ाँ लोदी जो पंजाब प्रान्तपर अधिकृत थे उसका विनाश चाहते थे । उन्होंने इसी उद्देश्यसे बाबरको आमन्त्रित किया । वे समझते थे कि तैमूरकी भाँति बाबर भी इब्राहीम लोदीका अन्त और दिल्लीकी लूट मार करके चला जायेगा और वे फिर सरलतासे दिल्ली राज्यके स्वामी बन जायेंगे । राणा सागा भी ऐसा ही समझता था । अतः ये लोग बाबरके आक्रमणमें तनिक भी बाधक न हुए । किन्तु बाबर वीर योद्धा और कुशल सेनानी ही नहीं था, वह चतुर राजनीतिज्ञ भी था । १५१८ से १५२४ ई० के बीच उसने भारतपर चार बार आक्रमण किया । प्रारम्भमें उसने सीमान्त प्रदेशका अन्वेषण करके उसे अधिकृत किया, फिर शनै-शनै पंजाबमें घुसा, दौलतख़ाँ लोदीके विश्वासघातसे रुष्ट होकर उसका दमन किया और १५२४ ई० तक काबुलसे सम्पूर्ण पंजाब पर्यन्त उसने अपना अधिकार भलीभाँति जमा लिया । तदनन्तर १५२६ में उसने दिल्लीपर आक्रमण किया । इब्राहीम लोदीने अपनी विशाल किन्तु निकम्मी सेना लेकर पानीपतके ऐतिहासिक रणक्षेत्रमें उसका सामना किया, किन्तु पराजित हुआ और मारा गया । दिल्लीपर मुगल बाबरका अधिकार हो गया । पठानोंकी आपसी फूट, इब्राहीम लोदीकी अयोग्यता, उसकी सेनामें उचित संगठन एवं कुशल नेतृत्वका अभाव, बाबरका तोपखाना जो युद्ध विद्याका भारतके लिए उस समय एक नवीन आविष्कार था, और उसका कुशल नेतृत्व इस विजयमें प्रधान कारण थे । छोटे-से किन्तु अत्यन्त अव्यवस्थित लोदी साम्राज्यको उसने अपने सेनानायकोंद्वारा शनै-शनै जीतना शुरू किया । जो सरदार जिस प्रदेशको जीतता उसे ही वह उस प्रदेशका शासक नियुक्त कर देता ।

राधा माधवे असी माताके विरहीन भव बह नव देवा ती बह माधवो माधवराजे निराला बाहर करवैके निव बहिष्य हो नव दया । अजान भवागिधारे जी कहे महुमया ही । मोहोके विरट बरवाये बाहर भव राखलोका मुन हुआ । राखलो कैवल्य और महुमया-की सीरना स्व बरवायेको देव-कुरकर बाहरके नैमित्त का । नवे लख बाहर जो बरवा नव वि-नु बह मुहुमिया का कने बरिवाया बरवा लख कर दिवा मुहुमो बरवाये को और नव नव विरहिनी लगे बरवाये लखिना बरवाये । अजान अजान और मोहमयाके नव इन मुहुमो का विरही नव और राधा बरवाये होकर बाहर लगे नव । विरही, अजान और माधव-राधेके बरवाये बाहरका बरिवाये हो ही मुहुमो का नव कने नवी अजाने की अजानाकी बरवाये दिवा लख बरवा बरिवाये कर दिवा । बाहर के नव नव ही बरवाये मुहुमो का नवी अजान बरवाये होकर बाहर नव । बाहरके बरिवाये कर दिवा ।

उसने मुल्मानके धनाय बादशाह उपाधि धारण की, अपने अधिपारके लिए ग्लोकाकी स्वीकृतिको भी कोई अपना न थी और इस प्रकार धर्मको राजनीतिसे पृथक् रखनेका प्रथम उपक्रम किया ।

वह अत्यन्त धनवान्, वीर, साहसी, बुद्धिमान, सुशिक्षित, विद्या और कलाका रसिक, धार्मिक, उदार, सर्वप्रिय और स्नेहशील था । उसका तुजुकेबावरी या बाबरनामा नामक आत्मचरित्र एक अत्यन्त दिलचस्प रचना है । अपने पुत्र हुमायूँको रोगसे प्राणरक्षाके लिए उसने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया । १५३० ई० में मुगल-वंश और साम्राज्यके मूल नस्थापक इस जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर बादशाहकी मृत्यु हुई । बाबर भारत और मध्य-एशियाके बीचकी कड़ी था । काबुलसे उसे स्नेह था । अतः उसने अपने दावको काबुल ल जाकर दफनानेकी इच्छा अन्त समय प्रकट की थी, वैसा ही किया गया । ईरानी संस्कृतिका भारतमें प्रविष्ट करनेका श्रेय भी उसे ही है । आगरा आदिमें उसने कई बाग भी लगवाये ।

**२. हुमायूँ ( १५३०-५५ ई० )** बाबरका ज्येष्ठ पुत्र और उत्तराधिकारी था । वह सुशिक्षित, नम्र, दयालु, उदार और स्नेहशील था, किन्तु उतना ही जितना कि उस कालमें एक मध्य-एशियायी मुसलमान राजकुमार अधिकसे अधिक हो सकता था । शासन और युद्ध विद्यामें भी वह साधारणतया माग्य था किन्तु साय ही आलसी, अक्रोम स्थानेका अभ्यस्त, कुछ अदूरदर्शी और भावुक भी था । इन दोषोंके कारण जिन परिस्थितियोंमें उसने राज्य-भार सम्भाला और जा विकट समस्याएँ उसके सम्मुख थीं उनके योग्य वह नहीं था । बाबरने उत्तर भारतको पञ्जाबसे विहार पर्यन्त विजय तो कर ली थी किन्तु वह राज्यको सुसंगठित नहीं कर पाया था और शासन-प्रबंधकी भी कोई योजना कार्यान्वित न हो पायी थी । राजकोष प्रायः खाली था जिसके कारण आर्थिक कठिनाईका सामना था । उसके तीन अन्य भाई कामरान, अस्करी और हिन्दाल उस सदैव तंग करते रहे, विशेषकर कामरान और अस्करीने उसके साथ

धनुसा कायेमें की<sup>१</sup> कहर न रही किन्तु हुमायूँने कुछ बत्ते स्नेहपोष  
नष्ट स्वभाव कीर कुछ मित्रके वणिग्न भायेयका रचार्य धर्म<sup>२</sup> बरिह कया  
जिया कीर कीरि हासि न पहुँचायी ।

बाबरकी मृत्युके पश्चात् पञ्जाब सरदारोंन की बानी विद्रोहका अनुसरण  
जिया कीर के मुहर्षीको विधान बाबर पालके सिद् बन्धित ॥ नरै  
मुहर्ष बाबायक इस बखस बय हो न पाये वै कीर कयल उन्हीं जिनेकी ही  
मजदारी की । कयलालको बन्धुन कीर कयलालका मुहर्षार विमुक्त कर  
दिया गया था किन्तु उसके बंदागिर की बन्धित कर जिया कीर इस  
प्रकार हुमायूँकी उक्तके कयलालकी ही बन्धित कर दिया । इन कयल  
कीकयलका उक्त एक बंदाकी था । उक्तका एक बंदाकी बंदाकी कयलालका  
कयलाल था । कयलालकी बंदाकीके यह हीकर कयलाल बंदा कयलालका  
कीर कयल मुहर्षी की कयलाल । १५६४ ई. के कयलालकी बंदाकीका  
बाबरका सिद्ध । मुहर्षी केनकी बाबा कया कयलालका कयलालकी स्व  
बाबरका कयल कर दिया किन्तु बंदाकीके हीकर कीर कया । इस  
हुमायूँकी की कयली बन्धितकी मुहर्षीके सिद् कयलाल मुहर्षी कयलाल  
कया । बन्धितका इसी कयल मुहर्षीके कयलालका कयलालका कयलाल  
कर दिया । कयलालकी हुमायूँकी कयलालकी बाई कयलाल कयलालकी सिद्  
मुहर्षी । यह कयलाल कयल कया किन्तु इसके कयलालके पूर्व ही  
कयलालका बन्धितका बन्धित कर मुहर्षी कया । हुमायूँका कयलाल कयल  
बहु मुहर्षी कयल कीर कया किन्तु हुमायूँके कयलाल कीर ५ कीर कीर  
१५६५ ई. के मुहर्षीका कयलाल कर दिया कया कयलालके मुहर्षी  
मुहर्षी कयल कया । कयलालका बन्धितका कयलाल कीर कयलालकी कीर  
कया कया । हुमायूँकी मुहर्षीकी कयल कयल कयलाल था किन्तु  
कयलाली पञ्जाब कयलाल कीरकी कयलालकी कयलालकी कयलालकी कयलालकी  
कयलालकी कयलाल कीर कीर कयल कया कया । १५६६ ई. के कयल  
कयलालकी कयलाल कीर कयलालकी की कयलालकी कयलाल कर दिया किन्तु

सदनन्तर लगभग एक वर्ष गोठ नगरमें ही शरण्य आलस्यमें बिता दिया । इस बीचमें शेरशाहने शक्ति संग्रह करके उस वहाँ रोकनेवाला उपक्रम किया । १५३९ ई० में सोमाक युद्धमें बुग संग्रह पराजित होकर हुमायूँ थोड़े-से सैनिकोंके साथ प्राण बचाकर दिल्ली पहुँचा । १५४० ई० में शेरशाहके साथ कन्नौजके निकट उसका फिर भाषण युद्ध हुआ । इन युद्धमें भी वह पराजित हुआ और साथ ही उससे उसका भारती राज्य भी छिन गया ।

अब वह निराश्रित और असहाय था । उसके भाइयाने उसकी कोई सहायता नहीं की । ऐस ही समयमें उसने हमीदाबानूके साथ अपना विवाह किया । पत्नी और मुट्ठी भर साधियाँके साथ वह सिन्धकी ओर भागा, फिर मारवाड़ आया और जोधपुर-नरेशसे आश्रय चाहा । एबके बाद एक कई राजाओं और मुसलमान-नरेशोंसे उसने आश्रय और सहायताकी याचना की किन्तु किसीन महारा न दिया । शेरशाहकी सेना पीछे पड़ा हुई थी, अतः फिर उसे सिन्धका मरुभूमिकी धारण लेना पड़ी और वहाँ अमरकोट नामक स्थानमें १५४२ ई० में हमीदाबानू वेगमने अकबरको जन्म दिया । किसी तरह बचकर हुमायूँ काबुल पहुँचा किन्तु उसके भाई कामरानने भी उसे आश्रय नहीं दिया, अतः बालक अकबरका कामरानके ही आश्रयमें छोड़ १५४४ ई० में वह ईरान पहुँचा और शाह तहमास्पसे सहायताकी याचना की । शाहने इस बातपर कि हुमायूँ शिया मत धारण कर ले और कन्दहारको विजय करके उस सौंप दे सहायता देनेका वचन दिया । अतः १५४५ ई० में शाह ईरानकी सहायतासे हुमायूँने कन्दहारपर अधिकार कर लिया । उसके बाद काबुलपर आक्रमण किया । कई वर्ष तक कामरानके साथ युद्ध चलता रहा । उस दुष्टने अपने भतीजे बालक अकबरको किलेकी दीवारपर सीरोकी बौछारमें बैठाया किन्तु अकबरका बाल बँका न हुआ । अन्ततः कामरान पराजित हुआ, बन्दी हुआ और अन्धा कर दिया गया । कुछ वर्ष हुमायूँने काबुलमें रहकर ही अपनी स्थिति सुदृढ़

सुगल-साम्राज्य—ऊर्ध्वगत-



की और बलि नयन की। गन्धहारकी बहने ईश्वरियोंको बान्नेके अनुसार  
 दिया ही न था। १५५५ ई. के बहने भाष्टर आक्रमण विना। गुरी  
 बमका बमकाय का विद्यालयके तीस-तीस बान्नेहार थे, कन. बलिबलि  
 अनुसूच की बहने ही गन्धहार और बिर दिल्ली और बाबरेपर की  
 हुसमूका बलिहार ही नथा। किन्तु कुछ ही मास बाद १५५६ ई. के  
 शारम्भमें ॥ दिल्लीमें बहने गुप्तकालकी बीडिबलि किनकर बिरके  
 बाद बादबद हुसमूकी गुप्त ही नथी।

बह बहने दिल्ली आरवीर राज्यविहारकी नामकबके सिद्ध ही गुप्त  
 शायद करकेके मकल ॥ राजा का। बहने दिल्ली की बलि बकहाय बरदारों  
 की बारम्बारिक गुप्तके बहने की बहने बकहाय का। बहने भाष्टर गुप्त  
 आक्रमण और विद्यालय-बलि विद्या नवीन ही का बहने की ईश्वर  
 की। बहने बहने गुप्त गुप्त बलिबलि की गुप्त बह भाष्टर गुप्तकाल  
 बह बहने गुप्तकाल गुप्तकाल आक्रमणकी एवं गुप्तकाल बहने की बहने  
 बलिबलि बहने एवं बहने ही का।

३. बहने (१५५५-१५५५) — बह बहने हुसमूकी गुप्त  
 हुई बहने गुप्त बहने १५ बहने बहने बहने का और बह बहने बहने  
 बलि ईश्वरकी बहने बहने बहने गुप्तकाल बहने बहने बहने का।  
 बहने बहने बहने की बहने बहने बहने बहने बहने बहने का और बह  
 बहने बहने ही का। हुसमूकी दिल्लीके बहने बहने ही बहने बहने  
 गुरी दिल्लीके बहने बहने बहने का और बहने बहने बहने का किन्तु  
 हुसमूकी गुप्त ही ही बहने बहने बहने बहने बहने बहने बहने बहने  
 बहने और दिल्लीके बहने बहने कर दिया। दिल्लीके बहने बहने  
 बहने बहने बहने बहने कर दिया और हुसमूकी बहने बहने ही का।  
 बहने बहने, बहने बहने, बहने बहने बहने बहने, बहने, बहने  
 बहने बहने बहने बहने बहने बहने बहने बहने बहने बहने बहने  
 बहने, बहने, बहने और बहने की बहने बहने बहने बहने

रणथम्भौर, जैसलमेर, बूंदी, जोधपुर, बीकानेर, अम्बर आदि स्वतन्त्र राजपूत राज्योंका समूह राजस्थान सजीव आतक बना हुआ था। पश्चिमी-तटपर पुतगालियोंकी शक्ति भी उपेक्षणीय नहीं थी। और स्वयं दिल्लीके सिंहासनके लिए तीन प्रतिद्वन्द्वी दावेदार थे, आदिलशाह सूरी, सिकन्दरशाह सूरी और हेमू। हुमायूँकी दिल्लीपर अधिकार कर लेनेकी अल्पस्थायी सफलताने अकबरको भी उन जैसा ही किन्तु उनसे कम साधन और शक्तिसम्पन्न एक दावेदार मात्र बना दिया था। अतः १४ फ़रवरी १५५६ ई० के दिन जब पंजाबके जिले गुरुदासपुरके अन्तर्गत कलानीर नामक गाँवके बाहर एक वाग़में इंटोंके कच्चे चबूतरोंपर अकबरका राज्याभिषेक किया गया तो उस चौदहवर्षीय नरेशका राज्याधिकार आस-पासके दस-बीस गाँवोंपर ही था, वह धन और जन दोनोंसे ही हीन था, मुठ्ठीभर सेना हाथमें थी और वैरमखी-जैसे हने-गिने विश्वासी, स्वामिमक्त और उत्साही सरदारोंका भरोसा था। अकबरकी कुछ शिक्षा दीक्षा भी नहीं हो पायी थी और वह प्रायः निरक्षर था। उसी समय उत्तर प्रदेशमें भीषण अकाल भी पड़ रहा था। ऐसी विपन्न परिस्थितियोंमें अकबर और उसके साथियोंके सम्मुख तीन ही मार्ग थे या तो हुमायूँकी भाँति देश छोड़कर भाग जायें, या सब आकांक्षाओंको तिलाजलि देकर सामान्य जनताकी भाँति यहीं बस जायें, अथवा राजघोड़ेदारका प्रयत्न करें। उन्होंने यह तीसरा योरोचित मार्ग ही पसन्द किया। इस दिशामें सबसे पहला कदम दिल्लीको हस्तगत करना था क्योंकि भारतकी राजधानीपर अधिकार कर लेना ही अकबरके राज्याधिकारके औचित्यको सिद्ध कर सकता था और अन्य प्रदेशोंकी विजयमें प्रधान साधक हो सकता था।

अतएव अकबरको लेकर वैरमखी ससैन्य थानेश्वरके मागसे होकर पानीपतकी ऐतिहासिक रणभूमिमें आ बटा। एक विशाल सेनाके साथ दिल्लीसे निकलकर हेमू भी आ पहुँचा। दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध हुआ, हेमूकी विजय हो रही थी कि शत्रुका एक तोर आकर उसकी बाँखमें

बहुत क्या और बहुत बेहोश होकर फिर पड़ा। मेराके चिरते ही कबकी  
 बेपत्तने कपड़ों में बंध गयी। हेतु कभी हुआ। वीरमन्त्रिने कबकीने काटकर  
 टांगको बंधने हाथों मारकर बाजी बन्नेके लिए कहा। एक मन्त्रिने अनुसार  
 और कबकीने चिरते अनुसार हाथ उठाया लीकार न किया और स्वयं  
 वीरमन्त्रिने हेतुका बंध किया एक मन्त्रिने अनुसार वीरमन्त्रिने बाणपुर  
 कबकीने उठाकर बाणपुर किया और फिर वीरमन्त्रिने कबकी ठिर का  
 हाथ। बिजली मुक्त-केना कबकीको बाणुरी-काणुरी चिरतीये चिरि हई,  
 हेतुका बंध नगर-नगर कटका रिया क्या और कबकी कबकी हेतुके  
 हउ वीरमन्त्रिने चिरतेका बुद्ध बनाया क्या वीरमन्त्रिने कब कब कबकीने मुक्त  
 कटते जाने वीरमन्त्रिने और बाणपुर कबकीने बाणुरी हो क्या।  
 बाणुरीका मुक्त कटका कब कीये चिरतेका वीरमन्त्रिने किया और चिरकर  
 मुक्तने वीरमन्त्रिने कटका कर रिया बहुत कबकी कर रिया क्या और कब  
 कब कबकीने वीरमन्त्रिने वीरमन्त्रिने ।

अकबरका प्रधान क़ादर, कैयामुद्दीन कली और अमिराबख़्त बीरब्रह्मा ही थे । कलीके सेनापतये अकबरके अगली विजय-यात्रा आरम्भ की । हुमुय्ये बघमर और बिकनरके अर्धजनये सेनाबारेके आग्रह परन्तु अन्तुष बंजर और कलिय्यो क़ादर शीखर अकबरका अधिकार बना दिया । अब अमिराबख़्तके मुहुड बुनकी विजय किया गया और क़ादरी राजपूतानेकी मुजी अमरेंकर अधिकार कर लिया गया । पुरमि बीकनुर शीखके विजय किया गया और इन शहर परम्परा विलुप्त एवं मुहब्बियत केन्द्र सिर्वाय कर लिया गया । बख़मर और बुनर की आक्रमण किया गया किन्तु विजय रहा और तदन्तर आक्रमण-विजयकी तीव्रता की गयी । अब क़ादर कार्य १५१ ई तक कैयम बार वरमि ही अन्तर्ग ही गया । अब अकबर १८ वर्षका बालक पुषक ही गया था । बीरब्रह्माका अन्तर्ग अधिकारकाल तक अन्तरने गया था । क़ादरी नही हुयीया कैयम और बाब बख़मराने की वरु बीरब्रह्माके अन्तुहने मुक़्त हुयेके किन्तु बख़मरक अक़ादर । दिल्लीके

निरपराध रक्षक तर्जिनीकी हत्या करने और उसके सामान्यत उद्धत स्वभाव एव बढ़ते हुए प्रभावके कारण अय सरदार भी वीरमर्त्यामि रूष्ट थे । अतः अकबरने १५६० ई० में उसे पदच्युत करके मक्का चले जानेका परामर्श दिया और राज्यकार्य अपने हाथमें ले लिया । थोड़ी ऊहापोहके बाद वीरमने स्वीकार कर लिया किन्तु पजाबमें पहुँचकर विद्रोह कर दिया । अकबरने तत्परतासे उसका दमन किया और फिर क्षमा कर दिया और मक्का चले जानेका ही आदेश दिया । मार्गमें एक शत्रुके हाथो वीरमर्त्या मारा गया ।

वीरमर्त्याके अंकुशसे तो अकबर मुक्त हो गया किन्तु अब अन्तःपुरकी वेगमर्त्याके प्रभावने उसे आच्छन्न कर लिया । उसकी माँ हमीदाबानू वेगम तो उसे पुत्र-स्नेहवश परामर्श देती ही थी किन्तु उसकी धाय माहमअंगा उसपर शासन ही करने लगी और उसका पुत्र आदमर्त्या निरंकुश अनाचार करने लगा । पोरमुहम्मद आदि उसके साथी थे । स्वयं अकबर आखेट आदिमें मग्न रहने लगा । १५६२ ई० में अकबरने आदमर्त्या और पोर-मुहम्मदको मालवा विजय करनेके लिए भेजा । मालवापति बाजबहादुर पगजित हुआ और मालवापर अकबरका अधिकार हुआ । आदमर्त्या और पोरमुहम्मदने इस अवसरपर क्रूर नरमहार और अत्याचार किये किन्तु बाजबहादुरको अकबरने क्षमा कर दिया और अपना एक मनमर्बदार बना लिया । उसकी प्रेमिका सुन्दरी नर्तकी रूपमर्त्याकी भी रक्षा हुई । इसी वर्ष अकबरने शमशुद्दीन अतकाको अपना वजीर नियुक्त किया था, किन्तु कुछ आदमर्त्या वजीरमें जलता था और एक दिन शराबके नशेमें महलकी कचहरीमें घुसकर उसने वजीरका वध कर दिया । शब्द सुनकर अकबर स्वयं वहाँ आ गया, एक ही घूँसेसे उसने आदमर्त्याको गिरा दिया और फिर किलेकी दीवारसे गिराकर उसे मरवा डाला । उसकी माँ माहमअंगाकी पुत्रशोकमें मृत्यु हो गयी । पोरमुहम्मद आदिको भी दण्डित किया गया और स्वयं अपने मामा ख्वाजा मुअज्जमको भी जो एक



अभिलाषा थी। साथ ही उसने यह गलीभाँति समझ लिया था कि इस उद्देश्यकी सिद्धि तथा उसके वश एव साम्राज्यका स्थायित्व तभी सम्भव है जब वह पूर्णतया भारतीय एव भारतीयोंका बनकर राज्य करे, मुसलमानों और गैर मुसलमानोंके बीच कोई भेदभाव न करे, बल्कि अपने व्यवहारसे मुसलमानेतर भारतीयोंका विश्वास, आदर और राज्यभक्ति प्राप्त कर ले। और ये सब बातें उसकी अपनी उदारता, समदर्शिता, सर्वधर्ममहिष्णुता एव कुशल नीतिमत्तासे सम्पादित हो सकती थीं। अतः अपने राज्यके इन प्रारम्भिक वर्षों (१५६०-६४ ई०) में ही उसने युद्ध-बन्धियोंको गुलाम बनाये जानेकी पुरानी प्रथाका अन्त कर दिया, समस्त हिन्दू एव जैन तीर्थोपर-से जो यात्रीकर सुल्तानोंने लगा रखा था उसे उठा दिया, इसी प्रकार जजिया नामक अपमानजनक करका भी जो समस्त मुसलमानेतर भारतीयोंपर लगा हुआ था अन्त कर दिया। जजियाका प्रवर्तन खलीफ़ा उमरने किया था और भारतके सभी मुसलमान सुल्तानोंने भारतीयोंपर यह कर लाद दिया था, क्रोरोज तुग़लुकके पूर्व ब्राह्मण लोग इस करसे मुक्त थे किन्तु उसने उनपर भी यह कर लगा दिया था। यह कर अतिरिक्त आर्थिक भार तो था ही होनता और अपमानका भी सूचक था। जजिया देनेवाले भारतीय थे, वे शासकोकी जाति मुसलमानोंकी समक्षता नहीं कर सकते थे। दूसरे, करके भारसे दबे रहनेके कारण वे कभी धनसम्पन्न नहीं हो सकते थे, अतः विद्रोह नहीं कर सकते थे। अकबरने इन भेदभाव सूचक एव अन्यायपूर्ण करका अन्त करके अपने-आपको लोकप्रिय बना लिया। राजपूत कन्यासे विवाह करके और अन्य मुसलमान पत्नियोंके रहते हुए भी उसे ही साम्राज्ञी पद देकर, तथा हिन्दुओंको राज्यमें उच्च पद देना आरम्भ करके उसने भारतीयोंका विश्वास प्राप्त कर लिया। साथ ही उसने मुसलमान सरदारोंपर, जो प्रायः विदेशी थे, नियन्त्रण रखनेके लिए एक शक्तिशाली भारतीय दल राजपूत-राजाओं आदि हिन्दू सरदारोंका निर्माण

करना आरम्भ कर दिया। आगरा में अपनी मूल के भीतर ही हिन्दू-मन्दिर स्थापित करना ऐसा छोटी सी भारतीय जाति भारतीय लोगों में मान केन्द्र वाली नृपति देना जाति जाति के सभी स्वर्गों के कुछ भारतीय प्रकट करके देना प्रमाण दिया। आरम्भ में जाति करवाती की भीषण रक्त रक्त सभी अपनी स्वयं-प्रमाणों की परिचय के दिया था।

[illegible]

दिया। इस प्रकार १५७३ ई० में गुजरात-जैसे अति समृद्ध प्रान्तका प्राप्ति करनेसे साम्राज्यकी समृद्धि और शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी। समुद्रतट और प्रमुख बन्दरगाहोंपर भी उसका अधिकार हुआ। राजा टोडरमल गुजरात-का सूबेदार नियुक्त हुआ और वहीं सर्वप्रथम उसने अपने भूमि-व्यवस्था सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सुधारोंका प्रयोग किया। गुजरात विजयके उपलक्षमें सीकरीमें बल्लन्द दरवाजा बनवाया गया और उस नगरका नाम फतहपुर रखा गया। १५७५-७६ ई० में बगालकी विजय हुई, वहाँका सुल्तान दाऊदख़ाँ युद्धमें मारा गया और बगाल प्रांत साम्राज्यका एक सूबा बन गया।

इसी वर्ष महाराज मानसिंहने हल्दीघाटीके सुप्रसिद्ध युद्धमें बीरवर महाराणा प्रतापको बुरी तरह पराजित किया। इस युद्धमें सिसौदियोंकी बड़ी क्षति हुई। हल्दीघाटीके युद्धमें राणाकी ओरसे उसके कई जैन-सामन्त यथा बीर ताराचन्द, मेहता जयमल घच्छावत, मेहता रत्नचन्द खेतावत आदि भी बड़ी वीरतापूर्वक लड़े थे। पराजित होकर राणा अपने परिवार और बच्चे-बुच्चे मेवकोंके साथ पहाड़ों और जंगलोंमें चला गया जहाँ अत्यन्त कष्टमें उसके दिन बीते। मुगल-सेना उसका बराबर पीछा कर रही थी। राणाने अकबरकी अधीनता तब भी स्वीकार न की, किन्तु अन्ततः निराश होकर मेवाड़को छोड़कर अन्यत्र चले जानेके लिए उद्यत हुआ। ऐसे समयमें उसके स्वामिभक्त दीवान भामाशाहने अतुल द्रव्यसे राणाकी सहायता की। कहा जाता है कि यह धन इतना था कि इससे १२ वर्ष पर्यन्त २५००० सेनाका निर्वाह हो सकता था। और यह सब सम्पत्ति भामाशाहकी अपनी पैतृक तथा निजी थी। उसने अपने भाई ताराचन्दके साथ मालवापर आक्रमण करके भी कुछ द्रव्य प्राप्त किया था। राणा उदयसिंहके जैनमन्त्री मारमल कावडियाके ही ये दोनों पुत्र थे। इस अप्रत्याशित सहायतासे राणामें नये जीवन और आशाका संचार हुआ और उसने नये उत्साहसे प्रयत्न करके चित्तौड़ और



पाण्डवोंकी ओरकर सम्पूर्ण मैदाहर कुल-व्यधिकार कर लिया। इस  
व्यापकके कारण मायाबाहु मैदाहका पञ्चारकर्ता कहलाया। राजा  
अमरसिंहके समय तक वही प्रधान मन्त्री बना रहा। उसके मंदिर भी  
कई शीशियोंतक राज्यमन्त्री बने रहे और बहुतका बरतना ही वर्तमान  
काक तक मैदाह राज्यमें सम्मिलित रहा। राजा प्रतापसिंह अपने मित्र-  
द्वारा बनाई गये कनकपुरकी ही राजधानी बनाकर राज्य करता रहा  
किन्तु पिछोके-पञ्चारके लिए आजाय्य प्रयत्नशील रहा। स्वतन्त्र-होठ  
और हमदेकबासिठके एक परत कायार्थ और राजाभी कछार अकबराके भी  
लिए गयी सेवा।

१५८१ ई. में अकबरन काबुलपर आक्रमण किया और अपने कार्य निरवा इस्वीमको पराजित करके कबील किया। १५८५ ई. में इस्वीमकी बुलुके पस्पाद काबुल की आक्रान्तिका एक पुत्र जन बना। १५८५ ई. में फरसी, १५९ ई. में कबील १५९३ ई. में सिन्ध और १५९५ ई. में बिजोबिलान और अन्धकारपर भी अकबरका अधिकार हो गया। अकबरक कइने इस्लामके मुकम्मल मुक्यालके बाद राजपुत बेबे और कल्ले कल्ले अस्मिन्त स्वीकार कर केनेके किर् कहा। अकबरपर और बीबापुरकी अकबर कइने कइकी कबीलता स्वीकार कर की। अक १९ ई. में अकबरपरपर आक्रमण हुआ। मुक्यालने पराजित होकर कबीलता स्वीकार कर की और अकबर आन्त अस्मिन्को दे दिया। अक बेबेके मुक्यालने कइने ही कबीलता स्वीकार कर की की किन्तु अक कल्ले बिजोह करवा कहा अक १९ १ ई. में कल्ले अकबर एवं अस्मिन् मुर्ब कलीरककी पैरा अक कर बिबाब कर किया गया। इस प्रकार महान् सिन्धेग अकबरने कल्ले कबील-बाकरी हो कने-कने आन्त अकबर अकबरकी बिबाब कर की। केरक इस्लामका मुक बाद कल्ले अस्मिन्तके बाद रहा। अकबर विराट् मुक्याल आक्रान्त अकबी बिबाब अक-अकबा अकबर बुनि नागा अकबरके बुनि एवं अस्मिन् अकबरकी अस्मिन्त अकबरक-अकबर अकबर

अन्तर्देशीय एव समुद्री व्यापार आदिके कारण तत्कालीन विश्वका सर्वाधिक महान्, शक्तिशाली एव समृद्ध साम्राज्य था । उसने भारतका चक्रवर्ती सम्राट् बननेको अपनी महत्त्वाकांक्षा प्रायः पूरी कर ली थी ।

इस विनाश साम्राज्यका संगठन, शासन-व्यवस्था एव प्रबन्ध भी उसने बड़े कोशलसे किया । दमन और समझौतेपर आधारित उसको विजय-नीति दुनाली थी । जिन नरेशाने सरलतासे उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया और विद्रोह न किया उन्हें उसने बने रहने दिया, जिन्होंने ऐसा नहीं किया उनका अन्त कर दिया । हिन्दू राज्य प्रायः सब ही बने रहे और मुसलमानी मल्लतन्त्रें प्रायः सब ही नष्ट हो गयीं और उनके प्रदेश सम्राट्-द्वारा नियुक्त हिन्दू एव मुसलमान सूबेदारोंके शासनमें साम्राज्यका अंग बन गये । उसने शासनको पूणतया केंद्रित किया, अधीन राज्योंके अतिरिक्त अन्य समस्त देशको १५ सूबोंमें विभाजित किया, प्रत्येक सूबेको सरकारोंमें, प्रत्येक सरकारको परगनों या महालोंमें और प्रत्येक परगनेको थानोंमें विभक्त किया । प्रत्येक थानके अन्तर्गत कुछ गाँव होते थे । प्रत्येक सूबेका शासक सूबेदार होता था, सैनिक-शासन, न्याय-व्यवस्था और शान्ति-स्थापन उसका कार्य था । उसके साथ ही एक दीवान होता था जो उससे स्वतन्त्र रहता और भूमिकर आदि वसूल करता तथा सूबेके आय-व्ययको व्यवस्था करता था । एक वाकानवीस होता था जो सूबेके समस्त समाचार सम्राट्को वगवग पहुँचाता रहता था । सूबेदारके नीचे फौजदार, कोतवाल, थानेदार आदि अधिकारी रहते थे और दीवानके अधीन तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी आदि कार्य करते थे । सम्पूर्ण शासन-यन्त्रका अध्यक्ष और सचालक सम्राट् स्वयं था और अपने मन्त्रिमण्डलकी सहायता एव परामर्शसे वह समस्त राजकार्य करता था, यद्यपि सिद्धान्ततः सम्राट् साम्राज्यमें सर्वोपरि शक्ति था, सबथा निरकुश और स्वेच्छाचारी था और समस्त पदाधिकारी उसका वतनभोगी सेवक थे । राज्यके समस्त उच्च पदाधिकारी मनसबदार कहलाते थे ।



दित्यको भाँति नव नर-रत्नोंसे उसने अपनी राजसभाको सजाया था । सगीताचार्य तानसेन उसके दरबारकी शोभा थे । मुसलमान होते हुए भी चित्रकला और मूर्तिकलाको भी अकबरने प्रोत्साहन दिया । आगराका किला और उसके मातर सुन्दर महल बनवाये, १५७०-१५८५ ई० तक वह फतहपुर सीकरीमें रहा, उसे ही वह अपनी राजधानी बनाना चाहता था । वहाँके शोखसलोम चिश्तीकी कृपासे ही १५६९ ई० में उसका पुत्र ( सलोम—जहाँगीर ) उत्पन्न हुआ था, अतः सीकरीमें उसने अनेक सुन्दर भवन बनवाये और शोखसलामका सुन्दर मकबरा बनवाया, स्वयं अपना सुन्दर मकबरा उसने सिकन्दरमें बनवाया । इस प्रकार कला-मर्मज्ञ सम्राट् अकबरने कलाके विभिन्न अंगोंको प्रभूत प्रोत्साहन दिया और भारतीय-ईरानी मिश्रतासे एक नवीन मुगल-कलाको जन्म दिया । साथ ही अनेक कलापूर्ण दशकारियाँ एवं उद्योगोंको सम्राट् एवं उसके अमीरोंसे अभूतपूर्व आश्रय मिला ।

विद्वानों और विद्याका तो वह इतना आदर करता था कि उसके समयमें और उसका आश्रयमें विपुल साहित्य-सृजन हुआ । अबुलफ़ज्जलका अकबरनामा और आइने-अकबरी, अलबदायुनी और निजामुद्दीनके इतिहास ग्रन्थ रचे गये, फ़ैजोकी सूफ़ी कविताएँ, और रहीम एवं बीरबलकी हिन्दी रचनाएँ हुईं, स्वयं अकबर भी कविता करता था, नरहरि, गग आदि अनेक हिन्दी कवि भी थे, महामारस तथा कई अन्य प्राचीन भारतीय ग्रन्थोंके भी उसने फ़ारसीमें और फ़ारसी ग्रन्थोंके संस्कृतमें अनुवाद कराये । कृष्ण-भक्तिके महाकवि सूर व अष्टछापके कविजन, रामभक्तिके गोस्वामी तुलसीदास और जैन-अध्यात्मके बनारसीदास आदि इसी कालमें हुए । पाण्डे रूपचन्द, पाण्डे राजमल्ल, ब्रह्मा रायमल्ल, कवि परिमल आदि अन्य अनेक जैन विद्वान् और ग्रन्थकार भी उस कालमें हुए ।

अकबरने दशकी सर्वतोमुखी सांस्कृतिक अभिवृद्धि करने और उसे सांस्कृतिक एकत्व प्रदान करनेका स्तुत्य प्रयत्न किया । प्रजाके उत्थानके

[illegible]

अच्छी लगती उसे ही अपना लेता । सभी धर्मों और उनके दिवानों एवं गुरुओंका वह समान रूपसे आदर करता था । परिणाम यह हुआ कि हिन्दू लोग उसके राज्यको हिन्दू राज्य ही समझने लगे और अपने धर्मों एवं आचार-विचार, त्योहार, उत्सवों आदिका स्वतन्त्रतापूर्वक पालन करने लगे । मुसलमानोंके लिए मुहम्मद नाम रखनेका निषेध करना, नवीन मसजिदें न बनवाना, पुरानी मसजिदोंकी मरम्मत भी न कराना बल्कि अनेक मसजिदोंका अस्तबलके रूपमें उपयोग करना, कुरानको टीकाओं, अरबी भाषा और शरीयत आदिके अध्ययनको हतोत्साहित करना, स्वयं अपने लिए सिजदा करवाना, इस्लामके रोजा, नमाज, हज आदि नियमोंका पालन न करना और इनके विपरीत जीव-हिंसा और मांस भक्षणपर कड़े प्रतिबन्ध लगाना, गोधूष वन्द करवाना, सूर्य, अग्नि और प्रकाशकी उपासना करना, हिन्दू, जैन, पारसिया, पुर्तगाली जैसुइट पादरियों आदिको अपने-अपने धर्मागतन बनाने और धर्मोत्सव मनानेमें प्रथम देना, उन सबके गुरुओंका आदर करना, अन्य धर्मवालोंको यह छूट दे देना कि वे स्वयं मुसलमानोंको भी अपने धर्ममें दीक्षित कर सकें, अपने आचार-विचार, वेप भूषाको बहुत कुछ भारतीय बना डालना, इत्यादि ऐसी बातें थीं कि बहुत मुसलमान उसे काफिर कहने लगे थे, कोई उसे पारसी कहता, कोई जैन, कोई हिन्दू और कोई ईसाई । और वह सब कुछ था और कुछ भी न था ।

तथापि इस विषयमें भी कोई मन्देह नहीं है कि जैनधर्म और उसके गुरुओंका प्रभाव अकबरपर पर्याप्त पड़ा था । उसके शासन-कालके जैनोंसे सम्बन्धित जा निम्नोक्त तथ्य प्राप्त हैं उनसे यह भली प्रकार स्पष्ट है । १५७९ ई० से सम्राट्-द्वारा धर्माव्ययका पद ग्रहण करनेको महत्त्वपूर्ण घोषणाके तुरन्त उपरान्त राजधानी आगराके दिगम्बर जैनोंने वहाँ एक मन्दिर निर्माण किया और बड़े समारोहके साथ विम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव किया । स्वयं राजधानी दिल्लीमें नन्दिसध और काण्ठामघकी भट्टारकीय



नागौरमें उसके दरबारमें जाया करता था। धार्मिक कार्यों और दानादिमें भी भागमल्ल लावों रुपये खर्च करता था। कवि राजमल्लस उसने महत्त्वपूर्ण पिंगलशास्त्रकी रचना करायी थी। दिल्ली, आगरा मथुरा, मद्रास, पुर, जौनपुर, मेरठ, हथियार, पीरौर, श्रौपथ आदि अनेक नगर साम्राज्यके कन्द्रीय प्रदेशमें हा जैन धर्मके सभ्यत केन्द्र थे। दिल्ली, ग्वालियर, पीरौर आदि कई स्थानोंमें तो भट्टारकाय गढ़ियाँ भी स्थापित थीं और इन दिगम्बर भट्टारका एय साधुआका भी समाधि-प्रभाव पड़ा था। जैन जाति इस कालमें व्यापार प्रधान हो चली थी और प्राय सभी नगर-ग्रामोंमें उनकी छोटी-बड़ी बस्तियाँ थी। स्वयं अवुलफ़ख़ानने अपनी जाइन-अकबरीमें जैनाका वर्णन और उनकी मायताआका विवचन दिया है। महाकवि बनारसीदासक अधकथानन नामक आत्मचरितसे भी सम्राट् अकबरकी लोकप्रियता, तत्कालीन लोकदशा आदिपर मुन्दर प्रकाश पड़ता है।

इस कालमें अनेक जैन विद्वाना और कवियाने भारताके भण्डारकी, विशेषकर हिन्दी साहित्यकी, स्तुत्य अभिवृद्धि की। कमचन्द्रकी मृगावती चोपई, पाण्डे हृषिकन्दके परमार्थी शोभाशतक एव गीतपरमार्थी, पाण्डे राजमल्लके पञ्चाध्यायी, लाटीसहिता, जम्बूस्वामीचरित्र, अध्यात्मकमल-मार्तण्ड एव पिंगलशास्त्र, भट्टारक सोमकीर्तिका यशस्वरस, ब्रह्मराजमल्ल ( १५५९ ई० ) के हनुमन्तचरित्र, मीताचरित्र और भविष्यदत्त चरित्र, विशालकीर्ति ( १५६३ ई० ) का रोहिणीव्रतगम, सुमतिकीर्ति ( १५६८ ई० ) का धर्मपरीक्षारास, विजयदेवसूरिका सोलरासा ( १५७६ ई० ), कल्याणदत्त ( १५८६ ई० ) की देवराज वच्छराज चोपई, पाण्डे जिनदाम ( १५८५ ई० ) का जम्बूचरित्र, जानसूर्योदय, जोगीरासा और फुटकर पद, कवि परिमल ( १५९४ ई० ) का श्रीपालचरित्र, मालदेवसूरि ( १५९५ ई० ) की पुरन्दरकृमारचोपई, उदयरज जतीके राजनीतिके दोहे ( १६०३ ई० ), विद्याहर्षसूरि ( १६०४ ई० ) का अजना-सुन्दरी





होकर कुर्बानोंके लिए पशु एकत्र किये किन्तु मूचना पाने ही ममाट्ने वह  
 कुर्बानो तुरन्त रुकवा दो और पशुओंका छुड़ा दिया । उसने कहा कि  
 'मुझे सुख हा इन खुशियोंमें दूसरे प्राणियोंका दुःख दिया जाये यह सर्वथा  
 अनुचित है ।' मुनि शान्तिचन्द्रका भी अकबरपर बड़ा प्रभाव था । एक  
 वर्ष ईदके त्योहारपर वे सम्राट्के पास ही थे । ईदसे एक दिन पहले उन्होंने  
 सम्राट्से कहा कि अब वे वहाँ नहीं ठहरेंगे क्योंकि अगले दिन ईदके उप-  
 लक्ष्यमें हज़ारों लाखों निरीह पशुओंका वध होनेवाला है । उन्होंने कुरान  
 धरीक़को आयातसे यह सिद्ध कर दिखाया कि कुर्बानोंका मांस और खून  
 खुदाको नहीं पहुँचता, वह हम हिंसासे प्रसन्न नहीं होता, बल्कि परहेज-  
 गारीसे प्रसन्न होता है, रोटी और शाक खानेसे ही रोज़े फ़व्वल हो जाते  
 हैं ।' अब अनेक मुसलमान ग्रन्थोंके हवाले देकर उन्होंने सम्राट् और उसके  
 उमरावोंके हृदयपर अपनी बातकी सचाई जमा दी, अतः सम्राट्ने घापणा  
 करा दी कि इस ईदपर किसी जीवका वध न किया जाये । यति जिनचन्द्र  
 सूरिने अकबरका प्रतिबोध करनेके लिए 'अकबर प्रतिबोधरास' नामक  
 ग्रन्थ लिखा था । जिनचन्द्रको सम्राट्ने 'युग-प्रधान'को उपाधि दी थी ।  
 मुनि परमसुन्दर भी सम्राट्से सम्मानित हुए थे और उन्होंने 'अकबरशाही  
 शृंगारदर्पण' ग्रन्थकी रचना की थी । कहा जाता है कि एक बार शाहजहाँदे  
 सलोकमक घर मूल नक्षत्रके प्रथम पादमें कन्या-जन्म हुआ । ज्योतिषियोंने  
 कन्याक ग्रह उसके पिताके लिए अनिष्टकारक बताया और उसका मुख  
 देखनेका भी निषेध किया । सम्राट्ने अवुलफ़ज़ल आदि विद्वान् अमात्योंके  
 साथ परामर्श करके मन्त्री कर्मचन्द्र वच्छासतकी जैनधर्मानुसार ग्रहगान्तिका  
 उपाय करनेका आदेश दिया । मन्त्रीने चैत्र शुक्ला पूर्णिमाके दिन स्वर्णरजत  
 कलशोंसे तोषकर सुपाश्वनाथकी प्रतिमाका समारोहपूर्वक अभिषेक किया ।  
 पूजनकी समाप्तिपर मंगलश्रीप और आरतीके समय सम्राट् अपने पुत्रों  
 और दरबारियोंके साथ वहाँ आया, उसने अभिषेकका गन्धादक विनयपूर्वक  
 अपने मस्तकपर चढ़ाया और अन्त पुरमें वेगमोंके लिए भी भेजा तथा उक्त



परिचायक हैं। यह कहा करता था कि 'यह नजित नहीं है कि मनुष्य अपने तत्त्वों पशुओं की कल्पना करे। मामक अतिरिक्त वाक्पयोगी लिए कोई बात नोजन न होनेपर भी उस मामभक्षणका दण्ड अत्यायुक्त रूप में मिनता है, तब मनुष्यका जिनका म्या तादिक भाजन माम गरी है उस अपराधका क्या दण्ड मिलेगा ? कनाई, यहैलिय आरि जीरहिमा कश्नेवाले जब मग्य आरि रदन है ता मामागियाको नगरमें मोतर रहनेका क्या अधिकार है ? मरे लिए यह कितने मुख्यकी बात जानी कि यदि मेरा गरीर इसना बड़ा होता कि मैं मामाहारी बनूँ तब ही माकर सन्तुष्ट हो जाते और अन्य जीवोंकी हिंसा न करते। जीरहिमाका राक्षता अत्यंत आश्चर्यक है, इगार्डिर् मैतस्वय माम खाना छाड़ दिया है।' श्रिया-क सम्बन्धम यह कहा करता था 'यदि मुझा अयम्याम भी मेरी चित्तधृति अव-जैमी होती तो वदाचित् मैं विवाह ही न करता। किमम विवाह करता ? जो आयुमें बड़ी है वह मेरी माताय समान है, जो छोटी है वह पुत्राय तुल्य है और जो ममययम्या है उन्हें मैं अपनी बहनें मानता हूँ।' वस्तुतः जीवहिंसा अकवरका प्रिय न थी। यह अधिकतर मांस नहीं खाया करता था और गोमांस तो छूना भी न था। उसके मांसे नामास अवाद्य पदार्थ था। वषय कुछ निश्चित दिनोंमें पशु पक्षियोंकी हिंसाको अकवरन मृत्यु-दण्डका अपराध बना दिया था। विशेषतः श्मिषवे अनुसार अकवरका लगभग पूर्ण रूपम मांसाहार-न्याय और अशाकके समान सुद्रादिगुद्र जीवहिंसा-निषेधके लिए कडा आज्ञाओंका जारी करना अपने जनगुरुओंके सिद्धान्ताने अनुसार आचरण करनेका ही परिणाम थे। हिमका-का बड़ी मजा देना भी प्राचीन जैन और बौद्ध सम्राटोंके अनुसार ही था। इन आज्ञाक्रमे उसकी प्रजाके बहुत-से लोगोंको, विशेषकर सुखल-मानाको बड़ा कष्ट हुआ होगा। जैन-धर्ममें प्रभावित होकर ही अपने अन्तिम जीवनमें अकवरने मामाहारका सर्वथा त्याग कर दिया था इसमें सन्देह नहीं कि वर्षा पर्यन्त जैनगुरुओंने अकवरको घण्टो उपदेश

रिसे जिनका इनके बीचभर आगस्त ब्रथाव पडा और इन्हीमे ब्रह्मदेसे  
 करने निहल्लोके इति हुवा अधिक ब्रथाव कर भिया बा नि य  
 ब्रह्मदे हो बवा कि 'अनवरने बीच-बर्न बारन कर भिया है । ओ 'अन-  
 स्माली बारबर बारि अन अनेक इतिहासवारीकि अनुवार भी अनवर  
 बीच-बर्नवर ही पडा रखता बा । 'अनवर और बीच-बर्न' 'गुणितर और  
 लुपता' 'अनवरन बीच-बुन बारि गुणितर भी हुनी लुपता बर्नन  
 करती है । अनापुर बीचरीके बननेमे ब्रह्मदेसे करने बीच-बुनके बीचके  
 सिद्ध एक विधिहु तथा बीच-बकाबुर्न लुपत कनी बकाबुर्न भी भी 'अन-  
 विवाही बीच बहकाओ है । 'बुद्ध-ब्रह्माग्ने ब्रह्मके बारन बारन  
 गुणितर भी हुन विद्यावाचस्पतिवा बनन है कि अनवरके ब्रह्मका बर्नन  
 बारन करकेके बारन ही ब्रह्म-बीभी बका बकाबुर्न ही बने से और  
 कनीही जेरना बने ब्रह्मदेसे बकाबुर्न विधि विवा बा । बका विधिमे  
 बकाबुर्न बकाबुर्न भी ऐसे ही बकाबुर्नके बकाबुर्न विधि भी अनवरकी  
 बकाबुर्नके बारन बका बकाबुर्न है ।

ब्रह्मदेके ब्रह्मदे बर्न गुणितर भी है । १९ - २९ ४ ई ब्रह्म बका  
 बनेन गुन बका विधिही बना था सिन्धु १९ ४ ई में सिन्धु-गुणित  
 गुणित हो बनी । ब्रह्म बीचके अनवरके ब्रह्म गुणी—अनवरान गुणित और  
 ब्रह्मदेकी गुणित ही गुणी भी । १९ २ ई में बकाबुर्नके बकाबुर्नके और  
 सिद्ध गुणितमे ब्रह्मदेके बारन विधि विधि बर्न ब्रह्मदे सिन्धु-ब्रह्मदे  
 बकाबुर्नके बका बका विधि । सिन्धु बकाबुर्न सिन्धुमे ब्रह्म भी बा,  
 बका बका भी बका हुवा कि कनी बका गुन बकाबुर्न ही बकाबुर्नके बका  
 बना विवा बने । ब्रह्म १९ ४ ई में बकाबुर्नके ब्रह्म-बकाबुर्न कर विधि ।  
 सिन्धु ब्रह्मदेके ब्रह्म ब्रह्मदेके गुणित बने हुवाके ब्रह्मदेका और एक  
 बकाबुर्न बका बका विधि सिन्धु ब्रह्ममे बका कर विधि और बका बका  
 ही बका बकाबुर्नके गुणित विधि । ब्रह्म ब्रह्म १९ बकाबुर्नके बका  
 १९ २ ई भी २९ बकाबुर्नके बकाबुर्नके बकाबुर्नके बकाबुर्नके बकाबुर्नके

पातशाह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर इस सत्कारसे कूच कर गया। वह न केवल अपने कालके ही अथवा केवल भारतवर्षके ही, वरन् सम्पूर्ण विश्वके सर्वमहान् ऐतिहासिक सम्राटोंमें परिगणित हुआ।

४ जहाँगीर (१६०५-१६२७ ई०)—सम्राट अकबरकी मृत्यु होते ही साम्राज्य-भरमें त्राहि-त्राहि मच गयी थी। कवि बनारसीदास-जैसे अनेक सहृदय प्रजा-जन उसकी मृत्युसे दुःखी हुए। कवि उस समय जोनपुरमें थे। अपने आत्म-चरितमें उन्होंने लिखा है कि 'सारे नगरमें शोर और भगदड़ मच गयी। लोगाने अपनी-अपनी दूकानें बंद कर दीं और घरोंके किवाड़ बन्द कर लिये, अच्छे-अच्छे वस्त्र, आभूषण और नक़द रुपया-पैसा भूमिमें गाड़ दिया, घर-घरमें हथियार खरीदे गये, सब लोगोंने मोटे मामूला कपड़े पहन लिये, धनी-निर्धन ऊँच-नीचमें कोई भेद ही नहीं दोख पड़ता था, सब ही आतंकित एवं आशंकित थे।' किन्तु पिताकी मृत्युके एक सप्ताह पश्चात् ही नूरुद्दीन मुहम्मद जहाँगीर पातशाहका शान्तिपूर्वक सिंहासनारोहण हुआ। उत्तराधिकारके प्रश्नपर किसी प्रकारका कोई झगड़ा या मतभेद न हुआ।

राज्याभिषेकके अवसरपर सम्राट् जहाँगीरने प्रजाके आश्वासन और अपनी उदारता-प्रदर्शनके लिए द्वादशसूत्री घोषणा की जिसके अनुसार भूमि-करके अतिरिक्त अय समस्त कर माफ कर दिये गये। केन्द्र-द्वारा शासित समस्त खालसा क्षेत्रकी सड़कोंके किनारे तथा निर्जन स्थानोंमें सराय और मसजिदें बनवाने, कुँए खुदवाने और लोगोंको बसानेका आदेश दिया गया। आदेश हुआ कि किसी यात्रीका सोदागरी या अय माल उसकी बिना अनुमतिके न खोला जाय, यदि उसकी मृत्यु हो गयी हो तो उसकी सम्पत्ति चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान उसके कानूनी वारिसोंके सुपुर्द कर दी जाये किन्तु यदि कोई वारिस न हो तो राज्य-द्वारा इस कार्यके लिए नियुक्त कर्मचारी उस सम्पत्तिको अपने अधिकारमें लेकर उसका उपयोग सराय, तालाब आदिके निर्माण एवं अन्य लोकहितके

धर्मोर्ध्व करे । बह्मचर्य का विरोध किया गया । अन्ध-धर्म-धर्मों पर  
 प्रामाणिक दृष्टि बना लिये गयी । राज्य-कार्यधारियों और राज्य-कार्यों  
 प्रशासी भूमिका अपना कर्तव्य करने का विरोध किया गया । राज्य के  
 प्रशासक-प्रशासकों राजा का बिना अपने-अपने शासित प्रदेश के प्रशासक के  
 नाम विराट-भारतवर्ष करने की मनाही की गयी । जिस बागीरदारों की को  
 बागीर करने के गयी था रही थी उन्हें स्वीकृत किया गया । बगैर  
 मोचको को राज्य के बागैर ही गयी थी उन्हें भी स्वीकार किया गया ।  
 प्रमुख गणना के सम्बन्ध में मुक्तगणना आदेश दिया गया । इस बलिदानों  
 मुक्त किया गया और लच्छाके विभिन्न विभागों में पशुपत कर दिया  
 गया । इन मामलों में हमने कहा कि 'मेरे कर्म-आदर्शों को राज्य के  
 नाम-प्रति विभिन्न लोचन मनाई एक-एक दिन इन प्रशासकों एवं  
 जिनके नाम प्रशासकों का-कर्म-कार्य विरोध है, मेरे राज्य-प्रदेशों के लिए,  
 मुक्तारों और लच्छाओं को भी कोई बाधाकार न करने परोंकि यह दिन  
 संसार का मुक्ति-मुक्त समुक्त हुआ था और यह दिन किसी भी लच्छा  
 प्रशासक का नाम-प्रति है । मेरे पुत्र लच्छा के अन्तर्गत अपने अधिक समय  
 तक इन विभागों का पालन किया है, लच्छाओं की तो यह कभी भी  
 नाम-प्रति नहीं करते वे लच्छा हैं भी राज्य के राज्य के लच्छाओं  
 बीच-दिनाली लच्छा-प्रति करण है । अपनी इन शारंगिक  
 मोचकों का अर्थात् लच्छा के लच्छा-प्रति 'मुक्त-लच्छाओं' के लच्छा-प्रति  
 बलन दिया है । उनके हाथ हमने प्रशासकों पर लच्छा-प्रति दिया कि वह  
 लच्छा लच्छा ही प्रशासकों लच्छा लच्छा के लच्छा विभागों का लच्छा-प्रति  
 करण । यों ही लच्छा लच्छा करण लच्छा राज्य-प्रति लच्छा-प्रति इन  
 प्रशासकों मुक्त लच्छा-प्रति किया ही करण था लच्छा लच्छा-प्रति लच्छा-प्रति  
 है लच्छा के लच्छा-प्रति और लच्छा-प्रति की लच्छा लच्छा-प्रति लच्छा-प्रति है ।  
 लच्छा-प्रति लच्छा-प्रति ही लच्छा-प्रति लच्छा-प्रति और लच्छा-प्रति  
 लच्छा-प्रति एवं लच्छा-प्रति लच्छा-प्रति लच्छा-प्रति । लच्छा-प्रति लच्छा-प्रति

और कर्मचारी भी सभी प्रायः पुराने ही चरते रहे, जिनका मृत्यु हो जाती या जो पदच्युत कर दिये जाते उनका न्यायमें ही नयीन नियुक्ति होता थी। इस प्रकार शासनयन्त्रमें प्रायः कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अपने आपको 'यायपरायण' मित्र बनाना उग बढ़ा चाह था, इसी उद्देश्यसे मोनेकी एक जजोरसे घेघा घण्टा उगने अपने मन्त्रालयों विद्वत्कीसे लटकवा दिया था।

अन्तक मुगल-नरेशोंमें जहाँगीर ही ऐसा था जो अपने माता-पिताका अनेक मनोतियाँ मानन और योगोंकी पूजा करनेमें प्राप्त हुआ था और जिसका लालन पालन जन्मने ही अपार वैभवके बीच हुआ था। उसकी शिक्षा-दीक्षा भी विविध एवं नञ्चबोटिकी हुई थी। ब्राह्मण पण्डित, विद्वान् जैनगुरु, जैमुष्ट पादरी, सूफ़ी शरि और मुसलमान मौलवी उसके शिक्षक रहे थे। वह मेधावी, प्रतिभाशाली, बुद्धिमान्, दूरदर्शी, भावुक, कलामञ्ज और विचारमय था। उसका आत्म चरित ही उसके अनुल्लेखान और विद्वत्ता परित्यायक है। अपने जातीय स्वभावके अनुसार कभी कभी वह क्रोधमें आया एवं अत्यन्त क्रूर भी हो उठता था, किन्तु माय ही बड़ा नरमदिल और दयालु भी था और पशु-पक्षिया तकसे बड़ा प्रेम करता था। दर्शनशास्त्रमें भी उस बड़ा प्रेम था, जिनसिंहसूरि आदि जैनगुरुओं और जयस्य नामक ब्राह्मण योगीके माय वह घण्टों शार्गनिक विवेचन किया करता था। जिनसिंहसूरि सम्राट् अकबरमें सम्मान प्राप्त जिनचन्द्रसूरिके शिष्य थे। जहाँगीरने उन्हें युगप्रधानकी उपाधि प्रदान की थी। अपने पिताकी भाँति ही वह स्वतन्त्र विचाराका व्यक्ति था और इस्लाम उसका कुलपरम्परा धर्ममात्र था, बहुधा मुल्ला मौलवियोंकी उपस्थितिमें ही अपने दरबारमें वह ब्राह्मण जैन, ईसाई आदि विद्वानोंसे इस्लाम धर्म, कुरान शरीफ और पैगम्बर मुहम्मदकी कटु आलोचना सुनता और जब हमपर मुल्ला-मौलवी लोग क्षुब्ध हो जाते तो उनका उपहास करता। तथापि अकबरकी धर्म-सहिष्णुताकी नीतिकी एक प्रकारकी प्रतिक्रिया उसके



[illegible]

किये गये जहाँगीरके ये अत्याचार राजनैतिक कारणोंसे हुए थे। वैसे जैनोंके साथ वह उतना ही उदार और सहिष्णु था जैसा कि अन्य धर्मावलम्बियोंके साथ। उसकी धार्मिक नीति अकबर-जैसी उदार न होती हुए भी अनुदार न थी।

उम कालके जैन कवियों और साहित्यकारोंमें भविष्यदत्तचरित्र, भक्तामरकथा और सीताचरित्र ( १६१० ई० ) के कर्ता ब्रह्मचारी-गयमल्ल, भविष्यदत्तचरित्र ( १६१० ई० ) के कर्ता माखनपुर-खतौली निवासी पं० बनवारीलाल, सुदर्शनचरित्र ( १६०६ ई० ) एवं यशोधरचरित्रके कर्ता आगरा निवासी कवि नन्द पचमीप्रतकथा ( १६०९ ई० ) के कर्ता उज्जैन निवासी कवि विष्णु, भगवतोगीता ( १६१२ ई० ) के कर्ता विद्या-कमल, कृपणचरित्र ( १६१४ ई० ) के कर्ता कवि ब्रह्मगुलाल, ढालसागर ( १६१५ ई० ) के कर्ता गुणसागर, जोधररास ( १६१९ ई० ) के कर्ता त्रिभुवनकीर्ति, रविप्रतकथा ( १६२१ ई० ) के कर्ता भानुकीर्ति मुनि, सुन्दर सतसई और सुन्दरविलासके कर्ता कवि सुन्दरदास ( १६२३ ई० ), मृगाकलेखाचरित्र, टण्डाणारास, चुनडी, ठमाल आदि लगभग बीस-इक्कीस रचनाओंके कर्ता पं० भगवतोदास आदि उल्लेखनीय हैं। उपयुल्लिखित कवि नन्दने अपने ग्रन्थमें आगरा नगरकी सुन्दरता, 'नृपति नूरदी शाहि' ( जहाँगीर ) के चरित्र एवं प्रताप और उसके सुख-शान्तिपूर्ण राज्यमें होनेवाले धर्म कार्योंका सुन्दर वर्णन किया है। उस समय आगरामें हीरानन्द मुक्तीम राजधानीका प्रतिष्ठित रईस था तथा शाहजादा सलीमका कृपापात्र और निजी जोहरी था। १६१० ई० में जहाँगीरके बादशाह हो जानेके पश्चात् उसने उस अपने घर आमन्त्रित किया और भेंट दी थी। उस अवसरका रोचक वर्णन भी कवि नन्दने किया है। महाकवि बनारसीदास और उनकी विद्वद् गोष्ठी जहाँगीरके शासनकालमें आगरामें जम रही थी और कवि अपनी उदार काव्यधारा द्वारा हिन्दू-मुसलिम एकताको प्रोत्साहन दे रहे थे तथा अध्यात्मरस प्रवाहित कर रहे थे।



कि दन जातासे उसकी विशेष क्षति नहीं हुई। साम्राज्य अधुण बना रहा इसका कोई विशेष श्रेय जहाँगीरको नहीं है। इतिहासकारोंने उस विराधी तत्त्वोका मिश्रण और मुगल समाजोंमें सर्वाधिक पुद्धिमान् मूर्ख प्रतिपादित किया है।

विद्वाननपर बैठनेके अगले ही वर्ष ( १६०६ ई० ) उसके पुत्र राज-कुमार खुमरूने विद्रोह कर दिया। अकबरके जीवनमें ही मलूमके विद्रोहके कारण खुमरूको राज्य प्राप्त करनेका आशा हो गयी था किन्तु उसके प्रधान सहायक उसके समुद्र अजाज खोका और मामा मानसिंह उस समय अकबरके प्रतापम क्षुण्ण रह गये और जहाँगीरको उन्हाने वात्साह हो जान दिया। अथ खुमरूने स्वयं कृच्छ्र माथी और द्रव्य इकट्ठा करके पजाबकी ओर कूच कर दिया और अपन पिताक विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जहाँगीरने बड़ी तत्परतासे तुरन्त स्वयं जाकर विद्रोहका दमन किया, खुमरूको बन्दी किया तथा उसके माथियोंका निर्दयताके साथ महार किया। मियवाँरे गुन अजुनमिहान खुमरूकी सहायता की थी अतः उन्हें भी यत्रणा दवर मार डाला, एक इबनाम्बर जैन यति मानसिंह भी उसका समर्थक था अतः उसके साथियों और अनुयायियोंको राज्यम निर्वामित कर दिया गया। एक वर्ष बाद फिर खुमरूके मर्यादमें एक पङ्क्यत्रका सन्वह हुआ अतः राजकुमारको अघा कर दिया गया और राजा अनोरायको मुपुर्दगीमें जीवन भरके लिए नजरकैद रखा गया। १६१६ ई० में उसे उसके पशु आसक्तोंके सुपुद्द कर दिया गया जिसन उसे शहजादे खुर्रमको १६२० ई० में मौप लिया और खुर्रमने १६२२ ई० में दक्षिणमें ले जाकर अपने इस अभाग के बड़े भाईको गुप्त रूपसे हत्या करवा दी। राजकुमार खुमरू मुनिष्ठित, सुसंस्कृत, उदार, कोमल हृदय और बड़ा सच्चरित्र था। सभी छोटे बड़े उस चाहते थे। लोकने उसकी मृत्युको एक सन्तका वलिदान माना।

१६०७ ई० में बगालके एक विद्रोही सरदार धोर-अफगनका दमन

बरबदे निरु बर्गवीरने बरबे बरबन्धो हुनुहुनि कोटाको घेरा भिन्नु  
 उन इत्यन्तै बाघा बीर घर बाउबान बीर्ना हो गरी बर । घेर बाउबान  
 कुनरी कनी मैदरस्यमा बीर बलबी पुचीची कनी काने बरबन्ध बाघ  
 बरा बीर घाही बल बुराबे बर बिबा बरा । मैदरको डेउते हो गरीबीर  
 उनर बाधिन हो बरा । किन्तु बार बर एक बर बरबन्ध निवारण कएछे  
 एही बरबन्ध १९११ ई के मैदरस्यमा बरबन्धे निरु कर भिन्ना  
 बीर बर बरिना बुरबन्धे नामने इतिहासमें अछिछ हई । बुरबन्धे बरबन्ध  
 बुरबी हो गरी बा बरबन्ध बरबन्ध बुद्धिमान बुद्धिमान राजनीति-बु  
 द्ध बर-बुद्धिमान बी । बुद्धिमाने इसके बाधिनार बरबन्ध निरुने  
 बाउबन्ध बर बाधिना बर बने बिबा बाघा ई । बीर-बीर बरबन्ध  
 राजबन्ध उन्ने बने हाउने के बिबा बीर गरीबीर बाधिनार बिबाबन्ध  
 हो बुरा गरी बरा । बरबन्धे एहीके बरबन्ध बरबन्धो बरबन्धो  
 बुर बरबन्धोके बाघ बिबा बिबा । बुरबन्धोके बाघ बरबन्धोके बरबन्ध  
 बरबन्धोके बरबन्धोके बाघ बा, बरबन्धोके उही बरबन्धो बी बीर बर  
 उन्ने बरबन्ध निरुन कर बिबा बा । बर बर बरबन्धोके नामने बरबन्ध  
 बा बरबन्ध बरा हुका । उनको बुरबन्धे बरबन्ध बरबन्ध बुर बीर बुरबन्धो  
 बा बाई बरबन्धो बरबन्ध बरबन्ध हुका । बरबन्धोको पुची बुद्धिमान नाम  
 बाबुबन्ध बुरबन्धे नाम बिबाबी बी । बर बरबन्धोके बाबुबन्धोके  
 बरबन्धोके बुरबन्धो बाबुबन्धो बीर बुरबन्ध ( बरबन्धो ) बा बुरबन्ध बर  
 हो बरबन्धो बा । बुरबन्धो नामने बरबन्ध बरबन्धो बी बरबन्धो बी बीर  
 बरबन्धो बी उन्ने नाम बरबन्धो हुने बरा बा । १९११ से १९१२ ई  
 बर बरबन्ध बुरबन्धो हो बरबन्धो । एही ।

बरबन्धो बरबन्धो ईशाबन्धो बीर बरबन्धो मैदर बाधिन बा हो  
 बरा बा किन्तु बीर बरबन्ध नामानु हो उन्ने बिबा बरबन्ध हुका बिबाबन्धो  
 बुर बर बी । बरबन्धोके बिबाबी उन्ने बरबन्ध नाम-नाम ईशाबन्धो बीर  
 बुरबन्धो बर बरबन्धो बाबुबन्धो बी बरबन्धो बा । बरबन्धोके बरबन्धो

राजनैतिक उद्देश्य था। वह पश्चिमोत्तरके पुर्तगालियोंसे मैत्री बनाये रखना चाहता था, इसीलिए १६०८ ई० में उसने अपना एक राजदूत गोमा भेजा। किन्तु उस दूतके पुर्तगाली गवर्नरसे भेंट होनेके पूर्व ही इग्लिस्तानके राजा जेम्स प्रथमका राजदूत मर जाँन हाकिन्स जहाँगीरके दरबारमें आ पहुँचा, उसने २५००० स्वर्ण-मुद्राएँ सम्राट्को भेंट दी और अपने देशवासियोंके लिए भारतवर्षमें व्यापारिक सुविधाओंकी याचना की। सम्राट्ने उसके साथ बड़ी सज्जनताका व्यवहार किया किन्तु उसका दूतकार्य सफल न हुआ, जिसका प्रधान कारण पुर्तगालियोंका तीव्र विरोध था। हाकिन्स १६०९-११ ई० तक दो वर्ष यहाँ रहा। 'उसके विवरण महत्त्वपूर्ण हैं। तदुपरान्त अँगरेजों और पुर्तगालियोंमें भारतीय सागरमें युद्ध हुआ। पुर्तगालियोंने सम्राट्के भी चार जलपोतोंका अपहरण कर लिया इसपर सम्राट् उनसे रुष्ट हो गया और उसने उन्हें दण्ड दिया। ऐसी स्थितिमें जब अँगरेजोंका दूसरा दूत सर टामस रो (१६१५-१८ ई०) मुगल दरबारमें आया तो वह आसफ़खाँ आदि मन्त्रियोंको कुछ घूस आदि देकर अपने देशके लिए व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करनेमें सहज ही सफल हो गया। टामस रोके अपने वृत्तान्त और उससे भी अधिक उसके सेवक टैरोके लेख जहाँगीरके इतिहास और उसके दरबार एवं दरबारियों आदिके रोचक चित्रणके लिए बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। राजकुमार खुमरूके भी व्यक्तित्व एवं चरित्रकी इन अँगरेजोंने बड़ी सराहना की है।

१६१२ ई० में बंगालके बिद्रोही सरदार उस्मानखाँका दमन किया गया और दक्षिणमें अहमदनगरपर आक्रमण किया गया, किन्तु उस राज्यके सुयोग्य हज्जी प्रधान मलिक अम्बरके कारण विशेष सफलता नहीं मिली। मेवाड़के विरुद्ध भी प्रारम्भसे ही युद्ध चल रहा था। राणा अमरसिंह अपने पिता वीर प्रताप-जैसा दृढ़प्रतिज्ञ एवं चारित्रवान् नहीं था। वह कुछ आलसी और बिलासी था। राज्यकार्य भी कम ही देखता था। मामा-पाहका पुत्र जीवाशाह उसका प्रधान था। चूडावत आदि सामन्त सरदारोंके

मुगल साम्राज्य—ऊर्ध्वगत



था कि राजा और राज्यका वास्तविक धर्म इस्लाम ही है। पिछले दिनोंके ऐसे कार्योंमें उसके परामर्शदाताओंका प्रभाव भी काफी था। १६२२ ई० में राजकुमार खुसरूका वध हुआ। उसी वर्ष ईरानके शाह अब्बासने मुगलोंसे क्रन्दहार छीन लिया। इस घटनासे जहाँगीर बड़ा क्षुब्ध हुआ, वह स्वयं वोमार था अतः शाहजहाँको एक बड़ी सेनाके साथ क्रन्दहारका उद्धार करनेके लिए आदेश दिया, किन्तु शाहजहाँने स्वयं विद्रोह कर दिया। क्रन्दहार-उद्धारका कार्य बीचमें ही रुक गया। जहाँगीर अत्यन्त क्रोधित हुआ और विद्रोही राजकुमारके दमनमें जुट गया। दिल्लीके निकट १६२३ ई० में शाहजहाँ पराजित हुआ और उसका प्रधान सहायक सुन्दर ब्राह्मण युद्धमें मारा गया। शाहजहाँ राजपूतानेकी ओर भाग गया जहाँ मेवाड़के कर्णसिंहने मित्रता निबाही और उसे आश्रय दिया। तदनन्तर मालवा होता हुआ वह दक्षिण पहुँचा, वहाँसे तेलिंगाना होता हुआ बगाल पहुँचा और बगाल एवं बिहारपर उसने अधिकार कर लिया। किन्तु वहाँ भी शाही सेनाने उसे पराजित किया अतः फिर दक्षिण चला गया और वहाँ उसने मलिक अम्बरसे मित्रता की। १६२५ ई० में पिताके साथ उसकी सुलह हो गयी, अपने पुत्र दारा और औरंगजेबको उसने अपने सदाचरणके आश्वासनके रूपमें सम्राट्के पास भेज दिया किन्तु स्वयं उसके सम्मुख उपस्थित होनेका उसे साहस नहीं हुआ और जहाँगीरकी मृत्यु पश्चात् मेवाड़-नरेशके आश्रयमें वा अन्यत्र गुप्तरूपसे ही वह रहता रहा।

१६२६ ई० में साम्राज्यके एक प्रधान सरदार महाबतख़ाँसे, जो शाहजहाँके विद्रोह-दमनमें और उसका पीछा करनेमें सफल हुआ था, ग़लफ़ा नूरजहाँ रूठ हो गयी। उसने अपनी स्थिति भयप्रद जान जहाँगीर और नूरजहाँको, जब वे झेलमके तटपर छावनी डाले पड़े थे, घेर लिया। किन्तु नूरजहाँकी चतुराईसे उसका प्रयत्न विफल हुआ और उसे प्राण बचाकर स्वयं भागना पड़ा। वह भी जाकर शाहजहाँसे मिल गया। १६२७ ई० में कुछ दिन रोगी रहनेके उपरान्त कश्मीरके मार्गमें सम्राट्



अर्थात् नीरानी कुपु ही बयी । अर्थात् के उनके कठवरीमें बड़े लच्छम्य बना ।  
 उनका अर्द्ध कुपु मुनक बड़े ही नाप आ कुपु भा ११११ ई  
 में कुनरे कुपु बरकेवरी ली लुरेवके ही अर्थात् नेर बहर दे रिया कय  
 बा । हीनरा कुपु बाहरका कुपु अर्थात् बाबाद बा बह बिन्धुन निरम्य  
 बा बाबकर अर्थात् नी बरिकाई बाब कय और लज्जा बोरिंग कर रिया  
 बया । बिन्धु बरान कया बाबइबनि ओ बाबइबनि बरुर बा बाबइ  
 बाबइबनि बरिकाई बाबे लुनकके कुपु बाबरबकवरी बिन्धुनपर कय  
 रिया । अर्थात् उनका विरोध कयै कया ही बाबइबनि बरें कयै  
 कयै कया कया रिया । बाबइबनि लुनक बाबइबनीके बिन्धु बह कया  
 और बाबइबनि बाबइबनि बाबइबनीके बाबइबनी रिया बिन्धु  
 बरके अर्थात् कुपु बाबइबनि बिन्धुन कय कर रिया बाबे । बाबइबनि  
 ही बाब बरकर ईरानके बाबइबनी बाबइबनी कया कय और लुनक बरके  
 कया कय कयै बाबइबनी कुपुके बाब बरार बिन्धु बये । बिन्धु बाबइबनि  
 एक बाबइबनि बिन्धुन बाबइबनी बाबइबनि बिन्धु बिन्धुन कयै और बाबइबनि  
 बाबइबनि एक बाबइबनी कठवरीमें लच्छम्य ही बयी । बाबइबनि बाब  
 बिन्धुनक कुपु ।

■

## अध्याय ४

### मुगल-साम्राज्य—अधोगत

शाहजहाँ ( १६२८-१६५८ ई० ) इस प्रकार अपन भाई भतीजों-के रक्तसे रजित मुगल मिहासनपर आसीन हुआ । आमफ्रखी उसका प्रधान मन्त्री था, उसकी बेटो मूमताजमहल जो शाहजहाँकी अत्यन्त चहेती पत्नी थी साम्राज्ञी हुई । शाहजहाँके दाराशिकोह, औरंगजेब, मुराद और शुजा नामके चार वयस्क पुत्र तथा जहाँनारा और रोशनआरा नामकी दो पुत्रियाँ सुसिद्धित, राजनीति-निपुण और राजकायमें सहायक थे ।

राज्यके प्रथम वर्षमें ही जहाँगौरके कृपापात्र वीरसिंह बुन्देलेके पुत्र जुझारसिंहने विद्रोह कर दिया । उसकी दबा दिया गया किन्तु वह फिर विद्रोही हो उठा । जब द्वाही सेना उसका पीछा कर रही था तो १६३५ ई० में गोडोंने उसका वध कर दिया और कुछ कालके लिए वीर बुन्देले घात हो गये । १६२९ ई० में खानजहाँ लोदीने अहमदनगरके सुलतानके साथ मैत्री करके सम्राट्के विरुद्ध विद्रोह कर दिया, उसका भी तत्काल दमन कर दिया गया, चार वर्ष बाद उसने फिर विद्रोह किया और इस बार वह मारा गया । १६३०-३२ ई० में जब दक्षिण विजयके उद्देश्यसे सम्राट् बुरहानपुरमें छावनी ठाले पड़ा था तो दक्खिन और गुजरातमें भयकर अकाल पड़ा । इस भीषण दुर्भिक्ष और उसकी सहयोगिनी महामारीके कारण ग्राहि-ग्राहि मच गयी और असंख्य मनुष्य कुत्ताकी मौत तडप-तडपकर मर गये । सम्राट्ने कुछ कर माफ़ कर दिये और कुछ द्रव्य दान किया, किन्तु दुष्कालकी भीषणताके समक्ष यह सब महायता

ममय्य जी । १९११ ई. में राजस्थानी की खेती के लिये अनुकूलता की कल्पना मुन्तासिराबादी ने समुचित रूप से की थी । उनके राजस्थानी १४ कण्ठों की थी । लोकगीतों के लिये आमतौर पर आठ आठ आठ १९११ ई. के ही कथनी के लिये समुचित रूप से समुचित रूप से समुचित रूप से स्मारक लक्ष्यस्थान । निर्माणकाल के लिये आत्मन कर दिया ।

१९३२-३५ ई. के बीच छात्रावासों ईसाइनों पर आत्मविश्वसुनिश्चित पत्र और विरोधपर संभावित रूप से प्रत्येक वर्ष विद्यमान पूर्ववर्तिनों पर करने को आवश्यक सिद्ध है। वे आवागमन अनुमति भी न है। पूर्ववर्ती अल्प संख्या वर्षान्त पूर्व दिनांक और मुकदमागत सीमांक ही विरोध के और कुछ आवश्यक कार्यों के। १९३२ ई. से जारी के जाने हुए सीमांक और पूर्ववर्तिनों का वह प्रत्येक वर्ष अल्प संख्या ही कर दिया। इसी वर्ष करने बादवर्ती तथा आवागमन के अल्प आवागमन उन दिनांक-विरोधी विरोधों का जाने पर जारी किया गया विरोध आवागमन ही कुछ का अल्प वर्षान्त अतिरिक्त विरोधकार अतिरिक्त तथा विरोध। केवल बादवर्ती विरोध ही ३६ अतिरिक्त पत्र सिद्ध करे।

[illegible]

स्वीकार कर ली, किन्तु बीजापुरके साथ निरन्तर युद्ध चलता रहा। अन्ततः १६३६ ई० में बीजापुरने भी सम्राट्की शर्तोंपर सन्धि कर ली किन्तु वह उसके पूर्णतया अधीन नहीं हुआ। उसी वर्ष राजकुमार औरंगजेब दक्षिणका सूबेदार नियुक्त किया गया। खानदेश, वरार, तेलंगाना और दौलताबाद प्रान्त उसके घामनमें थे और १६४४ ई० तक वहाँ उसने शासन किया। वह वहाँ निरन्तर युद्धोंमें सलग्न रहा। अन्तमें सम्राट् उससे छट हो गया और उसे कुछ कालके लिए बेकार एवं तिरस्कृत रहना पड़ा। १६४५ ई० में वह गुजरातका सूबेदार बनाया गया और १६४७ ई० में बल्लभ और बदरशाका सूबेदार बनाकर भेज दिया गया। मम्मव-तया यह औरंगजेबकी बढ़ती हुई शक्ति और उसके स्वभावको देखकर उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी भाई दाराके सकेतपर ही हुआ था जो कि उस समय पिताका सर्वाधिक कृपापात्र था।

१६३८ ई० में कन्दहारपर वहाँके शासकके विश्वासघातसे मुगलोंका फिर अधिकार हो गया था। १६४५ ई० में राजकुमार मुराद और सेनापति अलीमर्दाने बल्लभ और बदरशापर भी अधिकार कर लिया था। किन्तु औरंगजेब उन प्रदेशोंको अधिकारमें रखनेमें असफल रहा। बल्लभ और कन्दहार दानो ही मुगलोंके हाथमें निकल गये। १६४९ ई० में कन्दहारपर फिर आक्रमण किया गया किन्तु ईरानियोंसे पराजित होकर मुगल सेना फिर लौट आयी। इन असफलताओंके कारण औरंगजेब और अधिक तिरस्कृत हुआ। १६५२ ई० में फिर कन्दहारका घेरा बाला गया, इस बार भी असफलता ही मिली। तीसरी बार १६५३ ई० में दाराको भेजा गया वह भी असफल रहा। इन मध्य-एशियाई प्रदेशोंको अधिकारमें रखने या हस्तगत करनेमें शाही-कोषका विपुल प्रव्य व्यय हुआ और अन्ततः विफलता ही मिली। मुगलोंने कन्दहारको लेनेका फिर प्रयत्न नहीं किया।

राणा जगतसिंहने चित्तौड़ दुर्गका नवीन परकोटा निर्माण कराना शुरू किया था किन्तु दादजहाँने उसे नष्ट करवा दिया। राणाके विद्रोहके

कारण कहते प्रवेशको ब्याह दिया गया जिसे पचास वर्ष था ।

१९५१ ई के बीरेन्द्रदेव सिंह दलितका नुबेदार बनाकर भेजा गया बीर उरकी इस बारकी बार करकी नुबेदारी कहेके बी दलित दलितगईकुर्न की । कहके पूर्ववर्ती काकमेके नुबेदारके राज्य देवकी सेवकी जायी जाति हुई बी राज्य-कर मान गयी होता था सर्व्व एक प्रकारकी सम्पत्तिका बी । नोकनुभा बीर बीजापुरके राज नुबेद बी विस्तार राज्य करने गये । सर्व्वोक्ते वही नुबेदनुबीजा-बीजा नुबेद बीनन मान हुआ बीर कहकी राज्यवाले बलके काकम अन्तिम किया गया सेवकी स्वर्ण कर्मकी को । बीरेन्द्रदेव कुर नुनी या बीर दलितकी बलवर्ण किया बी सिन्धू यह कर्म सिन्धुबीजा ही वर्ण कर्तु राज्यवा या कर्तु यह सिन्धु-न-किटी बहाने कर्मर बलवर्ण कर्म या बीर कहके कर्म कर्मके कर्म बीनन गया था । इस वर्णके कर्मर प्रधान बलवर्ण बीरेन्द्रका कर्मर नवीनत बलवर्ण था । यह नुबेद एक बलवर्ण था, फिर नोकनुभाके नुबेदकी देवकी एक बलवर्ण बन गया, एवम्बर कर्मवर्णके कर्मकर्मर वही राज्यके बलवर्ण-बीरेन्द्रदेव अन्तिम कर्मके सर्व्व बलवर्ण कर्म-बलवर्ण राज्य गया बीर । नोकनुभाके नुबेदर राज्य बनने बलवर्ण यह बीरेन्द्रदेव विरक्त बना बीर कर्मर एक बलवर्ण कर्मर बन गया तथा कर्म कर्म बलवर्ण कर्म बलवर्णकी नुबेदर, बलवर्णकर्म बलवर्ण कर्म बन गया । कर्म, इसी बीरेन्द्रके कर्मवर्ण बीरेन्द्रके कर्म बीनन बलवर्ण बीनन-राज नोकनुभा राज्यकी यह कर्म राज्य किया कहके देववाक्य जाति कर्म कर्मकी कर्म बीर १९५१ ई के नोकनुभा ही बीर कर्म दिया । कर्मके सर्व्व बलवर्ण ही नुबेदर-राज की नवी दलित-बलवर्ण अन्तिम कर की बीर बीरेन्द्रके दलितके विरक्त बीर कर्मकी बलवर्ण है बी । फिर बी नोकनुभा राज्य बन एक बलवर्ण कर्म बीर कर्म राज्य यह कर्म था । बीजापुरके राज बी नुबेद बनता ही गया था किन्तु १९५१ ई के नुबेदर नुबेदर दलित-

शाहकी मृत्यु होनेसे औरगजेबके हाथ अच्छा अवसर आया। उसने मीरजुमलाको साथ लेकर बीजापुर राज्यपर तुरन्त आक्रमण कर दिया। १६५७ ई० में बीदर और तदुपरांत कल्याणपर उसका अधिकार हो गया। बीजापुरकी पूर्ण पराजय निकट ही थी कि शाहजहाँकी आज्ञासे उसे इस सुलतानके साथ भी सन्धि करनी पड़ी।

उसी समय शाहजहाँकी गम्भीर बीमारीका समाचार ज्ञात हुआ और औरगजेब दक्षिणकी समस्याको वहीं छोड़ उत्तरके लिए चल पड़ा। दक्षिणकी अपनी इस सूबेदारीमें उसने मीरजुमला और मुर्शिदकूलीखाँ-जैमे नवीन योग्य सहायक पैदा कर लिये थे और धन और शक्तिका भी सचय कर लिया था। उसकी बहन रोशनबारा उसकी पक्षपातिनी थी। किन्तु सम्राट्का विशिष्ट स्नेहपात्र उसका ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह था और उसे ही वह अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था, वही बहन जहाँनारा भी उसीकी पक्षपातिनी थी। राजकुमार मुराद और शुजा भी शक्तिशाली सूबेदार थे और राज्यके दावेदार थे। चारो ही राजकुमार बीर यादवा और अपने-अपने प्रदेशके प्रायः अर्धस्वतन्त्र स्वामी थे। उन सबके अवीन अपनी-अपनी पर्याप्त सेना थी। किन्तु जब कि दाराशिकोह उन सबमें अधिक विद्वान्, वेदान्ती आध्यात्मिक एवं सूफी विचारोंका प्रेमी, उदार, सज्जन और जनप्रिय था, औरगजेब कट्टर सुन्नी, धर्मान्वि मुसलमान, अनुदार, छल-कपटमें कुशल एवं कूटनीतिज्ञ था, मुराद शराबी था और शुजा सामान्य बुद्धिका व्यक्ति था। शाहजहाँकी आसन्न मृत्युका समाचार पाते ही शुजाने बगालमें और मुरादने गुजरातमें अपने-आपको सम्राट् घोषित कर दिया। राजधानी आगरामें दाराने सारे अधिकार अपने हाथमें कर लिये। अब औरगजेबने खुला विद्रोह कर दिया और शाहजहाँकी आज्ञाके विरुद्ध मीरजुमलाको बन्दीगृहमें रोक रखा। तीनों राजकुमार ससैन्य राजधानीकी ओर चल पड़े। औरगजेबने मूर्ख मुरादको भुलावा देकर अपनी आर मिला लिया। उज्जैनके निकट धरमत नामक स्थानमें १६५८ ई० में

इन बीनोंकी रोगाश्लेषी तन्त्राद्वयी औरही राधा नवकल्पविष्ट राखी और  
 आधिकारिकी रोका, कुछ हुआ और व्याधी रोका पराजित हुई । एवं मुझमें  
 राजकुमारी की प्रति अधिक । राखी राधा वैद्यक होकर नाव नव  
 विष्णु बाली और राजीनी बलमय मुनकर धनुषा लाजना करकेके फिर  
 फिर नव पदा । इन बीनमें धनराशियोंकी सेवा अन्तराके विष्ट नृपिष वरी  
 क्रिये ८ बीन पूर्व तानुपदमें आधिकारिकीमें बनेन्य कल्प प्रविष्टोप किया ।  
 इनकी औरके तानुपुन प्राय इवैलीपर एककर नव । बाध बाली कपकी  
 मुझमें वारन पराजित हुआ और अन्तराकी और नाव नव । मुला  
 औरवनेके अन्तरापर कल्पन नव किया और पूर्व एवं राजकुमारीकी  
 अन्तरा काके विष्ट आधिकारिकी क्रियेमें ही ही कर दिया बर्ष १९९४  
 ई में बाली मुला हुई । मुलाकी बी औरवनेके कल्पमें बाली काके  
 आधिकारिकी पूर्वमें ही नव दिया बर्ष १९९५ ई में बाध उक्ता नव कर  
 दिया नवा । मुला पराजित होकर अन्तराकी और नाव नवा और  
 बर्ष अन्तराक्रिये कल्पा अन्तरापर नव कर दिया । औरवनेके स्वर्ष  
 काके पुन मुलापर मुलातन्त्री, क्रिये मुलाका नव किया ना अन्तरा  
 बालीमुझमें कल्प दिया और १९९६ ई में बाली मुला हुआ कप ही ।  
 बाधके पुन मुलापर विष्टोके नवकाके विष्णु राजकी वारन बी बी विष्णु  
 राजकी पुन विस्तारन नवके बने औरवनेके विष्ट कर दिया ।  
 मुलाकाके आधिकारिकी पुनमें ही दिया नवा और कल्पाई देकर नव  
 कल्प नवा । बाधके छोटी पुन विष्टोके विष्टोकी और मुलाके पुन विष्ट  
 बाली, बी अन्तरापर बी प्राय-प्राय ही दिया नवा और स्वर्ष बाली एक-  
 एक पुनके प्राय कल्पा किया कर दिया नवा । आधिकारिकी अन्तरा बीका  
 दिया नवा वह पञ्चको विष्ट अन्तरापर कल्प और फिर मुलापर नृपिष  
 और कुछ सेवा एक नवके अन्तराकी और नवा । राजकुमारी बीका के  
 बाला बी बालका न मिली । वह पराजित होकर फिर बाला और बनेक  
 विष्टोका एवं अन्तरा के पुन, कल्प विस्तारनराशियों विष्टा होटी पुन

अन्ततः वह पकड़ा गया। अपनी प्रिय पत्नी नादिरा बेगमकी मृत्युसे वह विक्षिप्त-सा हो गया था। औरगज़ेबने उसकी जितनी धन सकी दुर्गति की और अन्तमें उसका वध करवा दिया। इस प्रकार शाहजहाँका राज्यकाल उसके जीवनमें ही समाप्त हो गया, उसकी मन्तविका बहुभाग भी नष्ट हो गया। बूढ़े सम्राट्ने आगराके किलेमें अपने प्रिय ताजमहलकी ओर दृष्टि लगाये हुए ही अत्यन्त दैन्य, अपमान, धोका और सतापमें जीवनके शेष दिन बिताये, और मृत्युके उपरान्त ताजमहलमें ही मुमताजकी वसलमें वह दफना दिया गया।

शाहजहाँने ३० वर्ष पर्यन्त शासन किया। वह अत्यन्त धनी और ऐश्वर्यशाली था। जवाहिरात समग्र करनेका उसे बड़ा चाव था। अपने दरबारकी शान शोकातको उसने चरम शिखरपर पहुँचा दिया था। कोहेनूर हीरा उसके ताजकी जामा बढ़ाता था और मुप्रमिद्ध रत्नजटित मयूर-सिंहासनपर बैठकर वह दरबार करता था (इस सिंहासनकी कल्पना एक जैन-कथामें वर्णित विमानसे ली गयी बताया जाती है)। आगराके किलेके कई विशाल तहखाने मोने-चांदी और हीरे-जवाहरातसे पटे पड़े थे। अपने उस अतुल वैभव-प्रदर्शनमें उसे बड़ा आनन्द आता था। स्थापत्यकलाका भी वह बड़ा प्रेमी था और भारी निर्माता था। दिल्लीका लालकिला जिसके दीवानेखासकी छत चांदीसे मढ़ी थी, दिल्लीकी विशाल जामा-मस्जिद, सुन्दर चांदनीचौक जिसके बीचने दोनों ओर वृक्षोंसे ढकी नहर बहती थी, आगराकी जामामस्जिद, आगराके किलेकी मोतीमस्जिद, दीवानेखास, सम्मनचूर्ण आदि इमारतें और सबसे अधिक विश्वके आश्चर्योंमें परिगणित ताजमहल इस सम्राट्की अमूल्य कृतियाँ हैं। अपने भवनोंमें संगमरमरका उपयोग करनेका उसे बड़ा चाव था। शिल्प-स्थापत्यकी मुगल-कलाके विकासमें उसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार चित्रकलाका भी अच्छा विकास हुआ, उसके समयके चित्र अधिक सजीव हैं। उसके प्रथममें अब्दुलहमीद और खफीखाने अपने इतिहास-ग्रन्थ भी लिखे।

मुगल-साम्राज्य—अधोगत





जाता । वैसे राज्यके अनेक अधीन राजपूत राजाओं, सामन्त सरदारों, हिन्दू एवं जैन पदाधिकारियों, सेठों और व्यापारियों आदिको सहन करना ही पड़ता था । उनको तथा बहुमूल्यक प्रजाको सन्तुष्ट रखनेके लिए सामान्यतया अपने पूर्वजों द्वारा प्रचलित सहिष्णु और उदार नीतिको भी वह वरतता ही था । जब वह अपने पिताके समयमें ही गुजरातका सूबेदार था तो उसने वहाँके जैनोको प्रार्थनापर जीवहिंसा निषेधक कई फरमान निकाले थे, चाहे उनके लिए वहाँके धनी सेठोंसे राजकोषके लिए त्रिपुल धन लेकर ही वैसा किया हो । कहा जाता है कि आगराके कवि बनारसीदास ( १५८६-१६४३ ई० ) शाहजहाँके मुसाहब थे और उससे साथ बहुधा शतरंज खेला करते थे । अपने अन्तिम वर्षोंमें जब उनकी वित्तवृत्ति राज-दरबारसे विरक्त हुई तो सम्राट्ने उन्हें दरबारमें उपस्थित न होनेकी सहर्ष अनुमति दे दी । बनारसीदास न केवल श्रेष्ठ कवि, प्रकाण्ड विद्वान् एवं अत्यन्त धार्मिक थे, वे एक मानवतावादी विचारक भी थे । उनके नेतृत्वमें आगरामें दसियों उच्चकाटिके विद्वानोंकी विद्वद्गोष्ठी होती थी । पाण्डे रूपचन्द, चतुर्भुज वैरागी, भगवन्तोदास, धर्मदास, कुँवरपाल, जगजीवन आदि उन विद्वानोंमें उल्लेखनीय हैं । दिल्ली, लाहौर, मुल्तान आदि विभिन्न प्रमुख नगरोंके विद्वानोंसे इस सत्सङ्गका सम्पर्क बना रहता था । बाहरके भी अनेक विद्वान् समय-समयपर वहाँ आते रहते थे । महाकवि तुलसीदास और सन्तकवि सुन्दरदासके साथ भी बनारसीदासकी साहित्यिक मैत्री थी । इसी समय शान्तिदास नामके एक नग्नजैनमुनिका भी आगरामें आना पाया जाता है । वैसे उत्तर भारतमें नग्न जैनमुनि उस कालमें घिरले ही थे, उनका स्थान दिगम्बर भट्टारको, ग्रह्याचारियों और क्षुल्लकोने ले लिया था । इसी शासनकालमें स्वयं बनारसीदासके अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंके अतिरिक्त उनके विभिन्न शार्थियों और कवि सालिवाहन, पाण्डे हरिकृष्ण, भट्टारक जगभूषण, पाण्डे हेमराज, यति लूणसागर, पृथ्वीपाल, वीरदास, कवि सघास, मनोहरलाल, खरगसेन, रायचन्द्र आदि अनेक श्वेताम्बर-

विष्णुधर भट्टाचार्य, बंकिमों स्वाभिमानी और गृहस्थ विद्वानोंने काम-धर्मके विविध ढंगोंमें संस्कृत तथा हिन्दी सब एवं सबमें अनेक बहिष्कृत एवं भौतिक कर्मोंकी रचना की थी। दिल्लीमें स्वयं काव्यशिल्पके शास्त्रों की माहिराई सम्भव है। बीबीसा यह प्रसिद्ध कामधर्मधर तथा वा सो मुँ बन्दिर भी कहलज्जा है। यह मन्दिर पात्री केवाके बीच हीविर्को एवं अन्य बर्तमानिर्देशी श्रावणापर नम्रादकी अनुमति एवं प्रथमपूर्यक बना था।

**बीरेश्वरेश ( १९५८-१७० )**—१९५८ ई में आवागर बंकि-  
वार काली ही बीरेश्वरेशमें अपने आपकी बजाय पोषित कर रिश वा  
बीर १९५९ ई में दिल्लीमें कामा विविध्नु एकगतिपेड करके एवं  
अनेक रिश नम्रादकी बनीपुडमें कामधर बर्त-कालीके रकाये की हाटीमें  
इह आवागकीर कामवाहुने साक्षात्करी बाबरीर नम्रादकी। ५ बर्त बर्तन  
एक करके करलत ९ बर्तरी बीरामुमें कबरी म्नु हुई। अत समय  
एक कामा प्रताप और कालक अपने-बपरी कीटी-बने मकर बहुल  
काला था।

इसमें नयेड बड़ी कि बीरेश्वरेश बीर-बीर कुछन केमलाक बोझ  
राजकीति-म्नु कृष्णीमिला मुव बरीव बरव नम्रवान और क्रियाशील  
थ। यह एक बंकि बीम्य धातक आवागवाली व्यक्ति अस्तित्वाकी और  
कदम्ब नीच वा किन्नु बाव ही नम्रादकी कनी काली मुर्त और बर्तन  
की वा। अपने बर्तनकर्मकि रूपमें यह नम्रा ही तबार काला क  
लेड और अस्तित्वा नहीं। अस्तित्वा काला बीर अस्तित्वाके बने कीर्त डेव  
नहीं वा बरम् यह कामा विनीकी ही वा पचाति एवं मुनिविश्व एवं  
कृष्णिथ वा। नीरम और अनुसार तो वा ही यह परचम कविम्नु की  
वा। यह नम्रा मुनी नम्रमाल वा बीर अपने बर्तका यह कनेके रूपकी  
नम्रादि वा अपने चित्तमें यह बारवा बरव बड़ी की कि कनेके पूर्वकी-  
की नम्रादूर्व कीति एवं नम्राकर्मक अस्तित्वा कालाके बारव एवम्  
मुनम्रादूर्व किन्नु आभिमानीकी नम्रा मलि और अवाव अस्तित्वाक वा

गया है तथा ईरानियों और शियाओंका प्रभाव भी बहुत बढ गया है, और इन सबके कारण इस्लामधर्म और मुसलमानोंकी सत्ता खतरेमें पड गयी है, ये सब विरोधी प्रभाव मिलकर शनै-शनै उसे हडप लेंगे, अतएव इस्लाम और मुसलमानोंकी रक्षा उसका प्रथम ध्येय है, जो अपनी शक्तिका यथाशक्य अधिकसे अधिक विस्तार करने, मुसलमानेतर धर्मों और जातियोंका अत्याचारपूर्वक दमन करने और इस्लामकी प्रभावना एवं प्रसार करनेसे ही सिद्ध होगा। उसकी दृष्टिमें साध्यका महत्त्व था, साधनोंके औचित्यका कोई मूल्य न था। राज्य प्राप्त करनेके प्रयत्नमें ही उसने अपनी यह प्रवृत्ति चरितार्थ कर दी थी। अपनी अभीष्ट प्राप्तिके लिए स्वयं अपने पिता और राजाका बन्दा करना, अपने सगे-सम्बन्धियोंका क्रूरतासे बध करना, विराधियोंको घोर यन्त्रणाएँ दकर नष्ट कर डालना, विश्वासपात, ढाग, छल कपटका भी अवसर पडनेपर आश्रय लेनेसे न चूकना, आदि उसके काम प्रारम्भसे ही सर्व-विदित थे और उसको जीवन-नीति एवं शासन-नीतिके परिचायक थे। किसी भी व्यक्तिका विश्वास करना वह जानता ही न था, विशेषकर बड़ेसे बड़े हिन्दू सरदारोंका भी वह सनिक विश्वास नहीं करता था और उनको अपमानित करनेके किसी अवसरको तो चूकता ही न था। अकबरका उदार, सहिष्णु, समदर्शी एवं विवेक और बुद्धिमत्तापूर्ण नीतिकी प्रतिक्रिया जहाँगीरके समयसे ही होने लगी थी, किन्तु बहुत हलके रूपमें। शाहजहाँके समयमें उसने और अधिक बल पकड़ा किन्तु औरगजेबने तो उसे चरम शिखरपर पहुँचा दिया। उसने यथा-सम्भव अकबरकी नीतिकी पूर्णतया उलटनेका प्रयत्न किया। फलस्वरूप अकबरकी नीतिके कारण जिस साम्राज्य-शक्तिका इतना सुदृढ़ निर्माण एवं अद्भुत विकास हुआ था कि वह बावजूद इन प्रतिक्रियाओं, मूर्खताओं और बय अनेक दोषा एवं भूलोंके ढेढ़-सी वर्ष पयन्त सर्वप्रकार अधुण्ण बनी रहो और उसके आगे भा और डेढ़-सी बय पर्यन्त बय-स्थायित्वकी रक्षा कर सकी, औरगजेबकी नीतिके कारण वह साम्राज्य शक्ति उसके जीवन-

धर्म ही बुद्धर अर्थ ही वही और सबको मुमुक्षु बनाना ही  
 लोकोक्ति हीन-विषय ही वही । औरंगजेब की इसी मध्य-पुष्पिणी सेना बड़े  
 भारि पूर्वजों की कर कथगता बहुत गुणगानों की अत्यन्त अनद्विगुण-वर्णना  
 एक अत्यन्त बराबरी कायस्थ की समीप्य-मता को भी को को भीना एवं  
 अनुसारता एक कले नृन-मन्त्रकी पालनिक योग्यता एवं बाह्य सम्यो  
 की और इसे अपने चरित्र-चक्रका राज्य बुद्ध-मन्त्रालयक एक राजपुत्राके  
 योग्य समर्थित प्रिया-प्रीति तथा अत्यन्त बुद्ध और राज्य-मन्त्रका अत्यन्त  
 विद्वान् या राज्य वा । अतः पूर्वजों द्वारा अन्तर्गत विद्वान् अत्यन्त  
 अनुन वीर्य बलीय यत्नि मुम्भयन्ति वाङ्मन-मन्त्र अर्थिका हेतु  
 एक मुनिकान्त स्वाधिकान्त केवक सब और अत्यन्त की इसे राज्य वा ।  
 इसी सब अर्थों के इसके अर्थिकान्त विचार हीना वा और अर्थिक  
 इसके वीर्यकी कथगताएँ एवं विद्वान्ताएँ कायस्थित हुई, और इसी  
 कथकी समूर्ण चरित्राङ्कितों मुम्भ अर्थिकित है ।

औरंगजेब का राज्यकाय ही अर्थिक विद्वान् विना वा कथा है  
 १६५८ के १६८१ ई तक यह कथनी ही रहा और मुम्भता हीनी  
 अत्यन्त-वर्णित कथना रहा १६८१ के १७०७ ई के अर्थी मुमु कर्ण  
 यह अर्थिक कायस्थ रहा और अर्थी अत्यन्त-वर्णित मुम्भता कथना रहा ।

विद्वान् अत्यन्त कर्ण ही इसके अर्थिकान्त बुद्ध वीर्यता के विद्वान्  
 मुम्भता अत्यन्त ८ राज्य-वर्णित एक अत्यन्त-वर्णित वीर्यता अर्थिक वा ।  
 अत्यन्त यह अत्यन्त अत्यन्त-वर्णित विद्वान् वीर्यता अत्यन्त वीर्य ही कथ  
 था की १६९०-९१ ई में बड़ा अर्थिक ही कथ । अत्यन्त अर्थ  
 अर्थिकान्त करीने अत्यन्त यह अत्यन्त स्वाधिकान्त ही थी, न थी ही अर्थी ही  
 की कथ करीने अत्यन्त-वीर्यता वीर्य कराना अर्थिक ही था । अर्थिक  
 अत्यन्त-वर्णित अर्थिकान्त-वर्णित अत्यन्त-वर्णित ही अर्थिक वीर्यता की ही अर्थिक  
 न हुआ अर्थिक अत्यन्त अर्थिक करीने अत्यन्त अर्थिक वीर्यता कथ ही  
 और अर्थी वीर्य अर्थी थी ।

अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके विरुद्ध औरगजेवकी सफलतामें उसका प्रधान सहायक मीरजुमला रहा था, किन्तु इसी कारण वह अत्यन्त शक्तिशाली भी हो गया था। अब औरगजेवने उसे मुद्दूर वगालका सूवेदार बनाया और गुजाके अन्त करने एवं आसामका दमन करनेका भार सौंपा। गुजाका तो सपरिवार मीरजुमलाके प्रयत्नसे नाश हो गया किन्तु आसामके युद्धमें १६६३ ई० में वह स्वयं भी मारा गया और औरगजेवका एक कण्टक दूर हुआ। उसके स्थानपर उसने अपने मामा शाहस्ताखाको नियुक्त किया जो लगभग ३० वर्ष तक उस पदपर रहा। १६६० ई० में शाहस्ताखाको शिवाजीका दमन करनेके लिए दक्षिण भेजा गया था, किन्तु पूनामें उसको उपहासास्वद असफलताके कारण वहाँसे बुलाकर फिर वगाल भेज दिया गया।

दक्षिणमें १६५७ से १६६० ई० पर्यन्त मुगलोंकी ओरसे प्रायः शान्ति रही थी जिसका लाभ उठाकर बीर शिवाजीने बीजापुर-नरेशकी हानि करके अपना राज्य जमाना प्रारम्भ कर दिया था। शाहस्ताखाके उपरान्त राजा जयसिंह और शहजादा मुअज्जुम शिवाजीके विरुद्ध भेजे गये। जयसिंहके परामर्शपर १६६५ ई० में शिवाजी आगरे भी आया किन्तु सम्राट्की विद्वांसघाती नीतिका आभास पाकर निकल भागा। १६६७ ई० में औरगजेवने राज्यके महान् स्तम्भ जयपुर-नरेश राजा जयसिंहको सम्भवतया उसीके पुत्र कीरतसिंहसे विपक्षितकर करवा डाला। जयसिंहके उपरान्त शहजादेके सहायकके रूपमें जोधपुर-नरेश जसवन्तसिंहको शिवाजीके विरुद्ध भेजा गया। वह भी असफल रहा, बल्कि शहजादेने स्वयं घूम लेकर सम्राट्से शिवाजीकी राजाकी पदवी भी दिलवा दी। शिवाजीकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी, साम्राज्यके सूरत, खानदेश आदि प्रदेशोंको भी उसने कई बार लूटा। साम्राज्यकी दामन-व्यवस्था दृढ़नी शिथिल हो चुकी थी कि सम्राट् शिवाजीका कुछ न बिगाड़ सका। १६७४ ई० में शिवाजीने अपना राज्याभिषेक करके स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया।

१९११ ई में मनुष्य विशेषों नीचुन बाटके कैगुलन बाटोने बरकर  
 बिछोड़ कर दिया था और बहुतों को मार दिया था । दोनों ओर  
 के मनुष्य जलिनदीकी हाथोंके जलमग्न करिआदि बिछोड़कर दम दूया ।  
 १९८१ ई में बाट फिर बरकर कडे और फिर छाड़ी केनाये कन्दा दम  
 किया । १९८८ ई में जलवा बिछोड़ एक बार फिर मरवा और बजादकी  
 मनुष्य कर्मण बानू रहा । इसी बीच १९११ ई में बाटोने बिकनारी  
 मरकरके मरकरको मूला और जल बजादके लवणी का कडोने निपाक  
 कर बिछोने दम कर दिया, ऐसा कहा जाता है ।

१९२ ई में मारनीकडे सलमानिकोने जलमग्न बिछोड़ दिया । इस  
 समयमें जलके छोटी बाटिनिकी जल में छाड़ी केना बाटोने जल कडकर  
 बर बिछोड़कर दम कर दिया । अपने हाथोंके कूटनकी बाटोने लवणी  
 बानू बरकरकीके बरकर की औरबकर बानू जल कर न कर बना ।

इसी समयके कडकर कोबल्ल जलके दम कडोनेमें बिछोड़ कर  
 दिया । छाड़ी केनाका एक बरा जल दम बनी जल बहा कन्दा रहा । जल  
 बरकरकीके लवणी जल जलके केनाकिनीकी जल बानू किन्तु बर बिछोड़  
 रहे । १९७४ ई में बजाद लवणी बहा और कडोनेका दम किया,  
 किन्तु जलमें १९७८ ई तक ही बाकर लवणी ही बका । १९७९ ई में  
 औरबकरके बिकनीपर लवणीपर किया और कुछ ठेकामुनकर बर करण  
 दिया । इन मुनने जलकी हिन्तु बिछोना-नीतिथ बिछोड़ किया था और बनी  
 कडोनेर मुनकमल बका बाबाबार कर दिया था ।

१९७९ ई में राजमग्नके राजमग्नमें बिछोड़ कर दिया । मारना-  
 मरक जलमग्निकी औरबकरके बरकरकीके बरकरके दम करण  
 दिया था किन्तु बनी राजाको जलमग्न कडाका कडोने की ओर  
 १९८८ईमें बरकरके बजादके ही बजादके बर राजमग्न बाबल ही  
 बना । उनके की मुनी और लवणीके बजादके बाहीरकी टोक रहा । इसी  
 समय राजमग्नकी मुनकमल बका बाबाकी की । किन्तु लवणीका कीर

दुर्गादासके प्रयत्न और कोशिशमें रानी और राजपुत्र सुरक्षित मारवाड़ पहुँच गये। औरंगजेब बहुत दुःख हुआ और उसने उनके पकड़नेके लिए सेना भेजी। मारवाड़के सेनापति दुर्गादास राठौर, उसका भाई मुकुन्ददास-खीची तथा अन्य सरदार अपने राजा और राज्यको रक्षाके लिए कटिबद्ध हो गये। उन्होंने अन्य राजपूत राज्योंमें भी सहायता माँगी। समय ऐसा था कि औरंगजेबकी धार्मिक नीति और राजपूत विरोधी चालाक समस्त नरेश असन्तुष्ट हो उठे थे। राजाओंका अब पहले-जैंगी आन्तरिक स्वतन्त्रता नहीं रही थी, औरंगजेब उनके राज्योंका भी सीधे-केन्द्रसे ही शासन करनेका इच्छुक था। जयसिंह और जसवंतसिंह-जैसे साम्राज्यके प्रधान स्तम्भ और दक्षिण-सम्पन्न एवं प्रभावशाली नरेशोंका एक-एक करके उसने अन्त करवा दिया था। जसवंतसिंहकी मृत्युका वह पुरा लाभ उठाना चाहता था और मारवाड़पर पूर्ण अधिकार करना चाहता था क्योंकि वह देश मालवा और तदनन्तर दक्षिण-मार्गके बीचमें पड़ता था। उसकी नीयत और इरादे छिपे नहीं थे। अतः समस्त राजस्थान स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके लिए उठ खड़ा हुआ और स्वयं मेवाड़ नरेश राणा राजसिंहने युद्धका नेतृत्व ग्रहण किया। औरंगजेब जिसे मात्र जाघपुरक राजाविहीन राठौर सरदारोंका विद्रोह समझता था उसने एकाएक जयपुरको छाड़ प्रायः सम्पूर्ण राजस्थान-द्वारा घेरेपित भीषण युद्धका रूप ले लिया। सम्राटने अपनी सारी सैन्यशक्ति केन्द्रित करके अजमेरमें डेरा डाला और स्वयं युद्धका संचालन किया। किन्तु इसी बीचमें उसका पुत्र राजकुमार अकबर राजपूतोंसे मिल गया। इससे सम्राट् अत्यन्त चिन्तित हो उठा। अपने छल-कौशलसे उसने राजपूतोंको विवश कर दिया कि वे हाहूँदादेको अपने आश्रयसे निकाल दें। लाचार अकबर दक्षिणकी ओर भाग गया। इधर वीर राजपूत युद्धोंमें सम्राटकी भारी क्षति कर रहे थे। अन्ततः १६८१ ई० में औरंगजेबने राणाके तथा राजपूतोंके साथ सन्धि कर ली। राजपूत राज्यों-को जजियासे भी मुक्त कर दिया, उनकी सत्ता भी पूर्ववत् स्वीकार कर

मुगल-साम्राज्य—अधोगत



[illegible][illegible]

किया तो मुअज्जमको मुक्त करके क्राबुलका सूवेदार बनाकर अकबरके  
 विरुद्ध भेज दिया। अकबर पराजित होकर वापस लौट गया। १६८९ ई०  
 में औरंगजेबने राजा शम्भाजीको पराजित करके उसे उसके ग्राह्यण  
 प्रधान मन्त्री सहित बन्दी कर लिया और तदनन्तर उसका वध करवा  
 दिया। शम्भाजीके बालक पुत्र साहुको उसने अपने महलोंमें ला रखा और  
 वहीं उसे पलवाया। अब औरंगजेब प्रायः सम्पूर्ण भारतका एकच्छत्र  
 सम्राट् था, किन्तु इसी समय समस्त मराठा जाति उसके विरुद्ध मटक  
 उठी। अबतक केवल मराठा राजे ही उसके शत्रु थे और उन्हींसे उसका  
 युद्ध था किन्तु अब समस्त दक्षिणापयकी जनता उसकी विरोधी थी।  
 शम्भाजीके भाई राजारामने सुदूर जिजोको अपना केन्द्र बनाकर इस जातीय  
 विद्रोहका नेतृत्व किया और उसके पश्चात् उसकी वीर पत्नी ताराबाई  
 युद्ध संचालित करती रही। औरंगजेबने मराठोंके इस देशन्यायी विद्रोहको  
 कुचलनेका भरसक प्रयत्न किया। उसके मन्त्रियोंने उसे दिल्ली वापस  
 लौट जानेकी सलाह दी, किन्तु वह मराठोको नि शेष किये बिना दक्षिणसे  
 चलनेकी तैयार न हुआ। अन्ततः दक्षिणने ही उसका अन्त कर दिया। सन्  
 १७०७ ई० में विफल प्रयत्न और निराशाग्रस्त बृद्ध सम्राट् औरंगजेब  
 आलमगोरकी औरंगाबादमें मृत्यु हुई और वही वह दफना दिया गया।  
 उसके साथ ही महान् मुगल साम्राज्यकी महत्ताका भी अन्त हो गया।

औरंगजेबकी विफलता और उसके राज्यकालके उपरोक्त जाट, सिख,  
 बुन्देले, सतनामी, राजपूत, मराठा आदि युद्धों एवं विद्रोहोंका प्रधान कारण  
 उसकी अपनी राजनीति थी। उसकी सकोर्ण धर्माघता, अत्यन्त अमहिष्णु  
 एवं अनुदार धार्मिक नीति एवं मुसलमानोंतर जाति-विरोधी राजनीति उसकी  
 अपनी असफलताओं एवं उसके उपरान्त महान् मुगल साम्राज्यके वृत्त पतन-  
 के प्रधान कारण थे। वह भारतमें मुगल-साम्राज्यको विशुद्ध अरबी  
 संस्कृतिपर आधारित एवं इस्लामके नियमोंके अनुकूल एक पक्का मुसल-  
 मानी राज्य बना देना चाहता था। प्रारम्भमें ही यह ध्येय एवं तदनुसारो

नीति बहने मिलियत कर ली थी और राज्यारोहणके पीछे कर्म करवा  
 ही रहे सम्बन्धित करमा आरम्भ कर दिया था तथा मन्त्र तब भी  
 कटीका निर्वाह करता रहा । उसके सम्बन्धितके पीछे उसकी राज्यारोहण  
 बुद्धि थी दब गयी । इसकावकी गुरबावा तावत बहने गयी कोषा कि  
 जयके पीरबुनकप्यकी या इसकाय-विरोधी बलबुद्धा मन्त्र कर दिया जाने  
 दिनुकी और बुद्धकावकी तब येर कर दिया जाने बुद्धकावकीपीर  
 बकावकाव कावकाव किने जाने मन्त्रा बकावके कर जाने जाने उनके  
 काव बुद्धा और हीनकाव कावकाव किया जाने उनके को कोरे-ने की  
 पालियमन्त्र है कर्ण बुद्धा दिया जाने राज्य-नेपत्ते कर्ण मन्त्र रका  
 जाने को कावके ही निबुद्ध है कर्ण कीने जाने कर्ण-कर्ण बुद्धा कर  
 दिया जाने उनके स्थानमें बुद्धकावकीकी निबुद्ध किया जाने और राज्यमें  
 बुद्धकावकीकी बकाव काविक और बकाव विरुद्ध कर के बहावा जाने ।  
 वे कर कर्ण की राज्य-विरोधी कावत वे । दिनु काविक बह इसकाव  
 विरोधी नहीं था कि वे दिनु है बकाव इसकाव कि कर्ण की तब और  
 बकाव बकावके कारण इसकाव और बुद्धकावकीकी निबुद्ध कावके है ।  
 वे के कर्ण दिनु कर्णके निबुद्ध की वे । निबुद्ध काव स्वयम और काविका  
 काव था वे कर्णके निबुद्ध बकाव काव ही वे । इसी कावके कर्ण बुद्धा-  
 बकावकीका एक काविक निबुद्ध किया कि वे बकाव बुद्ध कावकी  
 बकावकी पीठि-विरोधी काविक लंकाव कर, काव बकाव ही बकावकाव  
 काविक बुद्धिक काव-विरोधी कावकाव काव । कर्ण के बकाव बुद्धा-काव  
 बकाविक पेकी बकाव बकावकाव मन्त्र कर दिया की इसकावकावकाव व की  
 मन्त्रा विरुद्ध पीरके बकावकाव तुल्यकाव कावकाव रकाव इसकाव ।  
 राज्यारोहण निबुद्धिक कर्णके तथा कर्णका वकाव काविक काविककीकी काविक  
 काविकर निबुद्ध काव किया । बकाव और बुद्धावकाविक काव दिया निबुद्ध  
 और बुद्धकावकी हीनकाविक किया और पीरबुद्धा व पीरके बकाविक  
 निबुद्धिका काव निबुद्ध किया । बुद्धकाव कावकावकी हीनकाव काव

राज्यकरसे मुक्त कर दिया गया। जो हिन्दू अपना धर्म-परित्याग करके मुसलमान बन जाते उन्हें पुरस्कृत करने और राज्यकी नौकरी देनेकी व्यवस्था की। हिन्दुओंको राज्यसेवासे वंचित कर दिया गया और एक फरमान निकाला कि महकमें-मालमें यथासम्भव केवल मुसलमानोंकी ही नियुक्ति की जाये। महाराज जयसिंह और जसवन्तसिंह-जैसे शक्तिशाली हिन्दू मरदारोंका अंत करना शुरू कर दिया। सभी मुसलमानेतरोंपर जजिया कर लगा दिया। हिन्दुओंके धार्मिक मेले बन्द कर दिये और उनके होली, दिवाली आदि त्योहारोंका खुले रूपमें मनाया जाना बन्द कर दिया। जाट, सिख, सतनामी, राजपूत, मराठे आदि हिन्दुओंके जिम धर्गने भी जहाँ विद्रोह किया उन्हें निर्दयतापूर्वक कुचल दिया गया और इन विद्रोहोंको क्रूर धार्मिक अत्याचाराका अवसर बनाया गया। हिन्दुओंके समस्त मन्दिरों, विद्यालयों एवं अन्य धर्मायतनों और सांस्कृतिक संस्थानोंको नष्ट करनेके लिए एक आम आज्ञा जारी कर दी गयी। हिन्दुओंके तीव्र विरोधपर धनारस फरमान-द्वारा इस आज्ञामें यह संशोधन कर दिया गया कि पुराने मन्दिरोंको रहने दिया जाये किन्तु नवीन मन्दिर कोई न बनाया जाये और जो बन रहा हो उसे गिरा दिया जाये। राजा जयसिंह एवं जसवन्तसिंहकी मृत्युके उपरान्त यह संशोधन फिर वापस ले लिया गया और अनेक प्राचीन भव्य मन्दिरोंका विनाश करा दिया गया। जहाँगीरके समयमें बीरसिंह बुन्देल-द्वारा ३३ लाखकी लागतमें निर्मित मथुराके अप्रतिम केशवदेव मन्दिरका, काशीके प्राचीन विश्वनाथ मन्दिरका तथा अयोध्या आदि अन्य अनेक स्थानोंके प्रसिद्ध मन्दिरोंका ध्वंस करके उसने उनके स्थानमें उन्हीं स्थलोंपर मसजिदें निर्माण करा दीं। हिन्दू आदिकोंके धर्मप्रचार, धार्मिक शिक्षा और उन्मुक्त धर्मपालनपर कड़े प्रतिबंध लगा दिये। मस्कृत और हिन्दी साहित्यका तो प्रश्न ही क्या, उसने फारसी साहित्यके सृजनको भी हतोत्साहित किया, यहाँतक कि इतिहास-ग्रंथोंके निर्माणपर भी कड़ा प्रतिबंध लगा दिया। खफ़ोख़ाँ आदिके छिपाकर लिखे गये इतिहास,

[illegible]

डिप्टी-मास्ट्रिस्ट के बहाल में केवल बिहारी देव कुचन बंटीदास खाँदे  
हमी काममें हुए । ऐतिहासिक दिनु कबिलीमें अथ- मृगार एतदा मीठ  
हो अर्थात् बिदा और राधा-रईधोकी बिबाहिनाथ दूजमें बहालदा हो ।  
इसके निरुपण बीजा बंटीदास बालनवन बंटीबिदास बिबबिदास  
मालीचन देव बंटीदास अवनगल डिप्टीमास्ट्रिस्ट बीबराज खाँदे देव  
कबिलीमें एतद बिपनपुर्ब आध्यात्मिक बिचारोंका बीबन बिदा । इनके  
हाथ बाबिक इनकी अतिरिक्त बीबन बिबबिदास एतद बंटीदास  
नामुनिक एतद एतदबीदा, बलबीन इनके खाँदे एतदपुर्ब अतिरिक्त  
बल भी एते बी । बाबदा बिबबी बीब बंटीदास ( १९७५-९८ ई )  
में अवन ९७ एतदाई बी बी इनके बिबाहदास बंटीबिदासमें बंटीदास  
हुई । अथार्थ बंटीबिदास ( १९९१-९८ ई ) एतद बाबि बिबबि बिबबी-  
के अकाश बिदा बी डिप्टी मास्ट्रिस्ट कबिलीकाके अतिरिक्त बीबदास  
बाबमें इनमें अवन ९ बीबी-बी अवन का बल एते बाबमें बाब  
है । बंटीपुर्बके अवन अवनबी बी बी बीबदास बाबबिदासके बिब एतद-  
बलमें अवनबी नामक बीबबिदास बाबीन अवन का बाबबिदास एते  
आकाश बी बी । इतिहासके बिबबिदास मुरीनपुर्ब खाँदे बंटीदास  
बाबके बिबदा बी अवनबी अवन बी अतिरिक्त बीबदास बाब

थे। साहिजपुर-निवासी कवि विनोदोलाहने जिन्होंने कई ग्रन्थोंकी रचना की है, अपने श्रीपालचरित्र ( १६९० ई० ) के अन्तमें लिखा है कि 'उस समय औरंगशाह धलोका राज्य था जिनने अपने पिताको धन्दी बनाकर राज्य पाया था और चक्रवर्तीके समान समुद्रमें समुद्र पर्यन्त अपने राज्यका विस्तार कर लिया था।' कोई विनाश नवीन मन्दिर जैनाया उस काममें नहीं बना, कुछ प्राचीन मन्दिर तोड़े भी गये होंगे किन्तु किसी प्रसिद्ध मन्दिरका ध्वंस या तोषका विनाश नहीं किया गया प्रतीत होता। आगरा और दिल्लीमें कित्नाके निकट ही उस तालरू पूर्वके बने हुए विशाल जैनमन्दिर सुरक्षित एवं विद्यमान रहे। दिल्लीके शाहजहाँकालीन उद्द मन्दिरमें दोना समय पूजन आरती आदिके अवसरपर गाय बजते थे। औरंगजेबने उनका निषेध किया। कहा जाता है कि बाजे फिर भी बजते रहे और औरंगजेबने अपनी निषेधाज्ञा वापस ले ली। अहमदाबादके जोहरो धान्तिदासको, जो शहजादे मुरादका कृपापात्र रह चुका था, औरंगजेबने आगरे बुलाकर रक्षा और उसने अपना दरबारी नियुक्त किया। फन्नडी मायाकी एक प्राचीन विरुदावलोके अनुसार औरंगजेबने कर्णाटकक एक दिगम्बर जैनाचार्यका भी आदर-सत्कार किया था।

राजस्थानमें तो जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, धोकानेर, बूंदी, जैसलमेर आदि प्रायः सभी राज्योंमें हिन्दुओंके साथ-साथ जैनों भी पर्याप्त उन्नत-वस्थामें थे। मेवाड़के राणा राजसिंहका प्रधान दोवान सघवी दयालदास था। कर्नल टाडके कथनानुसार 'वह अत्यन्त साहसी और चतुर था, मुगलोंके अत्याचारोंका बदला लेनेकी प्यास उसके हृदयमें सदा प्रज्वलित रहती थी। उसने तेज घुडसवार सेना साथ लेकर नर्मदासे वेतवा तक फैले हुए मुगलोंके मालवा प्रांतको छूटा, सारंगपुर, सरोज, देवास, माण्डू, उज्जैन, चन्देरी आदि नगरोंको विजय किया, किसी मुसलमान शत्रुको क्षमा नहीं किया तथा काजी-मुल्लाओं और उनके धर्मग्रन्थ कुरानको भी न बख्शा। उसकी प्रचण्ड भुजाओंके सम्मुख कोई शत्रु नहीं टिकता था। लूटका यह

विपुल धन काकर उठने लगे स्वामी छायाही बन्य किया। दरबार  
 धमधुमार बसविहारे बाब केकर बिछीरके निकट बहुरारे बाबकी धार  
 केनाको बपकित किया कलकलन बाबकी बलकर रचबगरीरने धर  
 केनी पटी। ये बहुरारे बीरबनेके पकपुठ मुठ ( १९७९-८१ ई ) की  
 ॥ रजापुठ बगनीना की था। उठने 'पककलनी' पकके निर  
 दरबार बहिराकका एक ठिकेनुका बीरबनेका बिछाक बगिर के  
 बकनाका था १९९९ ई में बहापुठ पकविहल एक बरनाक धारै किया  
 था बिहके धार पकके बह बहार बगके बरपटी धनिधे और बीर-  
 की बाब धा बने के कि बापीन बाबके बीरके बहिरने और लपनीकी  
 की बह बगिराक किया हुआ है कि बीर धुपुठ बगकी बहके बीर निरी  
 बापीन बग ब करे, बह उनका पुठपुठ बह है और बल किया बने।  
 बी बीर बर था बाब बग होनेके बिह इनके बगके बिछाके के बाब  
 बाब है बह बगर हो बाब है, बगका बग बह किया था बग।  
 बीरके बिछाके बगके बर बग केनाके बिनी पकपुठ मुठे था बाबके  
 बने बह और बरपनीकी की पककनीकी बह ब बग बने। बाब-  
 में बीर पकपुठ मुठ। बगके बिह बाब की हुई बग धा बगके  
 बिछाक इनके बगके बाब पुठपुठ बगके बह। बह बरनाक बीर बीर  
 बाबकी किया बग किनी बाब की बहुराक बगपुठ की बिछा बग।  
 बीरके बहापुठ बगपुठ बिह पकपुठ बीर बगपुठ मुठके बीरके  
 बगपुठ बीरनाक बगका था। बीरकी पुठके बाबके बीर बीर बीर। होनेके  
 बाब-बाब बहुरा बिछाकनाक की था। बने १९९९-९९ ई के बीर  
 पकपुठके बने बहुरा बाबके बह बिछाक बिछाक बग 'बाब की  
 रचना की। बह पुठपुठकी पकपुठके बगपुठके बहुरा है और  
 बगकी बाब बह बीरकी बाबके-बाबकी। बीरकी बाब एक बगुर्न बि-  
 हानिक बीर है। बीरकी बाब बीर पुठपुठ बहापुठ बाबके  
 बीरकी था और पुठ बीरके-बीर बने बाब बीरके-बीर बिछा बाबके

युद्धमें घायल हुआ था। रघुनाथ मण्डारी जयवन्तसिंहके पुत्र महाराज अजीतसिंह (१६८०-१७२५ ई०) का प्रधान दीवान था। जैसलमेर राज्य में एक विशाल जैन ग्रन्थ-भण्डार था। बीकानेर-नगेश राजा अनूपसिंह जिनचन्द्र सूरिको गुरुवत् मानता था। महाराज जयसिंहके समयसे ही आमेर राज्यकी नवीन राजधानी जयपुर जैनोका एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बनना प्रारम्भ हो गयी थी। बुन्देलखण्डमें ओढ़छाका बुन्देलानरेश बीरवर छत्रमाल भी जैनधर्मके प्रति अति उदार और महिष्णु था। जैन मन्दिरों एवं तीर्थोंके सुरक्षण, उन्हें दानादि एवं प्रश्रय देनेमें वह तत्पर रहता था। १६५९ ई० के, जेरठके चन्द्रप्रभ चैत्यालयमें वस्त्रपर लिखे गये, एक सचित्र प्रशस्ति-पत्रसे ज्ञात होता है कि उस कालमें जैनी बुन्देलखण्डके राज्योंमें प्रतिष्ठित थे और निविधन धर्मपालन करते थे।

**मराठोंका उत्कर्ष** १७वीं शती ई० के उत्तरार्धकी एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है और मुगल-साम्राज्यके पतनका सर्व-प्रधान कारण। दक्षिणाप्यका पश्चिमी घाटकी पहाडियोंसे निर्मित वह उत्तर पश्चिमी भाग जो प्राचीनकालमें रट्टिकों और तदनन्तर राष्ट्रकूटोंका केन्द्र रहा था और पूर्व-मध्यकालमें जिमपर देवगिरिके यादवोंका राज्य रहा था तथा मुसलमानी कालमें जो बीजापुर, अहमदनगर और गोलकुण्डा राज्योंके अन्तर्गत पड़ता था, महाराष्ट्र या मरहट्टा देश कहलाया। छोटे क्रिदके श्यामवर्ण, दलित, फुरतीले, परिश्रमी, चतुर और चालाक मराठे ही इस प्रदेशकी जन सस्याका बहुभाग थे। उनमें-से अधिकतर खेतिहर और शेष गाँवोंके पटेल आदि मुखिया थे। उनके अतिरिक्त चतुर्थ-पंचम जातियोंमें परिगणित मोदी धनिये, मजदूर आदि थे जिनमें-से अब भी बहुत-से जैन थे। काकणके चित्तपावन ब्राह्मण भी जो अपने-आपको मराठोंसे भिन्न प्रकट करनेके लिए दक्षिणी कहते हैं, इस प्रदेशमें बढने लगे थे।

राष्ट्रकूटोंके ही नहीं, उत्तरवर्ती चालुक्यों, होयसलों एवं यादवोंके





सरल छ'दोंमें अपने उपदेशों द्वारा महाराष्ट्रके निधानिमात्री एकता, विधर्मों  
 मुसलमानोंके अत्याचारोंमें स्वधर्म, स्वजातिकी रक्षा करनेकी एकोद्देश्यता,  
 प्राचीन भारतीय धर्मयोरोधी गोरख गायकों नुनाकर हीनता, निराशा एवं  
 हतोत्साह—जैसे भागीरथी बहिष्कार आदि मनोवृत्तियाँका पोषण किया और  
 उनके धर्म जागतिकी एक लहर देशमें फैलनी आरम्भ कर दी। विजयनगरके  
 महान् हिन्दू साम्राज्यका अमानुषिक अन्तःलोकाकी स्मृतिमें गजोबधा—विजय  
 नगर परम्पराके उत्तराधिकारी चन्द्रगिरिने राजा तो अभी भी स्वतन्त्र बने  
 हुए थे। आक्रांता धर्मशत्रु मुमलमानोंके क्रूर शायति स्वधर्म, स्वजाति और  
 स्वदेशकी रक्षाके लिए तीन मो चर्प पर्व शायमल, यादव, यकातीय आदि भार-  
 तीय राज्योंके क्रूरतापूर्ण अन्तर्में प्रेरणा पाकर जिस प्रकार सगमके धीरेपुत्रोंने  
 सफल प्रयत्न किया था, क्या अब कोई अन्य भारतीय वीर बैठा तो नहीं  
 पर सकता ? यह प्रश्न लोगोंके हृदयमें उठ रहा था। पिछले ५०-६०  
 वर्षोंसे उत्तरके मुगल सम्राट दक्षिणके मुमलमान राज्योंपर निरन्तर  
 आक्रमण कर रहे थे और इस कालमें ये दक्षिणी मुमलमानी राज्य पहले-  
 जैसे असहिष्णु एवं अनुदार नहीं रहे थे, किन्तु अब औरगजेवके रूपमें जो  
 एक सर्वाधिक प्रबल मुमलमानसत्ताके नवीन आक्रमण एवं अत्याचार  
 प्रारम्भ हो रहे थे वे पूर्व कालके अत्यन्त धर्मांध मुसलमानोंके अत्याचारोंका  
 भी अतिरेक कर रहे थे। दक्षिणकी अपनी सूबेदारीमें उसने यह स्पष्ट कर  
 दिया था। फिर यह स्वयं सम्राट् हो गया और उसने अपनी हिन्दू-विरोधी  
 नाति उन्मुक्त रूपसे कार्यान्वित की। दक्षिणसे उसकी सेनाएँ भी एक  
 सणके लिए न हटीं। ये सब कारण और परिस्थितियाँ थीं जो इस्लामकी  
 इस विनाशकारी प्रगतिका सफल प्रतिरोध करनेवाले उपयुक्त नेताकी  
 माँग कर रही थीं। और मराठा योग शिवाजीके रूपमें वह नेता आ  
 उपस्थित हुआ।

अहमदनगर सुल्तानकी सेवामें मालोजी भोसले नामका एक छोटा-सा  
 मराठा सरदार था। शिवनेरका दुर्ग उसकी जागीर थी। उसके पुत्र

मुगल-साम्राज्य—अधोगत

पाण्डवी जीवकेने जीव कर्तव्य थी। निरामपायीके अन्तिम दिनोंमें तो अपने  
 ब्रह्म ज्ञानी मुन्यादे रीतकी भी परवाह न करके अपने ब्रह्म स्वामी  
 पाण्डवी जीवकेने अपने रम्येका असीरवकर्म किया था। अन्त-विद्वान्  
 इन्द्रादीनेर समन जीवापुरने मुन्यानकी भीरवी का थी। आम्बर  
 वासिन्पाण्डवी मुन्या काय मुद्रिमान् जीव कर्तव्य था। राक्षसेकाये दिगुबोरी  
 उभन भागी होल्पायन किया था। राग पाण्डवी आनन्दा ब्रह्मा एक उभन  
 अन्तर्गत हुआ था जीव उभे मुवाकी कायी निमी १६२ ई. ई. विद्वान्  
 के पुनर्वा पाण्डवीकी कायी जीवाकाये विवाकीकी काय किया। जीवाकाये  
 स्वर्ण एक आनन्द उभन कायन अन्तर्गत काय कायी कायी अन्तर्गत एवं  
 विद्वान् थी। पुनर्वा अन्तर्गत काय काय मुद्र पाण्डवी कीर्तनेके अन्तर्गत  
 कायने विवाकीका कायकाय जीवा जीव विद्वान्-वीर्य हुई। विवाकीकी  
 विवाकीका काय काय कायि हुई थी। काय पाण्डवी मुद्रिमान्  
 थी काय-ही-काय उभने निमुका अन्तर्गत थी। कायके अन्तर्गत काय अन्तर्-  
 गत काय जीव कर्तव्य अन्तर्गत काय कायके काय पुनर्वा पुनर्वा  
 जीव काय विवा जीव कायी अन्तर्गतकायी कायेनि विद्वान् काय  
 काय अन्तर्गत कायके अन्तर्गत काय अन्तर्गत निवन्तर्गत विद्वान् एवं  
 अन्तर्गत कायके कायके काय जीव कायकी काय कायकी काय निमी।  
 विद्वान् काये काये पाण्डवीका काय काय मुद्र-कायुर्वा अन्तर्गत निमी थी। अन्तर्गत  
 काय-काय जीव विद्वान् १६-१८ वर्षकी कायने विद्वान् काय जीवकाय  
 कायनेर काये अन्तर्गतकायी पुनर्वा अन्तर्गत जीव काय एवं कायकी  
 हीकाय एवं काय-काय विद्वान् कायेकाये अन्तर्गतकाय अन्तर्गत हुआ। काय  
 हीकायी मुन्या स्वाभाविक अन्तर्गत काय काय एवं अन्तर्गतकाय कायके  
 कायकाय अन्तर्गत थी विवाकीकी पुनर्वा काय काय काय कायकाय  
 अन्तर्गतकायीकायकी जीव काय अन्तर्गत काय काय।

इन विविध लक्षणोंके विविध एवं विवाकाय कायकाय काय जीव काय  
 कायने १६-१८ वर्ष की कायने ही अन्तर्गतकायके विद्वान् अन्तर्गत

कर दिया। उसने पूना में ही रहते हुए आस-पास के अपने समवयस्क भावले लडके एकत्र करके उनकी एक छोटी सेना सुगठित की और १६४६ ई० में १९ वर्ष की आयु में ही निकट के तोरनदुर्ग की आदिलशाह के किलेदार से छीनकर हस्तगत कर लिया। इस विजय से उत्साहित होकर उसने शनै-शनै अपनी पूना की पैतृक जागीर का विस्तार एवं शक्ति बढ़ानी प्रारम्भ कर दी। भावले बड़े सादे, तगड़े, चतुर और पहाड़ी एवं जंगली युद्धों में अत्यन्त निपुण थे। अतएव एक-एक करके शिवाजीने अनेक दुर्ग हस्तगत कर लिए और कुछ नवीन भी निर्माण कर लिये। शाहजहाँने १६३३ ई० में अहमदनगर राज्य का अन्त कर दिया था और उसके पुत्र औरंगजेब ने दक्षिण की अपनी प्रथम सूबेदारी (१६३४-४४) में अवशिष्ट बीजापुर एवं गोलकुण्डा राज्यों को एक पल शान्तिकी साँस न लेने दी थी। इस परिस्थिति में शिवाजी का लडकपन बीता था और उसके भावी कार्य-क्रम की योजना बनी थी। पूना के निकटवर्ती ये दुर्ग राजधानी बीजापुर से दूर थे और औरंगजेब उत्तर की ओर वापस चला गया था। शिवाजी का पिता शाहजी सुलतान का प्रभावशाली आमात्य था, अतः छल-बल, धूस और सिकारिश आदिके प्रयोग से शिवाजीने इस अवसर का लाभ उठाया और साथ ही वह बीजापुर दरवार की ओर से उपेक्षित रहा। इसी बीच में शाहजी से सुलतान रुष्ट हो गया और उसे बन्दीगृह में डाल दिया अतः कुछ समय के लिए पिता की सुरक्षा के खयाल से शिवाजी शान्त रहा।

१६५३ ई० में औरंगजेब फिर दक्षिण का सूबेदार होकर आ गया। सुलतानों के उससे उलझे रहने के कारण शिवाजी को अवसर मिला और उसने अपनी शक्ति और अधिक बढ़ानी प्रारम्भ कर दी। अब उसने चवरा एवं समृद्ध कोंकण और कोलावा आदि प्रदेशों पर भी आक्रमण किये और १६५५ ई० में जामोली के राजा को, जिसने सुलतान के विरुद्ध युद्ध में उसका साथ देना स्वीकार नहीं किया था, मार डाला। अतः सुलतान अब सहन न कर सका और १६५८ ई० में औरंगजेब के आगरे की ओर

सुगल-साम्राज्य—अधोगत

रचना होने ही बीबापुरीने विवाहोके समयकी घोषणाई करने लगी ।  
 बहाल मायूका मरवाहोकी ही विवाहीन का ही मार कयासा का: १९९९  
 ई में पञ्चवत्सही नामके एक बड़े बगवारकी विद्यान्त हीनाके साथ विवाहोके  
 पक्ष जानके लिए भेजा गया । बिन्नु विवाहीन जाने कन-बन-बोदने  
 बहवन्ना दब कर दिया उसके माथके ठोराके बीबापुरकी मयारी  
 फिर-बिगर कर विवाहोके कनकी बिनुक मुझ-बान्नी इस्तफा कर ली ।  
 जब विवाहोके रीतिरि कलित होर काठक काड़ी बर बने, गई मुन  
 प्रवेसमें ही काँरे मारने लगा बीबापुरकीने हा विवाहोकी बोछे इतना  
 ही हो डेरे में मुहम्मद कारिमखानका मृत्युके बाद कहीं लाल बान्नी  
 स्थिति रीजाहकी कलिन हा यही का बिन्नु बीबापुरके विवाहोकी मुहम्मद  
 कान व कर बकला का । इकने बनेने यमा बगव काउलाहोके विवाहो  
 का समय मारनेके लिए भेजा । बिन्नु का काउलाहो मुनके मृत्युके  
 काउलाहो वहा की यही का विवाहोकी काना मारकर बकली मुनके वी,  
 बगव हाव बगव कर कान कया १९९४ ई में विवाहोकी मुनके  
 कनकाहोकी मुनके वहा मुन । जब कारंवेकने पहावे मुनका और  
 काउलाहो कनकाहोके वहाके विवाह भेजा कनकाहोकी मुनके वहा मुन  
 और मुनकाहो काउलाहो केकर कलिन विवाहोकी काउलाहो कनकाहो  
 कर दिया । १९९९ ई में काउलाहो कनकाहो विवाहोकी काउलाहो नि  
 काउलाहो विवाहोका करवा कया है और कनकाहो-काउलाहो नि के  
 कनकाहो की रका व करवा । का: वहा कनकाहो मुनके वहा मुन  
 काउलाहो काउलाहो वहा कनकाहो वहा कनकाहो निवा काउलाहो  
 काउलाहो वहा कनकाहो वहा कनकाहो वहा कनकाहो निवा काउलाहो  
 मुन कर दिया । जब मुनकाहोके काउलाहो कनकाहोहोके कनकाहो निवा  
 भेजा कया बिन्नु के बीबापुरी (१) कनकाहो मुन केकर कनकाहो निवा निवा  
 निवा ही करे, कलिन काउलाहो कनकाहो-मुनकाहो कनकाहो कनकाहो कनकाहो  
 की विवाहो की और एक बीबापुरी कनकाहो कनकाहो कनकाहो कनकाहो ।

रायगढ़का नवीन दुर्ग-निर्माण करके शिवाजीने अपनी राज्य सत्ता अत्यंत प्रबल प्रकाशित की। अनेक दुर्ग और विस्तृत प्रदेश उसके अधिकार में पड़े। १६६७-७० ई० तक उसने अपने राज्यके आन्तरिक शासन-प्रबंधको व्यवस्थित किया। १६७० ई० में उसने खानदेशपर घावा किया और चोप वसूल का तथा भविष्यमें भी दिये जानेके लिखित वचन स्वीकृत किया। अग्रे सूरतको फिर लूटा और अंगरेजोंको कोठीसे विपुल धन प्राप्त किया। १६७४ ई० में उसने रायगढ़ दुर्गको अपनी राजधानी बनाकर उसीमें प्राचीन प्रथाके अनुसार समाराह-पर्वक अपना राज्याभिषेक कराया और छत्रपति महाराज शिवाजीके नामसे सिंहासनारोहण किया, तथा अपना राज्य सर्वत्र प्रचलित किया। १६७६ ई० में महाराज शिवाजीने अपनी सुदूर दक्षिणकी विजय यात्रा की और गालकुण्डा पहुँचकर वहाँके सुल्तानको अपना अनुवर्ती बनाया। अजिंठा, वेल्होर, वेल्हारी आदि दुर्गों और प्रदेशोंको अधिकृत करता हुआ वह बीजापुर पहुँचा और वहाँके सुल्तानके साथ भी उसने मैत्री सन्धि कर ली। यह यात्रा अत्यन्त सफल रही। अब शिवाजी दक्षिण भारतका एक स्वतन्त्र एवं सर्वाधिक शक्ति-शाली नरेश था। बीजापुर और गोलकुण्डाके सुल्तान उसका मुंह निहारते थे। उनको साथ लेकर उसने मुगलको देशसे बाहर निकाल देनेकी योजना बनायी। औरंगजेब सीमान्तके अफगानों, साम्राज्यमें होनेवाले अथ विद्रोहों और राजपूत-युद्धोंमें उलझा रहनेके कारण कुछ न कर सका और और शिवाजी अपनी शक्तिके सिखरपर तथा अपने लक्ष्यके निकट पहुँच गया। १६८० ई० में शिवाजीको ५३ वर्षकी आयुमें मृत्यु हो गयी।

औरंगजेब उसके एक वर्ष उपरान्त दक्षिणमें आ पाया। शिवाजीका उत्तराधिकारी उसका पुत्र शम्भाजी (१६८०-८९ ई०) हुआ। वह वीर और योद्धा तो था किन्तु क्रूर, दुराचारी और विलासी भी था। अपने पिता-जैसा चरित्र, आदर्श और बुद्धिमत्ता उसमें न थी। विद्रोही शाहजादे अकबरको उसने आश्रय दिया था। शिवाजीकी सफलता और इस प्रबल

[illegible][illegible]

एव प्रभावोत्पादक था, मनुष्यकी पहचान भी उसे अद्भुत थी। अर्धसन्ध  
 अतिक्षिप्त हीन भावलोंको उसने दुर्दूर योद्धा बना दिया था। उसका नैतिक  
 संगठन अति उत्तम था। उसका विशाल एव दक्षितशास्त्री सेनामें स्त्रियोंके  
 रहनेका सर्वथा निषेध था। नौ-शक्तिका निर्माण करनेवाला भी मध्यकाल-  
 में वही प्रथम भारतीय नरेश था। देशका शासन प्रबल सुचारु था। अष्ट-  
 प्रधान नामक आठ प्रधान अमात्याके मन्त्रिमण्डलकी अध्यक्षतामें प्राचीन  
 भारतीय एव मुगल दोनों शासन-पद्धतियोंके उचित सम्मिश्रणसे अपनी  
 शासन-व्यवस्थाका उसने विकास किया था। शत्रुको क्षमा करना वह नहीं  
 जानता था, छल-धलसे जैसे बने उसका दमन करके ही दम लेता था।  
 अपनी आवश्यकताके लिए लूट पाट करके धन लेनेमें भी उसे कोई सकोच  
 न था। किन्तु किसी महिलाका कभी अनादर या अपमान वह नहीं करता  
 था चाहे वह कितने ही कट्टर शत्रुसे सम्बन्धित क्यों न हो। गो, ब्राह्मण  
 और हिन्दू धर्मको रक्षा उसका नारा था तथापि वह सभी धर्मोंके प्रति  
 उदार और सहिष्णु था और उनका आदर करता था। जन आदि अहिन्दू  
 भारतीय धर्मोंका तो प्रश्न ही क्या वह मुसलमानोंकी मस्जिदोंका, कुरानका  
 एव उनके धर्मका भी आदर करता था। शत्रुके रूपमें मुसलमानोंपर उसने  
 चाहे जो अत्याचार किये किन्तु धार्मिक अत्याचार कभी किसीपर भी नहीं  
 किया। स्वयं उसके मराठा-राज्यमें जैन विद्यमान तो थे, किन्तु उनकी स्थिति  
 अति गौण, हीन एव अनुल्लेखनीय हो चुकी थी और अब मराठा राज्यके  
 ब्राह्मणोंने उन्हें उमरने नहीं दिया। किन्तु सुदूर दक्षिणके दक्षिणी कर्णाटक,  
 तुलुब एव तमिल प्रदेशोंमें अब भी मैसूर, भट्टकल आदि उनके दर्जनो छोटे-छोटे  
 राज्य, श्रवणबेलगोल-जैसे महान् तीर्थ और जैनविष्ट्री, मूढविष्ट्री आदि अनेक  
 महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक केन्द्र सन्तत दशामें फल-फूल रहे थे। नाना प्रकारके  
 बाह्यान्तर अत्याचारों एवं विरोधी परिस्थितियोंके कारण पहले-जैसी  
 उनको दशा नहीं रही थी फिर भी वे प्रायः अच्छी दशामें विद्यमान थे।  
 कन्नड़ भाषामें कितने ही श्रेष्ठ जैनग्रन्थ इस कालमें भी रचे गये।

मुगल-साम्राज्य—अधोगत



## अध्याय ४

भरावकता कथ ( १७०७-१८५७ ई० )

बीरबरोदकी मुम्बुके बाप ही मुम्बु काकागलकी बहुता बीरब बीर  
 उतागल ही कल गही हुवा भाणीव इतिहासके मध्यकाका को कल हो  
 गया । इन्ध ही गही गीत लम्बुर्न कालमें मुम्बुकागल गलगलिका को  
 गलगल हो गया । मुम्बुकागलके गलगल-अवेयके कलगलकालमें ग्लु हुवा  
 एवं ग्लुकेके गलगल उतागल दिनु मुम्बुकागल मुम्बु का । १२ १ ई १७०७ ई०  
 गलगलके गीत-ही गलगल मुम्बुकागलका कलगलकालमें मुम्बुकागलके गीत-ही  
 गलगल ( १७५१-१७०७ ई ) ही गीत के कि गीतमें गलगल एक कलगलकी  
 एक-मुम्बुकागल कलगल गीत, मुम्बुकागलकी मुम्बुकागल की बीर कलगल  
 कलगल एवं गीतके गलगल गीतके गलगल कलगलकी गीतकागल गीत का ।  
 एक गीतमें को कलगलके कलगलकागल गलगल कलगल एक-ही गीतकागल  
 गीत का गीत कलगल कलगल कलगलकागल गीतकागल कलगलकागल कलगल  
 ई । एक मुम्बुकागल गीतके गीतकागल गीतकागल एवं गीतकागल कलगलकागल  
 कलगल ही बीर गीत कलगल कलगल एवं गीतके गलगल गीतकागल गीत  
 का । इन्ध उतागल गीत कलगल कलगलकागल ई बीर गीतकागल कलगल  
 कलगल बीर गीतकागल गीत कलगल कलगलकागल बीर गीतकागल ई । कलगल  
 कलगल गीतकागल गीतकागल एवं गीतकागल गीतकागल गीतकागल कलगल  
 कलगल बीर न गीतकागल कलगलकागल गीतकागल कलगल कलगल ई  
 कलगल, गलगल कलगल गीतकागल गीतकागल गीतकागल बीर गीतकागल  
 गीतकागल गीतकागल कलगल एवं कलगलकागल गीतकागल, गीतकागल एवं गीतकागल

मात्र कोई जातीय या धार्मिक भेद नहीं रहा और देशकी सम्पूर्ण जनताका सहयोग और सहभाग प्राप्त करनेका प्रयास किया। उन्होंने धर्म हितका स्वयं अपना निजका या पुनर्लभार्थ मायका अर्थन इत्यादि ही दित नहीं समझा परन्तु उमे सम्पूर्ण भारतका और मानविय धर्मों एवं आर्थियोंमे निमित्त अग्निव जातीय जातका जित माननेका प्रयत्न किया। अतएव उपरोक्त मध्यकालीन म्यण्डुगका निर्माण भारतके अन्तर और नदारमना भारतका मयाटोके तथा आश्रयमे भारतकी हिन्दू, जैन, मुसलमान सभी जनतामे तथा उनके सभी गणों वितरन सम्पादित किया था।

किन्तु औरगठेदकी विद्वेष एवं पक्षापाठपर आधारित पुनीतिने न स्वयं उसका जीवनमे ही उक्त स्वर्णयुगका तो अन्त कर ही दिया वरन् स्वयं मुसल साम्राज्यकी नींवकी दत्ता खोलला और उसके शरीरकी दत्ता जजर कर दिया कि उसकी मृत्युके उपरान्त ही यह दुस वेगमे माय पतनके मन्मीन गह्वरमे डूबने लगा और अपने साथ सम्पूर्ण देशकी भी ले दूया। आगामी द्वादशी वर्ष ( १७०७-१८५७ ई० ) का बाल भारतीय इतिहासका अन्धकार युग है, इसलिए नहीं कि उस कालके सम्बन्धमे हमें कुछ ज्ञात नहीं है वरन् इसलिए कि जो कुछ ज्ञात है उससे हमारे मन्मक लज्जास झुका जाते हैं। इस पूरे कालमे अराजकता, अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, विनाशिता, लूट-मसोट, मार काट, पट्टमन् और विद्वामघात, परस्पर पूट और वैमनस्यका बालवाला था। इन्ही दुगुणा एवं दूषित प्रयुक्तियोंस उस कालका सम्पूर्ण इतिहास भरा पड़ा है। देशकी राजनैतिक एकमूनता और संगठन ही नष्ट नहीं हो गये थे और उनमे स्थानमे अव्यवस्थित विकेन्द्रीकरण और विष्ट-मनता ही उत्पन्न नहीं हो गयी थी वरन् सम्पूर्ण देशका उत्तरोत्तर घोर नैतिक पतन होता चला गया। जिस हिन्दू पुनरुत्थानके नेता एवं पुरस्कर्ता मराठा वीर शिवाजी, सिध्दगुरु गोविन्दसिंह, जाट नेता गोकुल, मेवाड़के राणा राजसिंह और उनके प्रमाण दाह दयालदाम संघवी, मारवाड़के

अराजकता काल



अल्पस्थायी बल प्राप्त करनेवाला राजस्थान, मराठा शक्तिको चरम-शिखर-पर पहुँचाकर डुबा देनेवाले पशवा और उनके भोसले, गायकवाड, होल्कर, सिन्धिया आदि सगदार जो अपने स्वतन्त्र राज्य जमा बैठे किन्तु उस स्वतन्त्रताकी भी रक्षा न कर सके, भरतपुरके जाट, पंजाबके सिख जिन्होंने रणजोतसिंहके नेतृत्वमें चरमोत्कर्ष प्राप्त किया किन्तु उसको मृत्युके साथ ही परामृत भी हो गये, मैसूरमें हैदरअली और टोपूकी अल्पस्थायी मुसलमान शक्ति तथा पुर्तगाली, डच, फ्रान्सीसी और अंगरेज आदि युरोपीय व्यापारी जिनके व्यापारायं किये गये परस्पर संघर्षमें अंगरेज ही अन्ततः विजयी रहे और फिर भारतको हिन्दू एव मुसलमान शक्तियोंको पारस्परिक फूट, अदूरदर्शिता एव देशकी गम्भीर पतनावस्थाका लाभ उठाकर उसके पूरे भाग्यविधाता बन बैठे ।

**उत्तरवर्ती मुगलनरेश**—औरंगजेबके प्रयत्नोंके बावजूद उसकी मृत्युके पश्चात् उसके पिता तथा उसके स्वयंके द्वारा ढाली गयी प्रथाके अनुसार उसके अवशिष्ट पुत्रों मुअज्जम, आजम और कामबखशके बीच उत्तराधिकार-युद्ध हुआ ही जिसमें आजम और कामबखश मारे गये और मुअज्जमने शाहआलम बहादुरशाह ( १७०७-१२ ई० ) उपाधिके साथ सिंहासनारोहण किया । अपने पूर्वजों द्वारा संचित आगराके विपुल राजकोष-में-से लेकर सरदारों और सैनिकोंमें उसने धन वितरण किया और उन्हें सन्तुष्ट किया । उसके सोभाग्यसे मुनीमख्ता और जुल्फिकारख्ता-जैसे दो सुयोग्य और बुद्धिमान् अमात्य उसे सहायक रूपमें प्राप्त हुए थे । उनके परामर्शसे उसने अजिया-कर उठा दिया । १७०९ ई० में जोधपुर-नरेश अजोतसिंह राठौरके अधिकारको स्वीकार करके और उसे राज्य सेवामें लेकर तथा गुजरातका सूवेदार बनाकर तीस वर्षसे चले आये राजपूत-विरोधका अन्त किया । जुल्फिकारके परामर्शपर मराठामें परस्पर फूट डालनेके उद्देश्यसे शम्भाजीके पुत्र साहूको मुक्त कर दिया और उसे दक्षिणमें जाकर अपनी चाची ताराबाईके साथ राज्याधिकारके लिए लड़नेकी अनुमति दे दी ।

पुनीतार पयोरे कुभेतउण्डक नीर छवमान जादि लणगणगडे पुनीती  
 नररान मे यही पुनराचार कवन कवन कण्डारिण ही जानेर नी कचे  
 कतपविवादिवाकी नररार पुन दीवमान जनेउर एवं मुररविवादे  
 कारण इनम कवन नीर कवन ही ववा कि कात कमुन वारे कनेवाले  
 मुरीवर नीरेउर मरवापी इन कमुने विवाक देवने मरवापी इन बीडे । इन  
 नदीरिण दिनु यीनपने नरानी नुनकमान यीनपीके कात ही यही नर  
 लव नररार नी कद-नदकर कमुन देवकी इनका निरीज निरपन  
 नीर यीन कना निवा कि देवकी कातुमिद ययति कोथे निरर यी  
 ययिण एवं कययिण नीकने कययिण पुपीरिणी कनेउर कर यी  
 इनके मरवा एवं कनेन-कने नद ही नी नीर कवन देव ययिण  
 कनेन पुना बीन यके कनी यही पुना य । इनके कयलिवा कन-कन  
 कयिण ही ववा । पुनचार, कयचार एवं कयचारका कनेन कनेन  
 य । न कोई ययन य न कयन । यय-कय कनी मुरेरे मे नीर  
 कनेने कयिण कयकी-कय कनी मुरे का यी मे । निरकी कनी कने  
 मे मे नीरेउर ही कने-कने कनर कापी नीर देवकी नरपीकयकी ऐनी  
 पुन देविनि कयनेनी कन ही नी नीही यके कने कनी नी न का  
 कनी नी ।

काट देवकी नीके इन कायिण कयनपन इयिण कयनपन  
 निरुनकय, कयलि नीति कन कय कनेन कयिण नीके-नी निरिणी-  
 काय इन नदीकनी नरपीनका नीरिणी कनकी कनेन ही कय-  
 कन कयिण है । इन इयिणके कमुन नान है कयलि पुनने निर  
 पुन कयनपी पुन-नीर कने कयिणही एवं लवनी कयन कयन  
 नीर मुरेदार नी कनर कापी ही कयन यय ववा बीडे निनु कनी नी  
 रवा न नर कने कयिण पुनी नीर कयनका कयकी-नीर मुर  
 एवं कने कय-कयिण मुरे, नीनपुन नीर कयिणही ययके नीरनी

अन्तर्गतों वम प्राप्त करनेवाला राजस्थान, मराठा क्षत्रियों परम गिर-  
पर पहुँचाकर मुका दनवाले येनवा और उनसे मामले, गारवया, होम्बर,  
गिषिया आदि सम्पदा जा जग म्यतय राज्य जमा धँडे विन्तु उस  
स्वतन्त्रताको नो रखा ग मये, भरतपुरक जाट, पञ्जाबके सिख सिन्धाने  
रणजोतसिंहके नेतृत्वमें परमात्मय प्राप्त किया किन्तु उसकी मृत्युके ताम  
ही परागृत भी हो गये, मैसूरमें हैन्दवलों और टोपूकी अल्पन्यायी मुसल-  
मान क्षत्रिय तथा पुतगाणी, रण, पान्नीमी और अंगरेज आदि दुर्रोधय  
व्यापारी जिन्हे व्यापाराय किये गये परस्पर संघर्षमें अंगरेज ही अन्तत  
विजयी रहे और फिर भारतको हिन्दू एव मुसलमान दमितवाको पारस्परिक  
फूट, अदूरदर्शिता एवं देशकी गम्भार गतनावस्थाका लाभ उठाकर उसके  
पूरे भागविभाता बन बैठे ।

**उत्तरवर्ती मुगलनरेश—**ओरंगजेबके प्रयत्नोंके बावजूद उसकी  
मृत्युके पश्चात् उसक पिता तथा उससे स्वयय द्वारा डाली गयी प्रयाके  
अनुसार उससे अवधिष्ट पुत्रा मुमरजम, आजम और कामबख्त धीव  
उत्तराधिकार-युद्ध हुआ ही जिममें आजम और कामबख्त मार गये और  
मुमरजमने शाहआजम बहादुरनाह ( १७०७-१२ ई० ) उपाधिके साथ  
सिंहासनारोहण किया । अपने पूर्वजों द्वारा संचित आगराके विपुल राजकोष-  
में-लेकर सरदारों और सैनिकोंमें उसने धन वितरण किया और उन्हें  
सन्तुष्ट किया । उसके श्रीभाग्यसे मुनीमर्दा और जुल्फिकारखान-जैसे दो सुयोग्य  
और बुद्धिमान् अमात्य उसे सहायक रूपमें प्राप्त हुए थे । उनके परामर्शसे  
उसने जमिया-नगर उठा दिया । १७०९ ई० में जोधपुर-नरेश अजोतसिंह  
राठौरके अधिकारको स्वीकार करके और उसे राज्य-सेवामें लेकर तथा  
गुजरातका सूबेदार बनाकर तीस वर्षसे चले आये राजपूत विरोधका अन्त  
किया । जुल्फिकारक परामर्शपर मराठामें परस्पर फूट डालनेके उद्देश्यसे  
सम्भाजोके पुत्र साहूको मुक्त कर दिया और उसे दक्षिणमें जाकर अपनी  
चाची ताराबाईके साथ राज्याधिकारके लिए लड़नेकी अनुमति दे दी ।

कमलवाचन कराईमें बृहन्मुखा किन्तु क्या नीर से डकहीं बचकन बने । बारबाइने बुनिरझारको ही बखिबका सुबेदार मिमुल कर दिख और डकके स्थानमें बाजबहाईको बहीर मगया । १७१ ई. में बन्ध वीरानीके कैदुलमें दिखाने बसकर पिछे किया और मुकमलनीरर कोड बरबादार लिये । बाजबाइ नीर मृतीबहाईने स्वयं साकर दिखीया सम्य किया । बन्ध वीरानी बचकर बाय दिखया । १७१२ ई.में १९ वर्षकी बासुने बहन्नुराधारीकी मृत्यु हो गयी । यह बुनुनराइठ कलम नीर बाजबाईक था, किन्तु नीरबहीरके हाथ मुठी तख दिखाने हुए बरको फिरो कलाय कलके कुंठके बखर था । पिछाके तीर्थकालीन बहीर मिहलबनी डकके डकल तीर नीर बखिबकनी कुठिल कर दिख था । बखिब कलमकी दोकल नीर बखिब ही। डकने ग यह कटी की इसी बारन यह 'बाहरेडवर यह बाय था

डकके कलमल कलने हीनो बाइबोकी हुवा करके डकका कोड पुन बाइबारधइ ( १७१२ ई. ) बाजबाइ हुवा । यह बाजब दिखया नीर बुनराती था । बाइ बाजके बरबाइ ही डकके कलने डकलनीर ( १७११ १९ ई. ) में मिहलके कलम बच करके बिहाजन स्वयं हुलकल कर लिया । यह भी मिहलम मिहली, बुनराती मिहलम नीर हुलकल था । बहीर वीरानी ही डकने बुनिरझारको बाइर बनेक बुदीय एवं बकुल डकली नीर बरबाइकीक बिबलताके बच कर दिख । कलने रक्तवाजपुर्ष धाकलम हाथ बार कलने कलमल नीर हुदीयकी बाजके ही डक बाइबोकी तीर किया । कलनी मिहलबाइपुर्ष नीरने कल दिख एवं मुकमल डकलीको यह कर लिया । डकने बखिब कर कलनेका ही मिहल प्रकल किया । १७१५ ई. में बन्ध वीरानी कलम क्या नीर बाजबाइने ही नीर कलम वीर बाय बाज नीर कलके कलम एवं हुवार बाइबोकी की कलताके बच करवा लिया । बंभरीकी कुठे बार पाल कलम कलनेकी बेट केकर नीर डकने बायी हां हुमिलकने डकने

प्रसन्न होकर फ़र्रुखसियरने अंगरेज कम्पनोको भारतमें व्यापार करनेको मूल्यवान् सुविधाएँ दे दीं और उनके मालको भी तट-करसे मुक्त कर दिया। १७१९ ई० में सैयद भादर्योंने ही उसे पदच्युत करके उसका वध कर डाला। तदुपरान्त इन सैयदोंने नेक़ुसियर, रफ़ीउद्दौलत और रफ़ीउद्दरजात नामक तीन शहजादोंको एक-एक करके बादशाह बनाया और थोड़े-थोड़े दिन बाद प्रत्येकका वध कर दिया। इसी कारण ये सैयदबन्धु 'राजा बनानेवाले' कहे जाने लगे।

अन्तमें उन्होंने फ़र्रुखसियरके एक अन्य चचेरे भाई मुहम्मदशाह (१७१९-४८ ई०) को बादशाह बनाया। वह भी बड़ा निकम्मा, दुराचारी और झिंझासी था, इसी कारण मुहम्मदशाह रंगीलेके नामसे प्रसिद्ध हुआ। किन्तु उसने सख्तपर बैठते ही सैयद हुसैनअलीका गुप्तरूपसे वध करवा डाला और उनके भाई अब्दुल्लाको बन्दोगूहमें डाल दिया। १७२० ई० में एक अन्य शहजादे इब्राहीमने बादशाह होनेका विफल दावा किया। राठौर-नरेश अजीतसिंहका प्रभाव और शक्ति इस समय पर्याप्त बढ़ गयी थी। जयपुरके सवाई जयसिंह और उदयपुरके सम्रामसिंह भी शक्तिशाली हो रहे थे। इन तीनोंने मिलकर एक राजनैतिक समझौता भी किया था, किन्तु वह सफल न हुआ। मुग़ल-सम्राट् और उसके दरबारकी ओरसे राजपूत उपेक्षित होते गये और स्वयं अपने-अपने राज्यकी शक्ति बढ़ानेमें व्यस्त रहे तथापि सवाई जयसिंह आदि राजपूत राजाओंके प्रभावसे इस बादशाहने जज़िया लगानेके प्रश्नको सदाके लिए समाप्त कर दिया। राज्यके जैन-धनिकोंके आग्रहपर उसने पशुवधपर भी कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया था। मुहम्मदशाहने १७२२ ई० में चिनकलीखर्चा आसफ़जहाँ निजामुलमुल्कको अपना वज़ीर बनाया, इसके पहले वह दक्खिनका सूबेदार था किन्तु साम्राज्यकी पुनः शासन-व्यवस्था करनेका दुस्तर कार्य उसे अपने बूतेके बाहर जान पड़ा अतः अगले ही वर्ष वह फिर अपनी दक्खिनकी सूबेदारीपर चला गया और वज़ीर भी बना रहा। १७२४ ई० में हैदराबाद-



को राजधानी बनाकर बसिमतके नुरे मुबारक सुबैकी कहने अपना स्वतन्त्र  
निर्वाह राज्य बर्धित कर दिया । दिल्लीकी राजनीतिमें उन्होंने फिर कोई  
भाव नहीं किया और बरालोहि अपने मदीन राज्यकी मुक्ति के लिये ही  
बहु व्यस्त हो गये । यही वर्ष ताघतखाई शायके एक अन्य बरादारने अपने  
नुरे मुबारक बसिमत बनाकर और ईरानाशाही राजधानी बनाकर अपनी  
स्वतन्त्रता बर्धित कर ली । बरालोहि सुबैदार अलीशरीफुद्दीन की बख्शिशों  
कर देना बन्द कर दिया और उसके बसिमतवालों की छत्ती-छत्ती मस्तीमार  
करना आरम्भ कर दिया, अन्ततः राजधानी मुक्तिज्वाले गढ़ ( १७४०-  
५६ ई ) नुरे बख्श और मुबारक पिछातर स्वतन्त्र क्वाकै करके राज्य  
करने लगा । बरालोहि कतरवाली वर्षत एवं गिस्तुत शीघ्रतर, को खूबकाय  
मुल्काय, खूबे फरमानों अपना स्वतन्त्र राज्य बना दिया ।

बराहपुर और उसके बीच-बाह बुरजबन बाइबै अन्तर्गत पारव बन्धन ।  
 मुन्नेक-बन्धनमें पञ्चा कवकाल पूर्ववत् मिटोड़ी बना हुआ था । बुजपट और  
 बन्धनके बहुबाधनर वाले पञ्चपुटीका बन्धनार रत्न और फिर मुन्ने  
 बैदना पूर्वमें बन्धन कवकाल बाहक और बन्धनमें बुजपट पूर्वमें बन्धन  
 बन्धन । पिन्नी बरबानमें बन्धन, बन्धनमें बाइबै पञ्चपुट पञ्चपुटि बन्धि-  
 रिक्त मुन्नेबन्धन बन्धन-बन्धन बन्धन पञ्चपुट बन्धन बन्धन और बन्धन  
 और भी बन्धन बन्धनमें बन्धन मुन्नेबन्धन बन्धन बाइबै बरबन बन्धिप  
 भी बिना बन्धन बैदनी-बैदनी ही बिना पिन्नी बाइबै बुज का पञ्च-पुटके  
 बाइबै बन्धन बन्धि बिना बन्धन-बाइबै बन्धन-बन्धन बन्धन बन्धन ही  
 बन्धनमें बन्धन बिना-बिना बन्धन बन्धन ही बन्धन । बन्धन पिन्नीको भी  
 बन्धन पिन्नीके बाइबै बन्धन-बन्धन बन्धन-बन्धन भी बन्धन बाइबै ही  
 हुआ और बन्धन पिन्नी ही । बन्धन बन्धनमें बन्धनके बन्धन बाइबै  
 बुन्नेबन्धन, बन्धन बन्धनके बन्धन बन्धन बाइबै, १९१९ ई में  
 बाइबै बन्धन बन्धन । बन्धन बाइबै और बन्धनके बाइबै बन्धन  
 हुआ बन्धन बिन्नी बाइबै बिन्नीके बिन्धन बन्धन बन्धन । बन्धनमें बाइबै

सेनाने उसका प्रतिरोध किया। दो घण्टेमें ही युद्ध समाप्त हो गया, दिल्लीके लगभग बीस हजार सैनिक युद्धमें मारे गये, और बादशाह मुहम्मदशाहने स्वयं दुर्रानीकी छावनीमें जाकर हाजिरी दी। नादिरशाहने उससे नरमोका वरताव किया और मित्रता प्रदर्शित की। दिल्लीके शाही महलोंमें अत्यन्त सम्मानित अतिथिके रूपमें वह ठहरा। किन्तु कुछ लोगोंने उसकी मृत्युकी झूठी अफवाह उड़ा दी और यत्र-तत्र उसके सैनिकोंको मारना शुरू कर दिया। इसपर नादिरशाहका क्रोध भड़का और उसने क़त्लेआम-की आज्ञा दी। दिल्लीके प्रमुख बाज़ारकी सुनहली मस्जिदमें बैठकर वह नौ घण्टे तक लगातार दिल्ली निवासियोंका निर्मम सहार देखता रहा। अन्ततः मुहम्मदशाह और उसके मन्त्रियोंके अत्यन्त अनुनय विनय करनेपर असह्य निरपराधाके रक्तसे अपनी प्यास बुझाकर उसने यह पैद्याचिक नरसहार रोका। तदनन्तर ५८ दिन तक शाही मेहमान रहकर उसने दो सौ वर्षोंमें संचित किये गये मुग़लोंके अपार धन-वैभवको उन्मुक्त होकर लूटा। शाही कोष और महलोंके अतिरिक्त दिल्लीकी जनताके भी सभी वर्गोंको जितना बना लूटा-खसोटा। और तब कोहेनूर हीरा तथा मयूर सिंहासनके साथ साथ अन्य विपुल धन सम्पत्ति, जो अनुमानातीत है, कैंटो, गधों और खच्चरोपर लदवाकर वह ले गया।

दुर्रानीकी इस भयंकर नादिरशाहीसे दिल्ली धन-जनहीन हो गयी और दिल्लीका बादशाह भी जो साम्राज्य और अधिकारविहीन तो पहले ही हो चुका था, अब धनहीन दरिद्री भी हो गया और उसकी प्रतिष्ठा भी समाप्त हो गयी। सिन्धुनदके पश्चिमका अफ़ग़ानिस्तान आदि समस्त प्रदेश नादिरशाहके राज्यका अंग बन गया। मुहम्मदशाहके अन्तिम दिनोंमें अहमदशाह अब्दालीने, जो नादिरशाहकी मृत्युके उपरान्त उसके साम्राज्यके पूर्वी भागका स्वामी बन बैठा था, पञ्जाबपर आक्रमण किया किन्तु शहजादे अहमदशाह और यज़ीर कमालुद्दीनने उसे पराजित करके पीछे हटा दिया।

इसके एक मास पश्चात् ही मुहम्मदशाहकी मृत्यु होनेपर उसका पुत्र



अवधका नवाब शुजाउद्दौला दिल्लीके बादशाहका वजीर भी बन गया था और क्योंकि वह अब्दालीका सहायक एवं समर्थक था इसलिए उसकी इस विजयसे उसे तथा नज्बुद्दौला रुहेलेको ही अधिक लाभ हुआ। उत्तर भारतकी इन विषम परिस्थितियोंका लाभ उठाकर चालाक अंग्रेजोंने बंगालपर प्रायः पूर्णधिकार कर लिया था। १७५७ ई० के पलासीके युद्धके उपरान्त अब मीर जाफ़र आदि बंगालके नवाब उनके हाथकी कठपुतली मात्र थे। दिल्लीका बादशाह शाहआलम मात्र एक तमाशाई था। अहमदशाह अब्दालीका भारतके साम्राज्यको भोगनेका स्वप्न भी उसके सैनिकोंके विद्रोहके कारण भग्न हो गया और उसे अपने देशको लौट जाना पड़ा। वह फिर वापस न आया।

१७६५ ई०में इलाहाबादमें बादशाह शाहआलमके दरबारमें उपस्थित होकर अंगरेजोंके गवर्नर क्लाइवने २६ लाख रुपये वार्षिक करके बदलेमें उससे बंगाल और बिहारको दोषानी और फटा एवं इलाहाबादके जिले अपनी कम्पनीके नाम लिखा लिये। वास्तवमें दिल्लीका बादशाह अब नाममात्रका ही बादशाह और सम्राट् था। वह अपने पूर्वजोंके प्रताप और अधिकारकी एक गोण एव अपेक्षणीय छाया-मात्र रह गया था। घटनाक्रमपर उसका कोई प्रभाव न था। दिल्ली दरबारका परम्परागत अधिकार-मात्र इतना ही रह गया था कि विभिन्न पक्षों-द्वारा किये गये बलात् एव अन्यायपूर्ण कार्योंको उन-उन पक्षोंके कहनेसे अपनी शाही मुद्राकी छाप-द्वारा वाह्यतः न्याय रूप दे दे। बादशाह शाहआलम कभी किसी मुसलमान सरदारका या नवाबका, कभी मराठा राजा सिधियाका और कभी अंगरेजोंका वन्दी या आश्रित रहा। गुलाम कादिर नामक एक रुहेले गुण्डेने, जिसने उसके दरबारमें थोड़ा प्रभाव पैदा कर लिया था, शाहआलमको दोनों आँखें फोड़ दीं। महादाजी सिधियाने उसको कैदसे बादशाहको मुक्त किया और अपनी ही एक प्रकारकी कैदमें रखा। १८०३ ई० में वह अंगरेज कम्पनीका आश्रित हो गया और उससे प्राप्त वार्षिक पेंशनसे अपना निर्वाह करने लगा।

[illegible]

सुसप्तमान कथा—१. ईश्वरदासके मित्राग्र—ईश्वरदास  
 दलिताने मित्राग्रके मुकामकी राजा मुकाम-साधारणके कथने लाल बछावर  
 कहीके बरपीनार ल्यापित होवेकाल बर-बराद मुकामकी राजा लाल और  
 लाल राजा कर्माधिक ल्यापी ली रहा बाब हो कर्माधिक लाल एवं बकुल  
 पी । बकुलराजके १७१ ई में मुकामदार कहीके कथना बहीर कोर  
 दलिताने मुकामदार कथना वा मुकामदारके कथनी औरके कथनाकी कथना-  
 के मुकामदार कथनेके किन्दि मुकामदार किन्दि वा । किन्दि कथनाके  
 कथनाके मुकामदारके कथना कथना और १७१२ ई के कथना किन्दि-  
 कथनाकी कथनाके दलिताने मुकामदार किन्दि किन्दि । १७१२ ई  
 में बाबदास मुकामदारके कथनाके किन्दि कथना मुकामदार कथना  
 बहीर कथना किन्दि वा लाल कथना बाब हो बाब कथनी मुकामदार कथना  
 और १७१४ ई में कथने मित्राग्रमुकामकी कथना बाब कथने कथनी

स्वतन्त्रता धापित कर दी, हैदरावादको अपनी राजधानी बनाया और मुगल साम्राज्यके दक्खिनके पूरे सूबेपर अपना राज्य स्थापित कर लिया। आसफ़जहाँ बहुत योग्य, चतुर और बुद्धिमान् था। अपने शासनके अन्तिम २५ वर्षोंमें औरगज़ेय दक्खिनमें ही रहा था अतएव उसको बहुत-सी धन-सम्पत्ति वहीं रह गयी थी। दक्खिनकी मुसलमानी सल्तनतोंका अन्त करके जो विपुल सम्पत्ति औरगज़ेयने यहाँ प्राप्त की थी उसका भी बहुत-सा अंश वहीं रह गया था। विजयनगरकी लूटसे प्राप्त अपार धन इन सुलतानोंके पास था। अंगरेज आदि अमोतक कुछ छान नहीं पाये थे, शिवाजी और उनके उपरान्त पेशवाआन हो जा थोड़ा-बहुत छीन पाया था उसके अतिरिक्त शताब्दियों ब्या सहस्राब्दियोंसे संचित होते आयी दक्षिण भारतकी अपार धन-सम्पत्तिका बहुभाग निज़ामके ही हाथ लगा था। उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी पेशवा थे, उन्हींका उस सबसे अधिक भय था। पेशवा बाजीराव भारी विजेता एवं पराक्रमी था, उसके कारण मराठों-में परस्पर फूट डालनेकी निज़ामकी चाल असफल रही। अब उसने उनसे मित्रता बनाये रखनेमें ही कुशल समझी। १७२८ ई० में उसने पेशवाको नियमित चौध देते रहना भी स्वीकार कर लिया। १७३८ ई० में उसने पेशवाको दिल्लीकी ओर बढ़नेसे रोकनेका भी प्रयत्न किया किन्तु मोपालके निकट पराजित होकर चुप बैठ रहा।

१७४८ ई० में बुद्ध निज़ामकी मृत्यु हुई और उसके दूसरे पुत्र नासिर-जंग और पोते मुज़फ़्फ़रजंगके बीच उत्तराधिकारके लिए संघर्ष हुआ। फ़्रान्सीसी व्यापारियोंने मुज़फ़्फ़रकी सहायता की। युद्धमें तो वह हार गया किन्तु १७५० ई० में नासिरकी मृत्यु हो गयी और मुज़फ़्फ़र निज़ाम हुआ। उसने फ़्रान्सीसियोंको बहुत-सा धन व जागिरें दीं और उनको एक पलटन भी अपने राज्यमें किरायेपर रख ली। इस प्रकार फ़्रान्सीसियोंका प्रभाव उसके दरबारमें बढ गया। मुज़फ़्फ़र भी शीघ्र ही एक युद्धमें मारा गया। उसके स्थानमें उसके लड़केको वंचित करके आसफ़जहाँके तीसरे पुत्र



अंगरेजोंने लिया । इस प्रकार कर्णाटककी इस छोटी-सी नवाबीके आन्तरिक सगहोंमें पड़नेके द्वारा ही अंगरेजों और फ्रान्सीसियोंका भारतकी राजनीतिमें सर्वप्रथम प्रवेश और हस्तक्षेप हुआ । मफलताने अंगरेजोंकी राज्य लिप्पाको उत्तेजित किया । १७५१ ई० में कर्णाटकके उत्तराधिकार-युद्धके सिलमिलेमें क्लाइवद्वारा अर्काटके सफल घेरे और विजयमें ही भारतमें अंगरेजों राज्यका सूत्रपात हुआ ।

२ अवधकी नवाबी—निजामके साथ ही, १७२४ ई० में ममादतखान नामक सरदारने अवध प्रान्तपर अधिकार करके अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी थी । अवधके नवाबोंन पहले फैजाबादकी और तदनन्तर लखनऊ की अपनी राजधानी बनाया । दिल्ली बादशाहोंकी अवबन्ति, नादिरशाहके आक्रमण तथा देशकी राजनैतिक अस्त-व्यस्ततासे लाम उठाकर ममादतखानके उत्तराधिकारी सफ़्दरजगने, जो बादशाहका बख़ौर भी बन गया था, अपनी शक्ति पर्याप्त बढ़ा ली और अवध प्रान्तके अनेक छोटे-छोटे हिस्सों एव मुमलमान तालुकेदारोंकी अपने नियन्त्रणमें रम्यकर तथा उनकी सहायता-सहयोगसे अवधकी नवाबीकी उत्तर भारतकी प्रधान शक्ति बना लिया । निजामके पौत्र ग़ाज़ीउद्दीनके पश्चात् सफ़्दरका उत्तराधिकारी अवधका नवाब ग़ुज़ाउद्दीन भी दिल्लीका बख़ौर बन गया । इसीलिए वह और उसके कई उत्तराधिकारी नवाब-बख़ौर अवध भी कहलाते थे । महमूदशाह अब्दालीका वह सहयोगी और पक्षपाती था । पानीपतके तीसरे युद्ध ( १७६१ ई० ) में वह सैन्य उपस्थित था किन्तु युद्धमें उसने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया और उसके समाप्त होते ही चुपकेसे अपने राज्यों लौट आया । १७५९ ई० में उसने शाहजादे शाहआलमके साथ बिहारपर भी आक्रमण किया था किन्तु क्लाइवके नेतृत्वमें अंगरेजों सेनाके प्रतिरोधकारण विफल होकर लौट आया था । १७६४ ई० में बक्सरके युद्धमें उसने मोरक्कासिमकी अंगरेजोंके विरुद्ध सहायता की थी और उसे बादशाह शाहआलमकी भी स्वीकृति प्राप्त थी । किन्तु इस युद्धमें अंगरेजोंकी ही विजय



हूँ । पुष्पाग्रहाणके पुष्पार और दण्डाग्रहाणके पुष्प जिम कसे । दण्डाग्रहाणके मो एउ प्रहारके अँदरेजीका अँदखन स्वीकार कर लिख । १७१५ ई. में दण्डाग्रहाणकी दण्डाग्रहाण अग्निहके द्वारा कनाइलने दण्डाग्रहाण और नडाके बिचके अतिरिक्त ५ कनाइल कनाइल दण्डाग्रहाणके कनाइल केनेक नडाके नडाके के किया और किया की तीसरी नडाके किया परस्पर एक-दुसरेकी उहाउता करलेकी बात की करवा की । नडाके की बीजाकी उहाके लिए किरानेपर अँदरेजी केका रखलेकी बात की उच हो गयी और इन प्रकार कनाइल कनाइल की कनाइल पचाइ कर्षके बीतर ही स्वच्छता कनाइल हो गयी । १७७३ ई. में कनाइलकी अग्निहके अनुसार नडाके नडाके कनाइल केनेके कनाइल केनेके कना और दण्डाग्रहाणके बिच कनाइलके किन-बाकर कनाइल कना किया किया की और कनाइल के अँदरेजीकी उहाउताके अँदरेजी अतिरिक्त कना कर दिया ।

**४. अघातकी नक़्शायी—** १७ १ ६ के त्तीरेफ़्तदारी मुक्तिरज्जुकी

खाँको बगालका सूवेदार नियुक्त किया था। बिहार और उड़ीसाके प्रान्त भी घनै-घनै उसीके अधिकारमें आ गये। वह एक योग्य शासक था। दिल्लीकी राजनीतिसे प्रायः पृथक् ही रहकर उसने अपने सूवेका भली प्रकार शासन किया। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी शुजाउद्दीन (१७२५-३९ ई०) अपने पितासे भी अधिक योग्य शासक था, वह सहिष्णु, उदार और दानशील भी था। उसके शासनकालमें बगालने सुख शान्ति और समृद्धि अनुभव किया। यह नवाब पक्षपातरहित और अत्यन्त न्याय-परायण भी था। उस कालमें ऐसा व्यक्ति अपवाद ही था। दिल्ली या शेष भारतको कुराजनीतिसे उसने कोई सम्पर्क नहीं रखा और यद्यपि वह एक सर्वथा स्वतन्त्र शासक ही था तथापि अपने-आपको दिल्ली बादशाहके अधीन और उसका सूवेदार ही मानता रहा और वार्षिक राज्यकर भी नियमित भेजता रहा। उसका पुत्र सरफ़राज़खाँ (१७३९-४१ ई०) धार्मिक प्रवृत्तिका व्यक्ति तो था किन्तु एक अयोग्य शासक था। उस समय उसका अधीनस्थ बिहारका नायब सूवेदार अलीवर्दीखाँ था जिसे शुजाउद्दीनने ही तरक्की देकर उस पदपर नियुक्त किया था और अपना प्रधान वज़ीर भी बनाया था।

अलीवर्दीखाँ बीर, सुयाय्य और महत्वाकांक्षी था। नादिरशाहके आक्रमणका लाभ उठाकर उसने अपने स्वामी सरफ़राज़खाँके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। युद्धमें सरफ़राज़खाँ मारा गया और अलीवर्दीखाँ (१७४१-५६ ई०) ने बगालके मिहानसनपर अधिकार कर लिया। अष्ट दिल्ली दरबार और बादशाहको घूस देकर उसने अपने लिए बगाल, बिहार और उड़ीसाकी सूवेदारीका अधिकार-पत्र भी सहज ही प्राप्त कर लिया और उसके स्वामि-द्रोह एवं स्वामिवध-जैसे अपराधपर कोई प्रश्न न उठा। तदनन्तर उसने एक पैसा भी राज्यकरके नामसे सम्राटको न भेजा और स्वतन्त्र नवाबकी हँसियतसे राज्य किया। हिन्दू, मुसलमान, सभी प्रजा उससे सन्तुष्ट थी। मुश्निदाबादको उसने अपनी राजधानी बनाया।

कचके सामन्तके आराधनासे ही अष्टासीने कचके सामन्तपर आक्रमण कर ला  
कर कचकी आराधना का भी और व्यापक चरम तक पहुँचाईके अभिप्रेषण  
आप्त रहा । अन्ततः १७५१ ई. के अष्टासीको कङ्किया आन्त देकर अपने  
कचके सामन्त कोन ली । अष्टासीकी पीछके अपने कचके १२ लाख राणा  
प्रतिष्ठा देनेका भी कचके कचन दिया । अष्टासी कचके कचो लक्ष कचो की  
दि कचके अष्टासीके अभिप्रेषणको प्रभाव दिया ।

[illegible]

मिलाकर नवाबके विरुद्ध एक भीषण पड़्यन्त्र रचा और सब तैयारी कर लेनेपर झूठा दोषारोपण करके नवाबको युद्धके लिए ललकारा । १७५७ ई० में पलासीके मैदानमें दोनों दलोका भीषण युद्ध हुआ । नवाबकी सेनाका बहुभाग जो मीरजाफ़र और उसके पुत्र मीरनके प्रभावमें था तमाशा ही देवता रहा । नवाब हार गया और बन्दी कर लिया गया, तदनन्तर मीरनने उसका वध कर डाला ।

सिराजुद्दौलाके अन्तके साथ ही बंगालकी स्वतन्त्र नवाबोका भी अन्त हो गया और इस विशाल समृद्ध देशपर वस्तुतः अंगरेजोंका ही अधिकार हो गया । मीरजाफ़र नवाब बना । उसने मुक्तहस्तसे क्लाइव तथा अंगरेज कौन्सिलके मेम्बरोको धन दिया । उसका अधिकार नाममात्रका ही था, वास्तविक शक्ति क्लाइवके हाथमें थी । वैसे भी यह नवाब निकम्मा, अयोग्य और अफीमचो था । १७५९ ई० में शहजादा शाहआलम और नवाब वज़ीर अवधने उसकी अनोतिके लिए उसे दण्ड देनेके अभिप्रायसे बंगालपर आक्रमण किया । नवाबकी ओरसे सेना लेकर क्लाइव उनके विरुद्ध चला, इसपर वे बिना लड़े ही वापस लौट गये । मीरजाफ़रने प्रसन्न होकर क्लाइवको ५-६ लाख रुपये वार्षिककी जागीर दे दी । किन्तु अंगरेजोंकी नोच-खसोटसे मीरजाफ़र भी तंग आ गया और उसने डचोंसे सहायता माँगी, किन्तु क्लाइवने उन्हें भी पराजित किया और उनसे हरजाना लिया । इधर नवाबका खज़ाना खाली हो गया था, अंगरेजोंकी नित्य नयीन रुपयेकी माँगको वह पूरा नहीं कर सकता था । हिन्दू जमींदारोंकी सहायतासे ही सिराजका अन्त करनेमें क्लाइव सफल हुआ था और अब मीरजाफ़रके भी मुख्यतः हिन्दू दरबारी उसके विरोधी एवं विश्वासघाती थे । १७६० ई० में क्लाइवके इंग्लैण्ड रवाना होनेके थोड़े समय पश्चात् ही कलकत्तेकी अंगरेज कौन्सिलने मीरजाफ़रको गद्दीस उतारकर उसके दामाद मीरकासिमको नवाब बनाया ।

मीरकासिम बुद्धिमान्, योग्य, धीर और स्वतन्त्रता-प्रेमी था, किन्तु

[illegible]

४ इंदौरवाकडके बसवाक—उत्तर कुवाक बागवले बसवाकवाक और  
महाराष्ट्राक बागवले बसवाक निगुवाकवाक कुवाक केवाकके निगुवाक  
इंदौरके निवाकी कनिम बागवले बागवले निगुवाकके निगुवाक निगुवाक  
कुवाक का बागवले उत्तर-बागवले निगुवाक-बागवले कुवाक और निगुवाकके बागवले  
महाराष्ट्र इंदौरवाक इंदौरवाक केवाक बागवले बागवले निगुवाक का  
कुवाकवाक बागवले, बागवले बागवले बागवले बागवले बागवले बागवले  
बागवले बागवले ही बागवले बागवले बागवले बागवले बागवले बागवले

कहलाता था, रूहेलखण्ड कहलाने लगा । मराठोंके आक्रमणोंसे परेशान होकर इनके सरदार नजीबुद्दोलाने अहमदशाह अब्दालीको आमन्त्रित किया था और पानीपतके युद्धमें १७६१ ई० में वह उसीकी ओरसे लड़ा था । अतः तदुपगन्त कुछ समयके लिए वह दिल्लीके बादशाहा कार्यवाहक बन बैठा था । किन्तु अब्दालीके वापस जाते ही मराठोंने रूहेल्लोको फिर तग करना शुरू कर दिया । अतएव १७७२ ई० में धनारमको मन्त्रिके अनुसार रूहेला नवाब हाफिज रहमतखाने अवधके नवाबसे यह तय किया कि यदि मराठे रूहेलखण्डपर आक्रमण करेंगे तो नवाब उसकी रक्षा करेगा और बदलेमें ४० लाख रुपया पायेगा । अगले वर्ष जब मराठोंने आक्रमण किया तो अवधके नवाबने अंगरेजा सेनाकी मददसे उन्हें मार भगाया और रूहेलोंसे रुपया माँगा । उन्होंने टाल-मटोल की । इसपर नवाबने वारेन हैस्टिंग्सकी सहायतासे १७७४ ई० में मोरनकटराके युद्धमें रूहेलोंको बुरी तरह पराजित किया । वृद्ध रूहेला घोर हाफिज रहमत युद्धमें मारा गया । लगभग बीस हजार रूहेले देशसे निर्वासित कर दिये गये । रूहेलोंका रूहेलखण्ड राज्य समाप्त हो गया, और अवधमें मिला लिया गया । कुछ रूहेले और उनके सरदार इस देशमें फिर भी बच रहे, उन्हींमें-से एक रामपुरके मास-पासके प्रदेशका शासक बन बैठा । वही रामपुरके नवाबोंका पूर्वज था । किन्तु रामपुर प्रारम्भसे ही अंगरेजोंके अधीन एक छोटी-सी देशी रियासत-मात्र रहा ।

**५ मैसूरके नवाब—**गंगवाडिके प्राचीन गंगराज्यकी परम्परामें कर्णाटकका मैसूर प्रदेश होयसल राज्यके और तदनन्तर विजयनगर साम्राज्यके अन्तर्गत रहा था । विजयनगरका पतन होनेपर इस प्रदेशके एक प्रान्तोय शासकने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया । यह वंश ओडेयर वंश कहलाता है । १८वीं शती ई०के मध्यमें उसकी राज्यशक्ति कुछ क्षीण हो रही थी और मन्त्री नजराज ही सर्वे-सर्वा हो रहा था । उसने राज्यके एक मुसलमान कर्मचारीके हैदरअली नामक पुत्रकी योग्यता,

मनुरा एव बुद्ध-नैगुण्ये प्रकाशित होकर १७५५ ई. में उसे त्रिहीनका प्रौढरूप बना दिया । तदनन्तर उसे ब्रह्मदेवकी कापीर दे दी गयी और राज्यका प्रदान देवापति भी बना दिया गया । १७५१ ई. में राज्य मगध काया जाय कहके अवधियामें ही गया और वृक्ष अपने राज्य की ओरसे सम्पूर्ण राज्यका ही प्रालम्ब करने लगा । किन्तु बड़ीया एक अनुवर काप्येराय राज्यका प्रमुख ब्रह्म देवीकी ही गया और उसके अनुबन्धि जाय विस्तर करने लगा । १७५१ ई. में हीरायने काप्येरायका स्वयं किया और उसे एक विस्तरमें राज्य बना करके राज दिया । वही स्व उसने देवपुर राज्य अतिष्ठ स्वयंवरिक मगराद विजय करने अवधार कर दिया । १७५५ ई. में राजाकी मृत्यु हो जाने पर उसने राज्यकुर्सी की वृद्ध । उसने राजाके पुत्रकी सम्मानके लिए विराटनगर बना दिया और स्वयं राज्य उसने-बना ही गया ।

यह सबने निराला और गण्डेई के साथ गुरदीठिक बलि-मिठाह करके  
बनौरी घनितका प्रकार करना शुरू किया। १७६० ई. में बकसी तथा  
इन्होंने बख्साबी विश्व निरालाकी अनुयायि कैलाशे औरदेवीमें गण्डेई किया  
जिन्नु १७६९ ई. में ही ईरानकी औरदेवीके अन्तर्गत फ़ौजदार बड़ बीजा  
और इन्होंने बहूँ बलि करीबन विषय किया निराले अनुयायि बीजामें एक  
गुरदीठी लहलहा करनेका बकन दिया तथा निराला ज़ेदोंको छोड़ दिया।  
जिन्नु १७७१ ई. में एक गण्डेईमें ईरानकीके राजनगर बख्साब किछ  
ही औरदेवीमें गण्डेईके अनुयायि बकसी कोई बख्साब व की इनपर यह  
बकन और पड़ हो गया। १७७६ ई. में बख्साब के साथ कुछ जिन्दा बालोंके  
कारण औरदेवीमें गण्डेईका तथा बकन बख्साब और देवीकार कर  
किया, इनमें ईरानकी और बख्साब भिन्न गया। निराला और गण्डेईके  
साथ इनमें औरदेवीके निराला बीजा-बलि कर की। निरालाकी औरदेवीमें  
कोई किया बख्साब १८ ई. में ईरानकी बकसी राजनारी बीरानगुन-  
के गया केकर गया और इन्होंने बख्साब और बख्साब कर किया और

वहाँ भरपेट लूट-मार की। अंगरेजोंके हाथकी मटपुतली कण्टिवधा नवाब तो अपना था ही। रक्षाके लिए भायो अंगरेजी सेना और उसके नायक कर्नल लेलीकी हैदरअलीने काट डाला और राजधानी अर्काटपर भी अधिकार कर लिया। किन्तु १७८१ ई० में अंगरेजोंने सर आयर वूटके नेतृत्वमें पोर्टोनोयाके युद्धमें उसे पराजित किया। मराठोंने भी उसकी कोई मदद नहीं की। वह अकेला ही अंगरेजोंके साथ युद्ध करता रहा और उसने कई बार उन्हें पराजित भी किया। १७८२ ई० में हैदरअलीकी मृत्यु हो गयी।

किन्तु उसके पुत्र और उत्तराधिकारी टीपू सुलतानने युद्ध जारी रखा। उसने भी कई बार अंगरेजोंको पराजित किया और स्वयं भी पराजित हुआ। अन्ततः १७८४ ई० में दोनों पक्षोंके बीच मंगलौरकी सन्धि हुई जिसके अनुसार जो स्थिति युद्धके पूर्व थी वही हो गयी। १७८६ ई० में पेशवा और निजाम टीपूके विरुद्ध मिल गये और उन्होंने अगले वर्ष उसे पराजित करके एक जिला और ३० लाख रुपये उससे वसूल कर लिये। अंगरेज भी उनके साथ ही मिल गये। इसपर टीपू धुन्ध हुआ और फ्रान्स तथा अफ़ग़ानिस्तानको उसने अपने दूत भेजे। अंगरेजोंके परम शत्रुओं उन विदेशियोंकी सहायतासे वह अंगरेजोंको भारतसे निकाल बाहर करना चाहता था। १७८९ ई० में उसने अंगरेजोंसे सरक्षण प्राप्त द्वाबन्कोर राज्य-पर आक्रमण कर दिया और लूट-मार मचायी। अब अंगरेजोंके साथ खुला युद्ध छिड़ गया, मराठे और निजाम भी उन्हींकी सहायक थे। स्वयं गवर्नर जनरल कार्नवालिसने युद्धका नेतृत्व किया। कई युद्ध हुए किन्तु प्रत्येक बार टीपूने ही उन्हें पराजित किया, किन्तु अन्तिम युद्धमें वह दुरी तरह पराजित हुआ। १७९२ ई० में श्रीरंगपट्टनकी सन्धि हो गयी जिसके अनुसार उसका राज्यका लगभग आधा भाग, साढ़े तीन करोड़ रुपये और वचन पालनके आश्वासन रूप उसके दो पुत्र अंगरेजोंको प्राप्त हुए। टीपू इस अपमानजनक सन्धिको न भूल सका। अंगरेजोंके विरुद्ध वह नैपोलियनसे



जी नमः-आश्चर्य करण रहा । जेवरोंके प्रतिपार करकेपर जेवर जेवर  
 फटकार दिया । इसपर १७९९ ई में काठ बिक्रेडकीने टीपूके सामान  
 बाह्यपन कर दिया । निवाय टी जेवरोंका अब अनुपर ही न । टीपूने  
 बड़ी बीरता और साहसके साथ कुछ किया । मजबूतीके मुहने परचित्त  
 होकर बड़ी धीरपददुर्गमें बस गी । कौ जी अनुओंमें बेर किया और  
 बड़ी बलि करनेके लिए कहा किन्तु बलिगी जेने इसी समय-समय  
 ही कि जेने मजबूती कर दिया और जिकेनी टीपूके बीने ही बीरता-  
 पूर्वक मरता हुआ मर गया । टीपूके विपक्ष एम्माके काठ-कटकर  
 जेवरोंके जेवर निवाय और मरनेके साथ ही किया । टीपू  
 टीपूके छोटी एम्माके मुहने बीरता के एक एम्माके बीने दिया  
 और बड़ी मजबूतीके लिए टीपूके ही अनु करनी दुर्गताके मनी  
 निरुद्ध कर दिया । टीपूका यह दिव्य पालन जीवन एक पद मर गया है ।  
 टीपूके मुहनेके पैरान निकल कर ही गयी ।

हैराबादी निज़ाम होशे हुए भी बालक मुहम्मद, जल्दबाजी बर्तान करकेबाबू सेबाकी कपुर चकलीफिज, मुबारक केबाकी और बीर मोह्य था । कपकी स्वयंभक्ति बड़ी बीर थी । यह प्रभावजनक गरीब और मुकद बाबल था । किन्तु बीर मुकदमानकि बीर थी वह मेर ल्ही करता था । होनु भी बालकी कपार और बकिन्तु था । यह मुहम्मद और निज़ामुद्दीन भी था बगद बगदी कपारी और कर्तु-बाकिन्तु प्रभावजनक था । कपके निज़ाम मुहम्मदबाबूके बगरीब कपकली कप । कपे । हैराबादी और बीर सेबाकी ही किन्तु, बीर बाकि राजकी मुकदमानकीतर बगकि बगद बाबूबाबा बगजन किबा और कपके कपकलीकी बाबाकि भी किने । कप बाबूके चकलीफिज प्रबाकी कपके कपकलीका मुककि कपार है । किन्तु-मुक बगबाब ही है । कपकि हैराबादीकी स्वयंभक्ति करके ही राज बगजन किबा था किन्तु कपने बाबुके एवं बगजनके कपके कपका किन्तु और बाकि भी कपकि कप ही थी । बीर बगजन बगजन कर कपका था किन्तु वह

अत्यन्त वीर एवं साहसी घोड़ा होते हुए भी कुशल सनानी नहीं था और कुछ अदूरदर्शी भी था। सबसे बड़ा अपराध इन पित्रा-गुप्तका यहाँ था कि वे अँगरेजाको नीति और उनके उत्तरोत्तर शक्ति-मवर्धनमें बाधक थे। किन्तु साथ ही ये एकमात्र ऐसे नरेश थे जो प्रारम्भसे अन्त तक स्वतन्त्र ही रहे।

उपरोक्त प्रमुख मुसलमान शासितियोंके अतिरिक्त कुछ अन्य छोटे-छोटे मुसलमान नवाब भी भारतमें यत्र-तत्र उत्पन्न हो रहे थे, कुछ पहलेसे चले आ रहे थे, कुछ इसी कालमें लूट-मारके बलपर बने और कुछ अँगरेजाकी कृपासे अस्तित्वमें आये। रामपुर, भापाल, टाक और जूनागढ़के नवाब, सिन्धके अमीर, लुटेरे पिण्डारी सरदार इत्यादि इसी प्रकारके गौण मुसलमानों राज्य थे। ये प्रायः सब सद्बन्धु ही और प्रथम अवसरमें ही अँगरेजाके अधीन होते चले गये।

**राजपूत राजे**—इस कालमें राजस्थानके प्रमुख राजपूत राज्य उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, जैसलमेर और धोकानेर थे। औरंगजेबके समयमें राणा राजसिंहने समस्त राजस्थानका नेतृत्व किया था और मुगल सम्राट्स सफल लोहा लिया था। उसको मृत्युके उपरान्त सग्रामसिंह द्वितीय राणा हुआ। १८वीं शतीके पूर्वार्धमें वह ही मेवाड़का महत्त्वपूर्ण राणा था यद्यपि राजस्थानका नेतृत्व अब मेवाड़के हाथमें नहीं रहा था।

जोधपुरके राठौर महाराज जसवतसिंहकी मृत्युके बादमें ही लगभग ३० वर्ष तक मुगलोंके विद्रोही रहे, किन्तु १७०९ ई० में बहादुरशाहने महाराज अजीतसिंहका राज्याधिकार स्वीकार करके और उन्हें शाही-सेवामें उच्च पदपर नियुक्त करके राठौरको मुन्तुष्ट कर लिया। अजीतसिंह वीर, धनुर और कुशल राजनीतिज्ञ था। फर्रुखसियरके समयमें कुछ दिन दिल्लीमें रहकर उसने बादशाहकी सन्मालन किया और उस कालमें उसके विश्वस्त जैन दीवान रघुनाथ भण्डारीने मारवाड़ राज्यका कुशलताके साथ शासन किया। अजीतसिंहके एक अन्य जैनमन्त्री खिमसी भण्डारीके प्रयत्नसे ही

इस प्रतिपक्ष में निरन्तर अतिरिक्त व्ययों का अर्थ यह होता था । अतएव  
 वायसाल ने अतीतिविहारी कुबराज और अतीतिरका सुदेशर विदुल किया ।  
 अतएव वायसाल के अन्तर्गत ही अतीतिविहारी अन्तःकरण का सुदेशर था । इसके  
 अन्तर्गत अन्तःकरण अन्तर्गत ही अतीतिविहारी अन्तःकरण का सुदेशर था । इसके  
 १ २०१ न अन्तःकरण का सुदेशर था । अतीतिविहारी अन्तःकरण और अतीति  
 वायसाल के अन्तर्गत ही अतीतिविहारी अन्तःकरण का सुदेशर था । अतीति  
 ही अतीतिविहारी सुदेशर के अन्तर्गत ही अतीतिविहारी अन्तःकरण और अतीति  
 का ही अन्तःकरण था । अतीतिविहारी अन्तःकरण का सुदेशर था । अतीति  
 इसके अन्तर्गत ही अतीतिविहारी अन्तःकरण और अतीति ही अन्तःकरण ही था ।

[illegible]

इस प्रकार औरतों के लिये कुलुके का यह व्यवस्था ठीक-ठाकीक कर देना  
 कारीगरों को भी अधिक लाभ होगा एवं इससे उनके व्यवसाय में एक  
 परिवर्तन अवकाश मिलेगा यह कहा जा सकता है । इससे संसारभर में इसी प्रकार  
 और हजारों कारीगरों को नालाबंदी से और बेरोजगारी से छुड़ाकर इस हीन  
 व्यवस्था को ही बनाया जा सके । इससे कुलुके का यह व्यवस्था एवं इससे  
 भारतभर में कोई हिन्दू-विवाह नालाबंदी से कराने में और नालाबंदी-कुलुके  
 नालाबंदी नालाबंदी करके नालाबंदी हुआ हो इससे हिन्दू राज्य-व्यवस्था  
 नालाबंदी करके । इससे कुलुके का ही और नालाबंदी का ही नालाबंदी नालाबंदी  
 और नालाबंदी की व्यवस्था ही नालाबंदी नालाबंदी । नालाबंदी नालाबंदी और  
 नालाबंदी नालाबंदी ही नालाबंदी नालाबंदी ही नालाबंदी नालाबंदी ही नालाबंदी

इनकी योजनामें सहायक हो था अतः उसे रोकनेका इन्होंने कोई प्रयत्न नहीं किया। नादिरशाह-द्वारा दिल्लीकी भीषण लूट-मारके अवसरपर भी ये अपनी राजधानियामें बैठे तमाशा देखते रहें। किन्तु इसी बीच राणा सभामसिंह, महाराज अजीत सिंह तथा बीर छत्रसालकी मृत्यु हो चुकी थी। राणाका उत्तराधिकारी अयोग्य था किन्तु अजीतसिंहका पुत्र अमरसिंह अपने पिताका ही अनुमर्ता था। १७४३ ई० में जयमिहकी ओर १७४९ ई० में अमरसिंहकी मृत्यु हो जानेसे राजपूत पुनरुत्थानकी वह महान् योजना स्वप्न बनकर रह गयी।

हिन्दूपदपातशाहीका समर्थक पेशवा बाजीराव प्रथम भी १७४० ई० में मर चुका था। उपरोक्त राजपूत नरेशोंक उत्तराधिकारी अत्यन्त अयोग्य और निरक्षर थे। एक ओर दिल्लीका बादशाह द्रुत वेगके साथ बल, धन और अधिकार होन होता जा रहा था और दूसरी ओर दक्षिणके मराठाने उत्तरापथके विभिन्न भागोंपर लुटेरे आक्रमण प्रारम्भ कर दिये थे। अब उन्होंने इन राजपूत राज्योंकी भी न बलशा। उनके साथ ही लुटेरे पिण्डारी सरदाराने भी राजपूत राज्याकी लूटना-न्यसोटना शुरू कर दिया था। आये दिनके इन सकटोने राजाओंका नैतिक बल और अधिक कमजोर कर दिया। अन्त बलह और गृहयुद्ध आम हो गये। ये उत्तराधिकारके प्रश्नों एवं विवाह-सम्बन्धों आदि छाटी-छाटी बातोंके लिए परस्पर एक-दूसरेसे भी लड़ने लगे और मराठे उन झगड़ोमे हस्तक्षेप करके अपना उल्लू सीधा करने लगे। जैसा कि कनल टांडन अपने प्रसिद्ध 'राजस्थान'में लिखा है "जाति-विशेषका पतन स्वयं उस जातिके द्वारा ही होता है। जाति-गौरवके मूलको अस्त करनेके लिए यदि वह जाति स्वयं आगे न बढ़े तो किसी अन्य जातिके द्वारा यह कार्य कभी भी सिद्ध नहीं हो सकता। जो महाशक्ति जातिकी प्राण-प्रतिष्ठा कर देती है, जातिको नस-नसमें अपना अर्थ्य तेज भर देती है उस महाशक्तिका जिस दिनसे जातिने अपमान किया और आलस्य एवं विलासिताके बशीभूत होकर जातीय आतुभावकी जड़में कुठाराघात किया उसी

[illegible]

मुठेरे मछली और निम्नलिखित जिल्लके बासी एवं मुहनुडमे इन राज्यों की कमा होइ हो की । कबवा समुर्ब धामन सम्प्रदायिक हो गया था । राजा जीव और उनके सामन्त सरकार सामन्ती विचारों और बाबर के बने थे । राजस्वाम नि-राज्य एवं निष्पक्ष हो गया था । ऐसी चीनकीय स्थितिमें यह संवेदना कि कबवा नरक हस्त बलमा ही सम्प्रदायिक राज-कोटी सरकार बचानीमछ बासी चीनकीय सम्प्रदायिक बाबर के विचारों की बातों परमाद न करके मुहनु और मुहनु ही कबवा औरकबकी सम्प्रदायिक मानकर मुहनु कर दिया । इस प्रकार १५वीं शताब्दी प्रारम्भमे ही कबनु, चीनपुर कबनु, चीनपुर, चीनपुर, चीनपुर, चीनपुर मुहनु कबनु बाबर राजमुहनु के छोड़-कर राजमुहनु राजा जीवदेवीकी बचानीमछ बासी सम्प्रदायिक चीन-कीय मुहनु रई बने कबवा मुहनुमछकी और कबवा १५३६ मे कबवा मुहनु बने विचारों का पक्ष लिखु कबवा कबवाविचारों विचार एवं कबवा रई, कबवा कबवा औरकबा बाबर का सम्प्रदायिक इतिहास राजमुहनु राजकीय की बड़ी रई हुई

आइट—बाबरा एवं मिलीके बच्चे नमुने के साथ-साथ बाटों की सभी बालों को बीरेन्द्राचके कमरे में १९६९ ई. में मौसम बाटके कैलुनरी हल डीकेके बाटों के कमरे में डिप्ट-मिलीकी मौसम के बाटों में बर्बर दिनांक दिया

या और शाही क्रोडदारको भी मार दिया था । कठिनीतासे धीरगजैयने इस विद्रोहका दमन किया था । १६८८ ई०में राजारामके नेतृत्वमें जाट फिर मड़क उठे और १६९१ ई० में उन्होंने सिक्न्दरमें स्वयं अकबरके मक़बरे और शवका लूटा । सम्राट दक्षिणमें था और उससे सरदार कठिनीतासे इस विद्रोहका दमन कर पाये । १७०५-०७ ई०में गज्जा जाटके नेतृत्वमें वे फिर मड़क उठे । बहादुरशाहने भज्जाक पुत्र चूडामनका शाही-मेवामें नियुक्त करके जाटोंको सन्तुष्ट किया किन्तु फ़र्रुखसियर उससे दृष्ट हो गया अतः चूडामनने थून नामक स्थानमें एक सुदृढ़ दुर्ग बनाकर शक्तिमंथन करना प्रारम्भ कर दिया । बादशाहने १७१६ई०में मवाई जयसिंहको उसका दमन करनेके लिए भेजा । राजाने थूनपर अधिकार कर लिया किन्तु बादशाहको उसके अग्र दरबारियोंन जाटोंके साथ सुलह कर लेनका परामर्श दिया । सचि जाटोंके अनुकूल थी और वे राजधानियों आगरा एवं दिल्लीके निकट-वर्ती प्रदेशमें ही एक भयप्रद शक्ति बन गये । मुहम्मदशाहके समयमें चूडामनके पुत्रोंने फिर विद्रोह किया और जब शाहीसेना उनके दमनके लिए भेजी गयी तो उन्होंने थूनके दुर्गमें शरण ली । किन्तु चूडामनका भतीजा बदन सिंह बादशाहमें मिल गया और उसने थूनपर शाहीसेनाका अधिभार होनेमें सहायता दी । अतः बादशाहने उसे ही जाटोंका राजा बना दिया । उसके दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी सूरजमलने जाटोंकी शक्तिका चरम शिखरपर पहुँचा दिया । उसने अपने राज्यको सुसंगठित एवं शक्तिशाली बना लिया और थूनके अतिरिक्त डींग, कुम्भेर, वेर तथा भरतपुरमें सुदृढ़ दुर्ग निर्माण किये । भरतपुरको उसने अपनी राजधानी बनायी । उसने अपनी एक सयल घुड़सवार सेना भी तैयार कर ली । नादिरशाहके आक्रमण और उससे उत्पन्न स्थितिसे उसने पूरा लाभ उठाया था । किन्तु अब मराठे और अहमदशाह अब्दाली भी उसके राज्यपर आक्रमण करने लगे । ऐसे अवसरोंपर वह अपने सुरक्षित दुर्गोंमें बैठकर शत्रुआकों चुनौती देता था । १७५७ ई० में अब्दालीने जब मथुरापर उस नगरको लूटनेके लिए धावा किया तो

सुरजबख्शने बीमूहा स्वास्तर करके साथ जोषण कुछ किया। कदापि यह कलालीकी पीछे इधरनेमें लचक नहीं हुआ तबपि ऐसे हीन पिरोकरा मुआ-  
बख्त कलालीकी आरातमें इसके पूर्व कभी नहीं करना रहा था। १९१  
ई के पत्नीपुत्रके कुछसे सुरजबख्त कलाल कलालीकी लहान्छासे थिन् वन  
था किन्तु अपने थिन् महाशयकी क्षिप्रियाकी चर्चित कुछसे करने की कोर  
नाथ नहीं किया। कलालकल कलालीके कालके बाद सुरजबख्त काठ की  
कलर काठकरा तबपिथिन् पक्षिप्याकी किन्तु प्याही की भय था कलली  
केना थी अलग यह वही की और कलर कोल थी भय हुआ था। १९११  
ई में ही कलने कलराले किमेवर की अधिकार कर लिया। किन्तु कलली-  
के पुत्रपिन्ने १९११ ई की मिलकी दरबारके कर्मे-वर्ग कबीमुद्दीन पक्षी-  
के साथ एक कुछसे सुरजबख्तकी मृत्यु ही वही।

[illegible]

टिप्पणी—विपक्षमेंके प्रस्ताव कुछ ग्राहक ( १८१९-१९१९ ई )  
 हैं। इनमें पंजाबमें अधिका एवं कराचार-महाल निर्जुन ऐक्यवादी  
 समुदाय प्रचार किया जा। अचरित काछीय चरित्र विचार-मार्गमें  
 यह एक प्रकार-मार्ग था। वे हिन्दू-मुसलमान एकताके भी समर्थक हैं। इनमें

शिष्य अगदको उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियत किया। गुरु अगद (१५३९-५२ ई०) ने सिक्खों (गुरुके शिष्यों) को एक धार्मिक सम्प्रदायके रूपमें संगठित किया और उन्होंने गुरुमुखी लिपिका भी आविष्कार किया बताया जाता है। उनके उत्तराधिकारी अमरदास (१५५२-७४ ई०) के समय सिक्खधर्मको और उन्नति हुई तथा चौथे गुरु रामदास (१५७४-८१-ई०) ने सम्राट् अकबरके आश्रय एवं सहायतासे अमृतसर स्थानको प्राप्त करके उस नगरको, उनके प्रसिद्ध गुरुद्वारेको तथा वहाँ सिक्ख धर्मके केन्द्रकी नींव डाली। तदनन्तर गुरुका पद वंश-परम्परागत हो गया।

रामदासके पुत्र गुरु अजुन (१५८१-१६०६ ई०) ने अपने अनुयायियोंके संगठनको और अधिक व्यवस्थित किया और वह उनसे नियमित दान-दक्षिणा ग्रहण करने लगे। इस प्रकार उनकी शक्ति और धन काफी बढ़ गया। शहजादे खुसरूका पक्ष लेनेके कारण जहाँगीरने उनको मृत्युदण्ड दिया। १६०४ ई० में ग्रंथ साहिबके सफलनका श्रेय भी इसी गुरुको है। उनके पुत्र हरगोविन्द (१६०६-३८ ई०) ने सिक्खोंका सैनिक संगठन किया। उन्होंने एक छोटी-सी अश्वारोही सेना भी बना ली और स्वयं भी तलवार ग्रहण की। अनुयायियोंकी संख्या भी बढ़ी। अब सिक्ख एक राजनीतिक शक्तिका रूप लेने लगे। उनके उपरान्त उनका पुत्र हरराय (१६३८-६० ई०) गुरु हुआ। वह शान्तिप्रिय था, किन्तु वह दाराशिकोहका पक्षपाती था अतः उसे अपने पुत्र रामरायको आश्वासनके रूपमें औरगजेबके सिपुर्द करना पड़ा। हररायके बाद उनका द्वितीय पुत्र हरकिशन (१६६०-६४ ई०) गुरु हुआ और तदनन्तर हरगोविन्दका द्वितीय पुत्र तेगबहादुर (१६६४-७५ ई०) सिक्खोंका नवा गुरु हुआ। विद्रोहके सदेहमें औरगजेबने गुरुको दिल्ली बुलाया किन्तु मिर्जा राजा जयसिंहके पुत्र कुमार रामसिंहकी सहायतासे वह बहुत समय तक पटना, आसाम आदिमें सुरक्षित रहे और फिर पंजाब आये। वहाँ आते ही सम्राट्ने उन्हें पकड़वा मँगाया और बड़ी क्रूरताके साथ उनका प्राणान्त कर दिया। दिल्ली





पंजाबसे मुग़लोंका अधिकार हो उठ गया। इससे सिक्खोंने लाभ उठाया और अपनी शक्ति बढ़ायी। अब्दालीकी सेनाओंका ये निरन्तर परेशान करत रहे। पानीपतके युद्धके बाद अब्दालीने उनका दमन करनेका प्रयत्न किया और १७६२ ई० में लुधियानाके युद्धमें उन्हें पराजित करके १२००० सिक्खोंका संहार किया, किन्तु फिर भी उनका अन्त न हुआ और ये उस दूने वेगसे बराबर परेशान करत रहे। अन्ततः १७६७ ई० में अब्दालीने अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली और फिर उन्हें न छेड़ा।

अब सिक्खोंने सुयोग्य युद्ध-नैतकोंके नेतृत्वमें बारह मिस्त्रा (सैनिक दल) में विभाजित सिक्खदल-द्वारा बहुभाग पंजाबपर अपना अधिकार जमा लिया। यह एक प्रकारका घम-सैनिक राज्यसंग था। किन्तु अब बाहरी शत्रुकी अनुपस्थितिमें ये मिस्त्रा परस्पर ही लड़ने लगे, और एक प्रकारकी अराजकता एवं अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी। इन्हीं मिस्त्राओंमें से एकका सरदार महासिंह था। १७९० ई० में उसका मृत्यु हो गयी।

उसके पुत्र रणजीतसिंहने जिसका जन्म १७८० ई० में हुआ था, १७ वर्षकी आयुमें ही अपनी पैतृक मिस्त्राका नेतृत्व ग्रहण कर लिया और छोटे-मोटे युद्धोंद्वारा अपनी शक्ति बढ़ाने प्रारम्भ की। १७९८ ई० में जब अब्दालीके पोते काबुलके अमीर जमनशाहने पंजाबपर आक्रमण किया तो रणजीतसिंह उससे मिल गया। जमनशाह तो विफल प्रयत्न होकर लौट गया किन्तु इस अवसरमें लाभ उठाकर रणजीतसिंहने १७९९ ई० में उससे सिक्ख अधिकारियोंसे उस प्रदेशको छान लिया। १८०५ ई० में जमन अमृतसरमें भी अधिकार कर लिया। लाहौरका अपनी राजधानी बनाकर उसने अब अपनी शक्तिका विस्तार करना शुरू किया। इसकायम उसकी सात सदाफौर, जो मध्य एक मिस्त्राकी स्वामिनी थी, तथा मित्र फ़तहसिंह, जो एक अन्य मिस्त्राका स्वामी था, उसके प्रधान सहायक हुए। इस प्रकार धीरे-धीरे पंजाबके समस्त सिक्ख सरदारों और मिस्त्राओंकी अधीन करके १८२३ ई० में रणजीत सिंहने सम्पूर्ण पंजाबपर अपना राज्य जमा लिया। फ़तहसिंह तो उसका



उत्तराविकागी खडगसिंह एक वर्ष भी राज्य न कर पाया। खडगसिंहका पुत्र नौनिहालसिंह जा अपने दादा रणजीतसिंहको ही भाँति होनहार था अगले ही दिन मार डाला गया। तत्पश्चात् रणजीतसिंहका एक अर्ध पुत्र घोरसिंह राजा हुआ किन्तु १८४३ ई० में उसका भी वध कर दिया गया।

अब रणजीतसिंहके सबसे छोटे पुत्र दिलीपसिंहको जो छह वर्षका बालक मात्र था राजा बनाया गया। राज्यकी मारी शक्ति और सेना उसके नेताओके हाथमें थी। सना ही स्वयंका राज्यका प्रतिनिधि और खालसा कहलन लगी, उसकी मर्यादा द्विगुणिन हो गयी और बड़ी ममत्त शासन, बजोरो, राजा एवं प्रजाकी भाग्यविधाता बन बैठी। चतुर अंगरेज तो ऐसे ही अवसरकी ताकमें थे। १८४५ ई० में दानों शक्तियोंके बीच युद्ध छिड़ गया। ननापनियाके परस्पर अविश्वास एवं विश्वासघातक कारण एकके बाद एक चार युद्धोंमें सिक्ख हार और अंगरेजोंकी सहज ही विजय प्राप्त हो गयी। पणिमाम स्वरूप जा मन्धि हुई उसके अनुसार जालन्धर दाआवका सम्पूर्ण प्रदेश अंगरेजोंकी प्राप्त हुआ, सिक्ख दरबारन युद्धके हरजानेके रूपमें तान करोड रुपया दनका वचन दिया और एक अंगरेज अफसर राजा दिलीपसिंहक सुरक्षकके रूपमें तथा शासनके प्रत्यक्ष विभागपर नियन्त्रण रखनके लिए लाहौर दरबारमें समर्थ स्थापित हुआ। हरजानको रकम अदा करनके लिए बश्मार देशका जम्मूके डोगरा मरदार गुलाबसिंहके हाथ बेच दिया गया। १८४९ ई० में अथका बहाना बनाकर अंगरेजान फिर युद्ध छेड़ दिया। सिक्ख बोरताके साथ लड़े किन्तु पराजित हुए। सिक्खराज्यका अन्त करके सम्पूर्ण प्रदेश अंगरेजी राज्यमें मिला लिया गया और महाराज दिलीपसिंहको पेंशन देकर इंग्लैण्ड भेज दिया गया। वहाँ वह ईसाई बन गया और मृत्यु पयन्त वहीं रहा। भारतका प्रसिद्ध काहेनूर होरा भी, जिसे नादिशाह छूटकर ले गया था और जिम रणजीतसिंहन बाबुलके अमार शाहशुजासे पुन प्राप्त कर लिया था, अग्रहाय दिलीपसिंहम महाराना विक्टोरियाका भेंट करवा दिया गया। वहीं



छिड़ गया। १७१२ ई० में ताराबाईका पुत्र मर गया और अब स्वयं उसे भी पदच्युत करके उसकी सपत्नी राजसबाईने अपने पुत्र शम्भूजीको राजा घोषित कर दिया तथा उसकी ओरसे कोल्हापुरमें राज्य करना प्रारम्भ कर दिया। मतारामें साहूकी स्थिति भी बिलकुल डँवाडाल थी।

इसी समयमें कोवणके एक चितपावन ब्राह्मण विश्वनाथका पुत्र बालाजी भट्ट मराठा सरदार घनाजी जाधवका मन्त्री था। उसके कहनेसे घनाजी ताराबाईका पक्ष त्याग कर साहूमें आ मिला था। उसके साथ ही बालाजी भी आया। १७१० ई० में घनाजीकी मृत्युके बाद उसका पुत्र चन्द्रसेन जाधव फिर कोल्हापुरवालोंके पक्षमें चला गया किन्तु बालाजी साहूकी ही सेवामें रह गया। उसकी योग्यता देखकर साहूने उस अपना सेनाकर्त्ता (बख्शी) बना लिया और तदनन्तर अपना पेशवा (प्रधान मन्त्री) बना लिया। इस प्रकार बालाजी विश्वनाथ (१७१४-२० ई०) पेशवा वंशका सम्यापक हुआ। यह बड़ा चतुर राजनीतिज्ञ था। उसने एक-एक करके सभी लुटेरे मराठा सरदारोंका दमन किया और उन्हें वशमें कर लिया। कन्होजी आग्रे जैसे अधिक क्षयितशाली सरदारोंको भी समझौता करके अपनी ओर मिला लिया। अपनी शक्तिका सवधान करनेके लिए इन अनुयायनके अनन्यस्त निरकुण लुटेरे सरदारोंको अपने नियन्त्रणमें रखना आवश्यक था, अतः साम, दाम, भय, भेदसे उन्हें वशमें करके उसने एक नवीन मराठा मघका स्थापना की जिसका आधार चौथ और सरदेशमुखी था।

यह मन-द्वारा नियत भूमिकरका दसवाँ हिस्सा सरदेशमुखी कहलाता था और वह पूरा मराठाके मराठा राजाका मिलता था। चौथ भूमिकरका चौथाई होता था, उसका २५ प्रतिशत मराठा राजाको जाता था तथा अन्य ६ प्रतिशत सहोत्रके रूपमें और ३ प्रतिशत नङ्गुण्डक रूपमें राजाकी इच्छापर अवलम्बित था, जिसे वह चाहे 'उम दे'। शेष ६६ प्रतिशत जो मोकासा कहलाता था मराठा सरदारोंमें बँट जाता था। प्रत्येक सरदारको

स्थित प्रदेस यह था कि किसी भी राजका हो बीच और बरदेसमयी समुल  
 कागसे लिह दे दिया जाता था । जिस प्रदेसका अधिकार जिस बरदारका  
 दिया जाता था उसकी बीचका मोकासा उही राजकाको प्राप्त होता था और  
 बनने ही यह राजका देना और लेनकाका अंशदान करता था । इन बरोंके  
 बरदार करीबने किए कोई एक निश्चित राजका का अनुमोदन नहीं किया  
 जाता था बरन् निश्चित राजका और प्रदेसोंके बाहरोंके उन्हें अधिकार  
 निश्चित लक्ष्य समुल दिया जाता था । परिणामस्वरूप कोई बरदार  
 बाजार देना एक प्रदेसका स्वामी न हो पाता और और नवमिश्र बना  
 रहता । इन करोको बराबरीका बरदार की दोहराका अंशदान राजका  
 करिबी बांधने मुक्ति-कागसेकी बनना जाता था किन्तु क्योंकि इन  
 बीचने दूधको रखा और देवकी एवं इत्येक बांधकी निश्चित दूध  
 निश्चित बुरी का एक प्राचीन आधारपर बीच देना उहीके लिए बना  
 होता था और बहुत बुरी बना रहता था । बरदार बरदारोंके लिए  
 निश्चित राजका काय कुछ करी रहने और इनके प्रदेसोंके बरदार  
 करकेका बरदार एवं निश्चित बना रहनेवाला बनाया था । केसा  
 राजकाके निश्चिताने इन करिबीके बरदार और देव मुक्ति अंशके बरदार  
 निश्चित राजका देना के बरदारके बरदारके मुक्तिके एक निश्चित मुक्ति  
 एवं बरदारके समुल करकेका अधिकार के दिया । इनके राज देवका  
 निश्चित भी बना और बुरी उनके बनने बीचके बांधकीका बरदार  
 बांधकाका एवं बनकी देना एक देवका निश्चित ही बरदारका बरदार  
 राज बीच ही बना और देवका ही राजका करकेका ही बना

केसा मुक्त देवका बांधकाका प्रथम ( १७२०-४ ई ) बनने की  
 अधिक नृत्तकाकी मुक्ति एक मुक्ति केसाकी था । बनने बरदार निश्चित  
 निश्चित करनेकी बीचका बांधका । एक अधिकार बीचका बनने  
 बीचका बीच कि उही बरदार केसा बांधका बनने  
 राजकी मुक्ति एवं मुक्तिकाका बना बांधका, बनकी और बन

नहीं देना चाहिए। किन्तु बाजीरावने कहा, यदि हम जजर वृक्षके तनेपर  
 ही भीघे प्रहार करेंगे तो उसकी शाखा प्रक्षालाएँ तो आपसे आप गिर  
 पड़ेंगे। उसकी वृक्षनाके प्रभावमें आकर महाराज साहू भी अपनी  
 स्वोक्ति दे दो। अनन्तर पेशवाने मालवा और गुजरातपर अनेक आक्रमण  
 किये। इन आक्रमणमें मल्हाराय होन्कर, रानोजी सिंघवा, ऊदाजी पेंवार,  
 रघुजी भासले, पिलाजी गायकवाड आदि उसका अनुचर सगदार अनुभवों  
 पर मिदहस्त हो गये। उमरी युद्ध-यात्राओं और विजयोंके कारण राज्य-  
 की विशाल सेना सुदूर प्रदेशोंमें व्यस्त रहने लगी, उसका निर्वाहका कोई  
 भार राजकोषपर नहीं रह गया, उलटे लूट आदिका धन ही निरंतर राज्य-  
 में आने लगा और मराठाकी शक्ति, प्रभाव एव आतंक देशव्यापी होने  
 लगा। १७२७ ई० में महाराज साहू पेशवाका राज्यके सर्वधिकार सौंप  
 दिये। पेशवाने १७२६ ई० में श्रीरंगपट्टन तक सुदूर दक्षिणमें भी घावा  
 किया था। निजाम उसके लिए बाधक बन रहा था। उसने कोल्हापुरके  
 राजासे मेल करके पेशवाके चौथ वसूल करनेवाले व्यक्तिका निकाल दिया।  
 किन्तु १७२८ ई० में पलखेडके युद्धमें पेशवाने निजामको पराजित करके  
 उसे कोल्हापुरका पक्ष त्यागने एवं चौथ और सरदेशमुखी नियमित रूपसे  
 देते रहनेका वादा करनेके लिए बाध्य किया। निजामने अपनी कूटनीतिसे  
 सेनापति त्रियम्बक दामडेको पेशवाके विरुद्ध कर दिया किन्तु पेशवाने  
 १७३१ ई० में दमोईके युद्धमें सेनापतिको पराजित करके मार डाला।  
 पेशवाके भाई चिमनाजीने मालवाके मुगल सूवेदार गिरधर बहादुरको भी  
 पराजित करके मार डाला और उसका उत्तराधिकारी मुहम्मदखान बगश  
 भी पराजित हुआ। तदनंतर राजा सवाई जयसिंह मालवाका सूवेदार  
 हुआ। उसने पेशवासे समझौता कर लिया और सम्राट्म कहकर उसे  
 मालवाका नायब सूवेदार बनया दिया। गुजरातके सूवेदार रामा वजीत-  
 सिंहने भी पेशवाकी चौथ एवं सरदेशमुखी देना स्वीकार कर लिया। इसी  
 समयसे गुजरातमें पेशवाके प्रतिनिधिके रूपमें गायकवाडका प्रभाव बढ़न



मन्मा । बाजीराव बंदा-बन्धुनाके दोआबे एवं दिल्ली इरीक्टर इतिहास बना  
करता था । स्वयं दिल्लीके आक्रमण भी उसने लखनऊ की । उसके निम्न  
दिल्ली दरबारके नव प्रमुख निम्न है । १७३८ ई में बाजीरावने मिर्जा-  
की बहिनकाके लिए मुनाया किया बाजीरावके पुत्रों ने मन्माके बगलि होकर  
पड़ भी बैठ गया । बाबा की निम्न होकर बाबाधर्मकी ओरने मन्मा  
बल्लभा इन्तु लखा मन्मा और मन्माके बीचके सम्पूर्ण इतिहास की पुन  
राज्याधिकार उसने मन्माको दे दिया । १७३३ ई में और कथनात् अपनी  
मन्माके इतिहास बाजीरावकी बल्लभा मुनेन्मन्मा राज्यात् एक मित्राई बाबा लैन्मन्मा  
इतिहास कर गया था । ये बाबाकर उसके पुन कथारधिकारी हुए थे की  
बाजीरावके निम्न एक बहिनका पुत्र । मन्मा दिल्ली बाबाधर्मका बाबा  
करनेकी बाबा ही रहा था कि बाबाधर्मका बाबाधर्म ही रहा । इन बल्लभा  
कि बाबा बाबाधर्म ही बाबा व बाबा बल्लभा मित्रावकी बाबा वेक मित्रा  
और बाबा कि बल्लभाके मित्राकी और मुनेन्मन्माकी मुनेन्मन्मा इन  
बाबाधर्मकी बाबा निम्नका बाबा करे । मित्रा बाबाकी बाबा मुनेन्मन्माके  
बाबाधर्मकी बाबाधर्म लैन्मन्मा की और बाबा इन बाबाधर्मका बाबाधर्म निम्न  
रचना इतिहासका बाबा की ही बाबा मुनेन्मन्मा करके था की मुनेन्मन्मा । ये  
कथार बाबाधर्म ही स्वयं बाजीरावकी मुनेन्मन्मा ही की ।

[illegible]

काशीपन्थका कुल पैथना बाबाजी बाबोराम ( १७४ - १९ ई ) कर्मी

पिताकी भाँति महत्वाकांक्षी तथा उसकी उत्तराभिमुखी नीतिका तो अनु-  
मर्त्ता था किन्तु उस जैमा वीर योद्धा, कुशल सेनानायक और राजनाति-  
पटु न था। जयपुर, जोधपुर आदि उत्तराधिवाग्ये क्षगहोंमें (१७४३-  
४९ ई०) हस्तक्षेप करने और फरमस्वरूप उन राज्याकी लूट वसोट करनेमें ये  
राजे भी मराठोंसे चिढ़ गये और उन्हें अपना यशु समझने लगे। १७४९ ई०  
में छत्रपति साहूकी मृत्यु हो गयी। उसकी वसोयतने अनुसार ताराबाईके  
पोतेको सताराका राजा बनाया गया, किन्तु सागाबाईने स्वयं ही उसका  
विरोध किया और राजाराम राजा बनाया गया। उसने राज्यके सर्वाधिकार  
पेशवाको सौंप दिये। अब सतारा और कोल्हापुरके राजा नाममात्रके  
अनुल्लङ्घनीय छाटे में राजा मात्र रह गये। विस्तृत मराठा साम्राज्य एवं  
विशाल मराठा शक्तिका एकमात्र स्वामी पेशवा ही था। १७५० ई०  
में उसने पूनाको अपनी पृथक् एवं स्वतंत्र रामधानी बनाया।

उसके मराठा सरदारोंमें वरारका रघुजी भोमले ही उसका प्रबल विरोधी  
और प्रतिद्वन्द्वी था। पेशवाने उसे भारतक पर्वी प्रांतोंके सम्बन्धमें खुली छूट  
देकर सन्तुष्ट किया। अब भोंसले और उसके सहायक भास्कर पण्डितने प्रति-  
वर्ष बंगाल, बिहार और उड़ीसाको गैदना एवं लूटना शुरू कर दिया।  
भास्कर पण्डितको बंगालके तत्कालीन नवाब अलावर्दीखाने मरवा दिया,  
इसमें भासलेके आक्रमणोंकी भीषणता और अधिक बढ गयी। अन्तत अली-  
वर्दीखाने भोंसलेको उड़ीसाका समूचा प्रान्त देकर और बंगालकी चौथके  
रूपमें १२ लाख रुपये प्रतिवर्ष देनेका धचन देकर उससे अपना पिण्ड छुड़ाया।  
पेशवा निजामके उत्तराधिकारी सलावतजगमे उलझा किन्तु उसके फ्रान्सीसी  
सरक्षक बुसीने १७५१ ई०में पेशवाका कई बार हराया। १७५५ ई०में  
पेशवाने सरदार आग्रे और उसकी जहाजी शक्तिको नष्ट करनेकी सारी भूल  
की। १७५८ ई० में बुसीके हैदराबादसे हटते ही पेशवाने निजाम राज्य-  
का अन्त करनेपर कमर कसी, अहमदनगरपर उसने अधिकार कर लिया  
और निजामके कुशल तोपचो इग्राहीमगर्दीको अपनी ओर मिला लिया।

पैसवाके बाई नरायणराय साहने कृषिके मुद्देमें निहालकी मुठी छप  
 नरायण करके रहे अपने बीलाबाद बभीरवत बीछपुर, बडवावत  
 और बुद्धपुरके मुजबिह दुर्ग तथा ६ मयब हने सर्विक मयका और  
 पैसवाको बीप देनेके बिन्दाय कर दिया । कवर कतरमें हम बीचमें पैसवा-  
 के बाई रावीहने अपने १७५४-५६ ई के बाइलनकी राजकुमारीके बन्धु,  
 उदधपुर, बाइल कुंरी बाइल विविण राजमें लह-भार करके बीप लुप्त  
 की और लह विन्दी मकर बाइलल मयमकाइको बन्धे कतरकर  
 बाइललीर डिजिबको बाइलल बन्धनेमें बहीर बन्धुलु-ककी मयलला  
 बा । बाइलल नराइके बुधलल बहीन बा । बन्धके मयमें भी लहने  
 कर्ने उदध दे रिबे बुधलल बाइले राजमें भी कर्नेमें लह-भार की बीप  
 डिज बाइलकी बीप बने । १७५६-५७ ई के बाइललल बाइलली  
 विन्दी बाइल और कर्ने बाइललल बीलाव और बुधललके बुने बाइल कर  
 लिने । लिन्नु उदधकी बीप बिन्दी ही रावीहने १७५७-५८ ई के बिन्  
 कतर बाइलल बाइलल बिन्दी और हम बाइल कतर लह बाइल बिन्दी  
 तथा बन्धे बाइललीके डिजिबिकी बन्धकर बन्धे बीप बन्धलललकी  
 बाइल बिन्दी कर रिबे लह नराइकी बाइल बन्धने बन्धे बिन्दीलल  
 बन्धे बहीन बा । बन्धकी बीलावकी और बन्ध बाइले बन्धलल बाइले  
 बन्ध उदध बाइलल ईल बन्धे बा और बाइल-भार बाइलले के बीप  
 बन्धे बन्धे । राजपुर बाइल, बन्धे विन्दी बन्धल और निहाल बही  
 बन्धे बीप बाइल के बन्ध बन्ध बाइल बा ।

इसी बन्ध बाइलनमें पैसवाका निहालके बाइल बन्ध डिज लह बा  
 बिन्दी नराइल बाइल रावील कतरमें बन्धे बिन्दीलल बन्धे बन्धललल  
 डिजल बाइल बन्धे बाइललीके बाइलल बाइलल लह बा । बाइलली  
 बाइललीके बन्धलल बिन्दी बन्धे बाइलल और बाइलललल बाइल विन्दी  
 बन्धललल कर्ने बन्धे लह लह बाइललीके बन्धे बहीन बा । बाइलल  
 बन्धे और बन्धने भी बी नराइके बन्धल के बाइलली लहल और

मुन्सुमानोंको रक्षा करनेके लिए उसे माग्रह आमन्त्रित किया। अतएव अन्नालीने एक विशाल सेनाके साथ फिर आक्रमण किया। १७५९ ई० में ही उसने पञ्जाबपर पुन अधिकार कर लिया, १७६० ई० के प्रारम्भमें ही उसने दत्ताजी सिधियाको पराजित करके मार डाला, राजधानी दिल्लीमें प्रवेश किया और होन्करको मार भगाया। तदनन्तर वह अलीगढ़में डेरालाकर मराठोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगा। अवधका नवाब शुजा-उद्दौला और गढ़वा सरदार नजीबुद्दौला उससे आ मिले। मराठे दक्षिणमें निजामके साथ हो उलझ हुए थे। उत्तरके ये समाचार पाने ही पेगवाके भाई मदासिबराव नाळ और पुत्र विश्वासरावकी अध्यक्षतामें शिवाजी मराठा सेना अन्नालीका सामना करनेके लिए चल पड़ी। इब्राहीम-गढ़ीका प्रसिद्ध तोपखाना भी उनके साथ था। उन्होंने आते ही दिल्लीपर अधिकार कर लिया और खजानाकी रसदक आधार कुजम्पुरपर भी पकड़ा कर लिया और फिर पानीपतके मैदानमें आ बैठे। मन्हरगव होन्कर, महादजी सिधिया आदि मराठा सरदारोंके अनिरिक्त सूरजमल घाट भी उनसे आ मिला। १७६० ई० के नवम्बरमें ही दोनों सेनाएँ पानीपतमें आ खड़ी थीं, कुछ कुछ हमले बमते रहे, किन्तु मराठा सेनाकी रण-समाप्ति ही चली थी और सैनिकोंके अनिरिक्त घाटे, बीज आदि पशु भी नष्ट करने लगे। १८ जनवरी १७६१ ई० के प्रातःकाल पानीपतका यह तीसरा मोर्चा युद्ध प्रारम्भ हुआ और तीसरे पक्ष तक समाप्त भी हो गया।

इस युद्धमें मराठे दण्डवत् पराजित हुए। स्वयं नाळ जी विजयपुर तक दौड़के मारे मर गये। उतके २३ शत्रु मरगार भी काम आये, मृत और शरण लेनेवाले कोई दिनांक न था। मराठोंकी ४५००० सेना पक्ष-दुर्भाग्यसे अधिक विघटित होकर शरणार्थियों आदिमें बँट गई थी। इसके अलावा पानीपत पर दौड़ पड़े। अन्नालीकी ६०००० सेनाका भी पक्ष ३१ युद्धकाल तक आया। अन्नालीकी आगे की आदमाद सदा सदा



1. 2.

3.

[illegible]

वैद्यक आचरणाच कायदेश (१९८९-९० ई ) के अन्वये राज्य  
कानूनन राज्य न्यायी और न्यायाधीश या तथा न्यायाधीश निर्दिष्ट जज  
नामक और न्यायाधीश का : न्यायी जज और न्यायाधीश जिन के अन्तर्गत न्यायाधीश  
न्यायाधीश और न्यायाधीश का नाम दिया और न्यायाधीश राज्य न्यायी जज निर्दिष्ट जज  
१९९० ई के अन्तर्गत न्यायाधीश न्यायाधीश जज निर्दिष्ट जज  
न्यायाधीश और न्यायाधीश न्यायाधीश जज निर्दिष्ट जज, किन्तु न्यायाधीश वैद्यक  
न्यायाधीश न्यायाधीश न्यायाधीश जज निर्दिष्ट जज : न्यायाधीश न्यायाधीश निर्दिष्ट जज  
न्यायाधीश निर्दिष्ट जज न्यायाधीश : न्यायाधीश न्यायाधीश न्यायाधीश निर्दिष्ट जज या  
न्यायाधीश न्यायाधीश न्यायाधीश १८ ई के अन्तर्गत न्यायाधीश न्यायाधीश  
न्यायाधीश और निर्दिष्ट जज न्यायाधीश न्यायाधीश न्यायाधीश न्यायाधीश  
न्यायाधीश : निर्दिष्ट जज और निर्दिष्ट जज न्यायाधीश न्यायाधीश वैद्यक न्यायाधीश  
न्यायाधीश न्यायाधीश न्यायाधीश न्यायाधीश १८ २ ई के अन्तर्गत न्यायाधीश

मन्धिकी सब शर्तें मानकर वह उनसे अधीन हो गया। इस मन्धिकी सिधिया, होल्कर, भामले जादि सभी मराठा मरदारोंने जो अब प्राय पूनाके प्रभुत्वसे स्वतन्त्र हो गये थे, बड़ा अपमानजनक माना और अंगरेजोंक साथ युद्ध छेड़ लिया।

अवतक अंगरेजोंकी शक्ति पर्याप्त बढ़ चुकी थी, १८०३-०५ ई० के मराठा मरदारोंक साथ किये गये इन युद्धमें अंगरेजोंको ही विजय हुई और उन्होंने पेशवाके माथ-टो-साथ मिन्धिया होल्कर, गायकवाड और भासलेका भी सहायक सन्धियोंने जालमें जकड़कर अपने अधीन कर लिया। बाबोराव द्वितीय अपने पिताका ही भाँति मूर्ख एवं दुष्ट प्रकृतिका व्यक्ति था। वह पूना मात्रका ही राजा रह गया था किन्तु अपने पूषजाको भाँति पूरे मराठा सभका अध्यक्ष बनना चाहता था जो अब असम्भव था। उसका मन्त्री श्यामकजी भी बड़ा धूर्त और दुष्ट था। इन दोनोंने पड़्यन्त्र करके गायकवाडके घमस्तिमा विद्वान् एवं सुयोग्य स्राज्ञमन्त्री गंगाधर-शास्त्रीका वध करवा दिया, जिससे समस्त मराठा ससारमें सनसनी फैल गया। अंगरेजोंने भी हस्तक्षेप किया और अपराधा श्यामकजी पकड़नेका विफल प्रयत्न किया। १८१७ ई० में एक मन्धिके द्वारा उन्होंने पेशवाका कूठ और इलाका द देनेके लिए तथा मराठोंका मुख्यता बननक अधिकारका त्याग कर देनेके लिए बाध्य कर दिया। पेशवान इस सन्धिकी तोड़ा फर-स्वरूप १८१८ ई० में अंगरेजोंक साथ युद्ध छिड़ गया अन्य मराठे राजे भी उसमें उलझ गये और पराजित होकर सभीन अंगरेजोंको प्रदेश एवं धन और अधिकार देकर और उनकी पूण अधीनता स्वीकार करके पिण्ड छुड़ाया। पेशवाका तो राज्य, पद, अधिकार सब छीन लिया गया और उसे पंशन देकर कानपुरके निकट बिठूरमें रहनके लिए भेज दिया गया जहाँ शतरज खेलकर उसने जीवनके शेष दिन बिताये। १८५१ ई० में उसकी मृत्यु हो जानपर उसका दत्तक पुत्र नाना साहिब बुधुपन्तकी पेशना भी बद कर दी गयी।



मराठा राज्य—विजापूर वंशजों ने बरगार अन्धकार जगती मनुष्य-  
लोक वर्चस्व नीतिर हों लड़ाई और बौद्धानुरक्त हो राज्य स्थापित कर  
दिये थे । बरगार राज्यके आलमने ही वैजयापूरका सम्पूर्ण पुनर्वास ।  
व मराठे यही व राजकीय राज्य के दिग्गु जगतीने सम्पूर्ण राज्य-स्थिति  
को बरगार बरगार बरगारोत्तर बरगार मनुष्य स्थापित करके बरगार बरगार  
का सम्पूर्ण विधान किया था । बरगारानुरक्त राज्य ही बरगाराने ही सम्पूर्ण-  
का सम्पूर्ण । मराठा बरगार ही १७८९ ई के बरगार मनुष्यके सम्पूर्ण  
बकी विजापूर राज्य ही बरगार और वैजयापूरकी ही उनमें कई विजयापूर  
व ही । वैजयापूरका सम्पूर्ण बरगार ही वैजयापूर स्थापित सम्पूर्ण विजापूर  
का और वन स्थापित सम्पूर्ण बरगार बरगार बरगार और बरगार पुनर्स्थापित  
सम्पूर्णका ही सम्पूर्ण सम्पूर्ण बरगार बरगार विजापूर, बरगारानुरक्त  
सम्पूर्ण बरगार बरगारानुरक्त बरगार एवं बरगारानुरक्त सम्पूर्ण विजापूर  
विजापूर । बरगार सम्पूर्ण सम्पूर्ण बरगार व बरगार वन स्थापित बरगार  
बरगार और सम्पूर्णका सम्पूर्ण सम्पूर्ण कर वने थे । बरगार बरगारानुरक्त  
बरगारानुरक्त बरगारानुरक्त सम्पूर्ण ही बरगार स्थापित बरगारानुरक्त बरगारानुरक्त  
वैजयापूर कई बरगारानुरक्त सम्पूर्ण व कर बरगार व । बरगार सम्पूर्ण सम्पूर्ण  
बरगारानुरक्त विजापूर सम्पूर्ण सम्पूर्ण सम्पूर्ण बरगारानुरक्त ही बरगारानुरक्त  
बरगारानुरक्त बरगारानुरक्त ( बरगारानुरक्त ) के विजापूर सम्पूर्ण बरगारानुरक्त  
बरगारानुरक्त सम्पूर्णानुरक्त सम्पूर्ण ।

पेशवा ने आधिपत्य में मुक्क, स्वतंत्र राजा घोषित करना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु दोस वर्षों में ही हमारे अंगरेज-मराठा युद्ध (१८०३-०५ ई०) के फलस्वरूप उन सभी मराठा राजागणों में स्वयंका अंगरेजों का सहायक-संधि योजना में जकड़वाकर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और १८१८ ई० के तीसरे युद्ध के उपरान्त तो वे अंगरेजों की पूर्णतया अधीन और आश्रित हो गये, उनको ही कृपाकर अश्वत्थि हो गये और अंगरेज उनके आन्तरिक मामलों, उत्तराधिकार के प्रश्न, शासन-प्रबंध आदि में भी गुला हस्तक्षेप करने लगे। उनमें से जिसका जब चाहा अंगरेजों ने अंत कर दिया, जो वध रहे वे वतमानकाल पर्यन्त चलत रहे। मराठों और दक्षिणा ग्राहकों के कुछ अन्य भी छोटे छोटे राज्य थे। उनकी भी यही गति हुई। उपरोक्त राज्यों के कतिपय प्रारम्भिक नरेश यथा महारराव होल्कर, अहल्याबाई, महादाजी सिंधिया आदि अत्यन्त चतुर, सुयोग्य एवं पराक्रमी थे और अपने काय कलापों के लिए इतिहास प्रसिद्ध हैं किन्तु उनके प्राय सभी और प्राय सभी उत्तराधिकारी निष्कर्ष और अयोग्य हो रहे।

**धर्म और संस्कृति**—इस ढेढ़ सौ वर्षों के ऐतिहासिक अवयुग में धर्म और संस्कृति-जैम प्रकाश पुजो की बात उठाना ही व्यर्थ है। उस काल को धार अराजकता, अशांति, मार-काट, लूट-खसोट, ईर्ष्या-द्वेष वैग-विरोध एवं सद्व्यापी धार नैतिक पतन के बीच जहाँ छोटे बड़े किसीकी भी प्रतिष्ठा, प्राण और धनकी सुरक्षा नहीं थी, धर्म और संस्कृति की ओर ध्यान देने का किस अवकाश था। उस काल के राजे रईस, नवाब, अमीर, सामन्त और सरदार अधिकतर या तो निर्मम लुटेरे एवं क्रूर अत्याचारी थे अथवा कायर आसपी, विलासी और दुराचारी थे। किसीको भी अपना किसी प्रकारकी स्थितिके स्थायित्वका कोई विश्वास और भरोसा न था। अतः या तो वे नितान्त अविश्वसी हो स्वार्थसाधन में रत हो जाते या फिर निर्द्वन्द्व हो विषय भोगों में डूब जाते। इस काल में किसी भी धर्म, जाति, वर्ग या प्रदेश में किसी भी तेजस्वी महात्मा, सन्त, महान् समाज-सुधारक या

[illegible][illegible]

हमी प्रकृत कसति हत नानमे वारप्रातः सुदुस्करप्रसन्न और अने

कुछ वंशजों तथा अथ मुसलमान नवाबोंके प्रयत्न, प्रथम और प्रोत्साहनसे उद्दामा और उद्दृशायरीको अमृतपूर्व उन्नति हुई और नज़ीर, नसीर, मीर, सौदा, हाली, जोक, दाग, गालिब आदि अनेक उच्चकोटिक शायर हुए, तथापि उद्दूके इन शायरोंने भी। इस्क़ हक़ीकोके बहाने इस्क़ मज़ाज़ीके कामोत्तेजक ग़ात गा गाकर अपने आश्रयदाता नवाबा, अमीरों, रईसों और उनक दरबारियोंका विलासिता, काहिली और विषय-भागामें अधिकाधिक ग्रस्त होनेमें ही सहायता दी। यदि कुछ और किया तो यह कि उन्हें निराशावादी बना दिया। कोई नैतिकता या सत् सन्देश इस उद्दृशायरीमें भी न था। दिल्ली और सम्बन्ध उद्दृशायरीके प्रधान केन्द्र बन गए थे। तत्कालीन हिन्दा एव उद्दू साहित्यके आधुनिक प्रकाशक भले ही उनमें गूढ़ अथ ईश्वरीय प्रेम, अन्य अतिशय ऊँचे-ऊँचे भाव एव आदर्श खोज निकालें, किन्तु जिस कालमें और जिन लागोंके लिए वे कविताएँ—शेर या गीत, ग़ज़लें लिखी गयी थीं और जो उन्हें पढ़ते या सुनते थे उनपर तो इस साहित्यका कोई सत्प्रभाव पड़ा दृष्टिगोचर होता नहीं, प्रत्युत देश और जातिके नैतिक पतनमें ही वह भी साधक ही हुआ प्रतीत होता है।

धार्मिक, तात्त्विक, राष्ट्रीय या किसी भी प्रकारके वैज्ञानिक साहित्यका उस कालमें प्रायः कोई सृजन हुआ ज्ञात नहीं होता। आमोद प्रमादमें मग्न और शराब, अफ़्रोम एव कामिमानियाके शरीरभागमें सब प्रकारके गम-ग्रस्त करनेवाले इन राजे, रईम और नवाबोंने संगीत और नृत्य आदिको भी अपनी ऐशका साधन बनाया, अतः प्रोत्साहन दिया। किन्तु इन महान् कलाओंको भी नीचे उद्देश्योंका इस प्रकार साधन बनाकर विकृत एवं पतित कर दिया और उनका विकास एवं उन्नति करनेक बजाय उनका रूप एवं मूल्यको अत्यन्त गिरा दिया। विविध कृष्यसनाका जिस देश और समाजमें खेलवाला था वहाँ सत्साहित्य और कलाओंको क्या प्रोत्साहन मिल सकता था। चित्र एवं मूर्तिकलाकी भी प्रायः यही दशा थी। इन कालमें उनकी माधना, विकास या किसी उत्कृष्टनोय कृतिका निर्माण नहीं

दुआ प्रणीत होना । इन राजाओं और मन्त्रियों का प्रत्यक्ष एवं दूरस्थ द्वारा भी कोई विशेष विकास या किसी महत्वपूर्ण हतिष्ठा निर्माण नहीं किया । हिन्दू, वैदिक अनुष्ठानों का हिमालय की कोई महत्वपूर्ण वसतिगण-प्रकार, मन्त्रिण आदि भी इस राज्य में शासक बना ही नहीं । स्वयं अपने लिए भी किसी उच्चवर्गीय नगर पूर्व राजाशासन व्यवस्था निर्माण की कल्पना शासक नहीं किया । अजिहारी देवस्थानादौ, ब्राह्मणों के मन्दिर समुदायों के देवस्थानों के स्वनमन्दिर समुदायों के मन्त्रिणों द्वारा निर्मित अपने छोटे-छोटे इलाक़ों में या दलितों के विकास-प्रकार एवं उच्चतम देवस्थानों द्वारा कुछ ही लोगों के अपने छोटे-छोटे हिन्दू मन्दिर ऐसे ही ब्राह्मणों के छोटे-छोटे स्वनमन्दिरों के द्वारा कहे जा सकते हैं । हिन्दू के भी कोई विशेष दलितवर्गीय वसतिगणों की देवी बात नहीं है ।

[illegible]

कानूनीक केन्द्र कीर विचार-विशाल भी अकलत एवं कलगत हूँगी नके

गये। मावजनिक गिथाको कोई व्यवस्था ही नहीं रह गयी। प्रत्येक समाज और वयमें धोर ऋद्धिवादिता, मकीर्णता एवं अनेक अचविश्राम और भुगीतियाँ घर घर गयी थी। धर्मन परम्परागत नामो, प्रथाआ और कतिपय बोहो आचारो मात्रका रूप ले लिया था। तेजस्वी धर्मानार्यो, सन्ता, मुद्धारको एय विद्वानोके अभावमें प्राण एवं धनयो रक्षामे ही सदैव चिन्ताकुल जनमाधारणका धार्मिक जीवन गडन लगा था। क्या इस्लाम, क्या शैव, क्या वैष्णव, क्या जैन और क्या सिक्ख अथवा अन्य काई भी धर्म, सबको प्रायः एक-मो रखा थी। सभी धर्मोंमें धोर विकार अनेक पन्थ उपपन्थ, जो स्वयं परस्पर एक दूसरामे वैमनस्य रखते थे, तथा एक प्रकारकी शिथिलता उत्पन्न हो गयी थी। छोटे ही मुसलमान हागे इस्लाम-के सिद्धान्ताको भली प्रकार जानते हो, उमके नियमोका ईमानदारीके साथ पालन करते हा और अपने धर्मके विरुद्ध कार्योंको न करत हो या कुछ कही जानेवाली प्रवृत्तियोंमें रत न रहते हों। हिन्दुओंक साथ अपना विरोध बनाये रखनेके लिए हो अथवा अपनी राजनैतिक शक्ति बनाये रखनेके लिए हो वे मुसलमान थे। जब हिन्दुओ या जैनो आदिकी सहायता और सहयोगकी आवश्यकता होती तब वे उनके धर्मके प्रति अत्यन्त सहिष्णु एवं उदार हो जाते, जब विरोध होता तो बडेमे बडा अत्याचार करनेमें न चूकते। परिस्थितियोंने मन्त गुरु नानकके सीधे मंगल धर्मको एक नैतिक संगठनका रूप दे दिया जिसकी राज्य और दक्षितलिप्तामे बह धर्म कमने कम उस कालमें तो डूब ही गया था।

जन-माधारण हिन्दू, राम और कृष्णके रूपमें विष्णुके तथा शिव, गणेश, हनुमान्, दुर्गाके मुख्यतया और सामान्यतया सैंतीस करोड देवी-देवताओंके उपासक हो गये और उनके लिए शैव, शाक्न, वैष्णव आदिका बहुधा कोई भेद नहीं था, किन्तु प्रात, प्रदशों, जानियो और वर्गोंको दृष्टिसे कहीं शैव मतका, कहीं शाक्तका, कहीं रामभक्तिका, कहीं कृष्ण-भक्तिका, कहीं लिगायत आदि अन्य किमी सम्प्रदायका विशेष पक्ष था



नहीं पहना चाहिए। इसके विपरीत मैसूर के हैदरअली और उसके बेटे  
 टीपू ने अपने राज्य के जैन-गुरुओं और जैन तीर्थों को दान दिये और उनके  
 श्रवणवेलगोल-जैसे तीर्थों का संरक्षण किया। स्वयं औरंगजेब के मुहम्मदशाह  
 आदि वंशजों ने जैन के आग्रह पर जब-सब जीवहिंसा प्रतिवन्धक फरमान  
 जारी किये, और खीमसी भट्टारो, राव कृशारामशाह, लाला हरमुखराय,  
 राजा सुगनचन्द आदि को अपना खजाचा बनाया तथा अपनी दिल्ली,  
 आगरा आदि राजधानियों में भी जैनो की धार्मिक स्वतन्त्रता में विरोध बाधा  
 नहीं दी। बंगाल की नवाबी में मुस्लिमवाद का जैनधर्मानुयायी जगतसठ और  
 उसका घराना अत्यन्त प्रतिष्ठित था। धनकुवेर जगनमठ उस राज्य का  
 स्वामी था और अंगरेज भी उसका आदर करने पर विवश थे। व्यापारियों-  
 के रूप में जा घोड़े-बहुत जैनी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, आसाम आदि में थे  
 उनकी दशा अन्य हिन्दुओं से भिन्न नहीं थी। यही दशा पंजाब, सिन्ध  
 आदि में थी। दक्षिण उत्तर भारत—दिल्ली-आगरा प्रदेश, मध्य भाग तक मराठा  
 राज्य, राजस्थान, गुजरात आदि में जैनो का अनेकाकृत वाहुल्य था, किन्तु  
 यहाँ भी उनकी धार्मिक और सामाजिक दशा प्रायः वहाँ के अन्य हिन्दुओं  
 जैसी ही थी। सुदूर दक्षिणक तमिल प्रदेश एवं मैसूर आदि दक्षिणी  
 कर्णाटकी प्रदेशों में जैन-धर्म इस काल में भी अपेक्षाकृत उन्नत दशा में रहा।  
 अब भी कई छोटे-छोटे जैन राज्य वहाँ विद्यमान थे। उस प्रदश के जैन-  
 तीर्थों एवं गुरुओं का संरक्षण एवं कन्नड भाषा के जैन-साहित्यकारों का प्रश्रय  
 वहाँ बराबर बना रहा। अनेक धार्मिक एवं लौकिक ग्रन्थ इन विद्वानों ने इस  
 काल में भी वहाँ रचे। कई ग्रन्थ तो ऐतिहासिक महत्त्वक भी हैं, विशेषकर  
 वहाँ की एक जैन रानी रम्मा का प्रेरणा पर देवचन्द्र-द्वारा रचित राजा-  
 वल्लिकथे ( १८३४ ई० ) पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। साहित्य-मृज्जनको दृष्टि से  
 उत्तर भारत में उस काल में जैनो के प्रमुख कन्द्र—गुजरात, दिल्ली, आगरा,  
 और जयपुर थे। संस्कृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में साहित्य-सृजन  
 चलता रहा। किन्तु उसमें गद्य एवं पद्य के हिन्दी साहित्य की ही बहुलता





नेनाको मार मगाया, और दोनों राजाओंको अपने-अपने राज्यमें स्थापित कर दिया। इस दीवानने साम्भरकी भी मुमल्मानोंमें विजय बिया और दोनों राजाओंके बीच पेंटवा दिया। राजापर बादशाहकी प्रसन्न करनेमें भी यह शीवान महायक हुआ और राजाक साथ दिल्ली गया तथा जब राजाकी मायवाका सूवेदारी मिली तो वहाँ भी उसके साथ गया। तदुपरान्त राय कृभागम, जिवजी लाल ( मृत्यु १८१० ई० ), अमरचन्द ( १८१०-३५ ई० ) आदि प्रसिद्ध जैन दीवान जयपुर राज्यमें हुए। दीवान अमरचन्द विद्वानोंका भागी आश्रयदाता था, निधन छात्रोंकी छात्रवृत्ति देता था, स्वयं भी बड़ा विद्वान् और धर्मात्मा था और अनेक मंदिराका निर्माण एवं ग्रन्थोंकी रचना भी इसन करायी थी। राजाका मारा दाप अपने ऊपर लेकर और अपने प्राणोंकी बलि देकर अँगरेजोंके क्रोधमें उसने जयपुर राज्यकी रक्षा की थी। इस कालमें जयपुर राज्यके जैन-साहित्यकारोंने विशेष रूपसे हिन्दी बड़ी बोलीके गद्यका अभूतपूर्व एवं महत्त्वपूर्ण विकास किया। जयपुरके विद्वानोंका देशके अन्य प्रदेशोंके जैन विद्वानोंके साथ भी बराबर सम्पर्क रहता था। ग्रन्थोंकी प्रतिलिपियाँ करनेका एक विशाल कार्यालय भी इस कालमें वहाँ स्थापित हुआ जहाँसे सर्वत्र ग्रन्थ भेजे जाते थे। अनेक जैन मंदिरोंके अतिरिक्त जैन-मूर्तिकलाके निर्माणका भी केन्द्र जयपुर बना। केवल जयपुर नगरमें ही उस कालमें लगभग दस-बारह हजार जैनी थे।

जोधपुर राज्यमें महाराज अजीतनिहवा प्रधान दीवान रघुनाथ भण्डारी था, ज़िमसी भण्डारी महागजका प्राइवेट सेक्रेटरी ( तनदीवान ) था और अनूपसिंह जोधपुर नगरका नामक था। विजय भण्डारीकी राजाने गुजरातके सूवेका कार्यभार सम्हालनके लिए भेजा था। दूसरी बार पोमसिंह भण्डारीको अहमदाबाद भेजा। मेहता सग्रामसिंह और भावन्तसिंह ज़िलाधिकारी थे। अनयसिंहके समयमें सूरतराम भण्डारी दीवान था और रतनसिंह भण्डारीने अपने राजाकी ओरस १७३०-३७



मग दम प्रतिपात थे, राजधानी उदयपुरके अतिरिक्त, निसोड, वेरागिया-  
नाथ, कृष्णदय, बीसोली, दलयाडा, वेरुआ आदि प्रसिद्ध जैनतीर्थ एवं  
केन्द्र थे। मदाफक रंगपुर, धौगयाडा, प्रतापगढ़ आदि उरराज्यामें भी  
जनार्थी अच्छी प्रतिष्ठा थी।

जैमलमेरम एक विदाल एवं महत्त्वपूर्ण जैनग्रन्थभण्डार था। इस राज्य-  
के जनदीवानामें राजा मूलराज ( १७६० ई० ) का मन्त्री मेरुता ग्यम्प-  
विद्र अधिप प्रसिद्ध है। बाकानर राज्यक इस कालके जैनदीवानाम अमर-  
चंद मुराना अत्यधिक प्रसिद्ध ह। यह चार सनानो भी था, कई युद्धमें  
उत्तम विजय प्राप्त की थी और भाटियार गान जाहानगीका पुरी तरह  
पराजित करके उसके दुर्ग भटनरवा भी हस्तगत कर लिया था। अजमेर  
मेंवाड़ाका शासन १७८७-९१ ई० क बीच जैनवीर धनराज राघवी था।  
उसने चार वर्ष तक निरन्तर मराठाक विरुद्ध युद्ध करके इस प्रदेशकी रक्षा  
का धो और प्राप्त रहते उन्हें उभपर अधिकार नहीं करने दिया था। बुंदी,  
कोटा, अलवर आदि अन्य राजपूत राज्योंमें भी जैनोकी प्राय ऐसी ही  
स्थिति थी। सम्पूर्ण राजस्थानकी जनसंख्याका लगभग इस बाग्ह प्रतिपात  
वर्गक जैन थे, और यहां ऐसा प्रदेश अब रह गया था जहाँ जैन मात्र सेठ  
साहूकार और व्यापारी ही नहीं थे बरन् उनमेंसे अनेक धीर यादवा,  
सैनिक, सामंत सरदार एवं राज्यमन्त्री भी थे तथा शासनमें विभिन्न पदोंपर  
भी बिना भेदभावके नियुक्त होते थे।

इस कालके सबंध्यापा नैतिक पतनके प्रभावसे जैनधर्म और जैनी जन  
भी अछूते नहीं थे, हिंदुओंका जैनविद्वेष भा मदाफका एवं यत्र-तत्र महक  
उठता था और वही संख्यामें जैनी लोग अपना धर्म त्याग कर वैष्णव भी  
बनने लगे थे। भट्टारकीय शिथिलाचार, रुढ़िवादिता, संकीर्णता, अशिक्षा,  
जाति-पातिकाे कठोर बंधन, छूआछूत, बालविवाह, बहुपत्नीत्व, सहमरण  
आदि अनेक सामाजिक कुरीतियाँ क्या हिंदू, क्या जैन और क्या मुसलमान,  
सभीमें व्याप्त होती जा रही थी। सम्पूर्ण भारतीय समाज एक अजीब

निष्ठायावाद कर्म नियतिवादके बन्धनके अन्तर्गत आवश्यक बन  
गया था ।

इसमें लक्ष्मण शर्मा हैं कि हम उक्त-सी अर्थके मुक्तके प्राप्त्य तक जो  
आधुनिक न्यायशास्त्र और नैतिक न्यायके सभी वैयक्तिक अर्थ-व्यक्ति की  
वह सब अर्थके अन्त तक नहीं है विचार नहीं । हम जानते हैं कि हमारे  
विचारों में पूर्वीय वैयक्तिक अर्थ अन्तर्गत अन्तर्गत की जायते अन्तर्गत  
अन्तर्गत की ।

## अध्याय ६

### यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट

औरंगजेबके जीयामें ही हिन्दू आदि मुसलमानेकर भारतायाया राज  
 नेतिक पुनरुत्थान प्रारम्भ हो गया था, और उसकी मृत्युपर उपरान्त १५०  
 वर्षके बीच यह पुनरुत्थान अपने चरम निम्नस्तर पर पहुँचकर देन और जाति-  
 का बिना कृल तित्त बिचे ही द्रुतपणे अवनत हो रहा गया । हिन्दू राज्य-  
 पन्थिने प्रचष्ट उत्थानक सम्मुख मुसलमान सत्ता हम देशमें पराभूत हो  
 हा चुकी थी, किन्तु उस हिन्दू राज्याधिकारमें स्वयम् एवसूनता न थी ।  
 प्रात, जानि, धर्म एव व्यक्तिगत पक्षपात, फुट, धर्मनस्य, स्वार्थाचता  
 एवं अहूरदक्षितान उस मरान् प्रयत्नको फल दिशानेके पुर्ण हा व्यर्थ कर  
 दिया । इतना ही नहीं, जैसा कि पय अक्षयाम वणन किया जा चुका है,  
 दस और दसवासियोंको स्वयं उनक अपनों ही घार अराजकता, अशान्ति,  
 अध्यवस्या एवं अतिगताक तृफाना अपकारमें दुबो दिया । पाश्चात्य यह  
 हया कि सुदूर पश्चिमस उदरर आय बतिपय गृद्धाकी लालुव दृष्टिने  
 इस प्रकार दात विगत, आहत एवं मृतप्राय भारत एवं भारतायनाका  
 अपट रक्तदापण पय मान भक्षण करनका समुद्युक्त अवसर दया । गात  
 समुद्र पारस आतवालहन मुट्टा भर अनुसलमनीय, दाधितएव साधनविहीन,  
 किन्तु चतुर ग्राहमी एवं मृत यूगपीय लुटेरान अपन आपका कुछ नहींसि  
 मय कुछ बना लिषा । १७०७ स १८५७ ई० पयन्तके भारतीय इतिहासका  
 पननीमुखी भारतीय रूप से पूर्व अध्यायमें दक्ष ही चुक ह, प्रस्तुत अध्याय-  
 में प्राय दसो सालमें भारतमें भारतवासियोंके ही घन-बल और दूतपर

मिनायात्माद एवं निवर्तितावकै रजसुचर्मै चीनकर अथवागिटीह न  
कल्यं न ।

हममें कभीहू नहीं है कि इन देश-की कपके मुचके प्रारम्भ एक को  
पागलीय नम्यता कीर नसुक्ति नमानके सभी देशनि दक्षिण गरी-गरी की  
नद इन नदके जगत् एक नदीने विजय नदी । इन नदमें अन्य देशनि  
विद्येपकर कुरेदीय देशनि अब कमुठपुर्ब कलति की भारतने कमुठपुर्ब  
अथवागि की ।

उस समय भारतका समस्त पश्चिमी जलमार्गी व्यापार अरबोंके हाथमें था। पुतगाली उ हें ढराकर पश्चिमी समुद्रतटपर जम गये।

१५०५ ई० में अलमिडा उनका गवनर हुआ। उसने पुर्तगाली वस्तियोंके लिए कुछ किले भी बनवाये। १५०९-१५ ई० में अलबुर्क भारतमें पुर्तगालियोंका गवनर रहा। उसने गोआपर अधिकार करके उसे यहाँकी पुतगाली वस्तियोंकी राजधानी बनाया। उसने मलक्काको विजय किया, लंका मकाया, उरमुज आदि द्वीपोंमें पुतगाली वस्तियों स्थापित की, भारतमें गोआ राज्यको कुछ विस्तृत करके संगठित किया, उत्तम शासन व्यवस्था की और शासन-प्रबन्धमें हिन्दुओंको भी नियुक्त किया। मुसलमानोंसे पुतगाली बड़ी घृणा करते थे। मुसलमान स्त्रियोंसे विवाह करने और मुसलमानों तथा अन्य भारतीयों ईसाई बनानेका भी वे प्रयत्न करते थे। अलबुर्क भारतमें पुर्तगालका एक विशाल एवं सम्पन्न उपनिवेश स्थापित करना चाहता था। उसी समयमें व्यापार गौण और ईसाई मतका प्रचार तथा पुतगाली राज्यका दक्षिण-मध्यमें पुतगालियाका मुख्य उद्देश्य बन गया था। दक्षिणके विजयनगर और बहमनी राज्यों तथा गुजरातके सुल्तानोंके भी राजनैतिक सघर्षमें पुतगाली आये। मुगलकालमें भी पश्चिमीतटपर वे एक महत्त्वपूर्ण दक्षिण बने हुए थे और सूरत आदिम द्वीपोंके लिए जानेवाले मुसलमानोंके मार्गमें भारी बाधक होते थे। अतः उनका जब-तब दमन भी किया जाता था। अकबरकी इच्छापर गाआक पुतगालियाने सम्राट्के दरबारमें जैसुइट पादरियोंके दो तीन ईसाई धर्म प्रचारकदल भी भेजे थे। १५८० ई० में स्पेनके राजाने पुतगालको अपने राज्यमें मिला लिया, तभीसे भारतके पुर्तगाली राज्यको स्वदेशका राज्याध्यक्ष समाप्त हो गया और उसकी अव्यवस्था हानि लगी। शाहजहाँन बंगालके पुर्तगालियोंकी ज्यादतियोंसे चिढ़कर उनको बुरी तरह कुचल डाला था। तदनंतर फार्मीसा, डच और अंगरेजोंने उनके पूर्वी व्यापारके एकाधिपत्यको नष्ट कर दिया। अन्ततः गोआ, डामन और द्यूके अतिरिक्त

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट





सबसे पीछे प्रारम्भ हुआ किन्तु उन्होंने वही शीघ्रताके साथ उन्नति की। १६४२ ई० में सर्वप्रथम फ्रान्सके तत्कालीन प्रधान मन्त्री रिशालूने तीन कम्पनियाँ इस उद्देश्यको लेकर स्थापित कीं, किन्तु वे थोड़े समय पश्चात् ही भग हो गयीं, जिसका कारण सरकारी कमचारियों एवं पादरियोंका अनावश्यक हस्तक्षेप था। १६६४ ई० में फ्रान्सके बादशाह लूई चौदहवेंके मन्त्रा कोल्वर्टने एक नवीन कम्पनीकी स्थापना की जिसका उद्देश्य व्यापार उन्नत नहोँ था जितना पूर्वी देशोंमें फ्रान्सकी राजनैतिक शक्तिकी स्थापना एवं फ्रान्सके राजाकी शक्तिमें वृद्धि करना और ईसाई धर्मका प्रचार करना था। फलस्वरूप १६७४ ई० में फ्रान्सिस मार्टिनने भारतके पूर्वी तटपर फ्रान्सके पाण्डुचेरी उपनिवेशकी नौव डाली और बंगालके चन्द्रनगरमें एक व्यापारिक कोठी बनायी। तदनन्तर फ्रान्स और हाँलेण्डके बीच होनेवाले युद्धोंसे इस कम्पनीको भारी क्षति पहुँची और १७२० ई० में उसका पुनः संगठन हुआ। उसी वर्ष मारोशस द्वीपपर तथा १७२४ ई० में मलाबार तटवर्ती माही नामक स्थानपर फ्रान्सीसियोंका अधिकार हो गया।

फ्रान्सीसी गवर्नर ड्यूमा ( १७३५-४१ ई० ) तत्कालीन दक्षिण-भारतको अव्यवस्थित दशाको देखकर वहाँके छोटे-छोटे राज्योंके राजनैतिक मामलोंमें हस्तक्षेप करके अपनी शक्ति बढ़ानी प्रारम्भ की। तन्जौर राज्यमें उत्तराधिकारके लिए होनेवाले युद्धमें उसने एक पक्षकी सहायता की और उससे बागीकल प्राप्त कर लिया, जिससे फ्रान्सीसियोंकी शक्ति, अधिकार और प्रतिष्ठामें पर्याप्त वृद्धि हुई।

तदनन्तर ड्यूले ( १४७२-५४ ई० ) भारतमें फ्रान्सीसी गवर्नर बनकर आया और उसके साथ ही फ्रान्सीसी कम्पनीके जीवनमें विजय एवं राजनैतिक विकासका नवीन अध्याय प्रारम्भ हुआ। ड्यूले निम्बापों, स्वदेशभक्त, अत्यन्त चतुर एवं गूटनीतिपटु था। अपने पड़ोसी भारतीय राज्योंकी राजनीतिका उसने भली प्रकार अध्ययन कर लिया था। अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंके साथ वह कठोर व्यवहार करता



बंद हो गया और मद्रास अंगरेजोंको वापिस मिल गया ।

इस युद्धके फलस्वरूप इन दोनों विदेशी जातियोंको अपने पड़ोसी भारतीय राज्योंको कमजोरी मालूम हो गयी, और अपनी वस्तियोंके आसपास सो-सो मोनके क्षेत्रमें वे भली-भाँति परिचित हो गये । अबतक उन्होंने यह भी समझ लिया था कि देशी राजाओंके पारस्परिक झगड़ोंमें पड़कर कितना लाभ उठाया जा सकता है । इस प्रकारके दृष्टिकोणकी पहल तत्कालके मामलेमें अंगरेजोंने ही करके फ्रान्सीसियोंका पथ प्रदर्शन किया था । दूफ्लेका स्वयं भारतीय स्थितिका अच्छा ज्ञान था । उसने यह भी अनुभव कर लिया था कि यूरोपीय युद्ध-प्रणाली एवं सैनिक अनुशासनके बलपर सुश्रवस्थित यूरोपीय सेनाओंके द्वारा अधिक गम्भीरतासे भारतीय सेनाओंको कौसी आसानीके साथ हराया जा सकता है और अपनी शक्ति खूब बढ़ायी जा सकती है । अतः उसने अवसर मिलते ही पड़ोसी राज्योंकी राजनीतिमें भाग लेनेका निश्चय कर लिया ।

अवसर भा तुरन्त आ उपस्थित हुआ । १७४८ ई० में आसफ़जहाँको मृत्यु होते ही निजाम राज्यके उत्तराधिकारका द्वन्द्व छिड़ा । उधर कर्नाटकमें चाँदा साहब वहाँके नवाब अनवरुद्दीनको गद्दीसे उतारकर स्वयं नवाब बनना चाहता था । निजामका पोता मुञ्जफ़्फ़रजंग और चाँदासाहब मिल गये और उन दोनोंने फ्रान्सीसियोंसे अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके विरुद्ध सहायता माँगी । दूफ्ले ता अवसरकी ताकमें ही था, सहर्ष तैयार हो गया । तीनोंने मिलकर अनवरुद्दीनपर हमला कर दिया, वह पराजित हुआ और अम्बरके युद्धमें १७४९ ई० में मारा गया । उसका लड़का मुहम्मदअली तिरुचिरी-पल्लीमें अंगरेजोंकी शरणमें भाग गया, चाँदा साहब कर्नाटकका नवाब हुआ और इस उपकारके लिए उसने फ्रान्सीसियोंको ८० गाँव प्रदान किये । अब तीनोंने मिलकर मुञ्जफ़्फ़रजंगके प्रतिद्वन्द्वी नासिरजंगपर आक्रमण किया किन्तु मुञ्जफ़्फ़रजंग पराजित हुआ, तथापि थोड़े ही समय पश्चात् नासिरजंगके मारे जानेसे वही हैदराबादका निजाम बना । उसको

यूरोपवासियों द्वारा भारतकी छूट



बंद हो गया और मद्रास अंगरेजोंको वापिस मिल गया ।

इस युद्धके फलस्वरूप इन दोनों विदेहो जानियारो अपने पडासी भारतीय राज्योंको कमजारी मारुम हो गयी, और अपनी वस्तिपाते आसपास मो-मो मोलक दोबसे से नती-भानि परिचित हो गये । अबतक उहोने यह भी समझ लिया था कि ऐसी राजाआत पारम्परिक जगहामे पडरर कितना लाभ उठाया जा सकता है । एग प्रकार फलस्वरूपकी पहल तन्जीरुमे मामल्लिमे अंगरेजान हो करके प्रा मानियारा पय प्रदशात किया था । हुल्लेका स्वय भारतीय स्थितिका अच्छा ज्ञान था । उमन यह भी अनुभव कर लिया था कि यूगप्राय गुज-प्रणाया एव मनिव अनुशासन-के बलपर सुव्यवस्थित यूगप्राय सनाआक द्वारा अधिच राग्यायाली भार-तीय सेनाओंको बीसी आमानोके माय हगाया जा सकता है और अपनी शक्ति मूय बढायो जा सकती है । अब उमने अवसर मिलते ही पडासी राज्योंको राजनोतिमें भाग लेनेका निश्चय कर लिया ।

अवसर भा तुरन्त आ उपस्थित हुआ । १७८८ ई० में आसकराहको मृत्यु होते ही निजाम राजवके उत्तराधिकारका द्वन्द्व छिडा । उधर कर्णाटकमें चाँदा साहब वहाँक नवाब अनवरुद्दीनकी गद्दीसे उतारकर स्वयं नवाब बनना चाहता था । निजामका पोता मुजफ्फरजंग और चाँदासाहब मिल गये और उन दोनोंने फ्रांसीसीमियामे अपने प्रतिद्वन्द्वियोंने विरुद्ध महायता माँगी । हुल्ले ता अवसरकी ताकमें ही था, सहर्ष तैयार हो गया । सीनोने मिलकर अनवरुद्दीनपर हमला कर दिया, वह पराजित हुआ और अम्बरके युद्धमें १७४९ ई० में मारा गया । उसका लड़का मुहम्मदअली तिरुचिरा-पल्लीमें अंगरेजोंकी धरणमें भाग गया, चाँदा साहब कर्णाटकका नवाब हुआ और इस उपकारके लिए उसने फ्रांसीसीमियोंको ८० गाँव प्रदान किये । अब दोनोंने मिलकर मुजफ्फरजंगके प्रतिद्वन्द्वा नासिरजंगपर आक्रमण किया किन्तु मुजफ्फरजंग पराजित हुआ, तथापि थोडे ही समय पश्चात् नासिरजंगके मारे जानेसे वही हैदराबादका निजाम बना । उसको

यूरोपवासिया-द्वारा भारतकी छूट

[illegible][illegible]

षाष्टशतक के युद्ध में अंगरेज नेनानी सर आयरशूटने लैलीको पराजित करके बन्दी भर लिया और इंग्लैण्ड भेज दिया। वहाँसे उमे फ्रांस जानको अनुमति मिल गयी किन्तु उसको सरकारने उमे मृत्युदण्ड दिया। धुसी भी कैदमें डाल दिया गया। अगले वर्ष पाण्नीरीपर भी अंगरेजोंका बग़्जा हो गया। १७६३ ई० में पेरिसकी सन्धिसे इस युद्धका अन्त हुआ। इस सन्धिके अनुसार भारतमें फ्रांसीसियोंकी शक्ति एक-दम घट गयी, उनकी सेनाकी सहाय्य बहुत कम करके नियत कर दी गयी और प्रदेश विस्तारपर भी प्रति-बन्ध लगा दिया गया। बंगालमें ये अब केवल व्यापारीके रूपमें ही जा सकते थे। हैदराबादमें उनके प्रभावका अन्त हो हो गया था, कर्णाटकमें भी कोई अधिकार नहीं रह गया था और उत्तरी सरकारके जिले भी अंगरेजोंके हाथमें आ गये। अब पाण्डुचेगे, घाटनगर आदि दो-तीन छोटी-छोटी बस्तियाँ एव उनमें स्थित उनकी व्यापारी कोठियोंके अतिरिक्त भारतमें फ्रांसीसियोंकी कोई सत्ता न रह गयी और भविष्यके लिए भी कोई आशा न रह गयी। फ्रांसकी सरकारके लिए उसमें इन भारतीय प्रतिनिधियोंके युद्ध एवं भाग्य परिवर्तन अत्यन्त गौण घटनाएँ थी। वह इस प्रयत्नके तथा उसकी विफलताके मूल्यको तबतक आँक ही नहीं पायी थी।

आस्ट्रिया, स्वेडन, स्वाटलैण्ड आदि अन्य यूरोपीय देशोंके निवासियोंने भी भारतके साथ व्यापार करनेका प्रयत्न किया किन्तु सब ही अमफल रहे।

इस कार्यमें जो सबसे अधिक सफल हुए वे यूरोपके उत्तर-पश्चिममें स्थित इंग्लैण्ड नामके एक छोटे-से द्वीप देशके निवासी अंगरेज व्यापारी थे। उन्होंने न केवल पुर्तगालियों, डचों, डेनो, फ्रांसीसियों आदि अन्य यूरोपीय जातियोंकी ही भारतीय व्यापार क्षेत्रसे शाने शाने निकाल बाहर किया वरन् पश्चिम देशोंके साथ होनेवाले इस महादेशके सम्पूर्ण व्यापार-पर अपना पूर्ण एकाधिपत्य स्थापित कर लिया। इतना ही नहीं, देशके सबसेमोखी पतनसे लाभ उठाकर उन्होंने इस पूरे महादेशपर अपना पूर्ण राजनैतिक प्रभुत्व भी स्थापित कर लिया। देशके राजा-नवाब, सामन्त-

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छद्म





प्रतिद्वन्द्वियोंको प्रतिस्पर्धिताके क्षेत्रसे निष्काट बाहर किया। उससे पहले  
 पचास-साठ वर्षोंमें उन्होंने अपने भारतीय व्यापारों समुद्रतक फैला,  
 समुद्र द्वारा अपने-आपका और अपने देश एवं राज्योंको गुप्तगुप्त कर लिया  
 तथा भारतवर्षमें अपने व्यापारिक अट्टाका जाल भी बिस्तृत कर लिया  
 और कुछ मुद्दह मुरझित नेत्र भी बना लिए। तदनन्तर अगले पचास  
 वर्षोंमें फ्रांसीसियोंके रूपमें एक नवीन किन्तु सर्वाधिक प्रबल प्रतिद्वन्द्वीका  
 उन्हें सामना करना पड़ा, किन्तु उन्हें भी अन्ततः अंगरेजोंन पुनस्त  
 दिया, साथ ही फ्रांसीसियोंकी पुनराव प्रयत्नमें उन्होंने देशों तान छोटे,  
 और पट्टासे दसों राज्योंके अन्त करके एवं उनकी राज्यावस्थाका लाभ  
 उठाकर अपनी राजनैतिक दक्षिणो सुदृढ नींव भी इन दशमें जमा दी।  
 अब उनकी हीसला और बढा और आगेके पचास वर्षोंमें उन्होंने द्रुतवेगसे  
 एक एक करके समस्त दक्षिणापथ एवं उत्तरापथकी विभिन्न हिन्दू एवं  
 मुसलमान राज्य शक्तिशाली अपना प्रभाव एवं आधिपत्य स्थापित कर  
 लिया। और उससे बाद अराजकता कालके दोष पचास-साठ वर्षोंमें सिन्ध,  
 पञ्जाब, बम्बोरे, नेपाल, बर्मा आदि भीमात्त प्रदेशोंको भी अधीन करके  
 तथा पहले ही अधीन कर लिये गये राज्यों एवं प्रदेशोंपर अपना पूर्ण  
 प्रभुत्व स्थापित करके और समूचे महादेशको नि सत्त करके एवं अपना  
 बनाकर उस सुशासन, सुरक्षा, शान्ति, सांस्कृतिक पुनरुत्थान आदि प्रदान  
 करनेका दाग भी प्रारम्भ कर दिया। किन्तु इसी युगक अन्तमें बहुभाग  
 भारतने अंगरेजोंके मजबूत पजोसे देशको मुक्त करनेका भी एक भगोरथ  
 प्रयत्न किया। देशमें दुर्भाग्यसे या सीभाग्यसे अथवा उसका नेताओंके स्वयंके  
 दोषसे वह प्रयत्न विफल हुआ। फलस्वरूप देशमें जो कुछ सत्त्व बच रहा  
 था वह भी कुचल छाला गया और अब सम्पूर्ण भारतवर्ष वस्तुतः अंगरेजों-  
 का अपना दास और अपनी सम्पत्ति बन गया। भले ही अनेक अन्तर्राष्ट्रीय  
 परिस्थितियों तथा इस प्राचीन देशकी नष्ट न होनेवाली प्राण शक्तिके पुन  
 संचारके कारण अंगरेजोंका वह प्रभुत्व पूरे सौ वर्ष भी न चल सका।



अंगरेजों कम्पनीने गुजरातके मुगल शूबेशरसे सूरत, सभात तथा अन्य दो स्थानोंमें व्यापार करनेकी अनुमति प्राप्त कर ली। उन्होंने यह समझ लिया था कि पुर्तगालियाका दमन किये बिना मफपता न मिलेगी, अतः एक भीषण समुद्री युद्धमें उन्होंने पुर्तगालियाको हराकर अपनी स्थिति जमायी। इसी समय उनके राजाका अधिकारप्राप्त राजतून मर टामस रो (१६१५-१८६०) मुगलसम्राटके दरबारमें पहुँचा। सम्राट्को बहुतमूल्य गेंट और उसके आसफ़जहाँ आदि मन्त्रियोंको घूस देकर तथा अपनी चातुरीसे उसने अपनी ईस्टइण्डिया कम्पनीके लिए सूरतमें व्यापारिक कोठी स्थापित करनेका क्रमान प्राप्त कर लिया। सम्राट् स्वयं इस घोषमें पुर्तगालियोंसे रूठ हो गया था और उनपर अंगरेजोंने जो समुद्री विजय प्राप्त की थी उससे उन्होंने स्वयंको पुर्तगालियोंका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध कर दिया था, अतः सम्राटने इन दोनों सजातीय फिरगियोंको परस्पर लड़ानेका अवसर खोना उचित न जाना और अंगरेजोंको भी प्रश्रय दे दिया। सूरतमें डचोंने भी अपनी कोठी स्थापित कर ली थी। १६१५ ई० में अंगरेजोंने पुर्तगालियोंको फिर एक जहाजो युद्धमें हराया और १६२२ ई० में ईरानियोंकी सहायतासे उर्मुज-द्वीपपर भी अधिकार करके पुर्तगालियोंको अत्यन्त क्षयितहीन कर दिया। १५८० ई० से ही भारतके पुर्तगालियोंको अपने देशके राज्यसे कोई आश्रय या सहायता मिलनी बन्द हो ही चुकी थी।

अब अंगरेजोंने बंगालकी खाड़ीमें भी घुसना प्रारम्भ किया, मछली-पट्टमें एक अड्डा बनाया और फिर १६२५ ई० में आरामगाँवमें अपनी कोठी स्थापित की। १६३९ ई० में आरामगाँवकी कोठीके अध्यक्ष फ्रांसिस डेने चन्द्रगिरिके विजयनगरवशी राजाके प्रदेशीय नायकसे लगभग दस हजार रुपये सालाना किरायेपर एक मील चौड़ी एवं चार मील लम्बी समुद्रतटवर्ती भूमि प्राप्त कर ली। इस कायमें निकटवर्ती सेनयामकी पुर्तगाली बस्तीके पुर्तगालियोंने भी अंगरेजोंकी सहायता की। और इस स्थानपर १६४० ई० में मद्रास नगर तथा सेण्टजार्ज दुर्गकी

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छूट



शात न हुए और १६९८ ई० में कुछ अन्य व्यापारियोंने राजाजा लेकर एक नयी कम्पनीकी स्थापना कर ली और यह दोनों कम्पनियाँ भारतीय व्यापारके एकाधिकारके लिए परस्पर लड़ने लगीं। अन्ततः १७०८ ई० में दोनोंको 'सयुक्त ईस्टइण्डिया कम्पनी' नामके अन्तर्गत मिलाकर एक कर दिया गया। इस समय सम्राट औरंगजेबकी मृत्यु हो चुकी थी। भारतीय इतिहासका भोषण अराजकता युग प्रारम्भ हो रहा था। अपने अवतकके गत सौ वर्षोंके कालमें अपनी व्यापारी कम्पनीके आश्रयसे अंगरेज जातिन अपने प्रतिद्वन्द्वी पुर्तगालिया एवं डचोंका सर्व्वेकके लिए दमन करके पश्चिमी देशोंके साथ होनेवाले भारतीय व्यापारपर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया था, दशके विभिन्न व्यापारिक केन्द्रोंमें अपनी व्यापारी कोठियाँ स्थापित कर ली थीं तथा देशके पश्चिमी तटपर बम्बईको, पूर्वी तटपर मद्रासका और बंगालमें कलकत्ताको केन्द्र बनाकर और इन स्थानोंमें अपन सुदृढ़ दुग एवं वस्तियाँ बनाकर अपनी स्थिति सुदृढ़ एवं स्थायी कर ली थी। इसी वाच भारतमें कम्पनीकी उत्तरोत्तर उन्नतिके फलस्वरूप कम्पनीके डायरेक्टर, हिस्सेदार, कर्मचारी आदि हो नहीं इंग्लैण्डके अन्य व्यापारी, व्यवसायी, साधारण जनता, राजा और मंत्री भा पर्याप्त मालदार हो गये थे। कम्पनीके जो कर्मचारी भारतमें कार्य करनेके लिए आते थे उन्हें वेतन बहुत थोड़ा मिलता था, किन्तु उसकी पूर्ति करनेके लिए उन्हें व्यक्तिगत व्यापारकी सुविधा दे दी जाती थी, अतः कम्पनीक वहाने भारतमें आनेवाला प्रत्येक अंगरेज कम्पनीक प्रधान व्यापारके अतिरिक्त अपना स्वतन्त्र व्यापार भी करता था और मालामाल हो जाता था। १७०८ ई० के पूर्व शक्तिशाली मुगल सम्राटके मयसे और उसके व्यवस्थित मावदेशीय प्रशासनके कारण अंगरेजोंकी यह प्रवृत्ति अति सीमित ही रही, किन्तु अब उत्तर मुगलकालकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई अराजकता, अशांति एवं अव्यवस्थाका छोटे-बड़े समांगरेजोंने भरसक लाभ उठाना शुरू कर दिया।

रोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट

आनेके समयमें अपनीय वह एक अंगरेज मुद्रत-वालागया। तब वह  
 मिल-मिल होना और देखती मिलती हुई राजनीतिक बहाली पुनरा  
 देनते रहे। इसी बीच १८१७ ई. में दिल्लीके निकाले गयेबाद अंगरेज-  
 बरको और उनके बरकातियोंकी पुन आदि देकर कन्होने पिना राज्यकर  
 दिने ही ग्याहार बरकोकी दूर तथा बन्ध अनुत्त बुधिवार्द प्राप्त कर ही  
 और पुनराय जाने ग्याहारकी क्काले रहे। देखती बन्धननिकर एवं बर-  
 क्षित बहा तथा वह बहामें बरने केनी एवं कीर्तियोंकी चोरी, मातुरी,  
 कुटीये बाधिते एता करनेके बहामें। कन्होने एक कन्धी देय की देय  
 कर की मिलने अंगरेज क्कालेके क्काले एवं उनके प्राप्त अधिकार प्राप्त  
 भारतीय ऐनिक की बही बहामें एतने प्रारम्भ कर दिने। इसी कन्होने  
 कन्होने बरने पुनोकी की पुनर कर पिना और कन्धी बन्धनों एवं कीर्तियों-  
 की निवेदनकी की कर की। बरका ग्काली देय बरकी बहामेंके निर  
 निरद एता ही बा। किन्तु इसी काल ( १८२ ई. ) कन्धीकी बन्धी  
 पुन बन्धित होकर गये क्काले और बहके बाय देयानमें दिने का  
 क्काली। बहके पुनोन्ध एवं हीतन्यक्य बरबरेके हावमें क्कालीकीकी  
 पुनी बन्धितों एवं बाधमें उनके केन चीन ही पुनोन्ध एवं बरबुर ही  
 गये। क्कालीकी कन्धी करकाली की कन्धी बन्धनकी की करकाली  
 बन्धनकी वे और क्काला प्रवाल बहरेय की राजनीतिक ही बा क्काली  
 बन्धी ही कन्धी यन्नि और बन्धनार क्कालिक बह गये। वह बह  
 देयकर अंगरेज बने निमित्त हुए, किन्तु पुन कर की न बहके और क्काल-  
 नरकी बाधमें ही रहे। क्कालीकी बन्धीके बाय पुन केनोन्ध बर्ष बा  
 क्कालेके बाय इन्धोन्धका पुन योक्त केना निबन्ध बाधन वह बरबुरकी  
 अंगरेजी कन्धी बही कर क्काली की। क्कालीकीकी प्रवाल केन पुनी  
 क्काल क्काल निरद बाधुनीकी बा। क्काले निरद ही बन्धनकी और केन  
 देयाना केन केन-केनिक बा और कीही पुन क्काले क्काल एव क्काल  
 प्रवाल केन बहामें पिना बा।

१६७६ ई० में ही पाण्डुचेरोके फ्रान्सिस मार्टिन नामक गवर्नरने एक छोटे-से स्थानीय सरदार शेरखाके लिए बल्दूरका दुर्ग आक्रमण-द्वारा हस्तगत करके फ्रान्सीसियों और अंगरेजोंका मार्गदर्शन कर दिया था। अब १७४० ई० के लगभग पाण्डुचेरोके निकट ही दक्षिणकी ओर स्थित छोटे-से तजौर राज्यमें उत्तराधिकारका प्रश्न उपस्थित हुआ। गद्दीके लिए दो दावेदार थे। फ्रान्सीसियोंके भयसे उनसे पहले ही अंगरेजोंने एक पक्षका समर्थन किया, तुरन्त फ्रान्सीसी गवर्नर डचूमाने दूसरे दावेदारका पक्ष ले लिया। मामला बिना कुछ रक्तपातके ही निपट गया। किन्तु अंगरेजों और फ्रान्सीसियों दोनोंको ही तन्जौर राज्यमें थोड़ा-थोड़ा प्रदेश मिल गया। १७४० ई० में यूरोपमें ही फ्रान्स और इंग्लैण्डके बीच युद्ध छिड़ गया। अब तो कोई बाधा ही नहीं रही, भारतमें भी अंगरेज और फ्रान्सीसी परस्पर लड़ने लगे। १७४८ ई० में एलाशपलकी सन्धि-द्वारा यूरोपका युद्ध बन्द होनेपर भारत-में भी युद्ध बन्द हो गया। इस युद्धके फलस्वरूप किसी भी पक्षको कोई विजय या लाभ प्राप्त नहीं हुआ, दोनोंकी स्थिति पूर्ववत् ही रही, मद्रासपर फ्रान्सीसियोंने अधिकार कर लिया था वह उन्हें वापिस मिल गया। तथापि इस युद्धने इस देशमें उन दोनों जातियोंकी सैनिक शक्ति और राजनैतिक आकांक्षाओंकी नींव ढाल दी एवं उनके राजनैतिक उत्कर्ष-की सम्भावना दिखा दी।

इस सम्बन्धमें यह ध्यान रखनेकी बात है कि १८वीं शताब्दीके इस मध्यकाल तक अंगरेजों या फ्रान्सीसियोंकी भारतकी राजनीतिमें अथवा भारतीय राजे-नवाबों, दिल्ली दरबार या प्रान्तीय शासको अथवा छोटे-मोटे सामन्त सरदारोंकी दृष्टिमें भी कोई गणना ही न थी। बहुत-से तो ऐसे थे जो इन्हें जानते भी न थे या जिन्होंने इनका नाम भी न सुना था। अनेक ऐसे थे जो इन्हें अति सुष्ठु एवं उपेक्षणीय समझते थे। शेष वे जिनका इन लोगोंके साथ व्यापार आदिके कारण कुछ निकट सम्पर्क पड़ा था इन्हें अपने अनुग्रहका याचक और अपनी दयापर आश्रित एक सामान्य





गोपनीयता होने से वही-मुझे साधन भी प्राप्त हो जाये ।

१७४८ ई० में दिल्लीका शासक मुहम्मदशाह मर गया, इन्हींमें निजाम राज्यका सत्पावन आसनापर निजामसमूह भी उभा पर मर गया । यह क्षात्र अहमदशाह अहमदशाहने उक्त राज्यपर आक्रमण किया ता दूसरे लोग पलायनोक्त मराठा मराठों ने आ आया, गुजरात, मध्य भारत, राजस्थान, बंगाल बिहार और उड़ीसा । गीत शुरू कर दिया । एक समय निजाम राज्यने उत्तराधिकारका प्रश्न उत्पन्न हो गया । निजामशाह वध कर पुत्र को दिल्लीमें गजीर बन बैठा था, दूसरा पुत्र नागिरज निजाम निजामशाह बैठा विष्णु जमना गात्रा मुजराहने मध्य निजाम बनना चाहता था । इसी समय वर्णिक मराठा मराठों के कारण अंगरेजों का गद्दीमार्ग का मामिलाकी मरुता माल में चुना था और उनके द्वारा पराजित भी हो चुका था । अतः कागालियाने उस पदव्युग करने उसके एक सम्बन्ध को चाँदा साहबका नयाय यतानेकी योजना की । अंगरेज अनवरुद्दीन और उनके पुत्र मुहम्मदअलीके वर्णिकमे और नागिरजके हैदराबादमें पलायनी हुए । अतः एलाजपटकी मणि हा जाने और गुर्रामें फासीसी और अंगरेजी मन्त्रागिके बीच युद्ध बन्द हो जानेपर भी भारतमें इन दोनों जातियोंके बीच युद्ध चालू रहा । प्रारम्भमें फासीगो ही वर्णिक और निजामराज्य दोनोंमें ही सकल रहे और फाल्स्वरूप उन्होंने घन, प्रदेश पवित्र और प्रभावका पराजित लाभ किया । अंगरेज यह मय देखकर चुन बैठनेवाले नहीं थे । इन प्रारम्भिक विफलताओंसे वे बड़े दुःख हुए । इस समय बलाइव नामका एक साधारण घरका आधारा अंगरेज युद्ध मद्रासकी कोठीमें मुराती था । उस बालकी परिस्थितियोंके कारण भारतमें अंगरेज वर्मनीक प्रायः समस्त कमचारी मुराती भी थे, व्यापारी भी थे और मैनिफ भी थे । बलाइव एक दो छुट-पुटे युद्धोंमें भाग लेकर एक छाटा-म्रा मेना-नायक बन गया था । उनमें अपने गवर्नरकी यह योजना मुतायी कि चाँदा

यूरोपवासियों द्वारा भारतकी लूट



१७५४ ई० की सन्धि भली प्रकार कार्यान्वित भी न हो पायी थी कि १७५६ ई० युरोपमें फ्रान्स और इंग्लैण्डके बीच सातवर्षीय युद्ध छिड़ गया। फलस्वरूप सत्तारके जिस किसी भागमें भी अंगरेज और फ्रान्सीसी पास-पास हुए वे परस्पर लड़ने लगे, भारतमें भी दानों जातियोंमें लड़ाई प्रारम्भ हो गयी। किन्तु फ्रान्सीसियोंका सेनापति लैली १७५८ ई० के पूर्व भारत न पहुँच सका और जब वह यहाँ पहुँचा तो बगालको अद्भुत विजयके कारण अंगरेजोंकी शक्ति दसगुनी बढ़ चुकी थी और उनका स्थिति बहुत सुदृढ़ हो चुकी थी। लैलीने दूसरी भूल यह की कि हैदराबादसे बुसोका भी वापस बुला लिया, फलस्वरूप निजामके राज्यमें भी जो भारी प्रभाव छाठ वर्षोंसे बुसोने जमा रखा था वह सर्वथा नष्ट हो गया और इस राज्यमें भी अंगरेजोंका अपना प्रभाव जमानेका अवसर मिल गया जिसका लाभ उन्होंने नासिरजगकी मृत्युपर सलावतजगकी नवाब बननेमें सहायता देकर तुरन्त और पूरा-पूरा उठाया। उधर लैलीके नेतृत्वमें फ्रान्सीसी सेनाको अंगरेज सेनापति मर आयर कूटने १७६० ई० में बाह्यबादके युद्धमें बुरी तरह पराजित किया, लैलीने भागकर पाण्डुचेरीमें शरण ली। अंगरेजोंने उसका भी घेरा डाल दिया और १७६१ ई० में उसपर अधिकार कर लिया। उन्होंने लैली आदिको बन्दी बना लिया और भारतमें फ्रान्सीसियोंकी आकांक्षाका अन्त कर दिया तथा स्वयंको सजातीय (यूरोपवासी) प्रतिद्वन्द्वियोंसे सर्वथा मुक्त कर लिया। इसी वर्ष पानीपतकी ऐतिहासिक रणभूमिमें भारतके साम्राज्यके लिए मराठों और अफगानों, अथवा हिन्दुओं और मुसलमानों, या भारतीयों और विदेशियोंके बीच भीषण युद्ध हो रहा था। सारे देशकी आँखें उधर ही लगी हुई थीं, दक्षिण भारतके पूर्वोत्तर पर इन विदेशी फिरगियोंके बीच होने-वाले इस छाटे से संघर्षकी ओर किसीका ध्यान भी न था। किन्तु वास्तवमें भारतके भाग्यका निर्णय १७६१ ई० के पानीपतके युद्धमें शायद उतना नहीं हुआ जितना कि पाण्डुचेरीमें फ्रान्सीसियोंकी पराजयमें हुआ। इस



समस्त प्रतिद्विगोनी पछाड कर उक्त व्यापारमें नेतृत्व कर दिया था । बंगालक विभिन्न उपरामें उनकी अनेक व्यापारिक कोठियाँ फैल गयी थी । कलकत्ता उनका प्रधान मन्त्र था जहाँ उन्होंने मुदूद दुग, मुगलिन बन्दो तथा जल और फलकी द्विविध मँगवाकिते मुरभित शहर अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी । अलीपदोखाँ उनपर पुग नियन्त्रण भी रखे हुए था और भीतर-ही-भीतर उनसे भय भी गाया था । उन्हें दण्ड बनानेका उसने कभी प्रयत्न नहीं किया ।

किन्तु १७५६ ई० में उनकी नि सत्तान मृत्यु हो जानेपर उसका दोहित्र सिराजुद्दीन बंगालका नवाब बना । यह योग्य तथ सन्नायक था किन्तु अनुभवहीन अरुह नघयुक्त था । अंगरेज व्यापारियोंकी वयादतियोंकी देग-मुनकर वह पहलेसे ही उनसे चिन्ता हुआ था, अब इसी वर्ष यूरोपमें सप्तवर्षीय युद्ध छिड जानेके समाचार जातकर इस देशमें भी परस्पर युद्ध छिड आनेकी आशकासे बंगालक अंगरेज और फ्रान्सीसियोंने अपनी-अपनी वस्तियोंकी किलेबन्दी करनी और गैरिफ भर्ती करनी शुरू कर दी । नमायने यह देखकर उन्हें राका । फ्रान्सीसी ता सुरत मान गये किन्तु अंगरेजोंने उसकी अवज्ञा की और एष अत्यन्त घुष्टतापूर्ण उत्तर नवाबकी लिख भेजा । 'नवाबके कुछ विद्रोहिया एवं भयानक अपराधियोंकी भी उन्होंने दण्डण दी और नवाबकी मांगपर भी उन्हें उसके अधिकारियाक मियुद नहीं किया । शाही क्रमागको आठमें व्यापारक बहाने भी वे देशमें अनाचार करने लगे थे । यह सब नवीन नवाब महन न कर सका अतः उसने उनकी शानिमवाजागी कोठीपर अधिकार करके बलवत्तेपर धावा कर दिया । कलकत्ताका गवर्नर, सेनापति और अन्य बहुत से अंगरेज भाग निकले और कुछ मारे गये । शीघ्र ही नवाबका अंगरेजोंकी बंगाल, बिहार और उड़ीसामें स्थित प्राय सभी कोठियोंपर अधिकार हो गया । इस पराभवका समाचार जैसे ही मद्रास पहुँचा अंगरेज चिन्तित हो उठे और उन्होंने अपने कर्णटकके

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छुट

[illegible]

इसी युद्धके प्रसंगके और कभीके बीच बँदरेपोरी को बरसे बहिर  
 गङ्गातटपूर्व बङ्गाला की यह कहीं बीचकमें गलत हुई। सुबेदार मुन्नि-  
 मुन्निबा और मुन्निबाइन तथा बहाल बलीनकीके बालन ( १७ ७-१९  
 ई ) के समय बहाल बली बङ्गाल बहाल बहाल निवासीकोने बारबारिक  
 नदियुद्ध कसाला मुन्नि-बालन और मुन्निबाइन बहाल बली बा।  
 इन दिनों यह बालन बहाल बारबारिक बहाल बहाल बा। बहाल बली  
 के बलीबार बहाल बा, बहाल बहिर बहाल-बली बलि बहाल बा,  
 बहिराद बारबारिक बहाल बा मुन्निबाइन बीच केके बहाल बहाल-  
 बा १७८ ई के ही लुन्नी बलीकेके बहाल बहाल बीच बली  
 बहाल-बली-बा बहाल बहाल बा बहिर बहाल बहाल बा और बहाल  
 बहाल बा बा बा निम्न बहाल बलीनकीके बली बहाल बा बहाल बा  
 बा बा बा बा। बीचकमें बलीनकी बहाल बारबारिक बहिर बहिर  
 बहिर बहाल मुन्निबा और बहाल-बली बहाल-बली बारबारिक-  
 बली बली बहाल-बली बहाल-बली बहाल बहाल बा। बहाल बहाल  
 बहिर बहाल बली बलीके बहाल बा बहाल बा। इनमें बा बहिर-बली  
 बा बहाल-बली बहाल तथा बली मुन्निबाइन बली बहाल-बली बली बहाल

समस्त प्रतिद्वन्द्वियोंको पछाड़ कर उक्त व्यापारमें नेतृत्व कर लिया था। बंगालक विभिन्न नगरोंमें उनकी अनेक व्यापारिक कोठियाँ फैल गयी थीं। कलकत्ता उनका प्रधान केन्द्र था जहाँ उन्होंने मुदूढ़ दुर्ग, सुगठित बम्बो तथा जल और थलकी द्विविध सैन्यशक्तिसे सुरक्षित होकर अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। अलीवर्दीखाने उनपर पूरा नियन्त्रण भी रखे हुए था और भीतर-ही-भीतर उनसे भय भी खाता था। उन्हें शत्रु बनानेका उसने कभी प्रयत्न नहीं किया।

किन्तु १७५६ ई० में उनकी नि सन्तान मृत्यु हो जानेपर उसका तीसरा सिराजुद्दौला बंगालका नवाब बना। वह बीर एव सदाशय ता था किन्तु अनुभवहीन अल्हड़ नवयुवक था। अंगरेज व्यापारियोंकी व्यापारिक दृष्टिसे देव-मुनकर वह पहलेसे ही उनसे चिढ़ा हुआ था, अब इसी क्षण युद्ध-से सन्तर्पण युद्ध छिड़ जानेके समाचार जानकर इस देशमें जो युद्ध छिड़ जानेकी आशकासे बंगालके अंगरेजों और अलीवर्दीखाने अपनी अपनी वस्तियोंकी किलेबन्दी करनी और मस्जिदें बनाने शुरू कर दी। नवाबने यह देखकर उन्हें रोका। अलीवर्दीखाने मान गये किन्तु अंगरेजोंने उसकी अवज्ञा की और युद्ध घुष्टापूर्ण उत्तर नवाबको लिख भेजा। 'नवाबके कुछ अधिकारों पर भयानक अपराधियोंको भी उन्होंने शरण दी और अंगरेजोंको भी उन्हें उनके अधिकारियोंके सिपुर्द नहीं किया। अलीवर्दीखाने आहमें व्यापारके बहाने भी वे देशमें अनाचार करने लगे। नवाब नवीन नवाब सहन न कर सका अतः उसने अंगरेजोंको कोठोपर अधिकार करके कलकत्तेपर घावा मार दिया। अंगरेज गवर्नर, सेनापति और अन्य बहुत-से अंगरेज मार दिये गये। शीघ्र ही नवाबका अंगरेजोंकी बंगाल, सिन्ध और कुछ जगहें प्रायः सभी कोठियोंपर अधिकार हो गया। अलीवर्दीखाने जैसे ही मद्रास पहुँचा अंगरेज चिन्तित हो गये कि अलीवर्दीखाने

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छद्म



बीर बघावकी कर्षाविचार देकर तथा एडमिरल वाटसन एवं १ बीर  
 बीर १५ हिन्दुस्तानी सिपाहियोंको सेवा उनके साथ करके बचकत्ताके  
 बिद् रवाना कर दिया । इन्होंने जाते ही बचकत्ता वापस के किया कॉर्टेज  
 नवाब वहाँ बीरोंके सैनिक छोड़कर अपनी राजधानीकी वापस या बुला  
 या । जब वे हुजूमकी ओर बढ़े । नवाबकी एक कैम्पके साथ मुन्शी की  
 हुई जिल्दु हार-बीठवा निचर होनेके पुर ही दोनों पक्षोंके बीच बन्धि हो  
 गयी । बीरोंको अपनी सब कोटियाँ और खुदके अधिकार वापस  
 मिल गये ।

नवाबके वरिध अन्धकारके लम्बान्धने बीरोंको बहानीके बिद्  
 हालाँकि-हाग कैम्पके बने बचकत्ताकी बलबोझटीविषयक बिद्वा बगवान-  
 वा बघावके हुद वाकफपर कोई बर्कन ही नहीं किया उनके हुद समय  
 बायी वाकफकी ओर अनुष्ठानके काम किया । बहु बहु की वाकफ था कि  
 फूलोंको बीच नवाबके साथ बीरोंको बिद्वा दीकी-बन्धि करकेवा प्रत्य  
 कर रहे हैं, अतः बहु नवाबको सैनिक की बलबोझ नहीं करवा बाक्य था ।  
 नवाबके बिद्वा की बहु अधिकारिण बहु बगवान या बगवान बलबोझ की  
 नवाबके बीरोंको भीखे बलबोझन पड़नेपर ही बिर्धर की ओर को  
 वाकफिण करकेके नुई बहु बगवानके बलबोझियोंकी बुलबुलकर बगवान बग  
 रना बाक्य था अतः हुदी बगवान बलबोझीके बिर्धर बिर्धर को  
 बलबोझ हुद बगवान बाक्य बाक्यके हुद बगवान बिर्धर बगवान  
 था बगवान बगवान बगवान की बीर कर रहे थे अतः बहु की  
 बीरोंको अपना मित्र नवाब रक्षक बाक्य था । बलबोझ बीरोंके  
 बलबोझको बिर्धर करके एवं बगवान बिर्धर करके बलबोझियोंकी बुलबुल  
 बाक्य । हुद बगवान बीरोंके बिद्वा नवाबका बहु बगवान बगवान बग  
 ही नवा ।

बगवान बिर्धरबुद्धिमानका बगवान करकेके बिद् बुद बलबोझ होकर बीर  
 ही-बीर एक बगवान बगवान कला मुक बिर्धर । नवाबके बुलबुल बीर

उगकी फौजके प्रधान बख्शी मोरजापरकी, जो उस समय बगालके मुसल-  
 मान सरदारोंमें सबसे अधिक दामिनीशाली था, नवाब बनानेका लोभ देकर  
 पग्लाइयने अपनी ओर फोड़ लिया। नवाबकी मामी अर्थात् अलीवर्दीखानेकी  
 पुत्रवधू घसोटी बेगम, मरदान यागलतीकुर्खी, राजा रागदुर्ग, जगतसेठ  
 आदि नवाबके स्तम्भ भी अंगरेजोंसे मिल गये। वाम्बतयमें प्राय सभी बगाली  
 हिन्दू जमींदार और सेठ व्यापारी भी नवाबके पतनके इच्छुक थे और व  
 किसीन किसी रूपमें अंगरेजोंके पट्टणमें महागक हुए। नवाबके अन्त  
 होनेकी सूरतमें उसके कोप एवं सम्पत्तिकी लूटमें सभीका हिस्सा निश्चित  
 हुआ। अमीचन्द नामक एक धनी मिश्रित शौदागरकी मार्फत पग्लाइयने मोर-  
 जापर आदिके साथ सम्पर्क बनाये रखा। अमीचन्दकी भी हिम्मा मिनता  
 था, किन्तु धूर्त पलाइयने उसके साथ भी जाल किया और ममक्षीतके जाली  
 मसविदे भी तैयार किये। नवाबी दरबारके सरदारोंमें परस्पर भी ईर्ष्या  
 द्वेष और फूट थी, सभी अपने अपने स्वार्थमें अड़े थे, नवाबके, राज्यके,  
 देशके या जनताके हितको किसीको कोई चिन्ता न थी। तत्कालीन देश-  
 व्यापी अनैतिकता और पतनके प्रभावसे बगाल भी अछूता नहीं था, और  
 १७५६-५७ ई० के वर्षोंमें ता अंगरेजोंके प्रोत्साहन एवं सहयोगसे बगालके  
 प्राय समस्त राज्याधिकारियोंकी कुचालोंके कारण वह प्रभाव अपने घरम  
 शिखरपर था। धूर्त अंगरेज इसी अवसरकी तावमें थे। पट्टण्यकी सय  
 याजना पूरी और पक्की हो जानेपर पलाइयने नवाबको एक अत्यन्त उद्धत  
 एवं घृष्ट पत्र लिखा जिसमें उसपर फ्रान्सीसियोंकी सहायता करनेका मिथ्या  
 दापारोपण भी किया। थोड़े समय तक उत्तरकी प्रतीक्षा करनेके उपरान्त  
 वह सेना लेकर नवाबकी राजधानी मुशिदाबादमें २३ मील दक्षिणकी ओर  
 स्थित पलासीके मैदानमें जा पहुँचा। नवाबने वहाँ कुछ सेना पहलेसे ही  
 एकत्र कर रखा थी। उसकी संख्या पर्याप्त थी किन्तु उसमें ईरानी,  
 अफगानी, अन्य मध्य-एशियाई तथा भारतीय हिन्दू, मुसलमानोंका अद्भुत  
 अव्यवस्थित मिश्रण था। अधिकांश सिपाही राज्यभक्तिके कारण नहीं

बलिक केवल केनेके दिव् लन्नेवाके ने । नवाव स्वायिजोही एवं विरघट  
 बानी लरघारेके विरा हुआ था । स्वयं बीरबाऊर बारललीक बीर राज-  
 पुर्नबही बचोपठमें केमरा बहुबाव था जो केवल लमघा देवनेके भिन्  
 वही पुनबाव निश्चिन्न बना रहा । फिर भी नवावकी धर्मि एतनी थी कि  
 बीरनेही केवाका वही बिहू भी दीप न राहता । इसी कारण लमघा लमघ  
 भयभीत बीर चिन्तित था वह एविके कापी-हाण ही नवावकी केमनी  
 लव करनेके लकने था । किन्तु बने-बने बारघारों बीर बापी केनिकेके  
 विस्मयलघातही देवकर नवावके विरघाही बीमिक थी हतोत्साहित ने बीर  
 लूके बानेने ही वे पीछे हलने लने । नवाव स्वयं बबरा लम बीर लैल  
 कोलकर लम लम लमलक लनी हुआ बीर ललललललल ललल लम कर  
 विरा लम । लमलम ली ललकी लैवेरेडकि बीर लीव ली लललके ली ल  
 ललल हल, किन्तु १७५७ ई के लललीके लल लोटे-ले लुलके ललीलने  
 लललल ली ली लूरे देवरा ललल लिलल कर लिल । लललके लिल-  
 लिने लली लुलल एवं लुल लललीलललने ललीलल होकर ललने देवने  
 एक लललील लललल लल ललके ली ललके ललल, ललकी ललल लल  
 ललललके लिलल लिलेकी ललललललके लललने स्वयं ही लीव लिल । लल  
 लीलने लैवेरेडकी लललललल कारण लली लू-लीलल ल ललललल  
 ली ली लल ललल लीललल ललली लिललललल बीर ललललल  
 ल बीर ल स्वयं देवका लुलील लल देवलीललली लली लुलल ललल  
 ललल लिललललल एवं लिली लललललल

लललीके लुलले लललली लैवेरेड ललली ललललल एवं लली लीव  
 लल ली । लललल लैवेरेड ललल लुललल ललली ली ली लल ली लल  
 लल ली । लल लललके लललल ललललल ली ललल ललल लललीलल  
 लीलने लीललल लील लललल ली लललललल एवं लललीलल ललल-  
 ललललली ली लललललल ललल लल । लली लैवेरेड-ललल ललली  
 लललीलली लललल लल लिललल एवं लललील लली ललल ली ली

उसका प्रारम्भ बगालसे ही हुआ जिसे सर्वप्रकार लूटनेमें उन्होंने कोई कसर न रखी। बलाइवने अपनी सरसकतामें नीच मोरजाफ़रको नवाब बनाया। स्वयं बलाइवको लगभग ढाई लाख पौण्ड नक़द और तीस हजार पौण्ड धांपिककी जागीर मिली। कलकत्ता कौन्सिलके अन्य सदस्योंको भी किसीको पचास हजार और किसीको अस्सी हजार पौण्ड मिले। कम्पनीकी सेनाके विभिन्न अंगरेज़ अफसरोंको सब मिलाकर साढ़े बारह लाख पौण्ड तथा सिराजुद्दौलाद्वारा कलकत्तेके घेरेमें जिन अंगरेज़ोंको जो कुछ क्षति हुई थी उसके मुआवजेमें पौने दो करोड़ रुपये उन्हें मिले। सिवाय अमीचन्दके अन्य देशी सामन्त सरदारोंको भी हिस्से मिले। बड़ी शान्तिके साथ जी भरकर सैकड़ों वर्षसे संचित बगालके राजकोषकी लूट हुई और वह बिलकुल खाली हो गया। अंगरेज़ोंका देना फिर भी काफ़ी बाक़ी बना रहा जिसका तफ़ाज़ा नवाबकी गरदनपर हर समय सवार था। अब अंगरेज़ ही बगालके वस्तुतः स्वामी थे। घटनाका सवाद पाकर शहज़ादे अलीग़ीहरने अवधके नवाबके साथ बगालपर आक्रमण किया, किन्तु जैसे ही बलाइव उसका सामना करनेके लिए बढ़ा वह बिना युद्ध किये ही अवध वापस लौट गया। अंगरेज़ोंके अंकुश और नित्य नयी माँगोंसे तंग आकर मोरजाफ़रने चिनसुरा के डच्चीसे वात-चौत करनेका प्रयत्न किया। इसपर अंगरेज़ोंने जल और थल दोनोंपर डच्चीको घुरी तरह पराजित किया और उन्होंने अंगरेज़ोंको दस लाख पौण्ड हर्जाना देकर अपना पिण्ड छुड़ाया। इसके बाद डच्चीको ओरसे भी अंगरेज़ सदाके लिए निश्चिन्त हो गये। १७६० ई० में अब अत्यन्त धनवान् बलाइव इंग्लैण्ड चला गया।

बलाइवके जाते ही कलकत्ता कौन्सिलके सदस्योंने मोरजाफ़रको उनकी माँगोंकी पूर्ति करनेमें असमर्थ पाकर पदच्युत कर दिया और उसके दामाद मोरकासिमको नवाब बनाया। इस उपलक्ष्यमें उससे खूब धन लूटा, लाखों रुपये और कई ज़िले प्राप्त कर लिये। मोरजाफ़रके पतनमें उसके हिन्दू मुसाहब और सरदार भी सहायक हुए थे। मोरजाफ़रसे ही अंगरेज़ोंने यह



किन्तु कुछ परिणाम न निकला । इसपर उसने समस्त कर उठा दिये । इससे अंगरेजोंको जो दस्तकोके-द्वारा विपुल लाभ होता था वह बन्द हो गया । अतः युद्ध छिड़ गया । पटनामें मोरक्कासिमके जर्मन कप्तान समन्ने २०० अंगरेजोंका घब कर दिया और तदनन्तर १७६४ ई० में वषरमें अंगरेजोंके साथ मोरक्कासिम, अवधके नवाब और बादशाह शाहआलमका युद्ध हुआ जिसमें अंगरेजोंकी ही विजय हुई । मोरक्कासिम और अवधका नवाब अवध भाग गये और शाहआलम अंगरेजोंकी शरणमें आ गया ।

अब तो अंगरेज बंगालके ही सर्वे-सर्वा न थे वरन् स्वयं दिल्लीका बादशाह उनके सरक्षणमें था, देशमें उनकी शक्तिकी धाक जम गयी और भारतीय राजनीतिमें उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी । वषरके युद्धके कार्यको पूरा करनेके लिए क्लाइवको कलकत्ताका गवर्नर एवं सेनापति बनाकर फिर भारत भेजा गया । उसने १७६५ ई० में इलाहाबादमें शाहआलम और शुजाउद्दौलाके साथ सन्धि करके अपनी कम्पनीके लिए बादशाहसे बंगाल, बिहार और उड़ीसाकी दीवानो अर्थात् इन प्रान्तोंकी मालगुजारी वसूल करनेका अधिकार प्राप्त कर लिया जिसके बदलेमें बादशाहको २६ लाख रुपया वार्षिक देनेका वचन दिया । अवधके नवाबसे उसने कड़ा और इलाहाबादके जिले ले लिये, उससे परस्पर सहायता करनेकी शर्त कर ली और उसकी सीमापर उसीके खर्चेसे अंगरेजी सेना रखनेकी बात तय कर ली । अब दिल्लीका बादशाह अंगरेजोंका एक प्रकारका पेशनर था, अवधका नवाब वजोर उनके प्रभावमें था तथा खर्चे एवं हजनिंकी रकमके लिए ऋणी था, और बंगालके तो वे पूरे स्वामी थे । मोरक्कासिमको नाम-मात्रका नवाब बना दिया गया, पुलिस एवं दण्डविधान ही उसका एक-मात्र अधिकार-क्षेत्र रह गया । कुछ ही मास उपरान्त वह मर गया और उसके बेटे नज्मुद्दौलाको नवाब बनाया गया । मोरक्कासिमके पुनरुत्थानपर भी उसे खूब लूटा-खसोटा गया था । स्वयं स्क्रेपटन नामक एक अंगरेजके शब्दोंमें 'नवाब तो कम्पनीके नौकरोंके लिए एक ऐसा बैंक बना हुआ था

[illegible][illegible]

नीतिश या । कम्पनीके अन्य सभी कर्मचारियोंकी भाँति यह घूमखारी और अष्टाचारसे भी मुक्त नहीं था । जनताका शोषण और लूट वेगके साथ चलती रही । देशवे उद्योग-धंधे शनै-शनै अत्याचारपूर्वक नष्ट कर दिये गये । भारतमें अँगरेजोंकी शक्ति एव विस्तार, और संसारमें इंग्लैण्डका धन-वैभव, व्यापार, उद्योग-धंधे, प्रभाव और प्रभुत्व दिन दूने रात चौगुने बढ़ते गये । भारतकी इस लूटसे प्राप्त धन तथा स्वयं भारतके ही कच्चे माल तथा विशाल भारतीय बाजारके चलपर ही इंग्लैण्डकी औद्योगिक क्रान्ति एव संसारमें उसके व्यापारिक प्रभुत्वका सम्पादन इसी समयके लगभग प्रारम्भ हुआ ।

वारेन हैस्टिंग्सने अपनी दो साल ( १७७२-७४ ई० ) की गवर्नरीमें पड़ोसी राज्योंकी राजनीतिमें हस्तक्षेप करके कम्पनीकी शक्ति बढ़ानेकी प्रयास चालू रखी । अपने ऋणी अवधके नवाबकी इच्छापर रूहेल्लोके साथ युद्ध छेड़कर और फलस्वरूप उनका विनाश करके उसने अवधको तो जो लाभ पहुँचाया सो पहुँचाया, स्वयं अपना लाभ किया और कम्पनी की शक्ति और प्रभावको उत्तर भारतमें पश्चिम दिशामें और अधिक विस्तार दिया । इस युद्धमें पड़ना अँगरेजोंके लिए अन्यायपूर्ण और अनुचित था । उसके लिए स्वयं अँगरेजोंने हैस्टिंग्सकी कड़े शब्दोंमें निन्दा की है । रूहेले सरदार हाफिज रहमतखाने अँगरेजोंका कुछ भी न बिगाड़ा था । वह स्वयं भी एक उदार एव सहृदय शासक था । अपनी मुसलमानेतर प्रजाके प्रति भी उसका व्यवहार अपेक्षाकृत अच्छा था । युद्धके उपरान्त अवधक नवाबोंके शासनमें रूहेलखण्डकी दशा एकदम बिगड़ गयी । किन्तु उस कालके इन अँगरेजोंकी दृष्टिमें उचित-अनुचित, न्याय-अन्यायका कोई मूल्य न था । जा घात भी उनकी शक्ति-संवर्द्धन और स्वायत्तसाधनमें सहायक होती वही उचित एव 'यावय' थी और उसे करनेमें वे कभी न चूकते थे । वारेन हैस्टिंग्सने इसी कालमें बंगालके शासनको भी व्यवस्थित करनेका और उसमें सुधार करनेका कुछ प्रयत्न किया, किन्तु इन सुधारों-

यूरोपवासियों द्वारा भारतकी लूट



में भी सम्पत्ति और सर्वस्वोंके शिष्टों तथा अधिकांशोंकी सुरक्षाकी बुद्धि ही प्रबल थी। संवत्सिद्धिके विद्रोहके मागधे प्रसिद्ध एक काश्मिरीय भी ब्रह्म-  
 रेविके बलाघाटीके विद्रुत बंधावके कुछ मासोंमें इस मागधे द्वारा किन्तु  
 ब्रह्मरेविके कने झूठाने काय नुचल किया। १७७३ ई के ऐंग्लो-  
 ऐर-द्वारा ईश्वरगद्दी परकारने सर्वप्रथम दम्पतीके मागधेमें वैधानिक हस्त-  
 लेख किया। इस विधानके अनुसार बंधावका नवम्बर मासका दम्पत्य-  
 करण नहुनाका अन्य सब सुखों और सहाय सम्पत्ति आदिके दम्पतीपर  
 बनना आदिवात्त हुआ। १७७५ सहाय नवम्बरका विवत किया गया, बनकी  
 लाजसताके किन्तु बार दम्पतीकी एक वीरिष्ठा बंधावी गद्दी और कलकत्तेमें  
 मुजीब कीर्तिके मागधे कबोन्ध सहाय्य स्थापित की गद्दी शिष्टके सब दम्-  
 पत्य परकर और उच्चकी वीरिष्ठाके अधिकारके बंधाव स्थापन थे।  
 मागधुशरी-सम्पत्ती स्वीरों तथा ब्रह्मरेव सर्व सहाय्यिक मागधेमें ईश्वरगद्दी  
 परकारकी बंधाव रकमा स्थापित की गया। इस प्रकार इस सहाय्य-द्वारा  
 ईश्वरगद्दी परकार या कश्चित् कि सम्पूर्ण ब्रह्मरेवकी राज्य मागधेमें बनकी  
 राज्य-स्थितिके सिद्धांतमें प्रत्यक्ष बनकी सिद्धांतकी लीने गया। दम्पतीके  
 निम्नके सभी मागधेकी तथा अधिकांश किन्तु बंधावके सब मागधेकी ब्रह्मरेव  
 परकारका दम्पत्य स्थापित कीर्तिके सर्व अधिकांशका मागधे ही गया।

शिष्ट प्रकार बलकला केन्द्रके ब्रह्मरेव बंधावमें और फिर बनकी बंधाव  
 बंधुकर बंधावकी प्रदीप्तोंमें ब्रह्मरेवकी स्थितिमा बंधाव सिद्धांत और बंधाव  
 कर रहे थे। बंधाव प्रकार बुद्धी स्थापन मागधे केन्द्रके वे सुदूर बंधावमें  
 स्थिति सुदूर मागधे और नवम्बर केन्द्रोंमें बंधाव ही कर रहे थे। ईश्वर  
 काश्मिरी बंधावके छोटे-छोटे सहाय्यकी ही कश्चित् प्रायः बंधाव बंधाव  
 कर ही किया या और कश्चित् बंधावका मागधे बंधावके बंधावकी शक्ति ही बनके  
 हाथकी नहुनाकी या। बंधावके मागधेमें भी प्रायः बंधाव मागधेमें बंधाव-बंधाव  
 ही सम्पूर्ण सहाय्य स्थापित करते कश्चित् कश्चित् केन्द्रकी बंधाव एवं  
 सहाय्य-स्थिति-परी भी नहुनेके नहीं अधिक बंधावकीय बना दिया या।

निजाम और उसकी राजनीतिपर उन्होंने अपना प्रभाव जमा ही लिया था, अब उसे और अधिक सुदृढ़ करने तथा मैसूरमें हैदरअलीका अन्त करने तथा निजाम और मराठोंकी शक्ति क्षीण करनेके लिए उन्होंने भारतके इस भूभागमें अपनी शक्तिका संगठन, विस्तार एवं सवर्धन करना प्रारम्भ कर दिया था। इसी नीतिके अनुसरणमें उनका हैदरअलीके साथ प्रथम मैसूर-युद्ध (१७६७-६९ ई०) हुआ, यद्यपि उसका परिणाम उनके लिए कुछ लाभदायक न हुआ। इसी प्रकार पश्चिमी तटपर मम्बई केन्द्रसे उन्होंने मराठोंकी शक्तिको क्षीण करनेके लिए वैसा ही प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया था। १७६१ ई० की पानीपतकी पराजयके उपरान्त पेशवा राज्यकी स्थिति विपन्न हो उठी थी। अन्त कलह, परस्पर फूट, सामन्त सरदारोंके स्वतन्त्र राज्य स्थापना आदिस उत्पन्न परिस्थितियों-ने इस भागमें भी अंगरेजोंको स्वर्ण अवसर प्रदान किया। तीनों केन्द्रोंके द्वारा अंगरेज भारतवर्षको तीन महत्त्वपूर्ण दिशाओंसे आवृत करते चले आ रहे थे। तीनों ही केन्द्रोंके अंगरेज अधिकारी प्रायः एक-दूसरेसे स्वतन्त्र रहकर ही अपनी-अपनी दिशामें अवतक अग्रसर होते रहे थे, किन्तु उनमें उद्देश्य, हित और पद्धतिकी एक-सूत्रता एवं साम्य तथा परस्पर सहयोग एवं सहायता अभीतक भी बराबर बनी हुई थी। रेगुलेटिंग ऐक्ट-द्वारा उनका पूर्ण केन्द्रीयकरण एवं एकसूत्रीकरण करनेका प्रयत्न किया गया, जिसमें प्रायः कोई कठिनाई न हुई। अबतक अंगरेजी नीति और पद्धतिका यथावश्यक विकास हो चुका था, उनकी शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी थी, स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हो गयी थी तथा उनके प्रभाव, अधिकार और साधन पर्याप्त थे। उनकी भारतीय साम्राज्यकी नींव मजबूतीके साथ जम गयी थी, अब मात्र तेजीके साथ उस साम्राज्यका विस्तार करके समस्त देशको उसमें व्याप्त कर लेना था जिसके सम्पादनमें वे मनोयोगक साथ जुट गये। इस काल तककी घटनाओंका कुछ विस्तारके साथ विवेचन इसीलिए किया गया है कि अंगरेजोंके उद्देश्य, उनकी नीति, पद्धति, मनोवृत्ति, जातीय यूरोपवासियों द्वारा भारतकी लूट



निजाम और उसकी राजनीतिपर उन्होंने अपना प्रभाव जमा हो लिया था, अब उसे और अधिक सुदृढ़ करने तथा मैसूरमें हैदरअलीका अन्त करने तथा निजाम और मराठोंकी शक्ति क्षीण करनेके लिए उन्होंने भारतके इस भूभागमें अपनी शक्तिका सगठन, विस्तार एवं सवर्धन करना प्रारम्भ कर दिया था। इसी नीतिके अनुसरणमें उनका हैदरअलीके साथ प्रथम मैसूर-युद्ध (१७६७-६९ ई०) हुआ, यद्यपि उसका परिणाम उनके लिए कुछ लाभदायक न हुआ। इसी प्रकार पश्चिमी तटपर बम्बई केन्द्रसे उन्होंने मराठोंकी शक्तिको क्षीण करनेके लिए वैसा ही प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया था। १७६१ ई० की पानीपतकी पराजयके उपरान्त पेशवा राज्यकी स्थिति विपन्न हो उठी थी। अन्त कलह, परस्पर फूट, सामन्त सरदारोंके स्वतन्त्र राज्य स्थापना आदिसे उत्पन्न परिस्थितियों-ने इस भागमें भी अंगरेजोंको स्वर्ण अवसर प्रदान किया। तीनों केन्द्रोंके द्वारा अंगरेज भारतवर्षको तीन महत्त्वपूर्ण दिशाओंसे आवृत करते चले आ रहे थे। तीनों ही केन्द्रोंके अंगरेज अधिकारी प्रायः एक-दूसरेसे स्वतन्त्र रहकर ही अपनी-अपनी दिशामें अवतक अग्रसर होते रहे थे, किन्तु उनमें उद्देश्य, हित और पद्धतिकी एक-सूत्रता एवं साम्य तथा परस्पर सहयोग एवं सहायता अभी तक भी बराबर बनी हुई थी। रेगुलेटिंग ऐक्ट-द्वारा उनका पूर्ण केन्द्रीयकरण एवं एकसूत्रीकरण करनेका प्रयत्न किया गया, जिसमें प्रायः कोई कठिनाई न हुई। अवतक अंगरेजी नीति और पद्धतिका यथावश्यक विकास हो चुका था, उनकी शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी थी, स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ हो गयी थी तथा उनके प्रभाव, अधिकार और साधन पर्याप्त थे। उनकी भारतीय साम्राज्यकी नींव मजबूतीके साथ जम गयी थी, अब मात्र तेजीके साथ उस साम्राज्यका विस्तार करके समस्त देशको उसमें व्याप्त कर लेना था जिसके सम्पादनमें वे मनोयोगक साथ जुट गये। इस काल तककी घटनाओंका कुछ विस्तारके साथ विवेचन इसीलिए किया गया है कि अंगरेजोंके उद्देश्य, उनकी नीति, पद्धति, मनोवृत्ति, जातीय यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छूट



मराठा सरदारों और हैदरअलीके साथ अंगरेजोंक युद्ध हुए । अंगरेजोंको कूटनीति और चातुरी साथ-साथ अपना कार्य करती रही । परिणाम यह हुआ कि १७८२ ई० में सालवाईकी संधिसे मराठा युद्धका और १७८४ ई० में मंगलीरकी संधिसे मैसूर युद्धका अन्त हुआ । अंगरेजोंका प्रभाव उनके सभी विराधी राज्योंपर छा गया । उनकी सबकी ही घबित्त-विस्तार और अधिकार कुछ-न-कुछ घट गये और अंगरेजोंके पर्याप्त बढ़ गये । अब उन राज्योंका अन्त करने या उन्हें पूर्णतया अपने अधीन कर लेनेका मार्ग भी अंगरेजोंके लिए सुगम हो गया ।

इस कालमें देशके प्रत्यक्ष शासनका काम अंगरेजोंको केवल बगालमें ही करना पड़ रहा था । उसक लिए उन्होंने प्रचलित मुगलकालीन शासन पद्धतिके ढाँचेको ही अपनाया और उसमें अपने हितोंकी सुरक्षा एवं उद्देश्यों-की सिद्धिकी दृष्टिसे आवश्यक सुधार करने प्रारम्भ किये । उनकी इस शासन-पद्धतिसे देशका विशेष लाभ नहीं हुआ, अंगरेजोंको ही उसके अधिकाधिक शोषण और लूटन सहायता मिली । देश और जनताके हितको उन्हें चिन्ता थी भी नहीं । किन्तु रेगुलेटिंग ऐक्ट द्वारा स्थापित व्यवस्था स्वयं उनके लिए भी सदीप और असुविधाजनक थी । गवर्नर-जनरल और उसकी कौन्सिलके बीच सद्भाव एवं सहयोग रहता ही न था और राज्यकार्यमें अडचन होती थी । अतः इंग्लैण्डके प्रधान मन्त्री पिटने अपने १७८४ ई० के पिट्स इण्डिया ऐक्ट द्वारा कम्पनीके लन्दनस्थ प्रधान कार्यालयपर तथा उसको भारतीय नीतिपर अपनी सरकारका नियन्त्रण एवं हस्तक्षेप और सुदृढ़ कर दिया और गवर्नर-जनरलके अधिकारोंमें भी वृद्धि कर दी । इसी बीचमें अपने कार्यकालमें वारेन हैस्टिंग्सने कतिपय अन्य जघन्य कार्य किये थे । उसके अन्यायपूर्ण रुहेला युद्धका उल्लेख किया ही जा चुका है । उसने बगालके एक प्रतिष्ठित एवं सम्भ्रान्त राजपुरुष महाराज नन्दकुमारको व्यक्तिगत शत्रुताके कारण अपने मित्र सुप्रीम कोर्टके प्रधान जज सर एला-इजा इम्पे-द्वारा जालसाजीके झूठे मामलेमें फाँसीकी सजा दिलवायी ।

परिम एवं अवतरवाचिकाका छौक-छौक परिचय मिल जाने । बाबेरी का पटनाई इन्हींकी पुनरावृत्तिमय है । यह कमल बलिष्ठ विचार ही वर्णित होना की वकाल-अवरोधके आधारसे कल्पकालानुसार विम्व प्रकार है —

१. बारीन हिरिदयस्त ( १७७४-८५ ई ) भारतका प्रथम बंगरेज मजदूर-अनारक था । पहले बङ्गाली विमुक्ति पाँच वर्षके सिद्ध की गयी थी फिर तीन वर्षके सिद्ध और गया की गयी थी । बङ्गके कामकाजके आरम्भ होनेके पहले ही सर्व सम्पत्तिका अवरोध वैद्यका दयाकारी एकाकीतिमें डाल दिया । वैद्यका एकाकी के अन्त-कलङ्कमय भाव अन्तर और एकाकीता का निकल बहने अन्तरे अन्तरे की ईवाककी भङ्गनाली पुनरावृत्ति करकेकी होती । विष्णु विचक्षण परमेश्वर राजनीतिज्ञ वास्तव कृष्णजीके कृष्णोक्ति का लुप्तके कारण बड़े स्वयं केके ही वह वर्ष । १७७५-८१ ई के प्रथम बंगरेज-अनारक मुझने नामा कल्पकीकने विम्वका हीनार, वास्तवका धीमेके आदि इन्हीं वास्तव बङ्गालीकी उच्च विद्या और ईश्वरकीकी की अन्तरी मोर मिला मिला । इन्तर सम्पत्तिकाके बीच ही बङ्गरेज गौरव होकर बहादुर बङ्गाली ईश्वरकीके काय मुझ केव दिया । ईश्वरकी स्वयं बंगरेजकी कर्मात्मके बाहर लिकाऊ बैनार मुझ हुआ वा । यह प्रथम बंगरेज-अनारक मुझके गोपनी ही मुझका बंगरेज-वैद्यक मुझ ( १७८०-१७८४ ई ) की मुझ ही गया । इन मुझके आरम्भ करनेमें सम्पत्त और बहादुर के अन्तराल अवरोध-अनारक बारीन हिरिदयकी कोई अनुमति वा स्वीकृति नहीं थी थी । यह वह मुझ समय एक पुन ही देखा गया । कल्प स्वयं पूर्वी एवं पश्चिमी लटके बंगरेजकी वास्तव-विद्या मिलने ही वा रहा वा विद्यके कारण बंगरेजकी वास्तवकाका अन्तरी और इतिहासकी अन्तरी केव अन्तरी काय ही विद्यावाचक अवरोध आदि वास्तवके कई बङ्गरेजके सिद्ध अन्तरी की एकाकीता वास्तव किन्तु अन्तरे पूर्वी ही बारीन हिरिदयके अन्तरी बंगरेज अन्तरीके केविलय करके वह मुझने गया मिला । पश्चिमी छट, पूर्वी छट और कल्प भारत आदि विविध स्वयंमि वैद्यक

प्रथाका अन्त करके बगालमें मालगुजारीका इस्तमरारी अर्थात् स्थायी बन्दोबस्त किया और सिविल सचिवकी भी स्थापना की। काननवालिस एक उच्च धरानेका सम्पन्न व्यक्ति, ईमानदार और अनुभवी शासक था। उसके पूर्ववर्ती अधिकारियों द्वारा किये गये अत्याचारा एव अनाचारोंको भुलानेके लिए उसे भेजा गया था। ऐसा करना अंगरेजोंकी गहरी कूट-नीतिका प्रदर्शन था। इस प्रकारकी क्रिया प्रतिक्रियापर ही वह अवलम्बित थी और सदैव चलती रही। एक शासक आता जो जो भरकर जार-जुलम, लूट-खसोट करता उसके तुरन्त उपरान्त ऐसा व्यक्ति भेजा जाता जो जनताके आसू पीछनेका और उसे पुराने अत्याचारोंका भूलकर अंगरेजाकी सदा-श्रुता, उदारता एव न्याय-परायणताकी प्रशंसा करनेके लिए प्रोत्साहित करता। किन्तु इन दोनों ही गरम और नरम प्रकारके अधिकारियोंके हाथमें अंगरेजोंके अपने मौलिक हित समान रूपसे सुरक्षित रहते। १७९०-९२ ई० में दूसरा अंगरेज-मैसूर युद्ध छिड़ा जिसके परिणामस्वरूप टीपू सुलतानका राज्य और शक्ति अत्यन्त घट गये और मद्रास प्रेसीडेन्सीका भी पर्याप्त विस्तार हो गया। इस कालमें उत्तरापथमें महादाजी सिन्धिया सर्वाधिक शक्तिशाली हो रहा था, वह चतुर, बुद्धिमान् और प्रतापी भी था। अंगरेजोंने उसके साथ मित्रता ही बनाये रखी और उसके कार्योंमें हस्तक्षेप नहीं किया। १७९४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। १७९३ ई० में इंग्लैण्डकी सरकारने कम्पनीकी आगेके २० वर्षोंके लिए भारतीय व्यापारक एकाधिकारके लिए नया आज्ञा-पत्र प्रदान कर दिया था।

३ सर जॉन शोर (१७९३-९८ ई०) पहलेसे ही कम्पनीका कर्मचारी था और काननवालिसका सहायक था। वह सिविलियन मनोवृत्तिका था और देशी राज्योंके मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका अनुसरण करना तथा पिटके इण्डिया ऐक्टका अक्षरशः पालन करना चाहता था। अतः पूर्व सचिवकी अवहेलना करके उसने मराठोंके विरुद्ध अपन मित्र निजामको सहायता न दी, फलस्वरूप खदकि युद्धमें निजाम बुरी तरह यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट





प्रयाका अन्त करके वगालमें मालगुजारीका इस्तमरारी अर्थात् स्थायी बन्दोबस्त किया और सिविल सर्विसकी भी स्थापना की। कान्वालिस एक उच्च धरानेका सम्पन्न व्यक्ति, ईमानदार और अनुभवी शासक था। उसके पूर्ववर्ती अधिकारियों द्वारा किये गये अत्याचारों एवं अनाचारोंको भुलानेके लिए उसे भेजा गया था। ऐसा करना अंगरेजोंकी गहरी कूट-नीतिका प्रदर्शन था। इस प्रकारकी क्रिया-प्रतिक्रियापर ही वह अवलम्बित थी और सदैव चलती रही। एक शासक आता जो जो भरकर जार-बुल्म, लूट-खसोट करता उसके तुरन्त उपरान्त ऐसा व्यक्ति भेजा जाता जो जनता-के आंसू पोंछनेका और उस पुराने अत्याचारोंका भूलकर अंगरेजोंकी सदा-शयता, उदारता एवं न्याय-परायणताकी प्रशंसा करनेके लिए प्रोत्साहित करता। किन्तु इन दोनों ही गरम और नरम प्रकारके अधिकारियोंके हाथमें अंगरेजोंके अपने मौलिक हित समान रूपसे सुरक्षित रहते। १७९०-९२ ई० में दूसरा अंगरेज-मैसूर युद्ध छिड़ा जिसके परिणामस्वरूप टीपू सुल्तान-का राज्य और शक्ति अत्यन्त घट गये और मद्रास प्रेसीडेन्सीका भी पर्याप्त विस्तार हो गया। इस कालमें उत्तरापथमें महादाजी सिन्धिया सर्वाधिक शक्तिशाली हो रहा था, वह चतुर, बुद्धिमान् और प्रतापी भी था। अंग-रेजोंने उसके साथ मित्रता ही बनाये रखी और उसके कार्योंमें हस्तक्षेप नहीं किया। १७९४ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। १७९३ ई० में इंग्लैण्ड-की सरकारने कम्पनीको आगेके २० वर्षोंके लिए भारतीय व्यापारके एकाधिकारके लिए नया आज्ञा-पत्र प्रदान कर दिया था।

३ सर जॉन शोर (१७९३-९८ ई०) पहलेसे ही कम्पनीका कम-चारी था और कानवालिसका सहायक था। वह सिविलियन मनोवृत्तिका था और देशी राज्योंके मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका अनुसरण करना तथा पिटके इण्डिया ऐक्टका अक्षरशः पालन करना चाहता था। अतः पूर्व सचिवकी अवहेलना करके उसने मराठोंके विरुद्ध अपन मित्र निजामको सहायता न दी, फलस्वरूप खदकि युद्धमें निजाम बुरी तरह

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट



अंगरेजोंके साथ यह संधि करता वह अनिवार्य रूपसे अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार कर लेता, किसी देशी या विदेशी शत्रु शक्तिके साथ वह सन्धि-विग्रह नहीं कर सकता था, उसे अपने यहाँ एक अंगरेज रेजीडेण्ट और सेना रखनी पड़ती थी जिसका मंत्र खर्च उस देना पड़ता था और किसी अन्य विदेशीको वह अपने यहाँ नौकर नहीं रख सकता था। सबसे पहले निजाम इस संधिमें बँधा। तदनन्तर अवधके नवाबसे रुहेलखण्ड और गोरखपुरके जिले बरधम छीनकर उसे इस सन्धिमें बाँधा। १८०२-०५ ई० में मराठोंके साथ युद्ध छेड़ दिया और परिणामस्वरूप पेशवा, मिर्झिया, होलकर, भासले आदि मराठा राज्योंको पराजित करके उन्हें अपने अपने राज्योंके मूल्यवान् प्रदेश अंगरेजोंको दे देने तथा इस संधिमें बँधनेपर विवश किया गया। भरतपुरके जाटों और राजस्थानके प्रायः सभी राजपूत राज्योंका भी इन संधियोंमें जकड़ लिया गया।

इन संधियोंके फलस्वरूप भारतमें अंगरेजोंकी स्थिति अत्यन्त दृढ़ हो गयी, उनका राज्य विस्तार प्रत्येक दिशामें देशके अन्त प्रदेश तक पहुँच गया घन, आय तथा व्यापार अत्यधिक बढ़ गया, संधिमें बँधे राज्योंपर उनका साम्राज्य स्थापित हो गया और उनके पास एक सुशिक्षित विशाल सेना हो गयी जिसके लिए उन्हें कुछ भी खर्च न करना पड़ता था। इन कथित अनगिनत मित्र राज्योंकी विदेशी नीतिपर भी उनका पूर्ण अधिकार हो गया और उन्हें अन्य यूरोपीय जातियोंके आक्रमणका कोई भय न रहा। इन संधियोंके लिए बेल्लेज़लीने भारतीय राजाओंपर बड़ा दबाव डाला तथा उनका साथ अत्याचारपूण और सख्तनीका बरताव किया। उसने उनकी या उनकी जनताकी भावनाओंका तनिक भी खयाल न किया और न उनके न्याय्य अधिकारोंपर ही कुछ ध्यान दिया। उसको तो केवल अंगरेजोंके राज्यके विस्तार और सुरक्षाकी चिन्ता थी। देशी राजा नवाब उनके दबाव और अत्याचार तथा अपनी स्वयंकी अमहाय अवस्था, अयोग्यता, फूट, स्वार्थ-परता एवं नैतिक पतनके कारण उसका कहा माननेपर विवश हुए।

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट

बंबरेव इतिहासकारों और राजनीतिज्ञोंने अपने इस कांति पौरुष  
 इस कुनीतिमें बड़ी प्रशंसा की है, किन्तु भारतीय समाजों और समाचार  
 इन उन्मत्तोंका क्या गुना प्रभाव पड़ा। जब कहीं विवेचिकोंके क प्रयोग  
 राज्योंके आत्मन्योक्त बचवा आन्तरिक शोहीका भावः कोई मन व पद  
 कत-वे निकम्मे बचबोर आकाशी और विजयही हो गये। कबका कल-  
 सम्मान की काया पता और राजनीतिक नीकन निबल्लत ही गया। उनके  
 आत्मन-बचककी जोरों नी वे विद्वत् हो गये। बह्मन समाचार और  
 समाचार बहने कने और कथमें इन समाचारों और कुनीतकी दुर्ग  
 केकर कनी-वे विवे पाहा कत उनके बंबरेही उनके विवे केकेस  
 कथ बहना बंबरेहीके हाथने का गया। काकत कतों कादि समाचारोंने  
 नी इस उन्मत्त प्रकटी कने कथमें काकीकला की है और कहा है कि इसके  
 हाथ काउत्तरे बरेव कुनीका परिपटीन और दुर्बल ही गये। उनके ही  
 नाई वेकेइकीने नी अपने उनके बचकन निबल्लत करकेकर गुना  
 हुआ कत, तभीर उनके कतपविबल्लत के अपनेका कथ कथकर कत  
 उनके कत करके कने बंबरेही उनके विवे विवे। सुपटी मराठीने  
 कत नी कही विवे गया और कनीकनी कनीकीके काव नी बचक-केका ही  
 बल्लत विवे गया। इन बरेहीकी काव-कावकी केकाव केकर कथन कर  
 विवे गया। कने केके बंबरेही आत्मन स्थिति कर विवे गया नी  
 काव-केका ही आत्मनने पले केका काकनी केका काविक निबल्लत और  
 समाचारपुर्ब क। वेके ही कथकत और हीविबल्लत केके ही इन नीविबल्लत  
 आरम्भ कर गुने वे किन्तु कत वेकेइकीने कने कत पविबल्लत बल्लत कथ  
 केका कत केकर काताने बंबरेहीके कुनीकी कुनीकनीके कने कथ कथ  
 विबल्लत बना विवे और काव ही केके वेके कथ राजनीतिक कतकी नी  
 विबल्लत पुरी विवे। वेकेइकीकी इन काव कत नीविबल्लत कतकी कनी  
 कत नीविबल्लत काकनीके नी काव—

५. कावकाकनीकी गुन-कनीकत-कथकत समाचार केका गया किन्तु

कुछ मास पदचातु ही उसको मृत्यु हो गयी । उसके स्थानमें—

६ सर जार्ज बार्लो ( १८०५-०७ ई० ) नियुक्त हुआ । उसने भी हस्तक्षेप न करनेकी नीतिका पूर्णताके साथ पालन किया । वेल्शलीकी नीतिके परिणामों और अंगरेजोंकी गूढ़ दुरभिसन्धिकी बहुत-से भागतीय अनुभव करने लगे थे किन्तु विवदा थे । तथापि १८०६ ई० में वेलोरमें अंगरेजी सेनाके भारतीय सैनिकोंने भीषण विद्रोह कर दिया जिसका कठिनार्द्धसे दमन हुआ । साथ ही देश-भरमें उपद्रव खड़ा हो गया, झुण्डने झुण्ड डकू सर्वत्र घूमने फिरते थे और निराक लूट-मार करते थे । बुन्देलखण्डमें तो पूर्ण अराजकता फैल गयी, अनेक छोटे-छोटे सगदार परस्पर लड़ने-झगड़ने लगे । उधर पंजाबमें गणगीतसिंहका स्वतन्त्र सिक्ख राज्य उत्तरोत्तर शक्तिशाली होता जा रहा था । यूरोपमें नैपालियन बोनापार्ट अपनी शक्तिके शिखरपर पहुँच गया था । अंगरेजोंका वही सबसे अधिक बलवान् एवं महान् शत्रु था जिसके कारण उनकी बड़ी भयप्रद स्थिति थी ।

७ लार्ड मिण्टो ( १८०७-१३ ई० ) के गवर्नर-जनरलका पद संभालनेके समय उपरोक्त समस्याएँ उसके सम्मुख थीं । अतः उसने ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और पंजाबके नरेशोंके पास दून भेजकर उनसे मैत्री सन्धियाँ कर लीं और उन्हें फ्रांसीसियोंके विरुद्ध अंगरेजोंका मित्र बना लिया । सिन्धके अमीरोंके साथ भी इसी प्रकारकी संधि कर ली गयी । उसने बुन्देलखण्ड आदिके सगदारोंके पारस्परिक झगड़ोंका निबटारा किया और डाकूओंका भी कुछ दमन किया । मिण्टोको यह गर्व था कि भारतीय शक्तियोंके विरुद्ध शस्त्र उठाये बिना ही उसने सारी अराजकताको दबा दिया ।

८ लार्ड हैस्टिंग्स ( १८१३-२३ ई० ) के प्रथम वर्षमें ही कम्पनीका नया आशा पत्र अगले बीस वर्षोंके लिए जारी हुआ जिसके द्वारा भारतीय व्यापारपर उसका एकाधिकार समाप्त कर दिया गया । १८१३ ई० के इस आज्ञापत्र-द्वारा ही प्रथम बार अंगरेज कम्पनी सरकारने तीस यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी छूट

ब्रिटेन इतिहासकारों और राजनीतिज्ञोंने अपने इस दावि कोभी  
 इस कुनीतिकी बड़ी प्रशंसा की है किन्तु भारतीय राजाओं और नरामौर  
 इन बलिर्वाला बड़ा बुरा प्रभाव गया। अब उन्हें रिपेपिब्लिके का बरौती  
 राज्योंके आत्मशोका मरणा आन्तरिक झड़ोका ज्ञाना कीई मय न था  
 मना वे निजमें कमजोर आत्मही और निर्याही ही बने। इनका आत्म-  
 शम्मान भी जाता रहा और राजनीतिक नीकम निरालम ही गया। राजके  
 आत्म-नरालकी ओरसे भी वे निरुक्त ही बने। बहुरम्य बनावार और  
 बनावार बढ़ने लगे और अन्तमें इन आत्मकारों और पुण्यकारों कुर्मी  
 देकर कर्मोंके जिसे पादा फल राजकी ब्रिटेनही राजमें निराल जैसा  
 बहुरम्य राजना ब्रिटेनहीके द्वाराये जा गया। दावद करती बादि राजकारनीमें  
 भी इस कर्मि प्रशंसी करे कर्मोंमें आनीकता की है और कहा है कि इनके  
 हाथ बाण्डन बरौत नृपत्या परिवाहीन और दुर्बल हो गये। इनमें ही  
 कहीं ब्रिटेनहीने भी कर्मों राजकाय बनावार निराल करकेनर दुप  
 हुआ था, तभीर राजकी उत्तराधिकारके कर्मिज्य कम कमकर वह  
 राजकाय अन्त करके इसे ब्रिटेनही राजमें निराल किया। नृपती बरौतीमें  
 हाथ भी गयी निराल लता और कमजोरकी लताहीके हाथ भी बनावार-ब्रिटेन ही  
 बरौतन निराल गया। इन बरौतीकी बाक-बाककी ब्रिटेन देकर कमन कर  
 निराल गया। इनके राजकार ब्रिटेनही आत्मन ल्यापित कर निराल गया को  
 ज्ञानः करैय ही आत्ममें नृपति देयी आत्मकी बरौता अधिक निरुक्त और  
 आत्मकारदुर्बल था। ब्रिटेन ही कमजोर और ब्रिटेनके बहुरम्य ही इन नीतिक  
 आत्म कर नृपति वे निराल कम ब्रिटेनहीने करे एक आत्मिक आत्मक एवं  
 ब्रिटेन कम देकर बाण्डन ब्रिटेनहीके आत्मकी अनुमालनीय कर्मों बहुरम्य एवं  
 किन्तु बनावार निराल और बाक ही ब्रिटेनके ब्रिटेन एवं राजनीतिक नरालकी भी  
 निरालनर बहुरम्य निराल ब्रिटेनहीकी इन तीव्र उत्तर नीतिके बरौतन कर्मों  
 बरौत नीतिके आत्मशोका की आत्म—

३. आत्मशोकाकी कुल कर्मनर-नराल बनावार जैसा गया किन्तु

थी, युद्ध छेड़ दिया। महाने इस प्रथम युद्ध (१८२४-२६ ई०) के फल-स्वरूप महाराजा राजा पराजित हुआ और सहायक संधिमें बँधा। भारी रकम और आसाम प्रांत अंगरेजोंमें हाथ आये। मनीपुरका राज्य भी उनकी अधीनतामें रहा। उनकी पूर्वी सीमा भी अब सुरक्षित हो गयी। १८२६ ई० में भारतपुरमें दुर्जनसाल विद्रोही हुआ जिसकी देखा-देखी मालवा, बुन्देलखण्ड एवं मराठा राज्योंमें विद्रोहके चिह्न दीप्त पड़ने लगे। अंगरेजोंने दुर्जनसालको कुचल दिया, भारतपुरके किल्लेपर अधिकार कर लिया और खजानेको जी भरकर लूटा, किन्तु भारतपुर राज्यको कायम रखा।

१० सर विलियम बेंटिक (१८२८-३५ ई०) ने शासन-सुधार और शान्ति-कार्योंकी ओर अधिक ध्यान दिया। इसमें समयमें सर्व-प्रथम अंगरेजोंने अपने एक प्रतिष्ठित अधिकारी टामस मनरोके मुखसे यह कहलाया कि ब्रिटिश सरकार एक संरक्षकके रूपमें भारतको अपने अधीन रखेगी और उसका ध्येय भारतीयोंको अपने देशका शासन करनेके योग्य बनाना है। यहीसे अंगरेजोंने विश्वमें अपना यह दम्भ प्रचारित करना शुरू किया कि भारत-जैसे पिछड़े, अशक्त, असहित और असभ्य देशोंका संरक्षण करना तथा उन्हें उन्नत और सभ्य बनाकर अपने पैरोपर लड़ा कर देना इस गोरी जातिका स्वच्छा एवं परोपकार वृत्तिमें ग्रहण किया हुआ भार और उत्तरदायित्व है। अंगरेजोंका यह दम्भपूर्ण ढोंग वर्तमान पर्यन्त चलता रहा है। अस्तु बेंटिकने घोषित किया कि प्रत्येक भारतीय जाति, धर्म या रंगके किमी भेद-भाव बिना किसी भी सरकारकी पदपर नियुक्त किया जा सकता है। उसने प्रीजी सर्वे कम करके तथा शासन सम्बन्धी अन्य आर्थिक सुधारों-द्वारा सरकारकी आय और वचत बढ़ायी, पश्चिमोत्तर प्रान्त-का यन्दाबस्त पूरा कराया और इलाहाबादमें बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू स्थापित किया, अदालतोंमें सुधार किये तथा उनकी भाषा फ़ारसीके स्थानमें सर्व-कर दी। सतीकी प्रथा, नरबलि, शिशुहत्या, स्त्रियोंका व्यापार आदि



[illegible]

३. सार्ई परमहर्षी ( १८१४-१८६६ ) के ब्रह्मसूत्रे पत्रांचे सान  
प्रियने आचार्यकी निवाय वरके नुर्ती बंवाभार आचार्य आरंभीची वीवारी की

थी, युद्ध छेड़ दिया। ब्रह्मायें इस प्रथम युद्ध (१८२४-२६ ई०) के फल-स्वरूप ब्रह्मायें राजा पराजित हुआ और सहायक सन्धिमें बंधा। भारी रकम और आसाम प्रांत अंगरेजोंके हाथ आये। मनीपुरका राज्य भी उनकी अधीनतामें रहा। उनकी पूर्वी सीमा भी अब सुरक्षित हो गयी। १८२६ ई० में भरतपुरमें दुर्जनमाल विद्रोही हुआ जिसकी देखा-देखी मालवा, बुन्देलखण्ड एवं मराठा राज्योंमें विद्रोह चिल्ला दीख पड़ने लगे। अंगरेजोंने दुर्जनमालको कुचल दिया, भरतपुरके किलेपर अधिकार कर लिया और खजानेको जी भरकर लूटा, किन्तु भरतपुर राज्यको कायम रखा।

१० सर विलियम वेण्टिक (१८२८-३५ ई०) ने शासन-सुधार और शान्ति-कार्योंकी ओर अधिक ध्यान दिया। इसके समयमें सर्व-प्रथम अंगरेजोंने अपने एक प्रतिष्ठित अधिकारी टामस मनरोके मुखमें यह कहलाया कि ब्रिटिश सरकार एक सरसकके रूपमें भारतको अपने अधीन रखेगी और उसका ध्येय भारतीयोंको अपने देशका शासन करनेके योग्य बनाना है। यहीसे अंगरेजोंने विश्वमें अपना यह दम्भ प्रचारित करना शुरू किया कि भारत-जैस पछड़े, अशक्त, अरक्षित और असम्प देशोंका संरक्षण करना तथा उन्हें उन्नत और सम्य बनाने के अपने पैरोपर खड़ा कर देना इस गौरी जातिका म्वेच्छा एवं परोपकार वृत्तिसे ग्रहण किया हुआ भार और उत्तरदायित्व है। अंगरेजोंका यह दम्भपूर्ण ढांग वर्तमान पण्यत चलता रहा है। अस्तु वेण्टिकने घोषित किया कि प्रत्येक भारतीय जाति, धर्म या रंगके किसी भेद-भाय बिना किसी भा सरकारी पदपर नियुक्त किया जा सकता है। उसने फौजी खर्च कम करके तथा शासन सम्बन्धी अन्य आर्थिक सुधारों-द्वारा सरकारकी आय और वचत बढ़ायी, पश्चिमोत्तर प्रान्त-का बन्दोबस्त पूरा कराया और इलाहाबादमें बोर्ड ऑफ रेवेन्यू स्थापित किया, अदालतोंमें सुधार किये तथा उनकी भापा फारसीके स्थानमें उर्दू कर दी। सतीकी प्रथा, नरबलि, शिशुहत्या, स्त्रियोंका व्यापार आदि

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी लूट

बांग्लादेश मुस्लिमों को भी बालू-बांध बन्दगीय करवाया था। मुस्लिमों की प्रथा भी इस की समी। मुस्लिमों को छोड़कर बंगाल प्रान्त का कानून का विषय भारत सरकार ने पूर्व मार्ग परीक्षा में। वेबर लीज-इस कानून का छोड़कर विचार किया। मुस्लिम बांग्लादेश और विचारों विचारों के लिए १८९६ ई. में और १८९८ ई. में कानून के दो अधिनियमों की शुरू की। वे लीज-इस प्रान्त में। जब सरकार ने भी बांग्लादेश की विचारों के लिए करण किया। किन्तु सरकार ने भी कि बांग्लादेश प्रान्त बांग्लादेश और बांग्लादेश और विचारों एवं बांग्लादेश पूर्व प्रान्त का प्रान्त के बांग्लादेशों की बांग्लादेशों विचारों बांग्लादेश प्रान्त का और सरकार का कानून के बांग्लादेश विचारों के लिए है लीज-इस।

[illegible]

वृद्धि । इस पदपर मैकालेकी नियुक्ति हुई । साथ ही पार्लियामेण्टने यह घोषणा भी की कि भारतका कोई निवासी अथवा ब्रिटिश सम्राट्की कोई प्रजा अपने धर्म, जन्म भूमि, वंश या रंगके कारण किसी सरकारी पद या नौकरीमें बचित नहीं की जायेगा ।

११ सर चार्ल्स मेटर्कोफ़ ( १८३५-३६ ई० ) ने प्रेस-एक्ट-द्वारा समाचार पत्रोंको स्वतन्त्रता प्रदान की ।

१२ लार्ड ऑकलैण्ड ( १८३६-४२ ई० ) के समयमें प्रथम अफ़्ग़ान युद्ध हुआ । इस युद्धका उद्देश्य रणजीतसिंहको सहायतासे काबुलके स्वाधीन शासक दोस्तमुहम्मदको, जिसपर अंगरेजोंको अपना विरोधी होनेका सन्देह था, पदच्युत करके शाहशुजाको अफ़्ग़ानिस्तानका अमीर बनाना था । अंगरेजी सेनाने सिन्धके मार्गसे अफ़्ग़ानिस्तानमें १८३९ ई० में प्रवेश किया । इस युद्धमें अंगरेज बुरी तरह पराजित हुए । १८४२ ई० में जब पराजित अंगरेजी सेना सिन्ध करके वापस लौट रही थी तो अफ़्ग़ानोंने उसे काट डाला और १६००० सैनिकोंमें से केवल एक उस दुःखान्त घटनाका बचन करनेके लिए जीवित बचकर आ पाया । ऑकलैण्डको बड़ी निन्दा हुई और वह वापस इंग्लैण्ड बुला लिया गया ।

१३ लार्ड एडिनबरा ( १८४२-४४ ई० ) ने अफ़्ग़ान युद्धको समाप्त कर दिया । उसने पिछली हारका कुछ प्रतीकार करके वाहवाही लूटी । दोस्तमुहम्मद ने काबुलका बादशाह फिर बन बैठा । ऑकलैण्डने सिन्धके अमीरोंके साथ सन्धि करके उन्हें रेजाडेण्ट रखनेपर विवश किया था और उनपर वार्षिक कर भी लाद दिया था । १८४३ ई० में अमीरोंपर कुछ झूठे दोषारोपण करके युद्ध छेड़ दिया गया और मियानीके युद्धमें उन्हें पराजित करके समस्त सिन्ध प्रान्त अंगरेजों राज्यमें मिला लिया गया । इस अन्यायपूर्ण कार्यकी स्वयं इंग्लैण्डकी पार्लियामेण्टने निन्दा की किन्तु उसे उलटा नहीं क्योंकि उससे अंगरेजोंको भारी व्यापारिक और राजनैतिक लाभ जो हुआ था । ग्वालियरमें उत्तराधिकारका प्रश्न उठा,

यूरोपवासियों-द्वारा भारतकी, लूट



१८५२ ई० में अंगरेज व्यापारियोंके हितोंकी रक्षा करनेके बहाने ब्रह्माके साथ युद्ध छेड़ा गया और राजाको पराजित करके तथा सहायक सन्धिमें बाँधकर सम्पूर्ण दक्षिणी ब्रह्माको अंगरेजी राज्यमें मिला लिया गया। अब बंगालकी खाड़ीका सम्पूर्ण समुद्र तट, कुमारो अन्तरीपसे मलाया प्रायद्वीप पर्यन्त अंगरेजोंके अधिकारमें था।

इलहोजी एक कट्टर साम्राज्यवादी था, निर्बल देशी राज्योंके साथ उसकी कोई सहानुभूति नहीं थी। वह उनके अस्तित्वको बनाये रखनेका विरोधी था। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि ब्रिटिश शासन इस देशकी जनताके लिए परम लाभदायक है, चाहे वे उसे पसन्द करें या न करें। अतः उसने देशी राज्योंका अन्त करके उन्हें अंगरेजी राज्यमें मिलानेकी एक नयी योजना बनायी जिसके अनुसार किसी राजाकी औरस पुत्रके अभावमें मृत्यु होनेपर उसका राज्य समाप्त कर दिया जाता था। इस समय अंगरेजोंके आधिपत्यमें अवस्थित देशी राज्योंको उसने तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया। प्रथम वे नेपाल आदि स्वतन्त्र राज्य थे जिनमें भारतकी अंगरेज सरकार राजाकी मृत्युपर उपयुक्त उत्तराधिकारीको गद्दीपर बैठाती थी, दूसरे वे राजपूत मराठा आदि राज्य थे जिन्होंने मुगल सम्राट् या पेशवाके स्यानमें अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। और तीसरे वे राज्य थे जिन्हें अंगरेजोंने ही बनाया या विजय किया था। इस तीसरी श्रेणीके राजाओंको तो उसने दत्तकपुत्र लेनेके अधिकारसे भी वंचित कर दिया। अब भीतर बाहर किसीके भी विरोधकी कुछ परवा न करके उसने जितना बना इन राज्योंका अन्त करना शुरू किया। सबसेप्रथम नागपुरके भोंसला राज्यका अन्त और उसकी लूट हुई। १८४८ ई० में सतारा राज्यका अन्त हुआ, तदनन्तर उड़ीसाके सम्मलपुर, बाघट, उदयपुर आदि राज्याका अन्त किया गया। १८५३ ई० में झाँसीकी रानीके दत्तकपुत्रको अमान्य किया। पेशवा बाजीराव, द्वितीयकी मृत्युपर उसके दत्तकपुत्र नानाको भी अमान्य किया और उसकी पेन्शन बन्द कर

ही। फर्स्टिङ और तंजीरके सम्बन्धन करीबोंकी ही समझिना ही ठीक  
है। १८५६ ई. के पुष्याहनका बीच कमाकर अथवाही महादीना ही  
अन्त कर दिया और उस आन्तकी अंदरेही सम्बन्धे दिया गया। वे  
तब कार्य सम्पन्न करीर अनुचित और सम्मानपूर्ण थे। दूसरे की कड़ी  
अन्विष्टीमें दिने कसे वचन अपने वचनोंको ही अंदरेहीके सम्बन्ध ही  
दिया। इस कार्यके सम्पन्न होदमें अथवा हीर एवं अन्तरीय हीर गया।

१८५३ ई. में कम्पनीकी सेवा वीरभद्रराय कल्याणन विराम मिश्रों द्वारा कनये आचार करकेका अधिकार मिलानुसार ही कील किया गया और कम्पनी कायद-अनुसन्धानों द्वारा बहुत-बहुत परिवर्तन तथा अधिक मिलान कर दिया गया । बम्बईकीन कनये केके आन्तरिक मामलों में भी बहुत-से सुधार मिले । सरकारकी वैयक्तिक वसुली मिलकी और कोरपोरेटों की वसुली बम्बई की और कार्य-निर्वाहका कामकाशीके साथ प्रत्यक्ष किया । इसके अन्तर्गत सरकारकी वार्षिक आय १८५५ कायद बम्बई १८५३ कायद ही रही । अन्तर्गत कामोंके लिए कम्पनीने बहुत-से नये कीन तथा भी कभीने बम्बई और अन्तर्गत कामोंके लिए विचार की स्थापित किया । कम्पनी १८५३ ई. में बहुत-बहुत मामलों में राज-बन्धु की तथा तार कायद और इसके टिकटोंकी व्यवस्था की । हर पार्सलबुकी कम्पनीने आधुनिक वैद्य विज्ञानकी नींव रखी गयी और कई वैद्यकेने भारतीय दवाविज्ञान ज्ञाता ।

१६. कार्टे पैरिय ( १८१५-५८ ई ) के समय में १८१७ ई में बनकट्टा ब्राह्मण और अन्धोंने एक-एक शिक्षाविद्यालयों की स्थापना हुई । जिससे इसी वर्ष भारतमें यह प्रथमक शिक्षाप्रणाली प्रचलित हुआ जिसे लॉर्डरॉ-ने स्थापना प्रोत्साहना साथ दिया, कलकत्तामें जो शहर या लॉन्ड १४ के लीके नामसे प्रसिद्ध है और जिसे लॉन्ड नामुनिक केनाक स्थापना कलकत्ते नामसे पुकारने लगे हैं । अन्धोंकीके लक्षणों को पहचानने लूँच लगे लॉर्डरॉकी वरम ब्राह्मणों कीलिसे यह जारी प्रतिक्रिया थी । यह एक

ऐसा महान् विद्रोह था जिसमें अंगरेजोंके तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रान्त, अवध, बिहार, बुन्देलखण्ड और मध्यभारतकी जनता, अंगरेजों सेनाकी विभिन्न छावनियोंके भारतीय सैनिक, अनेक देशी राजे, नवाब, जमींदार, तालुकेदार आदि सम्मिलित थे। अंगरेजोंको देशसे निकाल बाहर करनेके लिए एक बार तो हिन्दू और मुसलमान भी मिलकर एक हो गये थे। यूरोपमें उस समय क्रीमियाका युद्ध छिडा था और इंग्लैण्डकी शक्ति उसमें लगी हुई थी। भारतके जो अनगिनत देशी राजे नवाब खुले रूपसे इस विद्राहमें सम्मिलित नहीं हो हुए थे उनमें-से भी अनेकोंको विद्रोहियोंके प्रति सहानुभूति थी।

मुसलमानोंको उत्तेजित करनेके लिए अवधके साथ किये गये अन्याय-का तथा दिल्लीके बादशाहको उसका साम्राज्याधिकार वापस दिलानेका नारा था और हिन्दुओंको उत्तेजित करनेके लिए पेशवाके दत्तकपुत्र धुषुपन्त नानाक पेशवा साम्राज्यकी स्थापनाका नारा था। हिन्दू मुसलमान जनसाधारणमें अंगरेजों और उनके शासन-द्वारा लोगोंके धर्म-कर्मको नष्ट किये जानेका प्रचार था। रेल, तार, डाक, अस्पताल, स्कूल आदिकी स्थापना तथा सत्ता आदिकी प्रथाओंकी बन्दी उदाहरणमें प्रस्तुत किये जाते थे। सैनिकोंमें नयी क्लिस्मकी बन्दूकें और उनकी मुंहसे खोली जानेवाली कार-तूसोंमें धर्म भ्रष्ट होनेकी बात, गोरे सैनिकोंका प्रभुत्व एव अधिकाराधिक्य आदि उन्हें भड़कानेके लिए पर्याप्त थे। छावनियोंमें रक्त कमल और ग्रामोंमें चपातियोंक वितरण-द्वारा विद्रोही आन्दोलनका प्रचार किया गया।

रविवार १० मई १८५७ ई० को मेरठकी अंगरेज सैनिक छावनियोंमें इस विद्रोहका प्रथम विस्फोट हुआ और दावानलकी नाइ यह आग शीघ्र ही एक जिलेसे दूसरे जिलेमें द्रुतवेगसे फैलने लगी। मेरठ, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, झांसी, रुहेलखण्ड, बुन्देलखण्ड, बिहार आदि अनेक स्थानोंमें जेलोंको तोड़ा गया और सेनाओंके गोरे अधिकारियोंका ही नहीं जहाँ जिस अंगरेजको देखा उसका सफाया कर दिया गया। नाना साहिब, तात्याटोपे,



जाँचीकी राखी लखीवाई बिहारके कबीरार पुँवपतिहू बीकरी कजवरबन्ध,  
 बैरम हुजूरबन्धन बाबसाह बड़ापुगघाट बादि विविध बनेछोंमें बिजोहिरी-  
 के बगदा ये ।

अबैक बगोंके बेरे काले बने अबैक स्वाभोंमें लंबछित बिजोही ठीक  
 बगोंके बाब अँबरेही केनाके अबैक बुझ हुए । एक बगोंके बाधिक एक बैकरी  
 बगोंकर बरछाए बाब-बाब लुट-लुट बागबन्धा बीर अधासिका बीर  
 बसा बग अँबरेही केनाके अँबरेह का डिक्क बीरली बादि बाबरीब  
 बैमिक बीर बग बिजोहिरीके डिक्क एवं बुझकमान बिपट्टी कबीने बिजोह  
 बिजोह कमानके बब बीर बाबोना बी घरघर बिगल बिबा । कलकः  
 अँबरेह बाबसाहकी डिक्क हुई बीर बिजोही बलक बुरछाये बाब बुझ  
 काले बने बाब ही कलकः कबीक लखिदीकी लखारके बाब कल  
 बिबा बग का बैकरी कलकः बगोही है बी बगी । कलके बाबे बग बने  
 बीर हुजूरों बाब बुझ काले बने । एक-एक अँबरेहकी बलक बलक  
 बीली बीली-बीली बाबोनाके रकले बी पुग व हुजा ।

इब बार बी बिजोही कलकःकी बगार बुझ, कलकः एवं लखी  
 बगो कलकः केनाकोंमें बगलक बाबल कल बिजोहका बाब कलकः  
 कलकः बुझों बीर लुट-लुट कलकः कलकः इब बगीर बलककी  
 डिक्ककाके बाब हुए । बैरम बाबोना एवं बैरमकाका बाब कलकः  
 बलक ही बगी हुजा बा । बिजोहमें बाब बैरमके राखी बलक बगीर  
 बादि बगी बीर ये डिक्क अँबरेहोंके बाब लखिबल बलक बी बीर  
 डिक्कके बलके कलके बाब बाबसाह, बाब बा बलके बकिर कर बिबा  
 बा । इब बीकरीकी पुग बाबिके डिक्क कलके-कलके बिजो स्वाभके बाब  
 बै कल बने बै अँबरेहोंकी बलकके बकिरिबल कलके बलक बाब बिजो  
 बलके बी बलक, बीरि बलक बा बलक बैक बगी बा । हुजरी बीर  
 अँबरेह बलक बकिरकाकी बै, बगी बलकई बाबानी बीर बीरबने  
 डिक्कके बी बगोंमें कलके व बुझी बाबल करके बलक बाबलक बलक

पूर्ण अधिकार जमा पाया था और उसके फलस्वरूप अनुमानातीत विविध लाभ उठाया था। वह इस मोनेकी चिड़ियाको सहज ही अपने हाथसे निकल जाने न दे सकते थे। अधिकांश भारतीय नरेशोंने विद्रोहमें भाग नहीं लिया वरन् वे अंगरेजोंके ही महायक रहे। बंगाल उड़ीसा, मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात, सिन्ध, पंजाब आदि प्रान्त विद्रोहके प्रभावसे प्रायः अछूते ही बचे रहे। अपने मित्र और गोरख नैनिकोंकी अंगरेजोंको पूर्ण स्वामिभक्ति प्राप्त थी और इन्हींकी सहायतासे उन्होंने उनके देश-भाइयोंका दमन किया।

इस प्रकार यह महान् क्रान्ति विफल हुई और फलस्वरूप अब सम्पूर्ण देशपर अंगरेजोंकी सत्ता और अधिक दृढ़ एवं स्थायी हो गयी। इंग्लैण्डकी सरकारने भारतका राज्य कम्पनीके हाथोंसे छीनकर अपने अधिकारमें ले लिया, और वह अब इंग्लैण्डकी महारानी विक्टोरियाका भारतीय साम्राज्य कहलाया। लार्ड कैनिंग अब कम्पनीकी ओरसे नियुक्त उसका गवर्नर-जनरल नामक कर्मचारी न रहकर इंग्लैण्डकी महारानीका प्रतिनिधि शासक, भारतका वायसराय कहलाया। इंग्लैण्डके मन्त्रिमण्डलका एक मन्त्री भारत-सचिव हुआ जो अपने लन्दनस्थ भारत-कार्यालयके द्वारा इंग्लैण्डकी सरकारके निर्देशनमें भारतका शासन-संचालन वायसराय आदि भारतमें नियुक्त अधिकारी वगैरे कराने लगा। इलाहाबादमें १ नवम्बर १८५८ ई० को दरबार करके वायसराय कैनिंगने उपरोक्त व्यवस्थाको कार्यान्वित किया और महारानी विक्टोरियाका घोषणापत्र पढ़कर सुनाया जिसमें यह विश्वास दिलाया गया था कि कम्पनी और देशी नरेशोंके बीच की गयी समस्त सन्धियों एवं प्रतिज्ञाओंका पालन किया जायेगा, देशी नरेशोंको गोद लेनेका अधिकार प्रदान किया जाता है, सरकारी नौकरियोंका द्वार सबके लिए खुला है, जाति वर्ण या धर्म उसमें बाधक न होंगे, जनताके घामिक मामलोंमें सरकार किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करेगी, और जिन लोगोंने विद्रोह-कालमें अंगरेजोंकी हत्या करने-जैसा महान् अपराध नहीं

## अध्याय १९

**प्रनरुपान प्रुप ( १८१८-१९४७ ई० )**

[illegible]

इस पद्धति और व्यवस्थाने फिर भी सर्वत्र दीव गई जिससे प्रमाण  
करके बाहरी एवं आन्तरिक बीच में विभेदनाय जाये बाह्य एवं  
आन्तरिक अन्तर था । इसीके कारण बाह्यके क्षेत्रोंकी सामान्यके अन्तर्निहित  
नूतन प्रेरणा अथवा प्रेरणा के क्षेत्र और क्षेत्रोंकी प्रेरणा, स्वामी और  
विशेषोंकी प्रेरणा अथवा प्रेरणा का प्रमाण भी बाह्यवर्त और उनके  
विशेषोंकी स्वाभाविक एवं अनन्यता का प्रमाण भी बाह्यवर्त और उनके  
विशेषोंकी स्वाभाविक एवं अनन्यता का प्रमाण भी बाह्यवर्त और उनके

किन्तु उनका यह दम्भ भी एक प्रकारसे ठीक ही था । उसके लिए भारत-वासी स्वयं ही जिम्मेदार थे, अपने स्वयंके दोषों एवं त्रुटियोंके कारण ही वे स्वयं गुलाम बने थे । देशका दुर्भाग्य भी था कि अनेक दीर्घकालीन ऐतिहासिक परिस्थितियोंने देशको उस कालमें वैसी विपन्न स्थितिमें ला डाला था और कोई ऐसा तेजस्वी प्रतिभाशाली वीर या वर्ग उस समय उत्पन्न न हुआ जो देशको उस अन्ध-कूपसे उबारता । किसीको ठगनेमें ठग-का जितना दोष है उतना स्वयं ठगे जानेवालेका भी है । तथापि इसमें शदेह नहीं कि भारतके इतिहासमें सबसे बड़े विदेशी लुटेरे अंगरेज ही सिद्ध हुए और उनके द्वारा भारतकी महान्, दीर्घकालीन एवं व्यवस्थित सभ्यता का सम्पूर्ण सम्य विषयके इतिहासमें दूसरा उदाहरण नहीं है ।

किया था उन्हें कहा किया गया ।

सन्तुष्टः भाग्यमें लेनेवाले ही जाने-झापा अहित होने  
बचवा बचोक्ता राखनेकी कलाके वास्तविक मामलोंमें सर्वथा हस्तक्षेप न  
करनेकी नीतिही ही बचना था । वे हिन्दू, पर्वत, तिब्बत मुसलमान चारों  
बापि कभी उपक्षिप्त क्योंकि हाथ अहित्वा एवं कसबायी रहे थे । ईसाई एवं  
इसलाम कला राज्यार्थ का मन कसबायी कला ही प्रोत्साहन दिया और  
कसबा अहित्वा प्रचार बाहु कराया । तथापि वर्षप्रचार कसबा कोई  
अनुष्ठान करने न था । राज्यनैतिक कलाचारों एवं वास्तविक योग्यता ही  
क्यों बचवाय न था अतः वास्तविक कलाचारों ही अनुष्ठान न हुए । वे य  
की कला ही थे कि यदि वे ऐसा करनेका प्रयत्न करेंगे तो उनके लक्ष राज्य-  
नैतिक एवं वास्तविक करनेवाली विधिमें बाध बाधा करनेकी सम्भावना है ।

इस प्रकार अपने एक देशमें वास्तविक कलाचार प्रवर्ध देनेकी नीति  
अपने मन दृष्टिपूर्वक अहित्वावादी मुसलमानों के हाथ-ही-हाथ कहीं न  
मदनेवाले कलाचारों एवं वास्तविक कलाचारों पर किया । वह वास्तविक  
कलाचारों के विचारों पर चर्चा किया और कहते हैं कि वे देश में एक अलग वि-  
कास नीतिवादी वास्तविक एवं वास्तविक अहित्वा कला कर दी । अपने ही  
बापों के कभी-कभी हिन्दू दुकानों के पास बचने लगे हिन्दू दुकानों एवं  
वैदेशिकों के कला वास्तविक अहित्वा कलाचारों पर कहते हैं कि वे अहित्वा अहित्वा-  
वादी बचवा इतना कलाचार अहित्वा कर लिया और कहते हैं कि  
अपने देश कापि और उभरती विप्लवी बचने वाली एवं अपने वास्तविक अनुष्ठान  
वास्तविक कला दिया । इन कार्यमें कहीं न कहीं और राज्यनैतिक एवं वैदेशिक  
कलाचारों पर नजर बाध कलाचार । वह कलाचारों अपने विचारों कि और वास्तविक  
प्रोत्साहित किया और फिर इन वास्तविक कलाचारों प्रचारित करने के कला  
है कि इन का प्रोत्साहन नीति है इन निष्ठान पवित्र अहित्वा एवं निष्ठान हरे  
काले वास्तविकों के कलाचार कला करते कला प्रोत्साहन कर रहे हैं और कभी  
मुसलमान मुसलमान मुसलमान एवं अनुष्ठान कलाचारों अहित्वा कला कर रहे हैं ।

किन्तु उनका यह दम्भ भी एक प्रकारसे ठीक ही था । उसके लिए भारत-वासी स्वयं ही जिम्मेदार थे, अपने स्वयंके दोषों एवं त्रुटियोंके कारण ही वे स्वयं गुलाम बन थे । देशका दुर्भाग्य भी था कि अनेक दीर्घकालीन ऐतिहासिक परिस्थितियोंने देशको उस कालमें वैसी विपन्न स्थितिमें ला दाला था और कोई ऐसा तेजस्वी प्रतिभाशाली वीर या धर्म उस समय उत्पन्न न हुआ जो देशको उस अध-कूपसे उबारता । किसीको ठगनेमें ठग-का जितना दोष है उतना स्वयं ठगे जानेवालेका भी है । तथापि इसमें सन्देह नहीं कि भारतके इतिहासमें सबसे बड़े विदेशी लुटेरे औरंगजेब ही सिद्ध हुए और उनके द्वारा भारतको महान्, दीर्घकालीन एवं व्ययस्थित छूटका सम्पूर्ण सम्पन्न विश्वके इतिहासमें दूसरा उदाहरण नहीं है ।



## अध्याय ६

इतिरूपान् पुष्य ( १८१८-१८४७ ई )

[illegible]

इस पद्धति और व्यवस्था में फिर भी अनेक दोष हैं। जिसका प्रभाव  
कारण पाठकों एवं छात्रों के बीच न सिद्ध है वरन् बढ़ते जाते हैं एवं  
छात्रों के अन्दर यह । छात्रों के कारण भाषा के अनेकों छात्रों ने अत्यन्त  
गुण ग्रहण करके अपने-अपने देश और अनेकों छात्रों के अन्तर्गत, अन्तर्गत और  
द्वितीय की तुलना करके तुलना करके अन्तर्गत और अपने  
विद्यार्थियों की स्वाभाविक रूप से अन्तर्गत । अन्तर्गत











जातिके हित-संरक्षणको पूर्ण प्राथमिकता थी। किन्तु एक बार भारतवर्षका प्रशासन एवं उन्नति अंगरेज जातिके अपने नीची भी प्रकारके उत्कृष्ट साधक था उसे उपलब्ध बनाया गया। यदि उससे भारतीयोंको उन्नति होती है तो यह और भी अच्छा। किन्तु जहाँ और जिस रूपमें भारतको इस उन्नतिसे स्वयं अंगरेजोंके अपने उत्कृष्टमें बाधा होनेको सम्भावना होती वहीं उसपर रोक और नियन्त्रण लगा दिये जाते। इंग्लैण्डके हितके सम्मुख भारतका हित सदैव गौण रहा।

प्रारम्भमें जो अंगरेज भारतमें आते रहे वे प्रायः छोटे घरोंके अशिक्षित, अवारा, लोभी, धूर्त एवं चरित्रहीन होते थे। व्यक्तिगत व्यापार और लूट लूट-द्वारा जल्दी ही धनी बनकर स्वदेश लौट जानेपर उनकी दृष्टि रहता थी। किन्तु १८वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें बंगाल और कर्नाटकमें राज्य-सत्ता हाथमें आनेपर तथा तदुत्थान द्रुतवेगसे भारतके विभिन्न भागोंमें अंगरेजों सत्ताके प्रसारके कारण उक्त वर्गके लोगोंका अनुपात धीरे-धीरे घटने लगा और अच्छे घरोंके सम्पन्न सुशिक्षित अंगरेज भी अब आने लगे तथा उनकी संख्या शनैः शनैः बढ़ने लगी। ईसाई पादरी भी बहुसंख्यामें आने लगे जिनका प्रधान उद्देश्य यद्यपि धर्मप्रचार और अधिकसे अधिक संख्यामें भारतीयोंको ईसाई बना डालनेका था किन्तु साथ ही उनमें-से अनेक सुशिक्षित, परोपकारी वृत्तिके तथा दयालु भी होते थे। १९वीं शताब्दीके पूर्वार्धमें बंगाल, मद्रास, बम्बई आदि जिन प्रान्तोंपर अंगरेजों सत्ताको स्थापित हुए चालीस पचास वर्ष बीत चुके थे और फरस्वरूप जहाँ अंगरेजोंने अपना प्रशासन बहुत कुछ व्यवस्थित कर लिया था वहाँ शान्ति स्थापित कर ली थी वहाँके भारतीय भी शासनके विभिन्न विभागोंमें कार्य करने लगे थे और अंगरेजोंके सम्पर्कसे पाश्चात्य आचार-विचारों और मर्मतासे परिचित हो गये थे। उनमें-से अनेक अंगरेजों विचारों और मर्मतासे परिचित हो गये थे। उनमें-से अनेक अंगरेजों भी सीख चुके थे और सीख रहे थे और अब वे जातीय सुधारकी अवसर होने लगे थे। बंगालके राजा राममोहनराय, महर्षि देवेन्द्रनाथ



हुआ, देशके अनेक प्रदेशोंका सर्वे हुआ तथा अनेक स्थानोंमें गजेटियरीका निर्माण हुआ और भारत तथा भारतीयताके अध्ययनकी प्रभूत प्रगति हुई । कर्नल टॉडका प्रसिद्ध राजस्थान, फर्नल मेकेंजीका लेख संग्रह तथा एलफिन्स्टन आदिके इतिहास ग्रन्थ लिखे गये । स्वयं अंगरेज अधिकारियोंका ही एक दल ऐसा था जो भारतीयोंकी शिक्षाका माध्यम संस्कृत आदि प्राच्य भाषाओंको बनानेके पक्षमें था । मैकालेके तीव्र विरोधके कारण ही उनकी बात न चली । उपरोक्त समस्त प्रयत्न व्यक्तिगत थे तथापि उन्होंने भारतीय साहित्य, संस्कृति और इतिहासके आधुनिक अध्ययनकी सुदृढ़ नींव जमा दी और इस प्रकार इस देशका सर्वमहान् उपकार किया । इन दर्जनों उदार मनीषी, विद्या-व्यसनी अंगरेज महानुभावोंने ही अपने कार्यों एवं कृतियोंके द्वारा भावी पीढ़ियोंके भारतीय विद्वानोंका तौ पथ प्रदर्शन किया हो इस देशके निवासियोंमें घर कर जानेवाले होनताके भावोंको धन-धन दूर होनेमें भी भारी सहायता दी ।

इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण देशको एक केन्द्रीय शासन-सूत्रमें बाँधकर, रेल, डाक, तार आदिकी व्यवस्था करके तथा सड़कों आदिका निर्माण, मार्गोंकी सुरक्षा और शान्तिकी स्थापना-द्वारा अंगरेजी शासनने देशमें एक-सूत्रता एवं एकजातीयताके भावको प्रोत्साहन दिया, जाति, वर्ग एवं प्रान्तीयताके भावोंको शिथिल किया, और 'देशके चाहे जिस कानमें रहते हो हम सब भारतवासी ही हैं' इस भावको उत्तरोत्तर पुष्ट किया । अंगरेजोंने ज्ञान-वृक्षकर भले ही इन प्रभूति प्रवृत्तियोंका पोषण न करना चाहा हो किन्तु उनके कार्योंसे इन परिणामोंका लक्ष्य या अलक्ष्य रूपमें स्वभावतः प्रकट होना अनिवार्य था ।

इस प्रकार अंगरेजोंने देशकी भोषण लूट एवं शोषणके तथा उसे पराधीनताकी वेढियोंमें जकड़ लेनेके दावजूद जाने या अनजाने इस देश और जातिके पुनरुत्थानके बीज भी बो दिये । १८५८ ई० के उपरान्त देशकी आन्तरिक शान्ति, उत्तम शासन व्यवस्था और शिक्षा-प्रसार तथा एक



इस नब्बे वर्षके ब्रिटिश शासनकी प्रधान विशेषताएँ वैदेशिक नीति, आन्तरिक शासनका वैधानिक विकास, देशकी धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति, राष्ट्रीयताका विकास और स्वातन्त्र्य संघर्ष हैं जिनमें उक्त शासनकी कतिपय सुदेन और कुदेन दोनों सम्मिलित हैं।

**वैदेशिक नीति**—इस कालमें भारतीय शासनकी वैदेशिक नीति ब्रिटिश साम्राज्यकी वैदेशिक नीतिका ही अंग थी। भारतीय साम्राज्यकी सुरक्षाके लिए उसके सीमान्त प्रदेशोंको निष्क्रिय करना तथा उनके उस पार स्थित पड़ोसी स्वतंत्र राज्योंको अपने प्रभावमें रखकर उन्हें 'घक्का सम्हाल' राज्य बना देना, तथा ब्रिटेनके शत्रुओंको कुचलनेमें अपनी पूरी शक्ति लगा देना ही भारतकी विदेशी नीति थी।

१८६३ ई० में लार्ड एलिंगन प्रथमने सीमान्तके पठानोंका दमन करनेका प्रयत्न किया और भूटान नरेशके साथ भी एक सन्धि की। १८६५ ई० में लॉरेन्सने उस सन्धिको अमान्य किया और भूटानियोंको पराजित करके अपना करद घनाया।

दोस्तमुहम्मदकी मृत्युके उपरान्त १८६३-६८ ई० में अफगानिस्तानमें उत्तराधिकारके प्रश्नपर गृह-युद्ध चलता रहा। इस प्रसंगमें वायसराय लॉरेन्सने 'वर्तमान राजाके प्रति मित्रभाव रखने और उसके राज्यके अन्न-फलहमें कतई हस्तक्षेप न करनेकी' नीति बरती। रूस मध्य-एशियामें अफगानिस्तानकी ओर बढ़ता आ रहा था और भारतके लिए एक खतरा था, किन्तु लॉरेन्सने युद्ध मोल लेना ठीक न समझा। उसके उत्तराधिकारी मेयोने भी इसी नीतिका अनुसरण किया। अफगानिस्तानका अमीर शेरअली १८६७ ई० में स्वयं भारत आकर अम्बालेमें वायसरायसे मिला और विविध प्रकारकी सहायताकी याचना की। वायसरायने उसका दबा शिष्टाचार और आवश्यकत की किन्तु सहायताका कोई स्पष्ट वचन नहीं दिया। फिर भी अमीर उसकी मित्रता, सौजन्य और शक्तिसे प्रभावित एवं सन्तुष्ट होकर लौट गया। रूसके साथ भी एक सन्धि की गयी जिसके अनुसार रूसी



सरकारने ब्रह्मसिंहासनकी स्थापनाकी बाबत एकलौका ब्रह्मसंन्यास दिया  
 किन्तु बगीरहे काय बोंबेजोंके विपक्ष भी किया-नाही पुरु कर दी। बगीर  
 ने समस्त नव-व्यवहार बाबतबाबतके काय देव दिया किन्तु वह फिर भी  
 चुन रहा। १८७३ ई. में कतिनीने बोंबेनगर अधिकार करके घोरकनीकी  
 बदनीय कर दिया। कनने बाबतबाबत बाबतबाबतके ब्रह्मसंन्यासकी बाबत  
 की किन्तु कनने ब्रह्मका विरक्तकार कर दिया। बिह्वर बगीरहे कतिनीने  
 ब्रह्मसंन्यास बाबत कर दी। कन काई सिंहासने जाते ही ब्रह्म-  
 सिंहासनके काय पुन ब्रह्म दिया। यह समय ब्रह्मसंन्यास कुर्छी-कनी पुन  
 बाबत ही कन का। बोंबेज कनके विरोधी थे। कनने ब्रह्मसिंहासन-  
 पर बाबतबाबत कर दिया। घोरकनी नष्टकित होकर कुर्छी काय कन  
 और १८७९ ई. में कनके पुन बाबतबाबतकी बगीर कनकर बाबत  
 सरकारने कने कनकी कनीकनी कन कर दिया किन्तु कने बोंबेज की-  
 नीकनी बाबतके ब्रह्मसंन्यासके कनीकनी विरक्तित करके बाबत देव दिया  
 कन। कन कनुर्रुमनकी ब्रह्मसिंहासनपर अधिकार कर दिया।  
 १८८६ ई. में बाबत सरकारने कनके काय कनि करके और कनी कन  
 विरोधी कनिने ब्रह्मसंन्यास व एकलौका ब्रह्मसंन्यास केकर बगीर बाबत कर दिया।  
 ब्रह्मसंन्यास कीर विरक्तितमें बोंबेजकी कनकनी सिंहास ही कनी कन  
 विरक्तितसिंहासन विरक्तित राज्यमें किया किया कन। इस प्रकार कन-एकिकनी  
 कनिनीकी बाबतबाबत कनके कन एक सिंहासने ब्रह्मसंन्यास हो कन।  
 फिर भी कनी कनकर ही ही ही और कन-एकिकनी बोंबेज-कनी  
 बोंबेज १८८८ के १९०७ ई. तक बाबत रहा। ब्रह्मसंन्यासके काय कनीकनी  
 के काय भी बाबत सरकारकी कनकनी कनकी रही। काई ब्रह्मसंन्यास  
 १९०८ ई. में कनने केका हुआकर कन ब्रह्मसंन्यासके बाबत बाबत एक  
 पुन कन कनकर कनी कनिने कनकित की। इसी कन कनुर्रुमनकी  
 भी कन ही कनी थी। कनका पुन इसीपुन्य बगीर हुआ, कनके काय  
 कनीय कनि कर भी कनी और वह बोंबेजोंका सिंहास कन रहा।

इसी बीचमें पूर्वकी दिशामें ब्रह्मा राज्यके द्वारसे भारतपर फ्रांसीसियोंके आक्रमणका भय बना हुआ था। ब्रह्माका राजा मिण्डोन ( १८५२-७८ ई० ) बड़ा चतुर था, उसने अंगरेजोंके साथ भी मित्रता बनाये रखी और फ्रांसके साथ भी सम्बन्ध रखा। किन्तु उसका युवक पुत्र और उत्तराधिकारी थोड़ा मूर्ख, अयोग्य और अनुभवहीन था। उसपर फ्रांसीसियोंके साथ मित्रताके करनेका दोष लगाकर भारत सरकारने युद्ध छेड़ दिया और उसके राज्यका अन्त करके उसे १८८६ ई० में अंगरेजी राज्यमें मिला लिया।

लार्ड कर्जनने १९०७ ई० में एक अंगरेज रूसी मन्त्रिके अनुसार ईरान देशको भी दो प्रभावक्षेत्रोंमें बाँटकर दक्षिणी ईरान और फारसको छाड़ोपर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। तिब्बत देशपर भी जो नाममात्रके लिए चीनके आधिपत्यमें था रूस और भारत-सरकार दोनों ही अपना प्रभाव स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे थे। इस सम्बन्धमें भी १९०७ ई० में अंगरेजों और रूसियोंमें यह तय हो गया कि वे दोनों ही चीनके जरिये तिब्बतसे सम्बन्ध रखेंगे और उसके किसी भी प्रदेशपर कभी भी अधिकार न करेंगे।

१९१० ई० में अफ़ग़ानिस्तानक अमीर हबीबुल्लाका वध कर दिया गया और उसका पुत्र अमानुल्ला अमीर बना। १९१९ ई० में उसने ब्रिटिश प्रदेशपर आक्रमण कर दिया और सीसरा अफ़ग़ान युद्ध छिड़ गया तथा शीघ्र ही समाप्त भी हो गया। अफ़ग़ानिस्तान अब सर्वथा स्वतन्त्र और अंगरेजोंके नियन्त्रणसे मुक्त राज्य हो गया। १९२९ ई० के उपरान्त होनेवाली उसकी राज्य क्रांतियाँ और गृह-युद्धोंमें भारत-सरकारने कोई हस्तक्षेप नहीं किया और पुनः शान्ति स्थापित होनेपर नादिरशाहको अमीर मान्य कर लिया।

इसी बीचमें १९१४-१८ ई० के प्रथम विश्वयुद्धमें भारत सरकारकी पूर्ण शक्ति अंगरेजोंकी ओरसे जर्मनीके विरुद्ध प्रयुक्त हुई। जनतासे युद्ध-

कन्हा एकदुहा किता कन्हा । भारतीय सैनिक आखीली संख्यायें बन्द,  
 ईनीपोटायिका बाहरि गुरुर बिदेसमें जाकर बीरतामूर्ख बनें । भारतमें  
 बल्लभर जेवरेख और चकके विष-पाण्डू बस आधुनिक मित्रो हूँ ।  
 मुझमें भारतके बल-बलकी भी बलि हुई और मुझे कतिपयत्वक  
 भारतमें भी आर्थिक संकट आये कहीं जेवरे भारतमें ही बल्लभ विष ।  
 इही कारण १९१९-४९ ई. के द्वितीय विश्वयुद्धमें भारतके बल-बल  
 बलके मुझे भी पड़ी अधिक फिदाई हुआ और इस बार भी बल्लभ  
 स्वयं अपनी बलि करके भारतमें जेवरेख और चकके विष-पाण्डूकी  
 मित्र-शक्तिमें बल्लभ बल्लभक विष हुआ ।

[illegible]

सत्यमेव जयते

वनरोंके अधीन प्रान्तोंमें विभाजित था। प्रत्येक प्रान्त कमिश्नरोंके अधीन कमिश्नरियोंमें, प्रत्येक कमिश्नरी कलक्टरोंके अधीन जिलोंमें, प्रत्येक जिला तहसीलदारोंके अधीन तहसीलोंमें, प्रत्येक तहसील परगनोंमें और परगने गाँवों या महालोंमें विभाजित थे। सेना, पुलिस, जेल, डाक-तार, शिक्षा, व्यापार, वित्त, पब्लिक वर्क्स आदि विभिन्न सरकारी विभाग प्रान्तीय एवं केन्द्रीय आधारोंपर संगठित हुए। अदालतोंमें वादो-प्रतिवादी या अभियुक्तोंको सहायताके लिए वकील मुख्तारोंकी प्रथा प्रचलित हुई। १८६१ ई० में इण्डिया कोन्सिल ऐक्ट पास हुआ जिसके अनुसार वाय-सरायकी सहायताके लिए एक कार्यकारिणी समिति तथा एक व्यवस्थापिका समिति बनायी गयी। कार्यकारिणीमें स्वयं वायसराय, जिसके अधिकारमें परराष्ट्रनीति भी थी, सेनाके शासनके लिए सेनापति, शान्ति-रक्षा तथा आन्तरिक शासन आदिके लिए गृहसदस्य, बैंक, करेन्सी, ऋण, व्यय, टैक्स आदिके लिए अर्थ-सदस्य, कानूनके लिए न्याय-सदस्य, धाणिज्य, चन्दरगाह, जहाज, रेल आदिके लिए व्यापार सदस्य, शिक्षा-स्वास्थ्य आदिके लिए शिक्षा-सदस्य, तथा उद्योग एवं श्रमके लिए एक अन्य सदस्य सम्मिलित थे। कानून बनानेके लिए ६ से १२ सदस्योंकी एक परामर्श-दात्री व्यवस्थापिका समिति बनी जिनमें आर्थोका गैर-सरकारी होना आवश्यक था। पटियाला और काशीके नरेश तथा खालियरके दीवान दिनकरराव इस समितिमें मनानीत किये गये। बम्बई, मद्रास और बंगाल प्रान्तोंकी कौन्सिलोंकी भी कानून बनानेका अधिकार मिला। व्यवस्थापिका-द्वारा बनाये गये अधिनियमोंपर वायसरायकी विटोका अधिकार था, छह मासके लिए वह स्वयं भी कोई आर्डिनेन्स जारी कर सकता था।

उपरोक्त आधारोंपर भारतके आन्तरिक शासनका विस्तार और वैधानिक विकास उत्तरोत्तर होता गया। १८७१ ई० में प्रथम बार लार्ड मेयोने भारतकी जन-संख्या गणना करानेकी योजना की किन्तु पूरी गणना १८८१ ई० में हुई। इसी वायसरायने १८७० ई० में म्युनिसिपल ऐक्टों-



सर अधिक सहयोग प्राप्त करते जानेकी है जिससे कि वे दाने-शमै, स्वायत्त-शामनका विकास करके ब्रिटिश साम्राज्यके एक अभिन्न अंगके रूपमें अपने देशमें भी उत्तरदायित्वपूर्ण शासन प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकें।"

फलम्बस्व माण्टेग्यु-चेम्सफोर्ट सुधार प्रस्तुत हुए जिनके आधारपर १९१९ ई० का गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट पास हुआ। इसके अनुसार भारत-सचिवकी इण्डिया कोमिशनमें भारतीय सदस्योंकी संख्या बढ़ायी गयी, वायसरायकी कार्यकारिणीमें भी सदस्य वृद्धि हुई, उसकी व्यवस्थापिका समितिकी कोन्सिल ऑफ स्टेट्स तथा लेजिस्लेटिव एम्ब्लो नामक दो सदनोंमें विभक्त कर दिया गया जिनकी सदस्य-संख्या क्रमशः ६० और १४४ नियत हुई। इनकी अधिकार-वृद्धि भी हुई और निर्वाचन-क्षेत्र विस्तृत हुआ। प्रांतोंमें द्वैध शासन स्थापित हुआ, सरक्षित विषयोंपर गवर्नर और उसकी कार्यकारिणीया पूर्ण अधिकार था और हस्तान्तरित विषयोंपर प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कोमिशनके जाता द्वारा नियुचित सदस्योंमेंसे नियुक्त किये जानेवाले मन्त्रियोंका। विभिन्न जातियोंके प्रतिनिधित्व, प्रत्यक्ष निर्वाचन और मताधिकार-विस्तारकी भी प्रश्रय दिया गया। म्युनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, टाउन एरिया कमेटो आदिके अधिकारोंमें भी वृद्धि हुई और इन संस्थाओंकी प्रान्तीय मन्त्रियोंके अधीन किया गया। नगरोंकी उन्नतिके लिए इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट स्थापित हुए। ग्राम-पंचायतोंके संगठनका सिलसिला १९०९ ई० के डीसन्ट्रेसाइजेशन कमोशन (विकेन्द्रीकरण आयोग) की सिफारिशोंसे ही शुरू हो गया था, अब १९२२ ई० से स्थानीय अधिनियमों-द्वारा उनका उत्तरप्रदेश आदिमें व्यवस्थित संगठन प्रारम्भ हुआ। सर जान साइमनने भारतका दौरा करने तथा विभिन्न दलोंके नेताओंके विचार जान लेनेके उपरान्त सन् १९३० ई० में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, सदनन्तर १९३०-३२ ई० में लन्दनमें तीन गालमेज काफ्रेन्स हुई जिनमें भारतीय नेताओंके साथ ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंने भाग-



भारतका प्रथम गवर्नर जनरल होकर रहा, तदनन्तर १९४८-५० ई० तक चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य भारतके गवर्नर-जनरल रहे, इस बीचमें ए देशो विशिष्ट विधान निर्मातृ-सभा सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र भारतका प्रजातन्त्रात्मक विधान निर्माण करती रही। आधुनिकतम आदर्शोंपर, देश विदेशोंके विधानोंका सम्यक् अध्ययन करके भारतीयोंने ही अपने देशके लिए यह संविधान स्वयं बनाया जो २६ जनवरी सन् १९५० ई० से कार्यान्वित हुआ। तबसे उक्त संविधानके अनुसार ही स्वयं भारतीय जन पूर्ण स्वतन्त्रताके साथ अपने देशका शासन कर रहे हैं, यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति-की एक प्रधान शर्तके अनुसार दशका एक बड़ा भाग पाकिस्तानके रूपमें उससे सर्वथा पूर्यक् फिर भी कर दिया गया।

**ब्रिटिश राजकी कुदेन**—अशत लगभग दो सौ वर्षके और पूर्णतः लगभग सौ वर्षके ब्रिटिशराजने भारतवर्षको अनेक भयकर कुदेन प्रदान कीं जिनके कुफल यह देश ब्रिटिशराजके आरम्भसे ही मोगने लगा, कुछको अवतक मोग रहा है और सम्भवतया आगे भी न जाने कबतक भागेगा। सबसे बड़ी कुदेन तो इस देशके इतिहासमें लग जानेवाला यह लज्जाजनक अमिट कलक है कि तीस करोड़से अधिक जन-संख्यावाले इस महान् प्राचीन देशको जो सम्यक्ता और संस्कृतिमें किसीसे पीछे नहीं था, जिसमें उस कालमें भी न राजाओं और न राजनीतिज्ञोंका अभाव था और न शूरवीर योद्धाओंका, हजारों मीलकी दूरीपर स्थित एक छोटे-से विजातीय विदेशने जिसका विस्तार, जन-संख्या, शक्ति और धन-वैभव भारतके एक राज्य या छोटे से प्रान्तसे अधिक नहीं था, अपने मुठ्ठा-भर निकृष्ट श्रेणोंके तथा व्यापारके उद्देश्यसे आनेवाले प्रतिनिधियोंके छल-कौशल द्वारा इतने सहज और सुगम रूपमें अधीन कर लिया। कुछ ही दशकोंके भीतर सम्पूर्ण देशपर, उसके समस्त प्राकृतिक सीमाओंके उस पार पर्यन्त, उनका भुत्त्व छा गया और फिर एक शताब्दीसे अधिक काल पर्यन्त सुदूर अल्बनियामें बंटे-बंटे ही वे अपने एक लाखसे भी कम प्रतिनिधियों द्वारा तीस-

रस्थान युग





अवसरोंपर इंग्लैण्डके राजा-रानी, राजकुमारों आदिको मूल्यवान् भेंटें, कई-कई बार प्रत्येक वायसराय और उनकी लेडीको दिये जानेवाले मूल्यवान् उपहार, रेजिडेंट, पोलिटिकल एजेण्ट आदि अन्य अंगरेज अधिकारियोंका दो जानेवाला घूम, प्रत्येक राजा-रईसके इंग्लैण्डकी सैरके लिए जाकर वहाँ अपने वैभवका प्रदर्शन करना एक रिवाज बना देना, प्रत्येक राजा नवाबके पीछे एक आध गोरी मेम लगा देना और इन निकम्मे आलसी राजा-नवाबों और रईस जमींदारोंको चरित्र-हीन एवं विलासी बना देना, छोटे छोटे जमींदारों और रईसोंमें रायबहादुर, खाँबहादुर, राजा, रावराजा, सर आदि अनेक उपाधियोंको प्राप्त करनेका चस्का और होड़ लगा देना जिनके लिए वे अंगरेज अधिकारियोंको घूम देनेमें विपुल द्रव्य व्यय कर डालते थे, इत्यादि अनेक उपाय काममें लाये जाते थे ।

टोमटाम, दिल्लीवा, फ्रैगन-गरस्तो, पश्चिमी सम्पत्तिका अविश्वेकपूर्ण अनुकरण और अंगरेजोंकी धिना हेयीगदेयताका विचार किये नक़ल करना भारतीय जनताके विभिन्न वर्गोंमें छूनकी बीमारीकी नाई फैलने लगे ।

देशके विदेशी व्यापारको अंगरेजोंने बहुत पहले, १८वीं शताब्दीमें ही, पूर्णतया अपने अधिकारमें ले लिया था, शनै शनै आन्तरिक व्यापारके महत्त्वपूर्ण अंगोंपर भी वे छा गये । अनेक बैंको, बीमा-कम्पनियों, विभिन्न एवं विविध व्यापार करनेवाली अंगरेज उद्गाष्ट स्टोक कम्पनियों या प्राइवेट फ़र्मोंका देशमें जाल फैल गया । स्थान-स्थानमें उनके आफ़िस, डिपो और एजेन्सियाँ खुल गयीं । स्थानीय खरीजके व्यापारको छोटी मोटी दूकानदारों ही भारतायोक हाथमें अधिकतर रह गयी । इसपर भी सट्टे बचनो, स्टोक एक्सचेंज आदि अनेक वैध जुआका चस्का भाग्यवासियोंको लगा दिया गया जिसके फलस्वरूप उनमें पढ़नेवाले अधिकांश भारतीय अन्ततः वरबाद ही होते रहे किन्तु सरकार तथा उनके प्रधान सचालक अंगरेज कम्पनियों या व्यक्तियोंको लाभ ही होता था । घुडदोड़,

कसटी धारि बन्ध जबैक इतारके सूत-बन्धन की बाण्डमें बँधने  
 दये । और ठाण्डा खु कि कानिऊत कमीनिमोरेके निर कोड़े-ने कानि  
 खेके बानेराके देखी खु ही बन्धीय बाराय बना दिवे दये और वे  
 महात्म्यकर सुखरभिऊत पाटी खु बैच कसुनी और कस कसुनै ।  
 देखके जबैक दिगिब एव दिगिब कधीय बन्ने और बन्धन की कस  
 सब १८वीं के १९वीं पाणीके आरम्भ तक कसलपूर्वक बह कर लि  
 दये वे । कसोय बनिबनी ईरके बानिब कसोय-बन्धीको आरम्भ कसलेकी  
 प्रवृत्ति और बुनिया बाण्डबानिबोकी बहान चीके हुई । इसके पूर्व  
 ही बीररीकोरे बाण्ड कस ही बहलपूर्वक एवं कुलबन्ध बन्धीर बन्ध  
 एकाधिकार लपटिऊ कर दिया था । कसाकसाय बड़ी कसल किउ  
 बाना था कि बाण्डमें कसोयमें बानेराकी इतरेक छोटी-बड़ी बानु कई  
 ईर्ष्याइये ही बाने । कस देखीमें बन्नेछकी बल्लुरं बेडार एवं बनिब  
 बाली ईनेयर की भारत बरवार-बारा कसर कसने के कसलीय  
 बाण्ड-कर, ठट-कर बाण्डके बाण्ड वे ईर्ष्याइये बनी बल्लुरोकी बनेक  
 कसबिब यैकी बन्नी थी । कही बीरि स्वयं बाण्डमें बनी बल्लुरोके कस  
 की बाली बाली की । स्वयं इस देखमें बनी बल्लुरं की इसी देखमें ईर्ष्याइये  
 बनी बल्लुरोकी बनेका कही बन्नी थी और बन्नी बन्नी की बनी देखी  
 थी । बन्नेके बनी छोटी-बड़ी बैकिब कसोयकी प्रिय बोन और बाण्ड-  
 की बगकिऊत कमी-बनी बल्लुरोके देखकी छी-बड़ी कसलछाणिमें एवं कस-  
 कसामोय कस कर दिया । और कस ईर्ष्याइये बाण्डकी प्रवृत्ति इस देखमें  
 की कुछ बनीकी बन्धबाणिमें कस बल्लुरोकी-के कुछके निबोनेके निर देखमें  
 ही बानिब कसोय कसे आरम्भ दिवे ही कसुं बनी कसिबामोय कसल  
 कसल बना । कस बाण्डक कस और बिबेयक बाण्ड कसुं ईर्ष्याइये ही  
 बिबुध कस करके बीरने बकुते वे । मिऊता बाण्डा बीररीकी कसल ईर्ष्याइये  
 के बाण्डके कसर कसनेमें कसल या कसके बाण्ड देखी कसल ईरके  
 बीरर ही देख बाण्ड एक स्थानके कसरी कसलर के बानेमें कस बना था ।

अंगरेजों के साथ स्वतन्त्र व्यापार की नीति बर्तती जाती थी तथा अंगरेज व्यापारियों और व्यवसायियों को सरकार सर्व-प्रकार की सुविधाएँ और प्रोत्साहन देती थी ।

अंगरेजों को यह स्पष्ट और निश्चित नीति थी कि भारत वर्ष इंग्लैण्ड की फ़ैक्टरियों को विपुल एवं श्रेष्ठ कच्चा माल प्रदान करनेवाली उत्पादन-भूमि और उनके पक्के सैयार माल को निरन्तर खपाते रहनेवाला सुगम एवं लाभदायक बाजार बना रहे और ऐसा ही होता भी रहा । अंगरेजों ने अपने शासनकाल में विश्व के अन्य सभी देशों को इस विशाल देश का उपरोक्त द्विविध लाभ उठाने से यथाशक्य वंचित रखा और स्वयं इस देश में भी देशी उद्योग धंधों को प्रोत्साहन न देकर बरन् उनमें बाधक बनकर उक्त द्विविध लाभ पर अपना ही एकाधिकार अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयत्न किया । फ़ैक्टरीयों भारत के बलपद इंग्लैण्ड अपने औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास के चरम दिखार पर पहुँच गया । इसी शताब्दी के प्रारम्भ में पाण्ड्य मदुरा के वीर विदाम्बरम् पिल्ले ने एक देशी जहाजी कम्पनी बनाने का प्रयत्न किया था जिसके कारण सरकार ने उस पर राजद्रोह का अपराध लगाकर उसे जेल में सजाया । ऐसे न जाने कितने उदाहरण मिलेंगे । जहाज, रेल और उनके बनाने के कारखाने, जूट, नील, चाय, तम्बाकू ( सिगरेट ) आदिके उत्पादन, विभिन्न खनिजों की खानें इत्यादि इस देश के अनेक प्रधान व्यवसायों पर अंगरेजों का पूरा एकाधिकार था और अवतक बहुत कुछ चला आ रहा है ।

देश के धन और भूमिके चिरकालीन भयंकर क्षोषण ने उसे बाढ़, भूकम्प, अकाल, महामारी आदि दैवी विपत्तियों से लहने और स्वरक्षा करने में अशक्य एवं असमर्थ बना दिया । साथ ही उपरोक्त स्थितिके कारण ये दैवी प्रकोप आये भी बड़ी संख्या में । १८५७ ई० के पूव अराजकता काल में तो प्राकृतिक उत्पातों के अतिरिक्त निस्पृहता से रहनेवाले लूट-मार, मुद्र, अशान्ति आदि मानुषी उपद्रवों के कारण देश बराबर अकालपीडित-



एव नगरोंके छोटे छोटे दूकानदार थे । और ये ही लोग निम्न वर्गके बहुसंख्यक राज्यकर्मचारियों-द्वारा निरन्तर पीस जाते थे । एक लाल पगड़ी-वालेको देखकर सारे ग्राममें अज्ञात विपत्तिको आशङ्कासे दृढ्यता, भय और विपाद छा जाता था । जिला अधिकारियोंकोको घूस, रिश्वत आदिके द्वारा अपना मुट्ठोमें रखनेवाले जमींदार और साहूकार पुलिस और अदालतोंके सहयोगसे इस तरीके जनसाधारणपर मनमान अत्याचार करते थे, निरन्तर उनका लहू चूसते थे और उन्हें पनपने न देते थे । भारतीय पुलिस चुल्मका आदर्श थी । कहीं किसी राजनैतिक, कानूनी या नैतिक अपराधके होनेका सन्देह मिलता कि सारे गाँव और वस्तीपर आफ़त आ जाती और भले आदमियोंका घन एव हज़रत जो भस्कर लूटा जाता । नित्य नये बननेवाले कानूनों और अदालतोंके जालने जनताकी नस-नस घोंघ दो । अदालतोंके पण्डे, वकील और मुख्तार, मुक़दमेबाज़ीको प्रोत्साहन देते । न कुछ बात-पर भाई-भाई और पड़ोसी पड़ोसी आये दिन लड़ते रहते और उस लड़ाई-का निपटारा करनेके लिए अनिवायत इन वकील, मुख्तारों, पुलिस और अहलकारोंको क्षरण लेते, अपना शान्ति, समय, शक्ति और कारबार नष्ट करते और जीवन-भरकी खून-पसीना एक करके सचिब की हुई कमाई उनकी जेबोंमें भरते, सदाके लिए श्रृणके भारसे दब जाते और स्वयं अपनेकी शत्रु बन जाते । न्यायका ढोल बजाकर इस मुक़दमेबाज़ीने देशकी जनताका जितना खून चूसा है, उसका जितना नैतिक पतन किया है और उसे अपग बनाया है उसना शायद किसी अन्य चीज़ने नहीं । और इसके लिए अंगरेज़ तो परोक्ष एव अलक्ष्यरूपसे ही उत्तरदायी थे, वास्तविक एवं प्रत्यक्ष उत्तरदायी तो देशी वकील, मुख्तार, अदालतें, अहलकार और पुलिस-कर्मचारी थे । दुर्भाग्यसे मुक़दमेबाज़ीका यह विष स्वतन्त्र भारतमें भी घटनेके बजाय और अधिक बढ़ रहा है ।

देशमें अंगरेज़ोंने शिक्षाका प्रचार किया, स्कूल, कॉलेज और विश्व-विद्यालय खोले, पर्याप्त-द्रव्य भी व्यय किया, किन्तु उसमें अंगरेज़ोंका



समाये जा सकते, अतः अनेकोंको घोर निराशामें जीवन नष्ट करना पड़ता । देशमें फिर भी १० प्रतिशतसे अधिक निरक्षर थे, और जब इन थोड़े-से शिक्षितोंकी यह दशा थी तो हम शिक्षासे देशको क्या वास्तविक लाभ हो सकता था यह अनुमान ही किया जा सकता है । सरकारी नौकरियोंमें भी प्रारम्भमें, वल्कि १९वीं शती ई० के प्रारम्भ तक तो अंगरेज अधिकारी भारतीयोंपर विश्वास ही नहीं करते थे और उन्हें सरकारी नौकरीके योग्य ही नहीं समझते थे । बादमें वे यह धोषणा करने लगे कि सरकारी नौकरीका द्वार प्रत्येक भारतीयके लिए खुला है, किन्तु तब भी किसी उत्तरदायित्व-पूर्ण या ऊँचे पदपर भारतीयोंको चाहे वे कितने ही योग्य हों नियुक्त न करते थे । १९वीं शती ई० के उत्तरार्धमें भी मुरेन्द्रनाथ बनर्जी-जैसे अनेक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने आई० सी० एस० की परीक्षामें उत्तम सफलता प्राप्त की किन्तु उच्च नौकरी प्राप्त करनेसे वंचित रहे जब कि उनके साथके तथा उनसे कम योग्यतावाले अंगरेजोंको प्राथमिकता दी गयी ।

सरकारके प्रश्रयमें काम करनेवाले ईसाई मिशनरोंके व्यवस्थित जाल-द्वारा भारतीयोंको ईसाई बनानेका प्रयत्न किया गया तथा निम्न जातियोंके असंख्य अशिक्षित दीन भारतीयोंको ईसाई बना भी डाला गया और उनके रूपमें अपने राज्यके स्थायित्वका इस देशमें एक स्थायी स्तम्भ निर्माण किया गया । एंग्लोइण्डियन या यूरोशियन गोरोंके रूपमें भी एक अन्य ऐसे वर्गका निर्माण किया गया ।

अंगरेजोंने इस देशमें साम्प्रदायिकताके तीव्र विषको भी स्वार्यके दशों भूत होकर खूब फूँका । सर्वधर्म समदर्शिता, बहुसंख्यकोंसे अल्पसंख्यकोंकी रक्षा, न्याय, उदारता आदिका बहाना लेकर उन्होंने हिन्दू और मुसलमानोंके बीच ऐसे फूट और वैमनस्यके बीज बो दिये जैसे कि पूर्व मुगल कालके सुलतानी शासन या औरंगजेबके कट्टर मुसलमानों के शासनमें भी शायद न थे । हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरेके जानी दुश्मन हो गये, आये दिन



[illegible]

इस बहुदेखीय कुर्तगुर्तक बुन्दा बनाई, तीर्थयात्रा तक इसे दुर्ग  
तक बुन्दा बनाई रखने का काम वर्षाभर बनाकर छोड़ देने की  
कल्पित वैदिक कल्पना के अनुसार बंदी है। अतः इसे बंदी की ही कल्पना  
विषय की संस्थापित विधि काटने की और अर्पण करने का नाम कुर्त  
की ही बंदी है। अतः इसी नाम का विषय और विषय विष्णु का ही कुर्त  
देखना सिद्ध अभी भी नहीं होता है।

[illegible]

जो प्राकृतिक, स्वामायिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पूर्णता थी उसे प्रथम बार राजनैतिक, आर्थिक एवं प्रशासकीय एक्सूत्रतामें बाँधकर उन्होंने चरितार्थ और पुष्ट कर दिया। देशका विस्तार सभी दिशाओंमें उसकी वैधानिक सीमाभा एवं अंग-उपांगा तक पहुँचा दिया। ऐतिहासिक कालमें ऐसे अनेक भारतीय नरेश हुए जिनमें-में कुछने पश्चिमोत्तर दिशामें काबुल और कन्दहारसे भी कुछ आगे तक अपने राज्यका विस्तार किया, कुछने पश्चिममें अरबसागर और ईरानको खाड़ीपर अपना प्रभुत्व रखा, कुछने उत्तरमें कश्मीर, नेपाल और भूटान ही नहीं तिब्बत तक अपने राज्यका विस्तार किया, कुछने पूर्वमें आसाम और अराकान तक ही नहीं ब्रह्म देश तक अपना प्रभावक्षेत्र बढ़ाया, और कुछने दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्वमें लंका, मलाया प्रायद्वीप तथा पूर्वी द्वीप-समूहके अनेक द्वीपोंपर अपना अधिकार विस्तार किया। किन्तु ऐसा कोई एक नरेश कभी नहीं हुआ जिसने एक ही साथ उपरोक्त सभी सीमान्ता और सीमापार प्रदेशोंपर अपना प्रभुत्व जमाया हो। चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, समुद्रगुप्त, अलाउद्दीन खलजी, अकबर या औरंगजेब, इन महान् सम्राटोंमें-से एक भी ऐसा न था जिसने सम्पूर्ण देशपर अपना पूरा, अधूरा या नाममात्र भी अधिकार फैला पाया हो। देशका किसी-न-किसी दिशामें और कुछ न-कुछ भाग उनके आधिपत्यके बाहर रहा हो। चक्रवर्ती सम्राटका जो प्राचीन भारतीय आदर्श था उसकी सिद्धि इतिहासकालमें यदि कभी हुई तो ब्रिटिश शासनके अन्तर्गत ही, और उसके अन्तके साथ ही वह भग भी हो गयी या कर दी गयी। किन्तु एक बार प्राप्त हो जानेवाली तथा एक शताब्दी पयन्त स्थायी बनी रहनेवाली वह पूर्णता एवं एकता फिरसे भग्न और खण्डित हो जानेपर भी यह प्रदर्शित कर गयी कि वह कितनी सुगम, सम्भव, युक्तियुक्त और आवश्यक है। स्वतन्त्र भारतीय राष्ट्रके लिए वह एक सजीव प्रेरणा बन गयी जो उसे निरन्तर यह स्मरण दिलाती रहेगी कि उचित मौलिक पूर्णता एवं एकताकी पुनः प्राप्ति राष्ट्रीय सत्ताका



उन्होंने कुछ कलंकित ही किया ।

किंतु अंगरेज इस देशसे क्यों चले गये और भारत स्वतन्त्र कैसे हो गया इन प्रश्नोंका उत्तर है देशमें उदित राष्ट्रीयताकी भावनाका विकास और फलस्वरूप किये गये स्वातन्त्र्य-आन्दोलनकी उत्कटता । अंगरेजोंने भारतवासियोंके हृदयमें राष्ट्रीयताकी भावनाका उत्पन्न होना और पनपना कभी भी नहीं चाहा और न स्वातन्त्र्य-आन्दोलनको कोई प्रोत्साहन दिया, वरन् उन्होंने समय-समयपर अपना अत्यन्त क्रूर एवं भयंकर दमनचक्र चलाकर इन दोनोंका मूलोच्छेद करनेका ही भरसक प्रयत्न किया । तथापि इन दोनोंके उदय और विकास एवं अन्तिम सफलताका भी श्रेय अनेक अंशोंमें अंगरेजोंको और उनके शासनको है । अंगरेज जाति चिरकालसे राजनैतिक स्वातन्त्र्यका उपभोग करती आयी थी । भारतपर राज्याधिकार स्थापनके कुछ पूर्वसे ही उनका देश नामके लिए राजतन्त्र किन्तु वास्तवमें प्रजातन्त्रका रूप लेता आ रहा था । भारतसे होनेवाले कल्पनातीत आर्थिक लाभके कारण उनके देशने द्रुत-वेगसे उन्नति की थी । उसके उद्योग-धन्धे, व्यापार-व्यवसाय, शक्ति समृद्धि, प्रभाव और साम्राज्य विस्तार ही न केवल शीघ्रताके साथ अत्यधिक बढ़ गये और उन्होंने उसे विश्वकी प्रधान शक्ति बना दिया, वरन् शिक्षा, साहित्य, ज्ञान एवं विज्ञानकी भी उस देशमें अभूतपूर्व उन्नति हुई और उसकी शासनप्रणाली अधिकाधिक जन-तन्त्रात्मक होती चली गयी । शक्ति, सत्ता और समृद्धिके साथ शिक्षा, सम्पत्ता और संस्कृतिके योगने अंगरेजोंके जातीय चरित्रको भी उन्नत एवं परिष्कृत किया, तथा उनमें बुद्धिमत्ता, विवेक, दूरदर्शिता, उदारता, सहिष्णुता, न्यायपरायणता और स्वतन्त्र विचारक्षमताका पोषण किया । वहाँकी सत्ताधीश पार्लियामेण्ट द्विदलीय रही जिसमें एक दल नरम उदार परहितापेक्षी और शान्तिप्रिय रहा और दूसरा गरम अनुदार स्वहितापेक्षी और प्रतिक्रियावादी रहा । जब जिस दलके हाथमें सत्ता आ जाती उसीकी नीतिका प्रभाव उस देशके ही शासनमें नहीं भारतके प्रशासनमें भी लक्षित

होना, और बरगसाज खादि हल्क बरगसकारी भी कही रहके हारसी या  
 पयसिनीसीके विपुल किसे बाँटे । अतः बारहके बरगस-अरसी और  
 बरगससीके कही बरग और कही बरग सीरिहा प्रत्येक एकके बरगस  
 पुनीका प्रयोग करेबाके आनि बाँटे रहे । प्रत्येक ही बरग ससीके  
 बरगस बाणके अनुचित सुझाव आत्ममें बाँटेबाके लक्ष्येन और  
 बरगससीके सुई, बाणसीसीके सिद्ध-सीका खादि बाँटेबाके बरगस रहे,  
 क हारे बरगसी बाण अनुगत लक्ष्ये आत्मकारी खादि सीरिहाके सुदी  
 क बाणोकाय करी रहे और अब कही बरगस हारसी बरग या बाण ही  
 वे बरगस विपसीके सुदी क बाणोकाय अनुगत बरगस सिद्धिनी,  
 बाणोकाय और बाणोकाय आत्मोकाय करेबा प्रयोग करी ।

बारहकारी सिद्धि-के बरगस सीरिहाके हल्कमें बाँटे रहे, बरगस  
 सिद्धिनी ही होई बाँटे रहे । एक एक सुदीनी बाण ही बरगस ही  
 और बरगस बरगस एवं सीसी सीरिहाके सिद्धिनीकाय करी रहे, इन  
 सिद्धिनीकाय होने कही और लक्ष्य बरगस-आण ही सीरिहा सिद्धिनी  
 बरगससीके बरगस करी कही । एक, बाण बरग, बरगस-बरा बरगस  
 बरगसनी ऐसी बाणोकाय बरगस सिद्धिनी बाणों और बरगस बरगस होनेमें  
 अनुगत बरगस ही । सिद्धिनी, बरगस सिद्धिनी अनुगत बरगस बाणों  
 बाणों बाणों अनुगत बरगस बाणों बाणों, बरगस बाणों,  
 बरगसनी बाणों सिद्धिनी अनुगत बाणों बाणों और बरगस सिद्धिनी  
 कही बरगसनीकाय प्रयोग, बरगस बरगस बाणों बाणों सिद्धिनी  
 एककेसीकाय, एक बाणोकाय और एककेसीकाय अनुगत करी कही ।  
 बाणों बरगस और एक केके हल्कस विपसी बाणों ॥ सिद्धिनी बरगस  
 बाणों बाणों है, इन बाणोंके अनुगत या बरगसनीय सीरिहाके बाणों-  
 कया बाणों और बरगस बाणों बाणों बाणों बाणों बाणों बाणों  
 बरगस बाणों बाणों बाणों बाणों बाणों बाणों बाणों बाणों  
 ॥ ऐसी बाणों बाणों होने कही । सीरिहाकाय बरगसनी और

साहसी होते थे वे सार्वजनिक भाषणों, समाचार पत्रों, स्मृति-पत्रों अथवा उच्च अधिकारियोंके साथ व्यक्तिगत बैठकों द्वारा सरकारसे टक्कर लेने लगे ।

नरम दलके शासनमें उनके साथ सहानुभूति प्रदर्शित की जाती, आश्वासन दिये जाते, कुछ अधिकार और सुविधाएँ भी प्रदान कर दी जाती । किन्तु तदुपरान्त जब गरम दलका शासन प्रारम्भ होता तो प्रति-क्रिया होती और सरकारकी आलोचना एवं अधिकार-माँगकी राजद्रोह और घृणता माना जाता । उससे नेताओं और उनके अनुयायियोंका क्षोभ बढ़ता और आन्दोलनमें कुछ गरमी आती तो दमनचक्र चलाया जाता । फल-स्वरूप सारे देशमें सरकारकी निन्दा होने लगती और आन्दोलन और अधिक उग्र रूप धारण करने लगता । दमन नीति उसे स्थायी रूपमें दबा देनेमें सफल भी हो जाती तो देशकी सहानुभूति आन्दोलनकर्त्ताओंके साथ और अधिक बढ़ जाती और स्वयं इंग्लैण्डमें पदच्युत नरम दल सत्ताधीश गरम दलकी कटु आलोचना करने और उसे पदच्युत करनेका नया बहाना ढूँढ़ लेता तथा भारत और उसके नेताओंके साथ सहानुभूति एवं समवेदना प्रदर्शित करता । सत्ता प्राप्त करनेपर वह पूर्व माँगोंके अनुसार भारतीयोंको कुछ अधिकार प्रदान करता । किन्तु इस बीचमें भारतीयोंकी माँगे उससे कहीं अधिक बढ़ चुकी होती, अतः उस अधिकार प्रदानसे भारतीयोंको कुछ भी संतोष न होता और आन्दोलन दबनेके बजाय और अधिक बल पकड़ता और प्रगतिवान् हो जाता । ब्रिटिश शासनके प्रायः प्रारम्भसे अन्त तक यही क्रम चालू रहा । स्वयं अँगरेजोंने ही भारतीयोंको अपने विरुद्ध लड़ना सिखाया, उसकी विधि और पद्धति बनायी और उसके साधन भी प्रदान किये । अतः इसमें अत्युक्ति नहीं है कि इस देशमें राष्ट्रीयताकी भावना और स्वातन्त्र्य-आन्दोलनकी उत्पत्ति, विकास एवं सफलताका श्रेय अनेक अंशोंमें अँगरेजों एवं अँगरेजी शासनकी है ।

भारतवर्ष लोककी अपेक्षा परलोक और स्वार्थकी अपेक्षा परमायपर



नाथ ठाकुरने सन् १९३१ ई० में अंगरेज मनीषी एच० जी० वेल्ससे कहा था—‘मुगल शासक भी गाँवोंके प्रगतिशील सामाजिक जीवनमें कोई हस्तक्षेप नहीं करते थे। दरबारी शासकोंके बावजूद भी जातीय जीवनकी धारा सहजरूपसे चली आ रही थी। मुसलमान शासकोंने (अंगरेजोंकी भाँति) कोई शर्तें घोषित नहीं कीं और न भारतीय शिक्षा-दाताओं और ग्राम-वासियोंकी अपने आदर्शपर चलनेके लिए पीड़ित किया।’ वास्तवमें प्रत्येक ग्राम अपने नम्बरदार, मुखिया, चौकीदार, पटवारी, दुकानदार, साहूकार तथा विभिन्न आवश्यक कार्य करनेवाले व्यक्तियोंसे पूर्ण और अपनी शुद्ध जनतन्त्रिय ग्राम पचायतसे शासित पूर्णनया आत्म परिपूर्ण, स्वनिर्भर और स्वतन्त्र था। साम्प्रदायिक एवं जातीय पचायतें अनेक ग्रामों, नगरों और पूरे-पूरे प्रदेशोंकी जनताको अपने स्वायत्त शासनमें बाँधे हुए थीं। राजा-महाराजाओं, सुलतानों और बादशाहकी स्वाधीनता-पराधीनता उनमें स्वयंमें परस्पर एक-दूसरेके सम्बन्धसे थी, सामान्य जनताका उससे कोई सरोकार या विशेष हानि-लाभ नहीं था। अपने राज्य या प्रदेशकी स्वाधीनताके संग्राममें भाग लेनेके लिए यदि सामान्य जनताका आह्वान किया जाता तो वह भी उसमें महर्ष भाग ले लेता। किन्तु प्रथम तो उपरोक्त पराधीनता भी प्रायः अल्पस्थायी और परिवर्तनशील रहती थी, दूसरे ये स्वाधीनता संग्राम भी क्षणिक एवं अल्प हानिकर होते थे, तथापि वे देशकी समस्त जनताको सदैव सजग सचेष्ट और आत्म-रक्षा में समर्थ बनाये रखते थे। १९४७ ई० में प्राप्त स्वतन्त्रताकी नदीके वास्तविक अटूट एवं अजस्त उद्गम स्रोत भारतवर्षकी उपरोक्त भारतीयता, स्वभाववैशिष्ट्य और सनातन संगठनमें ही अन्तर्निहित हैं। उन्हें अन्यत्र खोजना व्यर्थ है। अंगरेजोंने इन स्रोतोंको सुखा डालनेका सर्व-प्रथम भगोरथ प्रयत्न किया किन्तु साथ ही उनके फूट पड़नेके अन्य द्वार स्वतः ही खोल दिये जिनके कारण वे मून्स्रोत भी सधरा न सूख पाये। राष्ट्रीयताकी भावना और स्वातन्त्र्य-आन्दोलनने इन स्रोतोंकी सूखनेसे रक्षा की और इन्होंने द्विगुणित





१८८५ ई० में ए० थो० ह्यूम नामक एक अंगरेज सिविलियनने सर विलियम वैडरबर्न, सर हेनरीकाटन, जार्ज यूज आदि उदा-हृदय अंगरेजों और मुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादाभाई नौरोजी, फ़ोरोबशाह मेहता, दिनशा वाचा, बदरहोन सैयदजी, के० टी सैल्टा, महादेव गोविन्द रानाडे आदि भारतीय व्यक्तियों के सहयोगसे बम्बईमें इण्डियन नेशनल कॉन्फ़ेसको स्थापना की। ज्योमेशचन्द्र बनर्जी उसके प्रथम सभापति बने। प्राग्भूते ही कॉन्फ़ेसको पूरे देशका प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। उस समय सरकारके प्रति कॉन्फ़ेसका भाव पूरा मनोकांक्षा और बहुत पीछे तक इस सत्पाका लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्यक अन्तर्गत स्वायत्त प्रान्त करनेका बना रहा। १८८६ ई० में वायसराय डकारिने कॉन्फ़ेस नेताओंको कलकत्ताके राबनसनमें प्रीतिभाषके लिए आमन्त्रित किया। किन्तु उसके उपरान्त ही कॉन्फ़ेसने अपनी नीति विनाशायक एवं आलोचनात्मक बना ली अतः सरकार ने संकाशी दृष्टिसे देखने लगी और १८९० ई० में आज्ञा प्रचारित की गयी कि कोई मन्कारी कमचारी उसमें भाग न ले। मुसलमानोंके नेता सर सैयद अहमदखाने कॉन्फ़ेसका विरोध किया और १८८८ ई० में अगर इण्डिया मुसलिम एसोसियेशनकी स्थापना की, फिर भी कॉन्फ़ेसके छठे अधिवेशनमें २२ प्रतिशत मुसलमान थे। १८८९ ई० में० चार्ल्स ब्रैडला नामक पार्लियामेण्टका एक उदय कॉन्फ़ेस अधिवेशनमें सम्मिलित हुआ और फ़रवरी १८९२ ई० का ऐक्ट पास हुआ। किन्तु जनताका असन्तोष बढ़ता ही गया।

महाराष्ट्रमें लोकमान्य बाल गंगाधर टिळकने राष्ट्रीय आन्दोलनकी छड़ का दिया। उन्होंने अपने 'वेमरा' नामक मगले समाचारपत्रमें सरकारको सख्त कटु आलोचना करने प्रारम्भ की और विद्यार्थियोंको उत्तेजित किया। उनका पत्र बन्द कर दिया गया और स्वयं उन्हें जेलमें डाल दिया गया। पत्रादिमें लाला लाजपतराय और बंगालमें दिपायनचन्द्र पाठ भी उन्होंने नीतिके समर्थक थे। कॉन्फ़ेसने अब नरम और गन्द हो

इसका पान युग



विरोध नहीं किया। युद्धकालमें आमतो एनोवेसेण्टने होमरूल आन्दोलन चालू कर दिया और अपने पत्र 'न्यू इण्डिया'-द्वारा उसका उत्साहपूर्वक प्रचार किया।

१९१६ ई० के लखनऊके कांग्रेस अधिवेशनमें नरम और गरम दल फिर मिलकर एक हो गये, मुसलिम लीगके माय भी समझौता किया गया जो लखनऊ पैक्ट कहलाया और स्वायत्त-शासनको सरकारसे माँग की गयी। कांग्रेसने एनोवेसेण्टके होमरूल आन्दोलनको भी अपना लिया। भागत-मविब मोण्टेग्युने भारतको युद्ध-सेवाओंको स्वीकार करते हुए उसे सन्तुष्ट करनेका आश्वासन दिया और १९१९ ई० का ऐक्ट पास कराया। किन्तु इसके पूर्व ही राज द्रोहके दमनके लिए रोलट ऐक्ट पास कर दिया गया था जिसके फलस्वरूप अमृतसरमें हायरगर्दी मची और जनतापर भयकर अत्याचार किया गया। लोकमान्य तिलककी इसी वर्ष मृत्यु हुई, महायुद्धका भी अन्त हुआ और महात्मा गान्धीने जो दक्षिण अफ्रीकामें गोरे लोगोंके विरुद्ध छेडे गये आन्दोलनके कारण पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे, भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलनमें पदापन्न किया। उन्होंने रोलट ऐक्ट और जलियाँवाले बागके हत्या-काण्डका तीव्र विरोध किया तथा जनताको अस-हयोग आन्दोलन चालू करनेकी सलाह दी। तुर्कोंको युद्धमें घसीटने एवं खिलाफतको मष्ट करनेके कारण मुसलमान भी अँगरेजोंसे रह हो गये थे और उन्होंने खिलाफत आन्दोलन छेड़ दिया। महात्मा गान्धीने जो अब कांग्रेस तथा स्वातन्त्र्य-संग्रामके नेता बन गये थे और पूण अहिंसक नीति-के पालक थे, खिलाफत आन्दोलनको अपनाकर मुसलमानोंको भी अपना सहयोगी बना लिया।

१९२१ ई० में असहयोग एवं खिलाफत आन्दोलनने बड़ा उग्ररूप धारण किया। स्कूल, कॉलेज बन्द हो गये, अनेक वकील-मुख्तारोंने बकालत छोड़ दी, कुछ लोगोंने सरकारी उपाधियाँ त्याग दीं, बहुत-से सरकारी कर्मचारियोंने पदत्याग कर दिया, विलायती वस्त्रोंकी होलियाँ जलीं, विदेशी

बान्धुजीका बहिष्कार हुआ और चर्चा एवं आंदोलन शुरू हो गया। हिन्दू भोक्ता विद्रोह और चीपचीरो बालाने आन्दोलनको काफी आगा बढ़ाया। अन्तरगत बम-प्लग कीगति जाय चल रहा आन्दोलन मज्बू, कम अन्धक केन्द्र और हजारों कार्यकर्ता कैदोंमें डूब गये। हिन्दू-मुसलमानोंमें पाकर-फूट और वैभवदय आत्मन्य करा दिया गया जिसके कारण-अन्य कीडाह आदिमें जीवन आन्दोलनदिक देने लड़क गये। १९११ ई में बहिर्गते अन्धक केन्द्रको भी बहिष्कार प्रवेष्टके आगवा फूट पड़ गयी। विनर-अन्य दाव और भोक्ता-आत्म केन्द्र-जैसे केन्द्र बहिष्कार प्रवेष्टके पछी टी गये। १९१६ ई में आठ हस्तियन आगवाग हुआ रहने आन्दोलन-अन्य गेति आसी। केन्द्रको बहिष्कार मुक्त कर दिया और हिन्दू-मुसलमानोंमें वैभव-आन्दोलन प्रवेष्ट दिया। १९१७ ई में आन्दोलन-वर्गीय-अन्य जिसका बहिर्गते केन्द्रको वैभव बहिष्कार दिया।

[illegible]

ई० की दूसरी गोलमेज कान्फेन्समें महात्मा गान्धी, ५० मदनमोहन मालव्य एवं श्रीमती सरोजिनी नायडूने कांग्रेसका प्रतिनिधित्व किया किन्तु कोई समझौता न हुआ। सत्याग्रह आन्दोलन फिर छिड़ गया, नये वायसराय विलिंगडनने कठोरताके साथ आन्दोलनका दमन करनेका प्रयत्न किया और अनेक स्पेशल आर्डिनेस जारी किये। नेताओं और कार्यकर्त्ताओंको जेलोंमें भरा जाने लगा। शासन सुधारके प्रश्नपर भी बहस चलती रही किन्तु साम्प्रदायिक प्रश्न सबसे बड़ी बाधा थी। उसके निर्णयके लिए इंग्लिस्तानके प्रधान मन्त्री रैमजे मैकडानल्डने अपना कम्प्युनल एवार्ड दिया जिससे और अधिक असंतोष फैला। महात्मा गान्धीने अनघान आरम्भ कर दिया। देशमें तहलका मच गया। अतएव प्रधानमन्त्रीने महात्माजीसे समझौता कर लिया जो पूना पैक्टके नामसे प्रसिद्ध हुआ। १९३२ ई० में तीसरी गोलमेज कान्फेन्सके प्रस्तावोंके आधारपर १९३३ ई० का स्वतंत्रता प्रकाशित हुआ और उसके आधारपर १९३५ ई० का ऐक्ट पास हुआ। वायसराय लिनलिथगोने इस ऐक्टको कार्यान्वित किया और १९३७ ई० के चुनावमें सात प्रान्तोंमें कांग्रेसकी विजय हुई और मन्त्रिमण्डल बने। किन्तु द्वितीय महायुद्ध छिड़नेपर सरकारी नीतिसे मतभेद होनेके कारण उन्होंने पदत्याग कर दिया। सर्वत्र आर्डिनेन्सोंपर आधारित निरंकुश गवर्नरी शासन चालू हो गया। कांग्रेसने युद्धमें देशद्वारा अँगरेजोंकी सहायता किये जानेका विरोध किया और आन्दोलन छेड़ दिया। मुसलिम लीग और कांग्रेसका परस्पर विरोध एवं मतभेद भी बढ़ता ही गया। मुहम्मदअली जिन्नाके नेतृत्वमें लीगने पाकिस्तानकी माँग पेश कर दी।

सन् १९४२ ई० में स्वातन्त्र्य-आन्दोलनने अति भीषण रूप धारण कर लिया। 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास करके कांग्रेसने ही नहीं बल्कि सारी अनजाने आन्दोलन मचा दिया। रेलकी पटरियाँ हटाना, तार काटना, स्टेशन, डाकखाने आदि जलाना, ऐसे अनेक उन्माद भी यत्र-तत्र हुए।



करनेके कारण कांग्रेस ही सत्तान्दृष्टि और केन्द्रीय एवं प्रायः समस्त राज्य सरकारें कांग्रेसी धलकी हा बनीं। स्वतन्त्र स्वतन्त्र गणतन्त्र भारतीय राष्ट्रका इस प्रथम प्रजातन्त्रात्मक कांग्रेसी सरकारने समस्त देशो राज्यों और जर्मोदारियोंका अन्त कर दिया, देशकी विविध क्षेत्रीय उन्नतिके लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना चालू की और उसकी समाप्ति होते-न-होते द्वितीय पंचवर्षीय योजना चालू कर दी। अन्तर्राष्ट्रीय जगत्में भी भारतने सम्मान एवं प्रभावपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। देशको स्वतन्त्र करनेमें चाहे वह स्वतन्त्रता कितनी ही लुज़ी, दृष्टिपूर्ण और चलसन्तोसि भरी हुई रही, इस देशके निवासियोंको स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके योग्य बनानेमें और स्वतन्त्रता-प्राप्तिके उपरांत उसका संरक्षण करनेके लिए उनके समर्थ होनेमें अंगरेजी शासनका भी हाथ रहा है—इसमें सन्देह नहीं है, तथापि इस सबका प्रधान श्रेय भारतवर्षकी भारतीयता, देशवासियोंका अन्तर्निहित स्वातन्त्र्य-प्रेम, उनके अनगिनत विविध बलिदान और विषम परिस्थितियोंमें किये गये चिरकालीन संघर्षको ही है। देशने स्वयं स्वप्रयत्नसे ही स्वतन्त्रता प्राप्त की है और उसी प्रकार वह उसका सफल संरक्षण एवं उन्नति करेगा।

ब्रिटिश शासनमें देशकी कृषि, उद्योग-धन्धों, व्यापार और व्यवसायोंका भी पुनरुत्थान हुआ। विभिन्न नियमित बन्दोबस्तों, टेनेन्सी ऐक्टों, भूमि आलेखों और सुविस्तृत भूमि प्रशासन द्वारा देशकी कृषि-भूमि तथा कृषि योग्य भूमिकी समुचित व्यवस्था की गयी। कृषि आयोगों तथा सरकारी कृषि अनुसन्धान समिति, सहकारिता विभाग, कृषि प्रदर्शनियो आदिके द्वारा कृषि और कृषकोंकी दशा सुधारनेका प्रयत्न किया गया। नहर, कुएँ, ट्यूबवेल, बाँध आदि विभिन्न उपायोंको विस्तार देकर सिंचाईका सुप्रबन्ध किया गया। चकबन्दी, नवीन प्रकारके रासायनिक खाद तथा यान्त्रिक उपकरणोंके प्रयोग भी कहीं-कहीं चालू किये गये। इस कृषि-प्रधान देशकी लगभग तीन चौथाई जन संख्या खेतीपर ही निर्भर रहती





मिलें सूत कातनेका कार्य करती थीं, कपडा इगलैण्डमे ही बनकर आता था । जमशेदजी टाटाने लोहेका कारखाना पढ़ने ही चालू कर दिया था । कुछ अन्य चीजाँके कारखाने भी स्थापित होने लगे । १९१४ ई० के महायुद्धसे इन उद्योग घर्षोंको भारी प्रोत्साहन मिला और उन्होंने अभूतपूर्व प्रगति की । लोहा, सूत और चीनीके उद्योग विशेषरूपसे चमके, कुछ मिलें वस्त्र भी बनाने लगीं । १९१८ ई० को सरकारी इण्डस्ट्रियल कमिशनकी रिपोर्टमें देशकी औद्योगिक उन्नतिके महत्त्वपर बल दिया गया और उन्नतिके अनेक उपाय सुझाये गये । १९२४ से १९३९ ई० के बीच भारतीय मिल-उद्योगने अपूर्व उन्नति की । वैज्ञानिक अनुसन्धानशालाओ और कई स्थानोंमें पानीसे तैयार की जानेवाली विद्युत् शक्तिने भा इस कार्यमें भारी सहायता की । प्रत्येक प्रान्तमें एक औद्योगिक विभाग खुल गया, सरकारने सहायता, प्रश्रय और कुछ द्रव्य प्रदान किया । रेल, मोटर, तार-झाक आदिसे यातायातकी सुगम सुविधा भी अत्यन्त सहायक हुई । दूसरे विश्वयुद्धने भारतीय मिल-उद्योगको और अधिक प्रोत्साहन दिया । फलस्वरूप स्वतन्त्रताप्राप्तिके समय तक भारतीय उद्योग-धन्धे पर्याप्त विकसित हो चुके थे और दैनिक उपयोगकी उन वस्तुओंमें-से जो पहले विदेशोंसे आयात की जाती थीं, अधिकतर अब भारतमें ही बनने लगीं । इतना ही नहीं, कुछ वस्तुओंका भारत कतिपय विदेशोंको भी निर्यात करने लगा । मिल-उद्योगके उत्थान-क कुछ पहलेसे ही भारतीय व्यापार और व्यापारियोंकी दशा भी उन्नत होने लगी थी । उद्योग घर्षाक उत्थानने उसे और अधिक उन्नत किया । धीरे धीरे देशके आन्तरिक व्यापारका अधिकांश तो उनके अधिकारमें आता ही चला गया, थोडा थोडा विदेशी व्यापार भा उनके हाथमें आने लगा । अनेक अँगरेजी या अन्य विदेशी कम्पनियों और फर्मोंमें भी भारतीय हिस्सेदार, साझेदार या प्रधान कार्यकर्त्ता, मैनेजिंग एजेण्ट आदि होने लगे । वर्तमानमें देशका अधिकांश देशी एवं विदेशी व्यापार देशवासियोंके हाथमें है । व्यापार और उद्योग धन्धोंक संचालनके अतिरिक्त धकील, बैरिस्टर,

[illegible][illegible]

मिलें सूत कातनेका कार्य कर्त्तों थीं, कपड़ा इस्लैण्डमें ही बनकर आता था ।  
 जमशेदजी टाटाने लोहेका कारखाना पड़ने ही चालू कर दिया था । कुछ  
 अन्य चीजोंके कारखाने भी स्थापित होने लगे । १९१४ ई० के महायुद्धसे इन  
 उद्योग-धंधोंकी भारी प्रोत्साहन मिला और सहोदर अनूतपूर्व प्रगति की ।  
 लोहा, सूत और चीनीके उद्योग विशेषरूपसे चमके, कुछ मिलें वस्त्र भी  
 बनाने लगीं । १९१८ ई० की सरकारी इण्डस्ट्रियल कमाशनकी रिपोर्टमें  
 देशकी औद्योगिक उन्नतिक महत्त्वपर बल दिया गया और उन्नतिक अनेक  
 उपाय सुझाये गये । १९२४ से १९३९ ई० के बीच भारतीय मिल-उद्योगने  
 अपूर्व उन्नति की । वैज्ञानिक अनुसन्धानशालाओं और कई स्पानोंमें पानीसे  
 तैयार की जानेवाली विद्युत् शक्तिने भा इस कार्यमें भारी सहायता की ।  
 प्रत्येक प्रान्तमें एक औद्योगिक विभाग स्थापित गया, सरकारने सहायता, प्रथम  
 और कुछ द्रव्य प्रदान किया । रेल, मोटर, तार-ढाक आदिसे यातायातकी  
 सुगम सुविधा भी अत्यन्त सहायक हुई । दूसरे विश्वयुद्धने भारतीय मिल-  
 उद्योगकी और अधिक प्रोत्साहन दिया । फलस्वरूप स्वतन्त्रताप्राप्तिके  
 समय तक भारतीय उद्योग-धंधे पर्याप्त विकसित हो चुके थे और दैनिक  
 उपयोगकी उन वस्तुओंमें-से जो पहले विदेशोंसे आयात की जाती थीं,  
 अधिकतर अब भारतमें ही बनने लगीं । इतना ही नहीं, कुछ वस्तुओंका  
 भारत कतिपय विदेशोंकी भी निर्यात करने लगा । मिल-उद्योगके उत्थान-  
 के कुछ पहलेसे ही भारतीय व्यापार और व्यापारियोंकी दृष्टि भी उन्नत  
 होने लगी थी । उद्योग धन्धोंके उत्थानने उसे और अधिक उन्नत किया ।  
 धीरे-धीरे देशके आन्तरिक व्यापारका अधिकांश तो उनके अधिकारमें  
 आता हो चला गया, थोड़ा-थोड़ा विदेशी व्यापार भा उनके हाथमें आने  
 लगा । अनेक अँगरेजी या अन्य विदेशी कम्पनियों और फर्मोंमें भी भारतीय  
 हिस्सेदार, साझेदार या प्रधान कार्यकर्त्ता, मैनेजिंग एजेण्ट आदि होने लगे ।  
 वर्तमानमें देशका अधिकांश देशी एवं विदेशी व्यापार देशवासियोंके हाथमें  
 है । व्यापार और उद्योग-धन्धोंके संचालनके अतिरिक्त बँकोल, वैरिस्टर,



शिक्षा और अंगरेजोंके निकट सम्पर्कसे लाभान्वित राजा राममोहन राय, राधाकांतदेव, जयनारायण घाष आदि भारतीय प्रतिष्ठित जनोंने और इंग्लैण्डमें ग्राण्ट तथा यिल्बर फ़ोर्सने भारतमें शिक्षा-प्रचारके आन्दोलनको प्रगति दी। १८१३ ई० के सम्पनोके चार्टरमें सरकारने इस मदमें एक लाख रुपया यापिक व्यय करनेकी स्वीकृति दी, १८१५ ई० में गवर्नर-जनरल लार्ड हस्टिंग्सने अपने सरकारी मसविदेमें शिक्षा-प्रचारके महत्त्वपर जोर दिया, १८१६ ई० में कलकत्तेमें हिंदू कॉलेजकी स्थापना हुई, १८२३ ई० में कलकत्ता बुक सोसाइटी एव कलकत्ता स्कूल सोसाइटीकी स्थापना हुई तथा ऐडम और विल्सनकी अध्यक्षतामें सार्वजनिक शिक्षा कमेटीका निर्माण हुआ। १८३३ ई० के चार्टरमें शिक्षा-व्ययकी सरकारी रकम दस लाख कर दी गयी। १८३५ ई०में लार्ड वेंटिक-ने शिक्षाका माध्यम अंगरेजी निश्चित किया। १८४२ ई० में पब्लिक इन्स्ट्रुक्शन कमेटीके स्थानमें कौन्सिल ऑफ़ एजुकेशन स्थापित की गयी। संयुक्त प्रान्तके गवर्नर सर जेम्स टाम्सनने देहाती स्कूलोंकी स्थापनाका कार्य भी प्रारम्भ कर दिया। १८५४ ई० में चार्ल्स बुड-द्वारा प्रस्तुत सार्वजनिक शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्टमें कहा गया था कि “शिक्षाके सिवाय और कोई प्रदान ऐसा नहीं है जिसपर सरकारको सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। भारतवासियोंको वे नैतिक एव आर्थिक लाभ जो केवल विद्योपा-न्नसे ही प्राप्त हो सकते हैं, उपलब्ध कराना सरकारका पवित्र कर्त्तव्य है। हम चाहते हैं कि भारतवर्षमें ऐसी शिक्षाका प्रचार हो जिसके द्वारा जनताको यूरोपके साहित्य, विज्ञान, दशन, कला आदिका ज्ञान हो।” रिपोर्टमें यह भी कहा गया था कि “सार्वजनिक शिक्षाके लिए मातृभाषा ही प्रधान माध्यम है परन्तु अध्यापकोंको अंगरेजीका ज्ञान होना आवश्यक है। देशी भाषाओंकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए, किन्तु जहाँ कहीं अंगरेजी भाषाके पढ़नेकी इच्छा प्रकट की जाये वहाँ उसका प्रचार करना स्लाध्य है।” फलस्वरूप विभिन्न प्रान्तोंमें पुषक् पुषक् व्यवस्थित शिक्षा-









प्राप्त किया है। अनगिनत सरकारी अथवा सम्कार-द्वारा स्वीकृत उपरोक्त प्रकारकी शिक्षा-संस्थाओंके अतिरिक्त क्वोड्र टेंगोरको विश्वभारती, प्रो० कर्वेका महिला विश्वविद्यालय, गान्धीजीका सेवाधर्म-जैमी महत्त्वपूर्ण संस्थाएँ, मण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट जैसे अनेक प्राच्यविद्यामन्दिर, सांस्कृतिक संशोधक मण्डल, खोज बाघ एव अनुसन्धान-सम्बन्धी विद्याकेन्द्र, साम्प्रदायिक विद्यालय, पाठशालाएँ और मदरसे, सार्वजनिक पुस्तकालय आदि यत्र-तत्र खुल गये। छापेखानों, साम्प्रदायिक या व्यवसायी प्रकाशन-संस्थाओं और क्रमों, समाचारपत्रा, साप्ताहिक पक्षिक मासिक त्रैमासिक पत्र पत्रिकाओं आदिने भी ज्ञानका प्रसार करने और देशकी शिक्षित करनेमें भारी योगदान दिया। सिनमा और रेडियो आदि मनोरञ्जनके आधुनिक उपकरणोंने भी जनसाधारणको शिक्षित करनेमें सहायता दी। अनेक प्रकाण्ड भारतीय विद्वानोंने प्रारम्भमें पाश्चात्य विद्वानोंके पथ प्रदर्शन या सहयोगमें और कालान्तरमें अधिकांशतः स्वतः ज्ञान और विज्ञानके प्रायः सभी विभिन्न एवं विविध क्षेत्रोंमें आश्चर्यजनक एव स्तुत्य कार्य किया और भारतीय प्रतिभाकी प्रतिष्ठा विश्वमें स्थापित की।

साथ ही विभिन्न भारतीय भाषाओं और उनके अपने-अपने साहित्य-का भी अभूतपूर्व विकास हुआ। बंगाली, मराठी, गुजराती, तमिल, कन्नड़, उर्दू और हिन्दी आदि प्रमुख देशी भाषाओंने स्तुत्य प्रगति की। संस्कृत, प्राकृत, पालि और अपभ्रंश आदि प्राचीन भाषाओंके अध्ययनकी भी प्रोत्साहन मिला। हिन्दी, बंगला आदि प्रचलित देशी भाषाओंका सम्पर्क विकास ब्रिटिश शासनकालमें ही हुआ। यों उनकी काव्य-भाषाका उद्गम एवं पर्याप्त विकास पिछली पाँच छह शताब्दियासे होता आ रहा था, किन्तु गद्य-लेखन और उसकी शैलियोंका विकास प्रायः इसी कालकी देन है। प्राकृत भाषासे विकसित और पूर्वमध्यकालीन अपभ्रंश भाषाके द्वारसे उदित होनेवाली हिन्दी इस देशके पञ्जाबसे लेकर बिहार और हिमालयकी सराई-से लेकर नर्मदापर्यन्त बहुभागमें व्यवहारमें आनेवाली सर्वाधिक प्रचलित

[illegible]

संस्कृत कलाओंमें सेवने की कल्पति हुई। विविध-विधक ईश्वर-  
कालिक एवं कल्पनीय काव्यिक इतिहास गायत्रीति सर्वज्ञान कल्प-  
कालक भावि विचारोंपर गहरागुण गुणगर्भ कीर प्राचीन कल्पोंके अनुयाय  
क काव्योपचालक स्वात्मगर्भ-कल्पित गुणगर्भित ईश्वरकालिक ईश्वरकालिक  
कल्पितकालिक ईश्वरी ईश्वरी, ईश्वरी गुणगर्भ कीर कल्पक भावि ईश्वर  
काव्योपचालक ईश्वरी कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक  
काव्यिक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक  
काव्यिक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक कल्पक

भौतिक एवं वाय दोनों प्रकारके शास्त्रीय एवं लोकप्रिय स्वरोंका विभिन्न  
 संगीत-विद्यालयों, कला केन्द्रों, नाटक-समाजों मिनेमाग्री एवं रेडियो-द्वारा  
 पर्याप्त विकास एवं प्रचार हुआ। नृत्य-कलाका भी पुनरुत्थान एवं विकास  
 हुआ। इस कलाके शास्त्रीयरूपों, विभिन्न प्रदेशोंमें प्रचलित लोकरूपों,  
 पाश्चात्यरूपा आदि विभिन्न प्रकारोंका विकास एवं समन्वय हुआ।  
 चित्रकलाके पुनरुद्धारका श्रेय कलरूपा गवर्नमेण्ट स्कूल ऑफ आर्टके  
 प्रिन्सिपल ई० बी० हैवेल्सको है जिनके प्रभावमें अन्नोन्दनाथ ठाकुरने  
 भारतकी प्राचीन कलाको पुनरुज्जीवित करनेके प्रयत्नमें एक नवीन शैली-  
 का विकास किया। अन्नोन्दनाथ ठाकुर, डॉ० सुलेमान  
 आदि अन्य अनेक प्रसिद्ध चित्रकारोंने चित्रकलाके पुनरुत्थानमें प्रभूत  
 सहयोग दिया। मूर्त्तिकलामें विषयको प्रत्याकृति बनानेकी ओर अधिक  
 लक्ष्य रहा, उसके भावपक्षको इस कालमें विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला।  
 स्थापत्य कलाके क्षेत्रमें भी सादगी सुविधा और उन्नतिशक्ति की ओर अधिक  
 ध्यान रहा। इस कालमें अनगिनत सरकारी और गैर सरकारी इमारतें  
 बनीं, किन्तु वस्तुतः कलापूर्ण कृतियाँ कहलाने योग्य उनमें शायद दो चार  
 ही निकलें तो निकलें। वास्तवमें इस युगमें कलाका भी पुनरुत्थान तो  
 हुआ, किन्तु सभी कलाओंपर आधुनिक पाश्चात्य सम्प्रदायकी भारी छाप  
 और प्रभाव रहा।

धर्म और समाजका इस धर्मप्राण देशमें अविनाभावो सम्बन्ध रहा  
 है। सामाजिक जीवनका प्राय कोई अंग ऐसा नहीं रहा जो धर्मके प्रभावसे  
 ओत प्रोत न रहा हो। इस देशकी संस्कृति भी प्रधानतः धर्मानुसारो ही  
 रही, और क्योंकि विचार एवं विश्वास-स्वातन्त्र्यका भी इस देशमें सदैव  
 सम्मान हुआ है, अतः यहाँ प्रारम्भसे ही कई-कई धर्म और उनसे सम्बन्धित  
 संस्कृतियाँ साथ-साथ बहुधा सद्भाव और सहयोगबलक ही फलती फूलती  
 रहीं। सुदूर प्रागैतिहासिक कालसे ही चलो आयो भारतीय संस्कृतिकी  
 द्राविड़ आर्य, ब्राह्म वैदिक अथवा श्रमण ब्राह्मण रूप विप्लव स्वदेशी द्विविध



सम्पत्तासे अत्यधिक प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया। पश्चिमकी धर्म, विचारों, आदर्शों, रहन-सहन, वेशभूषा, आविष्कारों, पद्धतियों एवं प्रणालियों, सभीका भारतीय जीवनपर प्रभाव पड़ा। इसमें भी सन्देह नहीं कि कतिपय जिज्ञासु अंगरेज मनोपियोंने प्रारम्भसे ही भारतीय धर्म, संस्कृति, साहित्य और इतिहासके ज्ञानका पुनरुद्धार करना भी शुरू कर दिया था। और यह कार्य उत्तरोत्तर उन्नति करता गया तथा उसने भारतके सम्बन्धमें पश्चिमी जगत्की धारणाओंको परिवर्तित करनेमें, उनकी भूलोंका सशोधन करनेमें और भारतकी सांस्कृतिक विभूतिका आदर करनेमें पर्याप्त सहायता दी। तथापि भारतका यह प्रभाव अधिकांशतः बौद्धिक ही रहा, व्यवहार-दृष्टिसे उसका फल प्रायः नगण्य ही रहा।

अस्तु, अंगरेजोंके सम्पर्कसे देशमें जा जागृति हुई उसका एक परिणाम धर्म और समाजमें सुधार करके उसे यूरोपवासियोंके आदर्शपर उन्नत बनानेके प्रयत्न थे। सत्पा, प्रभाव और व्यापकताकी दृष्टिसे अपने अनेक, बहुधा परस्पर भिन्न एवं विरोधी, रूपोंके बावजूद, देशका प्रधान धर्म अब कथित हिन्दूधर्म था और प्रधान समाज हिन्दूसमाज था। हिन्दूसमाजमें भी वर्ण एवं जाति व्यवस्थाके कारण भारी अनैक्य था। उनमें भी अवनष्ट शूद्रोंकी संख्या आधेसे अधिक थी जिन्हें चतुर अंगरेजाने 'दलित जातियाँ' या 'परिगणित जातियाँ' आदि नाम दिये। उनकी सामाजिक आर्थिक बौद्धिक एवं नैतिक दशा अवश्य ही अत्यधिक शोचनीय थी और जितनी थी उससे कहीं अधिक वणन की जाती थी। १९वीं शतीके पूर्वार्धमें ही राजा राममोहन रामने धर्म एवं समाज-मुधारके उद्देश्यसे ब्राह्म समाजकी स्थापना की थी। इसमें वर्ण व्यवस्था और मूर्तिपूजाका बहिष्कार था और इसका शुकाय अंगरेजियत एवं ईसाइयतकी ओर अधिक था। उस कालमें अंगरेजोंके साथ खान-पानका सम्पर्क रखनेवाला या समुद्रपार जानेवाला व्यक्ति जाति और धर्मसे व्युत्त कर दिया जाता था, और ऐसे लोगोंकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही थी। ब्राह्म-समाज उनको आश्रय देता था, अतः उसका प्रचार



विधवा-विवाह आन्दोलन चलाया। अन्तर्में महात्मा गांधीने समाज-सुधार-को अपने राजनैतिक आन्दोलनका प्रमुख अंग बनाया और विशेषकर अछूत कही जानेवाली जातियोंके उद्धारके लिए हरिजन-आन्दोलन चलाया। अब भी अनेक धार्मिक और सामाजिक नेता इस युगमें हुए। वैज्ञानिक शिक्षा, पाठ्यालय विचारों एवं सभ्यताके सम्पर्क विदेश-यात्रा आदिन भारतीयोंके दृष्टिकोणमें भारी परिवर्तन कर दिया। रूढ़ि, रीति, प्रथा, शास्त्रीय वक्तव्य और पण्डितो पुराहितोंके पतव्योंकी अपेक्षा युक्ति और तर्कको अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। अनेक बन्धन तो आधुनिक सभ्यताके स्कूल, अस्पताल, रेल, होटल, छापाखाना आदि विविध उपकरणोंने स्वयं ही ढोले करने प्रारम्भ कर दिये थे। इन सबके उपयोगमें उपरोक्त आन्दोलनोंके फलस्वरूप धर्म और समाजमें प्रभूत सुधार एवं जागृति आ गयो। दलित जातियोंकी दशा सुधरने लगी, स्त्री-जातिमें शिक्षा, स्वनिर्भरता, परदेका अभाव आदि वेगके साथ बढ़ने लगे, विदेश-यात्रा, विधवा विवाह, विजातीय विवाह आदि बुरे न समझे जाने लगे और बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, कन्या-विक्रय आदि हेय ममज्ञ जान लगे। इस प्रकार हिन्दू जातिका पर्याप्त पुनरुत्थान हुआ।

सह्या और प्रभावमें बहुत कम होते हुए भी भारतीयता, प्राचीनता, देशमें व्यापकता एवं सांस्कृतिक समृद्धिमें कायन हिन्दू धर्म और समाजके प्रायः समकक्ष जैनधर्म और जैन-समाजमें भा उपरोक्त युगानुसारी प्रवृत्तियाँ, विचारों एवं क्रान्तियोंका प्रायः वैसा ही प्रभाव पड़ा। अब भा दशक प्रायः प्रत्येक भागमें पाये जानेवाले जैन अधिकांशतः मध्यमव्यय एवं उच्चमध्यम वर्गके व्यापारप्रधान समृद्ध एवं सम्पन्न भारतीय थे। सामाजिक संगठन, शिक्षा, सदाचार, स्वधर्मज्ञान एवं धार्मिकताकी दृष्टिसे वे अब समाजोत्तम वृद्ध कुछ आगे थे। विवाह गम्भीर कृत्याओं, शूताछूत, विदेशगमन, धर्मशास्त्रोंके छोड़े जानेका विरोध, स्त्री जातिकी अज्ञानता, परदा आदि अनेक कुरीतियोंके सम्बन्धमें मध्य एवं उच्च वर्गोंके हिन्दुओं जैसा ही



और प्रचार करना था। वेधवचन ऐसी जगह और जाने रहता। ऐसी-  
 नाथ छत्रपुर में ब्रह्म-समाजके प्राचीन वैदिक आदर्शोंके साथ सम्भव करने-  
 के प्रयत्नमें आदि ब्रह्म-समाजके अन्तमें उनकी एक नयी योजना को जन्म  
 दिया। इसके अनुसरणमें ब्रह्मचर्यव्रत निर्णय करनेवाली आर्च्य-समाज-  
 की स्थापना हुई। ब्रह्मचर्य बोधिव्रत पन्द्रह और पञ्चदश बोधिव्रत प्रचार  
 कर प्रार्थना समाजके प्रमुख मंत्र थे। रामादेवे समाज-सुधारके ही गौरव-  
 के कारण अनुप्रेषण सोसाइटीकी और बादमें सोशल ट्रुथ सोसाइटी में प्रवेश  
 आदि इन्किया सोसाइटीकी भी स्थापना की। स्वामी पञ्चदश रामदेवे  
 की बेरान्दी विचारोंके प्रचार किया उनके विषय स्वामी विवेकानन्द  
 तथा स्वामी पञ्चदशोंके विषयोंमें भी बालक चारुदत्त सम्प्रदायकी  
 दूरद और आधुनिकताके विचारोंकी प्रचारित किया। पञ्चदश विज्ञान  
 की एक नया सुधारक जन्म था। १८७५ ई. में वे रामादेवे  
 चारुदत्त आदर्शोंको एक नवीन रूप देकर विद्यार्थीसंघिक सोसाइटीकी  
 स्थापना की। सोसाइटी एनीमेटरमें इन दोनों के प्रमुख कार्य किया। अंगरेजों  
 को-विज्ञान चारुदत्तोंमें जन्मका नया प्रचार हुआ। १८७५ ई. के ही समय  
 स्वामी बालकके आदर्शसमाजकी स्थापना की। वे भी बालक, बुद्धि एवं  
 सोशलविज्ञानके विषयों में समाज-सुधारके बहनों में और दक्षिण वैदिक  
 समाज का प्रचार करना चाहते थे। प्रथम और उत्तर प्रदेशमें आर्च्य-  
 समाजका बहुत प्रचार हुआ। किन्तु यहाँ आर्च्यसमाज बालकके अनेक  
 सुपेसिधियों को दूर करनेका प्रयत्न किया सभी-आदि के सुधार और विद्यार्थी-चार-  
 के कार्यको जाने रहता और मुक्तजानों एवं ईसाइयों-द्वारा कलकत्ता अनेक  
 जगहोंमें विस्तार करनेमें आगे जाता भी नहीं समाज बगैरों को बहुत बाधोक्त  
 एवं प्रोत्साहन उत्पन्न करके जन-साधारणकी आर्थिक समस्याओं की ही  
 ध्यानमें। किन्तु इसका भी एक अन्धा ही हुआ समाज धर्म की आगे-  
 आगे बढ़ान एवं औरकाम करनेमें प्रयत्न हुए। आगेके स्वामी विवेकानन्द-  
 के पञ्चदशोंकी सम्प्रदायकी स्थापना की। समाजमें ईश्वरचक्र विचारोंकी

सस्थाएँ स्थापित हो गयी जिनसे शोध खोज एवं विविध विषयक साहित्य-  
 का सृजन तथा प्रकाशन होने लगा । बाल-पाठशालाओं, बालिका-  
 विद्यालयों एवं उच्च संस्कृतविद्यालयोंके अतिरिक्त जैन स्कूल, कॉलेज,  
 छात्रावास, बाला-विश्राम, अनाथालय आदि भी शीघ्रताके साथ स्थापित  
 होने लगे । स्त्री-शिक्षा, अन्तर्जातीय या विजातीय विवाहके पथमें और  
 वृद्ध विवाह, कया-विक्रय आदिके विरोधमें उग्र आन्दोलन चले और पर्याप्त  
 सफल हुए । दस्तापूजाधिकार-आन्दोलनने विमो भी व्यक्तिके धर्मपालनकी  
 स्वतन्त्रता अपहरण करनेकी प्रथाका अन्त कर दिया । समाज सुधारके  
 उद्देश्यसे ही दिगम्बर जैन परिषद्-जैमी सम्पाठ भी स्थापित हुई । तीर्थ-  
 क्षेत्रोंके प्रवचके लिए कमेटियाँ बनीं किन्तु इस प्रसंगको लेकर दिगम्बरों  
 और श्वेताम्बरोंमें कई तीर्थोंक एकाधिकारक प्रश्नपर खेदजनक मुकदमे-  
 वाजियाँ भी चलीं जिन्होंने घातक साम्प्रदायिक वैमनस्यमें वृद्धि की, जो  
 कनिष्ठ नेताओंके मत्प्रयत्नोंमें इधर कुछ दशकोंमें किंचित् शान्त पड़ गया  
 है । अंगरेज प्राच्यविदोंने १८वीं शताब्दीके अन्तिम पादमें ही जैनधर्म  
 एवं साहित्यमें रुचि लेनी प्रारम्भ कर दी थी । १९वीं शताब्दीके पूर्वार्धमें  
 अनेक अंगरेज विद्वानोंके प्रयत्नोंसे जैनधर्म, संस्कृति, साहित्य, पुरातत्त्व  
 और इतिहासके अनेक अंगपर स्तुत्य प्रकाश पड़ा और धीरे-धीरे जैन-विद्या  
 भारतीय विद्याका एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गयी । १९वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें  
 अंगरेजोंके अतिरिक्त अनेक जर्मन, फ्रान्सीसी, इटालियन आदि अन्य पश्चिमी  
 देशोंके प्राच्यविदोंने भी जैन विद्याके अध्ययनको प्रभूत प्रगति प्रदान की  
 एवं जैन धर्म और उसके इतिहाससे सम्बन्धित अनेक भ्रामक धारणाओंका  
 सफल निरसन किया । वीरचन्द्र राघवजी गान्धी, प० लालन, जगमन्दरलाल  
 जैनी, चम्पतराय वैरिस्टर आदि अनेक जैन विद्वानोंने यूरोप और अमे-  
 रिकामें जाकर जैन धर्म एवं दर्शनका प्रचार किया । भारतमें अनेक जैन  
 एवं अजैन प्रकाण्ड भारतीय प्राच्यविदों एवं विद्वानोंने जैनअध्ययनको  
 उत्तरोत्तर प्रगतिवान् किया और यह क्रम चालू है । इस प्रकार इस युगमें

पुनरुत्थान युग



मुसलमान नेताओंकी भाँति राजनीतिक लाभोंकी ओर अधिक रहा है और धर्म, समाज एवं संस्कृतिक पुनर्स्थानकी ओर कम ।

पारसी समाज छोटा-सा किन्तु सर्वाधिक समृद्ध, सुशिक्षित एवं गठ्ठा हुआ समाज है । अंगरेजी शासन और सम्यताका सर्वाधिक लाभ उमने अपनी व्यापारिक, औद्योगिक एवं सामाजिक उन्नति करनेमें उठाया ।

बौद्ध धर्म लगभग एक सहस्राब्दीके उपरान्त अब कुछ दशकोंके बीच इस देशमें बाहरसे आकर फिरसे उदय हो रहा है, देशमें उसके अनुयायियोंकी संख्या चाहे अधिक न बढ़ रही हो किन्तु समर्थकों एवं प्रशंसकोंकी कमी नहीं है । धार्मिक दृष्टिसे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पुनर्स्थान इस कालमें बौद्ध धर्मका ही हुआ है ।

ईसाई धर्मने अंगरेजी शासनके आश्रय, संरक्षण एवं सहायता, सहयोगसे भारी उन्नति की थी । निम्न जातियोंकी दीन ग्रामीण अशिक्षित जनताको ईसाई बनानेमें उन्होंने अधिक ध्यान दिया और उसमें वे पर्याप्त सफल भी हुए । उनके मिशनरों और पादरियोंने स्कूला, अस्पताला, अनाथालयो आदिके द्वारा देशको लाभ ही पहुँचाया, सेवाभावका आदर्श भी भली प्रकार प्रस्तुत किया, किन्तु इन सत्प्रयत्नोंमें यही सबसे बड़ा फलक है कि इस दशमें ईसाई धर्मका प्रचार करनेके पीछे पश्चिमी गोरी ईसाई जातियाँके राजनीतिक उद्देश्य ही प्रधानरूपसे कार्य करते रहे और सम्भवतया अब भी कर रहे हैं । वैसे ईसाई समाज अपेक्षाकृत शिक्षित एवं सामान्यतया उन्नत समाज रहा है ।

इस प्रकार गत शताब्दीके पुनर्स्थान युगमें भारतवर्षने जीवनके विभिन्न क्षेत्रोंमें नवीन जागृति, प्रगति एवं उन्नति की । इस सर्वतोमुखी पुनर्स्थानने स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ एक बड़ी मजिल तय कर ली । देशका पुनर्स्थान हो चुका, अब वह सबप्रकार समर्थ सचेतन होकर अपने पैरोंपर खड़ा है और सम्यताकी दौड़में विश्वके अन्य सम्य राष्ट्रोंके साथ समान स्तरपर भाग लेनेके लिए कटिबद्ध है । यदि अपनी सांस्कृतिक



# प्रमुख तिथियाँ

## १. देशो भारत

१ करोडसे ६ लाख वर्ष पूर्व	पूर्व पाषाण युग
लगभग ६०००००-१५००० ई० पू०	पुरातन पाषाण युग
॥ १५०००-८००० ॥	नव्य पाषाण युग
॥ ८००० ॥	घातु-युग एव मानव सम्यता और
॥ ६०००-२५०० ॥	मस्कृतिका उदय, ऋषभ-युग
॥ ३०००-१००० ॥	सिन्धु घाटी सम्यता-पूर्वकी मानव
॥ २००० ॥	एव पश्चिम और दक्षिणकी विद्या- घर ( द्रविड ) सम्यताएँ
॥ ३०००-१००० ॥	वैदिक आर्य-सम्यता
॥ २००० ॥	रामायण काल, अयोध्याके
॥ १४४३ ॥	श्री रामचन्द्र मगधमें २०वें तीर्थ- कर मुनिसुग्रत, दक्षिणमें वानर- वशी तथा ऋष्य जातिकरावण आदि
॥ १४००-७०० ॥	महामारत युद्ध, महाराज कृष्ण, २३वें तीर्थकर अरिष्टनेमि
॥ १००० ॥	उत्तर-वैदिक काल, उपनिषदोंकी रचना, नागोंका पुनरुत्थान, द्राव्यों एव श्रमणोंका पुनरुत्कर्ष
॥ १००० ॥	हस्तिनापुरका विनाश

परम्पराके समस्त षोडश एवं अष्टमैय शाखायां माछाकी भारतीयताय, परिष्कार काशी हुए और उन्हें अष्टमैयतर समुपन बनाते हुए यह जाने गूझ है तो यह अत्यन्त ही स्व-पर-व्यवस्थागत सचन साधन कर केवल, इतने कीर्ति करने में रही है ।



४८७-८६७ ई० पू०	पाटलिपुत्रनरेश अनुष्टुप्, मुष्ट, नागदास आदि
४८७ "	गोत्रमवृद्धा पगिनियाणि ( मुष्ट )
८६७ "	मगधन सेनानाम शास्यगिह-द्वारा विजयवंश ( पुष्यनन्द ) की स्थापना
८६६ ,	अध्वनीका मगधराज्यम मित्रा
४६५ "	मगधोत्तर-पश्चात्तक अस्मिन् अहम्वेदलि सम्बु- स्थासोका नियमि
४४९-४०७ "	मगध-मगधट नन्दवशत पाण्डिगोष, देवाकराण पाणिन
८०८ "	नन्दिवशत-द्वारा कालिग विजय
४०७-३६४ "	मगध-मगधट महाराजिन्
३६६ "	अस्मिन् श्रुतवेदलि भद्रबाहुवा ( जैन ) मध- महिम स्मिण दशवा विज्ञात मगधमे द्वादशवर्षीय दुभिदाका प्रारम्भ
३६१ "	कर्णाटके कटयत्र पवत्तपर भद्रबाहुका देहत्याग
३६३ ,	मगधमे राजदरान्ति, नवमन्दपशकी स्थापना
३६३-३०९ "	मगधवा नन्दमगधट महामगधनन्द
३०९-३१७ "	घनानन्द और समवे माई -८ नन्द, आर्य चाणक्य
३०६ "	यूनानी सम्राट् सिक्न्दरका पञ्चाश एव सिन्धुपर आक्रमण
३०१ "	मौर्य चन्द्रगुप्तका नन्दोके विरुद्ध विद्रोहारम्भ
३१७ "	मगधमे राज्यप्रान्ति, नन्दवशत अन्न, मौर्यवश- की स्थापना
३१७-२९८ "	सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य
३१२ "	सम्राट् चन्द्रगुप्त-द्वारा अश्वनिविजय



नमस्त्र	१	—३	६	१	१	काशी काशीवा काशी काशी
८	१	६	१			काशीवा
	११२					काशीवा काशीवा
	१		( १ काशी )			काशीवा काशीवा काशीवा
२०१११						काशीवा काशीवा काशीवा
११			( ११ काशी )			काशीवा काशीवा काशीवा
११						काशीवा काशीवा काशीवा
१			( ११ काशी )			काशीवा काशीवा काशीवा
१			( १ काशी )			काशीवा काशीवा काशीवा
१११ १ १						काशीवा काशीवा काशीवा
११४						काशीवा काशीवा काशीवा
१८						काशीवा काशीवा काशीवा
११७			( ११ काशी )			काशीवा काशीवा काशीवा
११६						काशीवा काशीवा काशीवा
११५						काशीवा काशीवा काशीवा
१ १						काशीवा काशीवा काशीवा
१ १-४८७						काशीवा काशीवा काशीवा

- १५८ ई० पू० खारवेलने मगध-नरेशको पराजित किया तथा  
यूनानियोंको मध्यदेशसे निकाल बाहर किया
- १५३ ,, कुमारो पर्वतपर खारवेलने जैनमुनियोंका महा-  
सम्मेलन किया
- १५२ ,, खारवेलके हाथीगुम्फा शिलालेखको तिथि
- ल० १५० ,, जैन मरस्वता आन्दोलनका प्रारम्भ
- ल० ८५ ,, शकोंका भारत-प्रवेश
- ७४-६१ ,, उज्जैनोमें खारवेलके वंशज महेन्द्रादित्य गर्दभिल्ल-  
का राज्य
- ६६ ,, शकोंका मालवामें प्रवेश, पुरातन शक संवत्-  
को प्रवृत्ति
- ६१-५७ ,, उज्जैनोमें शकोंका राज्य
- ५७ ,, विक्रमादित्यके नेतृत्वमें शकोंकी पराजय, मालव-  
गणकी स्वतन्त्रता, विक्रम संवत्का प्रवर्तन ।  
सुराष्ट्र, मथुरा आदिमें शकक्षत्रप वंशाकी स्थापना
- ८ ई० पू०-४४ ई० जैनाचार्य कुन्दकुन्द और उनके पाहुडग्रन्थ
- २५-७५ ई० दिगम्बर परम्पराके आगमोंका सकलन
- २६-६६ ई० सुराष्ट्रका सहारात नहपान्, गौतमापुत्र शातकर्णी
- ६६ ई० दक्षिणव दिगम्बर मूलसंघमें उपभेदोंको उत्पत्ति
- ७८ ई० चण्डन-द्वारा पश्चिमी क्षत्रपवंशकी स्थापना, उज्जैनो-  
की विजय, शक संवत्का प्रवर्तन
- ७८-१०० ई० पुरुषपुर ( पेशावर ) का कुषाण सम्राट् कनिष्क,  
घोडाचाय अश्वघोष
- ७० जैनसंघका दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदायोंमें  
विभाजन
- १२०-१ जैनाचार्य समान्तभद्र

- १ १ ई १ चण्डगुप्त-द्वारा कुशाभा नद्याः केन्द्रबद्धों द्वारा  
 १ ३ " चण्डगुप्तद्वारा राजनभाई कुशाभा राजगुप्त ईदम्  
 नीदका कायम

१८ नद्याः चण्डगुप्त नीदका राजगुप्त नीद ईद  
 मुनि कनकर चण्डगुप्तनीद ( इति कनकर )  
 की चण्ड काया

- १९८ १ ४ नीद नद्याः विष्णुकार कनिकारा  
 २०२११ चण्ड कायम  
 १३१ ३ कनिकारा राजगुप्तनीद  
 १६२-११ " कनिकारा  
 १९८-१९ कनिकारा विष्णुकार नीदका काया  
 १३१ १९ कनिकारा नीद नीदनी नीद-कायमका कनिकारा  
 कनिकारा ( कनिकारा कनिकारा ) कनिकारा  
 कनिकारा नीद नीद नीद नीद नीद नीद

- १ १ " नीदनी विष्णुकार कायमका नीदनी कायम  
 १९८-१९४ " कनिकारा नीद कनिकारा नीद  
 १९८-१९१ " कनिकारा नीदनी कायमका १  
 १८४ " कनिकारा नीद नीद नीद नीद नीद नीद  
 नीदनी कायम

१८४-४४ कनिकारा नीद नीद नीदनी नीदनी नीदनी  
 नीदनी नीदनी नीदनी नीदनी नीदनी

१८५ कायमका नीदनी नीदनी

१९९ कायमका नीदनी नीदनी

१९४ : कायमका नीदनी नीदनी नीदनी नीदनी  
 नीदनी नीदनी

१५८ ई० पू०	ग्यार्वेलने मगध-नरेशको पराजित किया तथा यूनानियासो मध्यदेशसे निकाल बाहर किया
१५२ „	कुमागे पर्वतपर ग्यारवेलने जैनमुनियोंका महा- सम्मेलन किया
१५२ „	ग्यारवेलके हाथोगुप्ता जिलालेखको तिथि
ल० १५० „	जैन सरस्वती आन्दोलनका प्रारम्भ
ल० ८५ „	शकोंका भारत-प्रवेश
७४ ई० „	उज्जैनमें ग्यारवलक वज्र महेंद्रादित्य गर्दभिल्ल- का राज्य
६६ „	शकोंका मालवामें प्रवेश, पुरातन शक सवत्- का प्रवृत्ति
६१-५७ „	उज्जैनमें शकोंका राज्य
५७ „	विक्रमादित्यके नेतृत्वमें शकोंकी पराजय, मालव- गणकी स्वतन्त्रता, विक्रम सवत्का प्रवर्तन। सुराष्ट्र, मथुरा आदिमें शकक्षत्रप वंशोंकी स्थापना
८ ई० पू०-४४ ई०	जैनाचार्य कुन्दकुन्द और उनके पाहुड़ग्रन्थ
२५-७५ ई०	दिगम्बर परम्पराके आगमोंका सफलन
२६-६६ ई०	सुराष्ट्रका क्षत्रगत नृपान, गौतमीपुत्र शातकर्णी
६६ ई०	दक्षिणक दिगम्बर मूलसंघमें उपभेदोंकी उत्पत्ति
७८ ई०	चष्टन-द्वारा पश्चिमी क्षत्रपवंशोंकी स्थापना, उज्जैन- की विजय, शक सवत्का प्रवर्तन
७८ १०० ई०	पुरुषपुर ( पेशावर ) का क्षुपाण सम्राट् कनिष्क, बौद्धाचार्य अश्वघोष
७९ ई०	जैनसंघका दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदायोंमें विभाजन
१२०-१८० ई०	जैनाचार्य समन्तभद्र

१३	१५	ई	महासारा दशावतन इत्यत्र मुद्रार्थेन श्रोत्ररा इव
	१८८	ई	विद्वन्नि-द्राग भुवने ईश्वरिणी स्थाप्य
म	१	ई	१. नालव इव वदता अन्तु दक्षिण बाण्डके पूर्वी तन्त्रे भाववर्णनका आत्मा वाचिने वाचार्थिना उत्पत्तीत्यत्र कलयात्रके नाम और कलयात्र रात्रि
	१८९	ई	कलयात्री का ईशुत इव वदता इत्यर्थेन
म	२५	ई	ईश्वरालीका अमृतवर्षेन वदत्य
	३१९	३	मुक्त मन्त्र व वल्गवी कल्पाया इत्यर्थेन वाहुतु प्रत्यक्षा अथवापर अविचार मुक्त ईश्वरी वशात्मा
	१	८	८ ई
	१८९-४१४	ई	तन्त्राद् अमृतमुक्त विष्णुदेव विष्णुदेवित्येन व्यासि कर्मवशात्
म	४	ई	१. वदत्यर्थेन वाहुतवधवर्षेन वदतीत्येन व्यास विष्णुदेव प्रियायना वात्त-वदत्यर्थेन
	४००-४८२	ई	वैव अविनीत कर्मिणी
	४१०-४९५	ई	कल्यद् अमृतमुक्त
	४११	ई	वैश्वदेवार्थ इत्यत्र भारत-वर्षेन अथावापि विष्णु कर्मिणी वदत्य
	४१५-४९८	ई	वाचिनीदेव विद्वन्नी कल्यव
म	४९०-४९८	ई	१. मुनीय कर्मव कल्यव कल्यवर्षेन इत्यत्रा विष्णु वल्गवीदेव विद्वन्नि-द्राग तन्त्रे-वदत्येन वाचिनीया मन्त्रव
	४९१-४९९	ई	तन्त्राद् अमृतमुक्त
	४९५	१९७	ई
	४९४-५२४	ई	वैवाचार्य पुत्राव-वदत्येन विद्वन्नि

४६५-५५५ ई०	महाकवि भारवि
४७३-५१५ ई०	हूणराज तोग्माण (कल्किपुत्र), जैनगुरु हरिगुप्त
४९२-५५२ ई०	गगनरेश दुर्विनीत कोंगुणो, चालुक्य जयसिंह विष्णुवर्धन
४९७ ई०	पूर्वी गग मधत्का प्रवर्त्तन
५०५ ई०	वराहमिहिरकी पंचसिद्धान्तिका
ल० ५२०-५५० ई०	चालुक्य पुलकेशि प्रथम
५३० ई०	मालव-नरेश यशोधर्मन द्वारा हूण मिहिरकुलकी पराजय
ल० ५५० ई०	उज्जैनोमे राजपि देवगुप्त
५५०-५७६ ई०	कन्नोजमें मोखरि ईशान वर्मन, काचोमें सिंहविष्णु पल्लव
६०० ६३० ई०	पल्लव महेन्द्र वर्मन प्रथम
ल० ६००-६८० ई०	जैनाचार्य अकलक देव, भतृहरि, कुमारिल भट्ट, धर्मकीर्त्ति, महाकवि दण्डो, वाण आदि
६०४ ई०	वज्रनदि-द्वारा पाण्ड्य मदुरामें जैन ब्रविडसघका पुन सगठन
६०५-११ ई०	वल्लभीका मेत्रक नरेश शिलादित्य धर्मदित्य प्रथम
६०६-४७ ई०	स्यानश्वरमें सम्राट् हपवर्धन, गोड नरेश शशाक ( ६१९ ई० )
६०८-४२ ई०	वातापीका चालुक्य-सम्राट् पुलकेशिन् द्वितीय
६०९-७० ई०	गगनरेश भूविक्रम कोंगुणि
६१५ ई०	कुब्ज विष्णुवर्धन, वेंगिका प्रथम पूर्वी चालुक्य नरेश
६२९-४३ ई०	ह्वेनसांगका भारत-प्रवास
६३०-६६८ ई०	पल्लव नरसिंह वर्मन प्रथम
६३४ ई०	रविकीर्त्तिका ऐहोल शिलालेख

१४३ ई

अनन्तकथा ननिन्दयो रामकथापि वीर्य विद्योपे  
काय वाय

१४३ ८ ई

बालक्य ब्रह्माद् विष्णुमाशित्य ब्रह्म

१७ -७१३ ई

गंग विषमार्त्त नमकाय

१८१ १९ ई

बालक्य भिनपाशित्य

१९५-७१३ ई

बालक्य विष्णुमाशित्य

क ७ ई

बालक्ये आदिपुर

७२९-७ ८ ई

अथ बालक्य नुत्तरन

१ -७१ ई

कथोपनिषद् बालक्यवर्त्मन

७३३-७९९ ई

नमोऽस्मै बालक्यवर्त्मन नमोऽस्मै

७३३ ७४९ ई

बालक्य विष्णुमाशित्य द्वितीय

क-७३९-७९९ ई

पञ्चमूढ नित्यपुर्ण

७४३ ई

नमोऽस्मै बालक्यवर्त्मन—बालक्यवर्त्मन ८४ बालक्य

७४९ ई

नमोऽस्मै बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन

नमोऽस्मै

७५८-७९९ ई

पञ्चमूढ नित्यपुर्ण

७९९-८२४ ई

बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन

७९४ ९९ ई

बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन

७९२ ई

बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन

क ७९५-८ ई

बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन

८ ई

बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन

७९९-८९९ ई

बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन

७८ ई

बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन

बालक्यवर्त्मन

क ७८ ई

बालक्यवर्त्मन

७८९ ई

बालक्यवर्त्मन बालक्यवर्त्मन

- ७९३ ई० कन्नौजमें इन्द्रायुधका राज्य
- ७९३-८१४ ई० राष्ट्रकूट गाविन्द तृतीय जगत्तुग
- ८१५- ७७ ई० राष्ट्रकूट सम्राट अमोघवर्ष प्रथम नृपतुग
- ८१५- ५० ई० गग राघमल सत्यवाक्य प्रथम
- ८२८- ७२ ई० वगाल-नरेका देवपाल
- ८३६- ८५१ ई० कन्नौजका गुर्जर-प्रतिहार सम्राट् भोजदेव
- ८७८-९१४ ई० राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय अकालवर्ष
- ल० ९०७ ई० परान्तक प्रथम चोल
- ९३९- ६७ ई० राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय
- ९४७ ई० गुजरातमें मूलराज-द्वारा सोलंकी वंशकी स्थापना
- ९५४-१००२ ई० खजुराहोका घग नन्देल
- ९६१- ७४ ई० गग मारसिंह
- ९७३- ९७ ई० तैलप द्वितीय, कल्याणीके उत्तरवर्ती चालुक्य वंशका सम्स्थापक
- ९७४- ९५ ई० धारामें वाक्पति मुज, परमार
- ९७७ ई० ग्वालियरमें वज्रदामन कच्छपघट
- ९७८ ई० श्रवणवेल्लोलकी गोम्मटेश बाहुबलि मूर्तिका निर्माण
- ९८५-१०१६ ई० राजराजा चोल
- ९९७-१००९ ई० चालुक्य सत्याश्रय इरिव वेदिग
- १००६ ई० मुनीन्द्र वर्धमान-द्वारा होयसल राज्यकी स्थापना
- १०१४- ४२ ई० चालुक्य सम्राट् जयसिंह द्वितीय
- १०१६- ४२ ई० राजेन्द्र चोल
- १०१८ ६० ई० धाराका भोज परमार
- १०७६-११२६ ई० चालुक्य, विक्रमादित्य ( विक्रमाक ) -
- १०९० ई० कन्नौजमें चन्द्रदेव द्वारा गहववाल वंशकी स्थापना





- १८७ ई० भटिण्डेके राजा जयपाल साहो-द्वारा सुवृत्तगोन  
गजनवीकी पराजय
- १९९-१०२७ ई० महमूद गजनवीके ठुटेरे आक्रमण, अलवेम्नी
- ११९१ ई० : तराइनका प्रथम-युद्ध, राजपूतों-द्वारा मुहम्मद  
गोरीकी पराजय
- ११९२- ९३ ई० तराइनका दूसरा युद्ध, पृथ्वीराजकी पराजय,  
दिल्लोपर मुसलमानाका अधिकार
- ११९४ ई० जयचन्द्रकी पराजय, बन्नीजपर मुसलमानोंका  
अधिकार
- ११९७ ई० भीमदेव सोलंकी-द्वारा गौरीकी सेनावाकी पराजय
- ११९९ ई० मुहम्मदबिन बख्तियार खलजी-द्वारा बिहार व  
बंगालपर अधिकार
- १२०६ ई० गोरीकी मृत्यु, कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा दिल्लीमें  
गुलामवंशकी स्थापना
- १२१२-३६ ई० इल्तुतमिश दिल्लीका सुलतान
- १२२५ ई० चंगेजखान मंगोलका आक्रमण
- १२६६ ८६ ई० बलघन
- १२९० ई० जलालुद्दीन खलजी द्वारा दिल्लीमें खलजीवंशकी  
स्थापना
- १२९६-१३१६ ई० अलाउद्दीन खलजी
- १३२१ ई० शाजी तुगलक-द्वारा दिल्लीमें तुगलकवंशकी  
स्थापना
- १३२५-५१ ई० मुहम्मद तुगलक, अफोकी यात्री इब्नबतूता
- १३४७ ई० दक्षिण ( गुलबर्गा ) में बहमनी राज्यकी स्थापना

११५१ ८८ ई	बीरीखण्ड मुहम्मद तिलवीके मुर्ती काकायमका कम आगम
११८८ १५ ई	मानदेवका जगन्नी बंध
११९८ ई	हीनुरमका भारत-आक्रमण बीर म्द-मर
११ १५९५ ई	राजिपराका तीव्र राग
११ ११८९ ई	बीनपुरका पार्थी बलमन
१८ ११९ ई	बागू ( बागका ) का मुलतान डोयद रोगी
१४१४ ई	मुनपुराईका कम तिल्लीमें हीयर ५५० लो- कम—हीवर गिहराई-आम
१४१५-९ ई	कबीरका मुलतान ईशुबबादीन ( मुहम्मद )
१४१६-८२ ई	बागका मुलतान बहुर बलम
१४९ ई	तिल्लीमें बहुरीय कोटी-आम कोटी बंधी कमल ५५५ ई राका मुल
१४९१ १५११ ई	मुलतानका मुलतान बहुर बैनका
१४९१-८९ ई	१ बहुरी राका बनिद कमी बहुर बंधी
१४८४ १५०४ ई	बहुरी इमरदाई बलमन
१४८९ १५१ ई	तिल्लीका मुलतान बिलमर कोटी
१४८९-१५८९ ई	बीरापुरकी बाबिलदाई बलमन
१४९ १५१ ई	बागका बहुरी निबालदाई बलमन
१४९१ १५१९ ई	बलमन मुलतान बहुरदाई
१४९८ ई	बलमन बाबिलदाई काबीरमें बलमन
१५ १ ई	बहुरी-आम बीरमें बलमन राका लकम
१५१५-१९ ई	१ तिल्लीमें बहुरीय कोटी
१५१८ १५८० ई	बीरपुरका मुलतान

- १७४६-१४ ई० पागोसी गवर्नर मुद्रा
- १७४९-१४ ई० द्वितीय अंगरेज पागोसी मुद्रा
- १७५१ ई० बलाद्वय-द्वारा अर्वाटका पेग, अंगरेजी राष्ट्र-नित्य  
संविधान सूत्रपात्र
- १७५६ ई० तीसरा अंगरेज पागोसी मुद्रा
- १७५६ ई० अहमदशाह अंगरेजी-द्वारा सिन्धीकी मुद्रा
- १७५७ ई० पागोसीका मुद्रा, मंगालपुर अंगरेजीका प्रमुक्त
- १७६१ ई० पागोसीका सामग्री मुद्रा, मराठोषी पराजय,  
पमतायाका पत्र
- १७६१-८२ ई० मैसूरका हुंजरजली
- १७६५ ई० : प्लाट बलाद्वय मंगालका गवर्नर, बलाद्वयकी  
गणित
- १७६७-६९ ई० प्रथम अंगरेज मैसूर मुद्रा
- १७७२-७६ ई० पारेन ऐन्टिगा मंगालका गवर्नर
- १७७३ ई० नेगुलेटिंग ऐक्ट
- १७७४-८५ ई० पारेन ऐन्टिगा अंगरेजी भारतका गवर्नर-जनरल
- १७७५ ई० सर विलियम जोन द्वारा मंगाल एन्टिगाटिक  
मोसाद्वयकी स्थापना
- १७७५-८२ ई० प्रथम अंगरेज-मराठा मुद्रा
- १७८०-८६ ई० दूसरा अंगरेज-मैसूर मुद्रा
- १७८८ ई० पिट्स एन्टिगा ऐक्ट
- १७८६-९३ ई० लार्ड कार्नवालिस ( ग० ज० ), हस्तमराठी  
चन्दोषस्त
- १७९३ ई० कम्पनीका चाटर
- १७९३-९८ ई० सर जॉन दोर ( ग० ज० ), हस्तक्षेप न करने-  
की नीति



- १७४२-५४ ई० • फ्रान्सीसी गवर्नर डूप्ले
- १७४९-५४ ई० द्वितीय अंगरेज फ्रान्सीसी युद्ध
- १७५१ ई० बलाइव-द्वारा अर्काटिका घेरा, अंगरेजी राजनैतिक  
शक्तिका सूत्रपात
- १७५६-६३ ई० तीसरा अंगरेज फ्रान्सीसी युद्ध
- १७५६ ई० अहमदशाह अब्दाली-द्वारा दिल्लीकी लूट
- १७५७ ई० प्लासीका युद्ध, बंगालपर अंगरेजोंका प्रभुत्व
- १७६१ ई० पानीपतका तीसरा युद्ध, मराठोंकी पराजय,  
पेशवाओंका पतन
- १७६१-८२ ई० मैसूरका हैदरअली
- १७६५ ई० लार्ड क्लाइव बंगालका गवर्नर, इलाहाबादकी  
सन्धि
- १७६७-६९ ई० प्रथम अंगरेज-मैसूर युद्ध
- १७७२-७४ ई० : वारेन हेस्टिंग्स बंगालका गवर्नर
- १७७३ ई० रेगुलैटिंग ऐक्ट
- १७७४-८५ ई० वारेन हेस्टिंग्स अंगरेजी भारतका गवर्नर-जनरल
- १७७५ ई० सर विलियम जोन्स-द्वारा बंगाल एशियाटिक  
सोसाइटीकी स्थापना
- १७७५-८२ ई० प्रथम अंगरेज-मराठा युद्ध
- १७८०-८४ ई० दूसरा अंगरेज-मैसूर युद्ध
- १७८४ ई० पिट्स इण्डिया ऐक्ट
- १७८६-९३ ई० लार्ड कार्नवालिस ( ग० ज० ), इम्तमरारी  
बन्दोबस्त
- १७९३ ई० कम्पनीका चार्टर
- १७९३-९८ ई० सर जॉन शोर ( ग० ज० ), हस्तक्षेप न करने-  
की नीति

१० ८ १८१९ ई	चंडावने रणजीव निह	मिशन साग नीरघात
१०९८ १८ १ ई	कारं कीटेश्वरी ( व क )	महात्म बलिबल
१०९८ १९ ई	बीबा बेंबरीड-जीपुर बुड	डीनु मुन्तावरा कल
११ २-०५ ई	सुमरा बेंबरीड-बराडा बुड	
१८ ५ ७ ई	नर कारं बायो ( व क )	
१८ ७-१३ ई	कारं बिली ( व क )	
१८१३ ई	बलबीबा कारंर	
१८१३ १३ ई	कारं हेलिना ( व क )	
न १८१५ ई	राजा राजबहादुरराज-बारा बाडा बहादुरी	
	बहादुरा	
१८१९ ई	बेनाल-बुड बीर बिधीलीकी बलि	
१८१९ १८ ई	मिनागिबीडा बल	
१८१७-१९ ई	बीडरा मराडा बुड, बराडा बलिबा बल	
१८२३-२८ ई	कारं एडगटे ( व क )	
१८२४-२६ ई	बलब बली बुड	
१८२८ १५ ई	नर मिनिम बलिब बीर बलके मुना	
१८१९ ई	मिनाके बलाबीडा बल	
१८१३ ई	बलबीबा कारंर	
१८२५ १९ ई	नर बाल्म वेडगाड ( व क )	
१८१९ ४२ ई	कारं बाकलीग ( व क )	बलब बलबीडा बुड
१८४२ ८४ ई	कारं बलिबरा ( व क )	
१८४३ ई	1. मिनाकी बेंबरीडा बाल्म मिनावा	
१८४४ ४८ ई	कारं बाकिय ( व क )	बलब बलिब बुड, बलिबराबल बल
१८४८-५९ ई	कारं बलबीडी	
१८४८ ई	बाराडा बाल्मका कल	

- १८४९ ई० पंजाबकी अंगरेजों राज्यमें मिलाना  
 १८५२ ई० दूसरा चर्मा युद्ध, दक्षिणी चर्माविर अंगरेजोंका अधिकार  
 १८५३ ई० दार्जी राज्यका अंत, बम्पनीका नाट्य, भारतमें रेलका जागी होना  
 १८५४ ई० चान्ग युद्धों मित्रा-सम्बन्धों रिपाट  
 १८५६ ई० बयधकी नवायोंका अंत  
 १८५७ ई० , अंगरेजों दामनके विरुद्ध देशव्यापी सैनिक विप्लव  
 १८५८ ई० विद्रोहका दमन, भारतका शासन इंग्लैण्डकी सरकाराने बम्पनामें छोनकर अपने हाथमें लिया, महारानी विक्टोरियाकी विज्ञप्ति, ऐक्ट फार दो घंटे गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, लाह रनिंग प्रथम वायसराय  
 १८५८-१९४७ ई० पुनरुद्धान युग  
 १८६१ ई० इण्डिया की सिल ऐक्ट  
 १८७० ई० म्युनिसिपल ऐक्ट द्वारा स्वायत्त शासनको मान्य करना  
 १८७१ ई० प्रथम जन-गणना  
 १८७६ ई० भारतीय मद्य नामक संस्थाकी स्थापना  
 १८८३-८४ ई० विभिन्न स्थानोंमें म्युनिसिपल व डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंकी स्थापना  
 १८८५ ई० इण्डियन नेशनल काँग्रेसकी स्थापना  
 १८८८ ई० अपर इण्डिया मुसलिम एसोसियेशनकी स्थापना  
 १८९२ ई० दूसरा इण्डिया कीन्सिल ऐक्ट  
 १९०४-०५ ई० बगसर्ग आन्दोलन  
 १९०६ ई० मुसलिम लीगकी स्थापना



१७९८ १८१९ ई	नवाबों के राजगीत तिरु	दिल्ल राम्म रत्न
१७९८ १८ ५ ई	मार्च बेवेइली ( न क )	लाला बन्नि-रत्न
१७९८ १९ ई	बीना बेंबेइ-मैतूर बुद्ध	दीपु मुन्नारका कल
१८ १-२५ ई	मुत्तरा बेंबेइ-नरम्म बुद्ध	
१८ ५-२७ ई	मर बाज बाबों ( न क )	
१८ ७-१५ ई	लाइ बिष्टो ( न क )	
१८१५ ई	बम्पनीका चार्टर	
१८११ १२ ई	काक इस्टिग ( न क )	
१८१५ ई	राज राम्मोहनका-काक बाबू बवाइको	
	स्वाका	
१८१५ ई	बेकाक-मुद्ध और सिबीलीकी बन्नि	
१८१५ १८ ई	मिन्नालीकीका बम्प	
१८१७-१९ ई	बीनारा बम्प बुद्ध बम्प एलिफन रत्न	
१८१७-१८ ई	काक एम्पुल ( न क )	
१८१७-१९ ई	बम्प बवा बुद्ध	
१८१८ १९ ई	मर मिन्निम बैटिक और कलके मुत्तर	
१८१९ ई	दिल्लके लालाकीका बम्प	
१८१९ ई	बम्पनीका चार्टर	
१८१९-२५ ई	मर बाज बैटिका ( न क )	
१८१९ २ ई	लाइ काकबेइ ( न क )	बम्प बम्पना बुद्ध
१८१९ ४ ई	काक एलिफन ( न क )	
१८१९ ई	दिल्लके बेंबेइली राम्मके बिल्ला	
१८१९ ४८ ई	मार्च हाकिम ( न क )	बम्प दिल्ल बुद्ध
	मिन्नाराम्मका रत्न	
१८१९-२५ ई	मार्च बम्पनीकी	
१८१९ ई	बम्पना राम्मका कल	

- १८४९ ई० पञ्जाबको अँगरेजो राज्यमें मिलाना
- १८५२ ई० दूसरा बर्मा युद्ध, दक्षिणी बर्मापर अँगरेजोका अधिकार
- १८५३ ई० . झाँसी राज्यका अन्त, कम्पनीका चार्टर, भारतमें रेलका जारी होना
- १८५४ ई० चाल्म वुडको शिक्षा-सम्बन्धी रिपोर्ट
- १८५६ ई० अवधकी नवाबोका अन्त
- १८५७ ई० . अँगरेजो शासनके विरुद्ध देशव्यापी सैनिक विप्लव
- १८५८ ई० विद्रोहका दमन, भारतका शासन इंग्लैण्डकी सरकारने कम्पनीसे छीनकर अपने हाथमें लिया, महारानी विक्टोरियाकी विज्ञप्ति, ऐक्ट फ़ार दी वैंटर गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, लार्ड कैनिंग प्रथम वायमराय
- १८५८-१९४७ ई० पुनरुत्थान युग
- १८६१ ई० इण्डिया कौन्सिल ऐक्ट
- १८७० ई० . म्युनिसिपल ऐक्ट द्वारा स्वायत्त शासनको मान्य करना
- १८७१ ई० प्रथम जन-गणना
- १८७६ ई० भारतीय मद्य नामक सस्थाको स्थापना
- १८८३-८४ ई० विभिन्न स्थानोंमें म्युनिसिपल व डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंकी स्थापना
- १८८५ ई० इण्डियन नेशनल काँग्रेसकी स्थापना
- १८८८ ई० अपर इण्डिया मुसलिम एसोसियेशनकी स्थापना
- १८९२ ई० दूसरा इण्डिया कौन्सिल ऐक्ट
- १९०४-०५ ई० वगभंग आन्दोलन
- १९०६ ई० मुसलिम लोगकी स्थापना

- १९७ ई. कश्मिरका मुराद अलिबेखान, बरख और बाब  
बन अमन हुए
- १ ९ ई. बिन्टो-बार्ने रिज्जस कर्नलेज बाई इंग्लिश ऐक्ट  
१९१२ ई. गिल्ली बरखार, इन्वीन्वडे राख और एमी  
आजमके कपडकपडे
- १९१४-१८ ई. कुरीलीय म्यामुज
- १९१५ ई. कश्मिरका अमनउ अलिबेखान बरख-नरख एक  
मिके मुकाम्मालीके बाब अमनउ बेख, इन्वी  
बेनेलका इमामक आम्बोअन
- १९१९ ई. मन्टोमु-बीकट्टोय रिपीठ कर्नलेज बाई इंग्लिश  
ऐक्ट
- १९१ ई. मोकमम रिज्जसकी मुकु, गल्मीठी कश्मिरके  
केस हवे
- १९११ ई. मकल्ला गल्मीका अख्दारीय अम्बोअन, रिज्जस  
गल्मीअन
- १९१२ ई. इमम बेगमगुलीकी ल्हाफा
- १९१९ ई. कश्मिरका अम्मीर अलिबेखान दुर्ब ल्हाफीअ  
अमम बोखिन
- १९१ ई. गाइन कम्मीअनकी रिपीठ
- १९१ ई. गहल्ला गल्मीके केसुरीय अलिबेखान बाखान  
आम्बोअन और अल्लाहु बारख
- १९१४-१२ ई. गहल्लाकी तीन गल्मीय कश्मिरा मी
- १९११ ई. ईन्वी बेकमल्लाका कम्मुअन बरख
- १९११ ई. इमम-अन
- १९१९ ई. कर्नलेज बाई इंग्लिश ऐक्ट
- १ १४ ई. कई गल्मीय कश्मिरा अलिबेखानकी ल्हाफा

- १९३९-४५ ई० विश्वयुद्ध
- १९४२ ई० 'भारत छोड़ो' आन्दोलन, गुमाप घोसका आजाद हिन्द प्रयत्न, मुहम्मदअली जिन्ना-द्वारा पाकिस्तान-की माँग, स्ट्रेफ़र्ड क्रिस्तका भारत आगमन और भारतीय सघ-योजना प्रस्तुत करना
- १९४४ ई० वेवल याजना
- १९४५ ई० फॉबिनेट मिशन एवं पालमेण्टरी डेलीगेशन
- १९४६-४७ ई० अन्तरिम शासन
- १९४७ ई० ( १५ अगस्त ), इंग्लैण्डकी सरकारका इण्डियन इण्टेपण्डेस ऐक्ट, भारतवर्षका विभाजन और स्वतन्त्रता
- १९४८ ई० ( ३० जनवरी ), महात्मा गान्धीकी हत्या
- १९५० ई० ( २६ जनवरी ), भारतीय संविधानका कार्यान्वित होना



- १ ७ ई बहिनका मुरत बहिनोदन गरम और गरम  
रस बचन हुए
- १९ ९ ई बिल्ली-मार्गे रिपार्में बकरीधेट और इन्डिया रैड
- १९२९ ई बिल्ली बरवार, इन्डियाके राया और एन्डे  
बावकनके बचनबने
- १९२४ १८ ई : मुटोरीय बचनमुद्र
- १९२९ ई बहिनका लकनऊ बहिनोदन गरम-गरम ल  
बिल्ली मुकलबानीके बाव बचनऊ रैड, एन्डे  
रैनेबनका इन्डियाके बचनोदन
- १९२९ ई बालीमु-बिल्लीधेट रिपार्में बकरीधेट और इन्डिया  
रैड
- १९२९ ई लौकबान्य रिपार्में मुटु, बालीकी बहिनके  
मैदा बने
- १९२९ ई मद्रासा बालीका बचनोरीय बालीसन रिपार्में  
बालीसन
- १९२९ ई बाल्य बचनोरीकी लकनऊ
- १९२९ ई बहिनका बचनोर बहिनोदन मुने लकनऊ  
गरम बहिन
- १९३ ई बहिनका बचनोरीकी रिपार्में
- १९३ ई बचनका बालीके बचनोरी लकनऊ बचनोर  
बालीसन और बचनोरी बचनोर
- १९३०-३२ ई लकनऊकी टीन बचनोरी बचनोरी
- १९३१ ई रैन्डी बचनोरीका बचनोरी बचनोर
- १९३३ ई लौक-बचन
- १९३५ ई बकरीधेट और इन्डिया रैड
- १९३७ ई कई बालीकी बहिनका बचनोरी लकनऊ

